卐 द्रव्य सहायक 卐

श्रीमान् फतेलालजी पन्नालालजी मालू जैन पारमार्थिक संस्था,

खीचन (जिला—जोधपुर, राजस्थान)

प्राप्ति स्थान—

१. श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (मध्य-प्रदेश)

शाखा—श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ

२. ,, २३४ नागदेवी स्ट्रीट बम्बई नं. ३

३. ,, सराफा बाजार जोधपुर (राजस्थान)

४. ,, सदर बाजार रायपुर (मध्य-प्रदेश)

स्वल्प मूल्य ५-००

वीर संवत् २४९२
विक्रम संवत् २०२२
ईसवी सन् १९६६

प्रथमावृत्ति ८००

मुद्रक—श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस, सैलाना (म. प्र.)

卐 पुण्य स्मृति में 卐

रेगिस्तान के एक कोने में बसा हुआ हमारा छोटासा 'खीचन' गाँव, भारत के हजारों गावों की तरह उपेक्षणीय एवं अनाकर्षक है। वहाँ अपने ही जिले के लोगों के आकर्षण का कोई आधार नहीं है। किन्तु खीचन निवासियों के पुण्य का उदय हुआ। स्वनामधन्य पूज्यश्री १००८ श्री ज्ञानचन्द्रजी म. की सम्प्रदाय के आदर्श संयमी, स्व. पूज्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज सा., तपस्वीराज श्री मिरेमलजी म० सा. और समाज के अद्वितीय बहुश्रुत, निर्मल मति, गूढ़तम तत्त्वों के सरल व्याख्याता, गीतार्थ पंडित-रत्न बाल-ब्रह्मचारी श्रमश्रेष्ठ पूज्य श्री समर्थमलजी महाराज आदि संतों के विराजने से यह गाँव भारतभर के धर्मप्रिय बन्धुओं के लिए आकर्षक बन गया। दूर दूर से दर्शनार्थी आने लगे। पूज्य श्री रत्नचंद्रजी म. की लम्बी बिमारी और उनके स्वर्गवास के बाद तपस्वीराज की बिमारी के कारण लगभग ३४ वर्ष तक खीचन 'तीर्थधाम' बना रहा। इस अवसर में खीचन संघ को ज्ञान, ध्यान, धर्मोपदेश और साधर्मी बन्धुओं की सेवा का लाभ मिलता रहा।

इन महापुरुषों के पवित्र उपदेशों से प्रभावित होकर श्रीमान् खुशालचंदजी, श्री प्रकाशचंदजी, श्री उत्तमचंदजी, श्री रत्नचंदजी और पंडित प्रवर श्री घेवरचंद्रजी बाँठिया 'वीरपुत्र', न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धांत शास्त्री की तथा श्रीमती गंगाबाई बाफना, श्रीमती लक्ष्मीदेवी बाँठिया और कुमारी स्नेहलता की निर्ग्रंथ प्रव्रज्या का उत्तम सुयोग प्राप्त हुआ।

भगवती सूत्र का सम्पादन भी पं० श्री घेवरचन्द्रजी बाँठिया "वीरपुत्र" ने खीचन में रह कर किया। इन सब उत्तम शुभ प्रसंगों की स्मृति में भगवती सूत्र का यह द्वितीय भाग, श्रुतज्ञान के रसिकों के लाभार्थ प्रकाशित कराया जा रहा है। आशा है कि इससे समाज को यथेष्ट लाभ होगा।

संघ सेवक—

किशनलाल पृथ्वीराज गणेशमल मालू

श्री फतेलाल पन्नालाल मालू जैन पारमार्थिक संस्था खीचन की ओर से

निवेदन

एक वर्ष के बाद भगवतीसूत्र का यह दूसरा भाग प्रकाशित हो रहा है। इसमें ३ से ६ तक चार शतक आये हैं। इसका प्रकाशन भी प्रथम भाग की तरह श्रीमान् सेठ किशनलालजी पृथ्वीराजजी सा० मालू द्वारा श्री फतेलालजी पन्नालालजी मालू जैन पारमार्थिक संस्था खीचन के आर्थिक सहयोग से हुआ है। तीसरे भाग का काम भी शीघ्र ही प्रारंभ होगा।

संघ की ओर से आगम साहित्य प्रकाशन का कार्य चालू है। शनैः शनैः काम आगे बढ़ रहा है। योग्य सहायक के नहीं मिलने से काम की गति मन्द है और प्रूफ शुद्धि भी चाहिए वैसी नहीं हो रही है। फिर भी हमारे समाज में भगवतीसूत्र का यह प्रकाशन अपूर्व हो गया है और इसकी अधिक उपयोगी होगा, इसमें सन्देह नहीं है। शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन से इसकी उपयोगिता में वृद्धि हुई है। आशा है कि यह प्रकाशन धर्मप्रिय एवं सम्यग्ज्ञान के रसिक पुण्यात्माओं को प्रिय एवं उपयोगी होगा।

इस भौतिक युग में उत्पन्न राजनैतिक वातावरण की विषमता में, अपने प्राप्त द्रव्य का सदुपयोग, ऐसे धर्मसाधक और संस्कृति रक्षक कार्यों में करना, प्रत्येक प्रियधर्मी भाव्यात्माओं का कर्त्तव्य है। यह संस्था अपने कार्य से, सम्यग्ज्ञान का प्रचार कर समाज की सेवा करने के लिए तत्पर है।

धार्मिक साहित्य प्रकाशन, धार्मिक शिक्षा प्रचार. दीक्षा सहायता और साधर्मी सहायता—ये चार शुभ कार्य इस संघ द्वारा होते हैं। इसमें अपना शुभ योग देकर संघ को विकसित करना प्रत्येक धर्मप्रिय भव्यात्मा का कर्त्तव्य है।

पौष शु. ९ वीर सं. २४९२
१-१-१९६६
विक्रम सं. २०२२

अध्यक्ष—मानकलाल पोरवाड़, एडवोकेट
प्रधान मंत्री—रतनलाल डोशी
मन्त्री—बाबूलाल सराफ
" जशवंतलाल शाह

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३८	११	सम्सूर्ण	सम्पूर्ण
५३८	१४	चक्करस्स	चक्कस्स
५६२	१२	तवेकम्मेणं	तवोकम्मेणं
५७४	४	ठावेता	ठावेत्ता
५७७	११	समाणेइ मं	समाणे इमं
५८२	१६	आभोएंति	ओहिणा आभोएंति
५८२	१७	ओहिणा	०
५८४	७	अम्हहिं	अम्हेहिं
५८५	६	दोच्चंपि	दोच्चं पि तच्चं पि
५८५	७	देवाप्पिया	देवाणुप्पिया
६३२	६	अस्तित्त्व नहीं रहेगा	सुख का अस्तित्व
६३२	२३	हजरों	हजारों
६८६	१६	उपएज्जा	उप्पएज्जा
६९७	५	पासइं	पासइ
७०६	३	पण्णताओ	पण्णत्ताओ
७०६	४	चउट्ठीओ	चउसट्ठीओ
७०६	६	जतिआ	जत्तिआ
७१३	२	अदृष्ट	अश्रुत
७१७	१२	अंबं	अंबे
७१८	१०	त्रिअंत	त्रिअंतर
७२८	३	त	तं
७२९	१२	शेखपाल	शंखपाल
७४०	१५	विभागूणा	त्रिभागूणा
७४३	८	सोभा	सोमा
७४८	२	रंग के	०

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६३	७	गौतस !	गौतम !
८०१	६	जीवेगिंदियवज्जे	जीवेगिंदियवज्जो
८०६	६	रजोहृणं	रजोहरण
८३८	८	तीर्थंकरों	तीर्थंकरों की माताओं
८४७	२३	मिण्छा	मिच्छा
८५५	५	सघटित	संघटित
८५६	२४	आधाकम	आधाकर्म
८६६	६	नारपुत्र	नारदपुत्र
९२८	८	पसंति	पासंति
९३६	१८	वेदेना	वेदना
९३८	१४	काइविहे	कइविहे
९६०	१२	वंधए	वंधइ
९६०	१३	"	"
९६६	१७	घौतम	गौतम
९७६	१७	गुणास्थानक	गुणस्थानक
९७९	१८	तिंयभगो	तियभंगो
९९६	६	पच्चक्खाणं	पच्चक्खाण कुव्वंति,
१००२	१६	अच्छगणिवाएहिं	अच्छराणिवाएहिं
१००३	७	व्यतीत	पार
१००५	१४	घरसमूह	दुकान
१००७	१०	भीभे	भीमे
१०१२	१	पच्चत्थिमाआ	पच्चत्थिमाओ
१०१६	१३	पोग्गलपरिमाणाओ	पोग्गलपरिणामाओ
१०२९	१०	देवत्ताए	देवत्ताए उववज्जित्तए
१०३५	२१	का	का निगोद का
१०४७	२	रत्तप्रभा	रत्नप्रभा
१०५८	१२	क्षोम	क्षोभ
१०६१	१७	सिद्धलुक्ख	णिद्धलुक्ख
१०६६	१४	वकल्प	विकल्प
१०७४	८	वेमामियाणं	वेमाणियाणं

विषयानुक्रमणिका

शतक—३

उद्देशक--५

उद्देशक--६

उद्देशक--७

उद्देशक--८

उद्देशक--९

उद्देशक--१०

शतक--४

उद्देशक--१, २, ३, ४

उद्देशक--५, ६, ७, ८

उद्देशक--९

उद्देशक--१०

शतक--५

उद्देशक--१

उद्देशक--२

अस्वाध्याय

निम्न लिखित चोंतीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिए।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	काल मर्यादा
१ बड़ा तारा टूटे तो—	एक प्रहर
२ उदय अस्त के समय लाल दिशा—	जब तक रहे
३ अकाल में मेघ गर्जना हो तो—	दो प्रहर
४ " बिजली चमके तो—	एक प्रहर
५ " बिजली कड़के तो—	दो प्रहर
६ शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात—	प्रहर रात्रि तक
७ आकाश में यक्ष का चिन्ह हो—	जब तक दिखाई दे
८-९ काली और सफेद धूंअर—	जब तक रहे
१० आकाश मण्डल धूलि से आच्छादित हो—	जब तक रहे

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३ हड्डी, रक्त और मांस, ये तिर्यञ्च के साठ हाथ के भीतर हों। मनुष्य के हों, तो सौ हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो बारह बर्ष तक।

१४ अशुचि की दुर्गन्ध आवे या दिखाई दे— तब तक।

१५ श्मशान भूमि— सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

१६ चन्द्रग्रहण—खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

१७ सूर्य ग्रहण " १२ " १६ "

१८ राजा का अवसान होने पर, जब तक नया राजा घोषित न हो।

१९ युद्ध स्थान के निकट— जब तक युद्ध चले

२० उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो— जब तक पड़ा रहे।

२१-२५ आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा दिन रात

२६-३० इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा "

३१-३४ प्रातः, मध्यान्ह, संध्या और अर्द्ध रात्रि—इन चार सन्धिकालों में—१-१ मुहूर्त।

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं बांचना चाहिए।

नोट—मेघ गर्जनादि में अकाल, आर्द्रा नक्षत्र से पूर्व और स्वांति से बाद का माना गया है।

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

गणधर भगवान् सुधर्मस्वामि प्रणीत

श्री भगवती सूत्र

[द्वितीय भाग]

शतक ३

उद्देशक १

चमरेन्द्र की ऋद्धि

१ गाहा-

केरिसी विउव्वणा चमर किरिय जाणित्थि णगरपाला य ।
अहिवइ इंदिय परिसा तइयम्मि सए दस उद्देसा ॥

भावार्थ-तीसरे शतक में दस उद्देशक हैं। उनमें से पहले उद्देशक में चमर की विकुर्वणा, दूसरे उद्देशक में उत्पात, तीसरे में क्रिया, चौथे में देव द्वारा विकुर्वित यान को साधु जानता है ? पांचवें में साधु द्वारा स्त्री आदि के रूपों की विकुर्वणा, छठे में नगर सम्बन्धी वर्णन, सातवें में लोकपाल, आठवें में अधिपति, नववें में इंद्रियों संबंधी वर्णन और दसवें में चमरेन्द्र की सभा संबंधी वर्णन है।

२-तेणं कालेणं, तेणं समएणं मोया णामं णयरी होत्था। वण्णओ। तीसे णं मोयाए णगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभागे णंदणे णामं चेइए होत्था। वण्णओ। तेणं कालेणं, तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा णिग्गच्छइ, पडिगया परिसा।

३ प्रश्न-तेणं कालेणं, तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दोच्चे अंतेवासी अग्गिभूई णामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे, जाव--पज्जुवासमाणे एवं वयासी---चमरे णं भंते! असुरिंदे, असुरराया के महिड्ढीए, के महज्जुईए, के महाबले, के महायसे, के महासोक्खे, के महाणुभागे, केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?

३ उत्तर-गोयमा ! चमरे णं असुरिंदे, असुरराया महिड्ढीए, जाव---महाणुभागे। से णं तत्थ चउत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं, चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, जाव-विहरइ। एवं महिड्ढीए, जाव-महाणुभागे। एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, से जहा नामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा णाभी अरगाउत्ता-सिआ, एवामेव गोयमा ! चमरे असुरिंदे, असुरराया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निस्सरइ, तंजहा रयणाणं जाव-रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परियाएइ, परि-

याइत्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घायेणं समोहण्णइ समोहणित्ता पभू णं गोयमा ! चमरे असुरिंदे, असुरराया केवलकप्पं जंबूदीवं दीवं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं, देवीहिं य आइण्णं, वितिकिण्णं, उवत्थडं, संथडं, फुडं, अवगाढावगाढं करेत्तए; अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरे असुरिंदे असुरराया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं, देवीहिं य आइण्णे, वितिकिण्णे, उवत्थडे, संथडे, फुडे अवगाढावगाढे करेत्तए, एस णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो अयमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते बुइए, णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वइ वा विउव्विस्सइ वा ।

कठिन शब्दार्थ–सत्तुस्सेहे–सात हाथ ऊँचे शरीर वाले, के महिड्ढीए–कैसी महान् ऋद्धिवाला, के महज्जुईए–कैसी महान् द्युति–कान्तिवाले, सामाणिय–बराबरी के, पभू विउव्वित्तए–विकुर्वणा करने में समर्थ, साणं साणं–अपने अपने, तायत्तीसगाणं–त्रायस्त्रिंशक मन्त्री के समान, एवतियं–इतनी, जुवइं जुवाणे–युवती और युवक, चक्कस्स वा णाभी अरगाउत्ता-सिआ–चक्र-पहिये की नाभि में आरे संलग्न हो–संबद्ध हो उस प्रकार, निस्सरइ–निकालता है, परिसाडेइ–गिरा देता है, परियाएइ–ग्रहण करता है, केवलकप्पं–परिपूर्ण–पूर्ण शक्तिमान्, आइण्णं–आकीर्ण–व्याप्त, वितिकिण्णं–व्यतिकीर्ण–विशेष रूप से व्याप्त, उवत्थडं --उपस्तीर्ण, संथडं–संस्तीर्ण, फुडं–स्पृष्ट, अवगाढावगाढं–अवगाढावगाढ–अत्यंत ठोस–जकड़े हुए, अदुत्तरं–इसके बाद, बुइए–कही है, संपत्तीए–संप्राप्ति–क्रिया रूप से ।

भावार्थ–२–उस काल उस समय में 'मोका' नाम की नगरी थी । उसका वर्णन करना चाहिए । उस नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व के दिशाभाग में अर्थात् ईशान कोण में नन्दन नाम का चैत्य (उद्यान) था । वह वर्णन करने योग्य था । उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे । भगवान् के आगमन को सुन कर परिषद् दर्शनार्थ निकली । भगवान् का धर्मोपदेश सुन

कर परिषद् वापिस चली गई।

३ प्रश्न-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दूसरे अन्तेवासी अग्निभूति अनगार, जिनका गौतम गोत्र है, सात हाथ ऊँचा शरीर है, यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले-

हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर कितनी बड़ी ऋद्धिवाला है ? कितनी बड़ी कान्तिवाला है ? कितना बलशाली है ? कितनी बड़ी कीर्ति वाला है ? कितने महान् सुखों वाला है ? कितने महान् प्रभाव वाला है ? वह कितनी विकुर्वणा कर सकता है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर महाऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभाव वाला है। चौतीस लाख भवनावास, चौसठ हजार सामानिक देव और तेंतीस त्रायस्त्रिंशक, इन सब पर वह अधिपतिपना (सत्ताधीशपना) करता हुआ विचरता है। अर्थात् वह चमर ऐसी मोटी ऋद्धि वाला है यावत् ऐसा महाप्रभाव वाला है। उसके वैक्रिय करने की शक्ति इस प्रकार है-हे गौतम ! विकुर्वणा करने के लिए असुरेन्द्र असुरराज चमर, वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है, समवहत होकर संख्यात योजन का लम्बा दण्ड निकालता है। उसके द्वारा रत्नों के यावत् रिष्टरत्नों के स्थूल पुद्गलों को झटक देता है (गिरा देता है-झड़का देता है) तथा सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करता है। दूसरी बार फिर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है। हे गौतम ! जैसे कोई युवा पुरुष, युवती स्त्री के हाथ को दृढ़ता के साथ पकड़ कर चलता है, तो वे दोनों संलग्न मालूम होते हैं अथवा जैसे गाड़ी के पहिये की धुरी में आरा संलग्न सुसंबद्ध एवं आयुक्त होते हैं। इसी प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर, बहुत असुरकुमार देवों द्वारा तथा असुरकुमार देवियों द्वारा इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को आकीर्ण कर सकता है एवं व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है अर्थात् ठसाठस भर सकता है।

फिर हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर बहुत असुरकुमार देवों और

देवियों द्वारा इस तिर्च्छालोक के असंख्य द्वीप और समुद्रों तक के स्थल को आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है अर्थात् चमर इतने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है कि असंख्य द्वीप समुद्रों तक के स्थल को भर सकता है। हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की ऐसी शक्ति है-विषय है-विषयमात्र है, परन्तु चमरेन्द्र ने ऐसा किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

विवेचन-दूसरे शतक में अस्तिकायों का कथन सामान्य रूप से किया गया था। अब इस तीसरे शतक में अस्तिकायों का विशेषरूप से कथन करने के लिए जीवास्तिकाय के विविध धर्मों का कथन किया जाता है। इस प्रकार दूसरे और तीसरे शतक का संकलनरूप संबंध है।

तीसरे शतक में दस उद्देशक हैं। उन दस उद्देशकों में किन किन विषयों का वर्णन किया गया है ? इस बात को सूचित करने के लिए संग्रह गाथा कही गई है अर्थात् संग्रह गाथा में दस उद्देशकों की विषय सूची दी गई है। पहले उद्देशक में चमरेन्द्र की विकुर्वणा शक्ति, दूसरे में चमरेन्द्र का उत्पात, तीसरे में कायिकी आदि क्रिया, चौथे में देव द्वारा विकुर्वित यान को क्या साधु जानता है, इत्यादि का निर्णय। पाँचवें में क्या साधु बाहर के पुद्गलों को लेकर स्त्री आदि के रूपों की विकुर्वणा कर सकता है, इत्यादि अर्थ का निर्णय। छठे में जिस साधु ने वाराणसी (बनारस) में समुद्घात किया है क्या वह राजगृह नगर में रहे हुए रूपों को जानता है, इत्यादि का निर्णय। सातवें में लोकपालों के स्वरूपादि का कथन। आठवें में असुरकुमारादि देवों पर कितने देव अधिपतिपना करते, इत्यादि वर्णन। नववें में इन्द्रियों के विषय सम्बन्धी वर्णन और दसवें में चमरेन्द्र की परिषद् (सभा) संबंधी वर्णन है।

चमरेन्द्र कितनी मोटी ऋद्धिवाला है, इस बात को बतलाने के लिए कहा गया है कि-चौतीस लाख भवनावास, चौसठ हजार सामानिक देव, और तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों पर सत्ताधीशपना करता हुआ चमरेन्द्र यावत् विचरता है। यहाँ मूलपाठ में 'जाव' शब्द दिया है जिससे इतने पाठ का ग्रहण करना चाहिए-

"चउण्हं लोगपालाणं, पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउण्हं चउसट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च
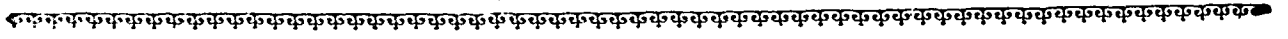
वहूणं चमरचंचारायहाणिवत्थव्वाणं देवाणं य देवीणं य आहेवच्चं, पोरेवच्चं, सामित्तं, भट्टित्तं, आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडियघण-मुइंग पडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे"।

अर्थ–चार लोकपाल, परिवार सहित पांच अग्रमहिषियाँ (पट्टराणियाँ) तीन परिषद् (सभा) सात सेना, सात सेनाधिपति, दो लाख छप्पन हजार (२,५६०००) आत्मरक्षक देव, इन सव पर अधिपतिपना, पुरपतिपना, स्वामीपना, भर्तृपना (पालकपना) आज्ञा की प्रधानता से सेनाधिपतिपना करवाता हुआ, पलवाता हुआ, बड़ी आवाज पूर्वक निरन्तर होते हुए नाटक, गीत और वादिन्त्रों के शब्दों से, वीणा, झालर, कांस्य आदि अनेक प्रकार के वाद्यों के शव्दों से तथा चतुर पुरुषों द्वारा बजाये जाते हुए मेघ के समान गम्भीर मृदंग के शब्दों से दिव्य भोगों (भोगने योग्य शव्दादि) को भोगता हुआ इन्द्र+ विचरता है।

वह चमरेन्द्र वैक्रियकृत बहुत से असुरकुमार देव और देवियों द्वारा इस सम्पूर्ण जम्वूद्वीप को ठसाठस भर देता है। 'किस प्रकार ठसाठस भर देता है'–इसके लिए शास्त्रकार ने दो दृष्टान्त दिये हैं–

"से जहा णामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्करस्स वा णाभी अरगा-

---

+ देवों के दस भेद होते हैं। यथा–

(१) इन्द्र–सामानिक आदि सभी प्रकार के देवों का स्वामी 'इन्द्र' कहलाता है।

(२) सामानिक–आयु आदि में जो इन्द्र के बरावर होते हैं, उन्हें 'सामानिक' देव कहते हैं। केवल इनमें इन्द्रत्व नहीं होता है। शेष सभी वातों में ये इन्द्र के समान होते हैं।

(३) त्रायस्त्रिंश–जो देव, मन्त्री और पुरोहित का काम करते हैं, वे त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं।

(४) पारिषद्य–जो देव, इन्द्र के मित्र सरीखे होते हैं, वे पारिषद्य कहलाते हैं।

(५) आत्मरक्षक–जो देव, शस्त्र लेकर इन्द्र के पीछे खड़े रहते हैं, वे आत्मरक्षक कहलाते हैं। यद्यपि इन्द्र को किसी प्रकार की तकलीफ या अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं है, तथापि आत्मरक्षक देव अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए हर समय हाथ में शस्त्र लेकर खड़े रहते हैं।

(६) लोकपाल–सीमा की रक्षा करने वाले देव, लोकपाल कहलाते हैं।

(७) अनीक–जो देव, सैनिक का काम करते हैं, वे 'अनीक' कहलाते हैं और जो सेनापति का काम करते हैं, वे 'अनीकाधिपति' कहलाते हैं।

(८) प्रकीर्णक–जो देव, नगर निवासी अथवा साधारण जनता की तरह रहते हैं, वे 'प्रकीर्णक' कहलाते हैं।

(९) आभियोगिक–जो देव, दास के समान होते हैं, वे 'आभियोगिक' (सेवक) कहलाते हैं।

(१०) किल्विषिक– अन्त्यज (चाण्डाल) के समान जो देव होते हैं, वे 'किल्विषिक' कहलाते हैं।

उत्ता सिया"

इस पाठ का टीकाकार ने इस तरह से अर्थ किया है-"जैसे कोई जवान पुरुष, काम के वशवर्ती होकर जवान स्त्री के हाथ को जोर से दृढ़तापूर्वक पकड़ता है। जैसे गाड़ी के पहिये की धुरी आराओं से युक्त होती है।"

वृद्ध पुरुषों ने तो इस प्रकार व्याख्या की है-जैसे यात्रा (मेला) आदि के प्रसंग में बहुत से मनुष्यों की भीड़ होती है, वहाँ जवान स्त्री, जवान पुरुष के हाथ को दृढ़ता से पकड़ कर उसके साथ संलग्न होकर चलती है। वह उसके साथ संलग्न होकर चलती हुई भी उस पुरुष से अलग दिखाई देती है, उसी तरह से वे वैक्रियकृत रूप वैक्रिय करने वाले के साथ संलग्न होते हुए भी उससे पृथक् दिखाई देते हैं। जैसे बहुत से आराओं से युक्त नाभि (गाड़ी के पहिये की धुरी) बिलकुल पोलार रहित होती है। इसी तरह से वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, अपने शरीर के साथ प्रतिबद्ध वैक्रिय कृत अनेक असुरकुमार देवों से और असुरकुमार देवियों से इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को ठसाठस भर देता है।

वैक्रिय करने के लिए वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है और संख्येय योजन तक लम्बा दण्ड निकालता (बनाता) है। अर्थात् वह दण्ड ऊंचे नीचे संख्येय योजन का लम्बा होता है और मोटाई में शरीर परिमाण मोटा होता है। उसके द्वारा कर्केतन, रिष्ट आदि रत्नों के स्थूल पुद्गलों को झटक देता है और सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करता है।

शंका-रत्न आदि के पुद्गल तो औदारिक होते हैं। वैक्रिय समुद्घात में तो वैक्रिय पुद्गल काम आते हैं। फिर यहाँ रत्नादि पुद्गलों का ग्रहण किस प्रकार किया गया है ?

समाधान-जो पुद्गल वैक्रियसमुद्घात में लिये जाते हैं, वे पुद्गल रत्नों सरीखे सार-युक्त होते हैं, इस बात को बतलाने के लिए यहाँ 'रत्न' आदि का ग्रहण किया गया है। इसलिए 'रत्नपुद्गलों' का अर्थ-'रत्न सरीखे पुद्गल' ऐसा करना चाहिए। सारांश यह है कि वैक्रिय समुद्घात में जो पुद्गल लिये जाते, वे पुद्गल वैक्रिय पुद्गल ही होते हैं, किन्तु वे रत्नों सरीखे सार युक्त होते हैं।

किन्हीं आचार्यों का तो ऐसा मत है कि-जब वैक्रिय समुद्घात द्वारा औदारिक पुद्-गल ग्रहण किये जाते हैं, तब वे औदारिक पुद्गल भी वैक्रिय पुद्गल बन जाते हैं।

मूलपाठ में 'रयणाणं जाव रिट्ठाणं' यहाँ 'जाव' शब्द दिया है, उससे इतना पाठ और ग्रहण करना चाहिए।

"वइराणं, वेरुलियाणं, लोहियक्खाणं, मसारगल्लाणं, हंसगब्भाणं, पुलयाणं, सोगंधियाणं, जोईरसाणं, अंकाणं, अंजणाणं, रयणाणं, जायरूवाणं, अंजणपुलयाणं, फलिहाणं"

इसका अर्थ यह है-वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतिरस, अंक, अंजन, रत्न, जातरूप, अञ्जनपुलाक और स्फटिक। ये सब रत्नों के भेद हैं।

वैक्रिय करने वाला जीव, दण्ड निसर्ग द्वारा ग्रहण किये हुए यथाबादर (असार स्थूल) पुद्गलों को खंखेर देता है-झड़क देता है और यथासूक्ष्म (सार युक्त) पुद्गलों को ग्रहण करता है अर्थात् दण्ड निसर्ग द्वारा ग्रहण किये हुए पुद्गलों को सामस्त्य से (सर्व प्रकार से) ग्रहण करता है।

शंका-यहाँ कहा गया है कि-दण्ड निसर्ग द्वारा ग्रहण किये गये असार पुद्गलों को खंखेर देता है और प्रज्ञापना सूत्र के छतीसवें पद की टीका में कहा है कि-पहले बंधे हुए वैक्रिय शरीर नाम कर्म के यथास्थूल पुद्गलों को झाड़ देता है। अर्थात् उपरोक्त दोनों स्थलों में झटके जाने वाले पुद्गल भिन्न भिन्न बतलाये हैं। इसलिए इन दोनों स्थलों में परस्पर विरुद्धता कैसे नहीं आती है?

समाधान-ये दोनों बातें भिन्न भिन्न है, इसलिए किसी प्रकार विरोध नहीं आता है। क्योंकि प्रज्ञापना सूत्र की टीका में जो बात कही है, वह 'समुद्घात' शब्द का समर्थन करने के लिए अनाभोगिक (अनजानपने में होने वाली) वैक्रिय शरीर नामकर्म के पुद्गलों की निर्जरा की अपेक्षा से कही गई है और यहाँ इच्छापूर्वक वैक्रेय करने विषयक वर्णन है, अतः उक्त दोनों बातों में परस्पर कोई विरोध नहीं है।

चमरेन्द्र, इच्छित रूप बनाने के लिए दूसरी बार फिर समुद्घात करता है और इससे वह अनेक रूप बनाने में समर्थ होता है। वह वैक्रियकृत बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों से इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भर देता है।

मूलपाठ में "आइण्णं वितिकिण्णं उवत्थडं, संथडं, फुडं, अवगाढावगाढं" शब्द प्रायः एकार्थक हैं और 'अत्यन्त रूप से भर देता है-इस अर्थ को सूचित करने के लिए आये हैं।

असुरेन्द्र असुरराज चमर इतने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है कि जिनसे तिच्छर्छा-लोक में असंख्य द्वीप और समुद्रों तक का स्थल भरा जा सकता है, किन्तु यह उसकी शक्तिमात्र है, विषयमात्र (क्रिया विना का विषयमात्र) है, किन्तु चमर ने सम्प्राप्ति द्वारा इतने रूपों की कभी विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और भविष्यत्काल में भी कभी करेगा नहीं।

४ प्रश्न–जइ णं भंते ! चमरे असुरिंदे, असुरराया एमहिड्ढीए, जाव–एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स, असुररण्णो, सामाणिया देवा के महिड्ढीया, जाव–केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?

४ उत्तर–गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो सामाणिया देवा महिड्ढीया, जाव–महाणुभागा । ते णं तत्थ साणं साणं भवणाणं, साणं साणं सामाणियाणं, साणं साणं अग्गमहिसीणं, जाव–दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति, एवं महिड्ढीया, जाव–एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए । से जहा नामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा णाभी अरगाउत्ता-सिया, एवामेव गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो एगमेगे सामाणियदेवे वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता जाव–दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता पभू णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो एगमेगे सामाणियदेवे केवलकप्पं जंबूदीवं दीवं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णं, वितिकिण्णं, उवत्थडं, संथडं, फुडं अवगाढावगाढं करेत्तए । अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो एगमेगे सामाणियदेवे तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे बहूहिं असुरकुमारेहि देवेहिं, देवीहिं य आइण्णे, वितिकिण्णे, उवत्थडे, संथडे, फुडे, अवगाढावगाढे करे-

त्तए, एस णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो एगमेगस्स सामाणियदेवस्स अयमेयारूवे विसये, विसयमेत्ते बुइए, णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विकुव्वइ वा, विउव्विस्सइ वा ।
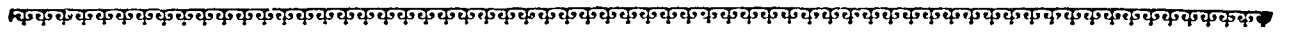
कठिन शब्दार्थ–अग्गमहिसीओ–पटरानियों–महारानियों।

भावार्थ–४ प्रश्न–हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी मोटी ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा कर सकता है, तो हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देवों की कितनी मोटी ऋद्धि है यावत् उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है ?

४ उत्तर–हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव, महा ऋद्धि वाले यावत् महाप्रभाव वाले हैं। वे अपने अपने भवनों पर, अपने अपने सामानिक देवों पर और अपनी अपनी अग्रमहिषियों (पटरानियों) पर अधिपतिपना (सत्ताधीशपना) करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विचरते हैं। ये इस प्रकार की महाऋद्धि वाले हैं। इनकी विकुर्वणा करने की शक्ति इस प्रकार है–

हे गौतम ! विकुर्वणा करने के लिए असुरेन्द्र असुरराज चमर का एक एक सामानिक देव, वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है और यावत् दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है। हे गौतम ! जैसे कोई युवा पुरुष, युवती स्त्री के हाथ को दृढ़ता के साथ पकड़ कर चलता है, तो वे दोनों संलग्न मालूम होते हैं अथवा जैसे गाड़ी के पहिये की धुरी में आरा संलग्न, सुसंबद्ध एवं आयुक्त होते हैं, इसी प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव, बहुत असुरकुमार देवों द्वारा तथा असुरकुमार देवियों द्वारा इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है अर्थात् ठसाठस भर सकता है।

फिर हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के एक एक सामानिक देव, बहुत असुरकुमार देवों और देवियों द्वारा इस तिर्च्छा लोक के असंख्य द्वीप और

समुद्रों तक के स्थल को आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है अर्थात् इतने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है कि असंख्य द्वीप समुद्रों तक के स्थल को ठसाठस भर सकता है। हे गौतम ! उन सामानिक देवों की ऐसी शक्ति है, विषय है, विषयमात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उन्होंने ऐसा कभी किया नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं।

५ प्रश्न-जइ णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो सामाणियदेवा एवं महिड्ढीया, जाव-एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो तायत्तीसया देवा के महिड्ढीया ?

५ उत्तर-तायत्तीसया देवा जहा सामाणिया तहा णेयव्वा। लोयपाला तहेव, णवरं-संखेज्जा दीव-समुद्दा भाणियव्वा। (बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं, देवीहिं य आइण्णे, जाव-विउव्विस्संति वा।)

६ प्रश्न-जइ णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो लोगपाला देवा एवं महिड्ढीया, जाव-एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स, असुररण्णो अग्गमहिसीओ देवीओ के महिड्ढीयाओ, जाव-केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?

६ उत्तर-गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स, असुररण्णो अग्गमहिसीओ महिड्ढीयाओ, जाव-महाणुभागाओ, ताओ णं तत्थ साणं साणं भवणाणं, साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं, साणं साणं
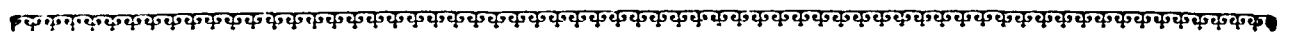
महत्तरियाणं, साणं साणं परिसाणं, जाव-एवं महिड्ढीयाओ, अण्णं जहा लोगपालाणं अपरिसेसं ।

कठिन शब्दार्थ-महत्तरियाणं-महत्तरिका-मित्ररूप ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव ऐसी महा ऋद्धि वाले हैं यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ हैं, तो हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के त्रायस्त्रिंशक देव कितनी मोटी ऋद्धि वाले हैं ?

५ उत्तर-हे गौतम ! जैसा सामानिक देवों के लिए कथन किया, वैसा ही त्रायस्त्रिंशक देवों के लिए कहना चाहिए । लोकपाल देवों के लिए भी इसी तरह कहना चाहिए । किन्तु इतना अन्तर है कि अपने द्वारा वैक्रिय किये हुए असुरकुमार देव और देवियों के रूपों से वे संख्येय द्वीप समुद्रों को भर सकते हैं। यह उनका विषय है, विषयमात्र है, परन्तु उन्होंने कभी ऐसा किया नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के लोकपाल ऐसी महाऋद्धि वाले हैं यावत् वे इतना वैक्रिय करने की शक्ति वाले हैं, तो असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषियां (पटरानी देवियाँ) कितनी बड़ी ऋद्धि वाली हैं यावत् विकुर्वणा करने की कितनी शक्ति है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषियाँ महाऋद्धि वाली हैं यावत् महाप्रभाव वाली हैं । वे अपने अपने भवनों पर, अपने अपने एक एक हजार सामानिक देवों पर, अपनी अपनी सखी महत्तरिका देवियों पर और अपनी अपनी परिषदाओं पर अधिपतिपना भोगती हुई विचरती हैं यावत् वे अग्रमहिषियाँ ऐसी महाऋद्धि वाली हैं । इस विषय में शेष वर्णन लोकपालों के समान कहना चाहिए ।

७ प्रश्न-सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति । भगवं दोच्चे गोयमे

समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ। वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव तच्चे गोयमे वाउभूई अणगारे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तच्चं गोयमं वाउभूइं अणगारं एवं वयासी–

एवं खलु गोयमा! चमरे असुरिंदे, असुरराया एवं महिड्ढीए, तं चेव एवं सव्वं अपुट्ठवागरणं णेयव्वं अपरिसेसियं जाव–अग्गमहिसीणं जाव–वत्तव्वया सम्मत्ता। तेणं से तच्चे गोयमे वाउभूई अणगारे दोच्चस्स गोयमस्स अग्गिभूइस्स अणगारस्स एवमाइक्खमाणस्स भासमाणस्स, पण्णवेमाणस्स, परूवेमाणस्स एयमट्ठं णो सद्दहइ, णो पत्तियइ, णो रोएइ; एयमट्ठं असद्दहमाणे, अपत्तियमाणे अरोएमाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, जाव–पज्जुवासमाणे एवं वयासी–एवं खलु भंते! दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे ममं एवमाइक्खइ, भासइ, पण्णवेइ, परूवेइ–एवं खलु गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए, जाव–महाणुभागे, से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं, एवं तं चेव सव्वं अपरिसेसं भाणियव्वं, जाव–अग्गमहिसीणं वत्तव्वया सम्मत्ता, से कहमेयं भंते! एवं।

७ उत्तर–गोयमाई! समणे भगवं महावीरे तच्चं गोयमं वाउभूइं अणगारं एवं वयासी–जं णं गोयमा! दोच्चे गोयमे अग्गिभूइ अणगारे तव एवमाइक्खइ, भासइ, पण्णवेइ, परूवेइ, एवं खलु

गोयमा ! चमरे असुरिंदे, असुरराया एवं महिड्ढीए, एवं तं चेव सव्वं जाव-अग्गमहिसीणं वत्तव्वया सम्मत्ता" सच्चे णं एसमट्ठे, अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि, भासामि, पण्णवेमि, परूवेमि -एवं खलु गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया, जाव-महिड्ढीए, सो चेव बीइओ गमो भाणियव्वो, जाव-अग्गमहिसीओ, सच्चे णं एसमट्ठे ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति तच्चे गोयमे वाउभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोच्चं गोयमं अग्गिभूइं अणगारं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एय-मट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेइ ।

कठिन शब्दार्थ-अपुट्ठवागरणं--अपृष्टव्याकरण-बिना पूछे उत्तर । णेयव्वं-कहना । अपरिसेसियं-बाकी कुछ नहीं रहे, एयमट्ठं-इस अर्थ को, भुज्जोभुज्जो-बारबार, खामेइ-खमाता है-क्षमा मांगता है, वत्तव्वया-वक्तव्यता, सम्मत्ता-पूरी, कहमेयं-किस प्रकार ।

भावार्थ-७ प्रश्न--हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है' ऐसा कह कर द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर जहाँ तृतीय गौतम वायुभूति अनगार थे वहाँ गये । वहाँ जाकर अग्निभूति अनगार ने वायुभूति अनगार से इस प्रकार कहा-हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर, ऐसी महाऋद्धि वाला है । इत्यादि सारा वर्णन (चमरेन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और पटरानी देवियों तक का सारा वर्णन, अपृष्ट व्याकरण के रूप में अर्थात् प्रश्न पूछे बिना ही उत्तर के

रूप में) कहना चाहिए।

इसके बाद अग्निभूति अनगार द्वारा कथित, भाषित, प्रज्ञापित और प्ररूपित उपर्युक्त बात पर तृतीय गौतम अग्निभूति अनगार को श्रद्धा, प्रतीति (विश्वास) और रुचि नहीं हुई। इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करते हुए वे तृतीय गौतम वायुभूति अनगार, अपनी उत्थान शक्ति द्वारा उठे, उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार ने मुझ से इस प्रकार कहा, विशेष रूप से कहा, बतलाया और प्ररूपित किया कि-'असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है, यावत् ऐसा महान् प्रभाव वाला है कि वहाँ चौतीस लाख भवनावासों पर स्वामीपना करता हुआ विचरता है (यहाँ उसकी अग्रमहिषियों तक का पूरा वर्णन कहना चाहिए)। तो हे भगवन् ! यह बात किस प्रकार है?

७ उत्तर-हे गौतम ! आदि इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तीसरे गौतम वायुभूति अनगार से इस प्रकार कहा-हे गौतम ! द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार ने जो तुमसे इस प्रकार कहा, भाषित किया, बतलाया और प्ररूपित किया कि-हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महा ऋद्धि वाला है इत्यादि (उसकी अग्रमहिषियाँ तक का सारा वर्णन यहाँ कहना चाहिए)। हे गौतम ! यह बात सच्ची है। हे गौतम ! मैं भी इसी तरह कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बतलाता हूँ और प्ररूपित करता हूँ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है, इत्यादि उसकी अग्रमहिषियाँ पर्यन्त सारा वर्णन रूप द्वितीय गमा (आलापक) यहाँ कहना चाहिए। इसलिए हे गौतम ! द्वितीय गौतम अग्निभूति द्वारा कही हुई बात सत्य है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को
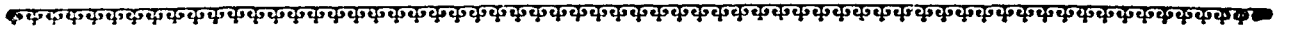
वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके जहाँ द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार थे वहाँ आये, वहाँ आकर उन्हें वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके पूर्वोक्त बात के लिए अर्थात् उनकी कही हुई बात नहीं मानी थी, इसके लिए उनसे बार बार विनयपूर्वक क्षमा याचना की।

विवेचन-जिस प्रकार चमरेन्द्र का कथन किया गया है, उसी प्रकार उसके सामानिक और त्रायस्त्रिंशक देवों का भी वर्णन करना चाहिए। इसी प्रकार चमरेन्द्र के लोकपाल और अग्रमहिषियों का भी कथन जानना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि इनकी शक्ति संख्यात द्वीप समुद्रों तक के स्थल को भरने की है, असंख्यात की नहीं। चमरेन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश की अपेक्षा लोकपाल और अग्रमहिषियाँ अल्प ऋद्धि वाली हैं। इसलिए इनकी वैक्रिय करने की शक्ति भी उनकी अपेक्षा अल्प है।

वैरोचनराज बलिन्द्र

८ प्रश्न-तएणं से तच्चे गोयमे वाउभूई अणगारे दोच्चेणं गोयमेणं अग्गिभूइणामेणं अणगारेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे, जाव-पज्जुवासमाणे एवं वयासी-जइणं भंते ! चमरे असुरिंदे, असुरराया एवं महिड्ढीए, जाव-एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए बली णं भंते ! वइरोयणिंदे, वइरोयणराया के महिड्ढीए, जाव-केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?

८ उत्तर-गोयमा ! बली णं वइरोयणिंदे, वइरोयणराया महिड्ढीए जाव-महाणुभागे, से णं तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साणं, सट्ठीए सामाणिअसाहस्सीणं, सेसं जहा चमरस्स तहा बलिस्स वि

णेयव्वं, णवरं-साइरेगं केवलकप्पं जंबूद्दीवं त्ति भाणियव्वं, सेसं तं चेव णिरवसेसं णेयव्वं,णवरं णाणत्तं जाणियव्वं भवणेहिं, सामाणिएहिं य ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति तच्चे गोयमे वाउभूई जाव-विहरइ ।

कठिन शब्दार्थ-सद्धि-साथ, वइरोयणिंदे-वैरोचनेन्द्र, वइरोयणराया-वैरोचनराज, पभू-प्रभु-समर्थ, साइरेगं-सातिरेक-साधिक-कुछ अधिक, केवलकप्पं-केवलकल्प-सम्पूर्ण, णिरवसेसं-अवशेष रहित-पूरा ।

भावार्थ-८ प्रश्न-इसके बाद वे तीसरे गौतम वायुभूति अनगार, दूसरे गौतम अग्निभूति अनगार के साथ जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजे हुए थे वहाँ आये । वहाँ आकर उन्हें वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले कि-हे भगवन् ! यदि असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी बड़ी ऋद्धिवाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने की शक्ति वाला है,तो हे भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचन राज बलि कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है ? यावत् वह कितनी विकुर्वणा करने की शक्ति वाला है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचन राज बलि महा ऋद्धि वाला है यावत् महानुभाग है । वह तीस लाख भवनों का तथा साठ हजार सामानिक देवों का अधिपति है । जिस प्रकार चमर के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है उसी तरह बलि के विषय में भी जानना चाहिए । विशेषता यह है कि बलि अपनी विकुर्वणा शक्ति से सातिरेक जम्बूद्वीप को अर्थात् जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भर देता है । बाकी सारा वर्णन उसी तरह से है । अन्तर यह है कि भवन और सामानिक देवों के विषय में भिन्नता है ।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कह कर यावत् तृतीय गौतम वायुभूति अनगार विचरते हैं ।

विवेचन-'वैरोचनेन्द्र' शब्द का अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है-

"दाक्षिणात्यासुरकुमारेभ्यः सकाशाद् विशिष्टं रोचनं दीपनं येषामस्ति ते वैरोचना औदीच्यासुराः, तेषु मध्ये इन्द्रः परमेश्वरो वैरोचनेन्द्रः ।"

अर्थ-दक्षिण दिशा के असुरकुमारों की अपेक्षा जिनकी कान्ति विशिष्ट-अधिक है उनको वैरोचन कहते हैं अर्थात् दक्षिण दिशा के असुरकुमारों की अपेक्षा उत्तर दिशा के असुरकुमारों की कान्ति विशेष है, इसलिए उत्तर दिशा के असुरकुमारों को वैरोचन कहते हैं और उनके इन्द्र को वैरोचनेन्द्र कहते हैं। उनकी शक्ति चमरेन्द्र की अपेक्षा अधिक है। इसलिए वह अपने वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप से कुछ अधिक भाग को भर देता है।

नागराज धरणेन्द्र

९ **प्रश्न**-'भंते !' त्ति भगवं दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी जइ णं भंते ! बली वइरोयणिंदे, वइरोयणराया एमहिड्ढीए, जाव-एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, धरणे णं भंते ! णागकुमारिंदे, णागकुमारराया केमहिड्ढीए जाव-केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?

९ उत्तर-गोयमा ! धरणे णं णागकुमारिंदे, णागकुमारराया एवं महिड्ढीए, जाव-से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं, छण्हं सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं, छण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउव्वीसाए

आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च जाव-विहरइ। एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, से जहा नामए जुवइं जुवाणे जाव-पभू केवल-कप्पं जंबूदीवं, दीवं जाव-तिरियं संखेज्जे दीवसमुद्दे बहूहिं णागकुमारीहिं जाव-विउव्विस्संति वा, सामाणिया, तायत्तीस-लोगपाला, अग्गमहिसीओ य तहेव जहा चमरस्स एवं धरणे णं णागकुमारराया महिड्ढीए जाव एवइयं जहा चमरे तहा धरणे वि णवरं-संखेज्जे दीवे समुद्दे भाणियव्वे,एवं जाव-थणियकुमारा,वाण-मंतरा, जोईसिया वि, णवरं-दाहिणिल्ले सव्वे अग्गिभूई पुच्छइ, उत्तरिल्ले सव्वे वाउभूई पुच्छइ।

कठिन शब्दार्थ-अणियाणं-सेना पर, अणियाहिवइणं-सेनाधिपति पर, दाहिणिल्ले-दक्षिण दिशा के, उत्तरिल्ले-उत्तर दिशा के।

भावार्थ-९ प्रश्न-इसके बाद दूसरे गौतम अग्निभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि ऐसी महा ऋद्धि वाला है यावत् इतनी वैक्रिय शक्ति वाला है, तो नागकुमारेन्द्र नागकुमार-राज धरण कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् कितनी वैक्रिय शक्ति वाला है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! वह नागकुमारेन्द्र नागकुमार-राज धरण, महा ऋद्धि वाला है यावत् वह चवालीस लाख भवनावासों पर, छह हजार सामानिक देवों पर, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों पर, चार लोकपालों पर, परिवार सहित छह अग्रमहिषियों पर, तीन सभा पर, सात सेना पर, सात सेनाधिपतियों पर और चौवीस हजार आत्मरक्षक देवों पर तथा दूसरों पर स्वामीपना भोगता हुआ यावत् विचरता है। उसकी विकुर्वणा शक्ति इतनी है कि युवती युवा के

दृष्टान्त से (जैसे वे दोनों संलग्न दिखाई देते हैं उसी तरह से) यावत् वह अपने द्वारा वैक्रियकृत बहुत से नागकुमार देवों से तथा नागकुमार देवियों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को ठसाठस भरने में समर्थ है और तिर्छा संख्यात् द्वीप समुद्रों जितने स्थल को भरने की शक्ति वाला है। संख्यात् द्वीप समुद्र जितने स्थल को भरने की मात्र शक्ति है, मात्र विषय है, किन्तु ऐसा उसने कभी किया नहीं, करता नहीं और भविष्यत् काल में करेगा भी नहीं। इनके सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियों के लिए चमरेन्द्र की तरह कथन करना चाहिए, विशेषता यह है कि इनकी विकुर्वणा शक्ति के लिये संख्यात द्वीप-समुद्रों का ही कहना चाहिए। इसी तरह यावत् स्तनितकुमारों तक सब भवनवासी देवों के विषय में कहना चाहिए। इसी तरह वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि दक्षिण दिशा के सब इन्द्रों के विषय में द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार ने पूछा है और उत्तर दिशा के सब इन्द्रों के विषय में तृतीय गौतम श्री वायुभूति अनगार ने पूछा है।

विवेचन-जिस प्रकार धरण का वर्णन किया गया है, उसी तरह भूतानन्द से लेकर महाघोष पर्यन्त भवनपति के इन्द्रों के विषय में कहना चाहिए। भवनपति देवों के इन्द्रों के नामों को सूचित करने वाली गाथाएँ इस प्रकार हैं-

चमरे धरणे तह वेणुदेव-हरिकंत-अग्गिसीहे य।
पुण्णे जलकंते वि य अमिय-विलंबे य घोसे य॥
बलि-भूयाणंदे वेणुदालि-हरिस्सहे अग्गिमाणव-वसिट्ठे।
जलप्पभे अमियवाहणे पहंजणे महाघोसे॥

अर्थ-चमर, धरण, वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमित, विलम्ब (विलेव) और घोष, ये दस दक्षिण निकाय के इन्द्र हैं। बलि, भूतानन्द, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमाणव, वशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष, ये दस उत्तरनिकाय के इन्द्र हैं।

इनके भवनों की संख्या-'चउत्तीसा चउचत्ता' इत्यादि पहले कही हुई दो गाथाओं में बतलाई गई है। इनके सामानिक और आत्मरक्षक देवों की संख्या इस प्रकार है-

चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्साओ असुरवज्जाणं। सामाणियाओ एए चउग्गुणा

आयरक्खा उ ।

अर्थ-चमरेन्द्र के चौसठ हजार सामानिक हैं, बलीन्द्र के साठ हजार सामानिक हैं। असुरकुमार के सिवाय सब के छह छह हजार सामानिक हैं। जिसके जितने सामानिक देव होते हैं, उससे चौगुने आत्मरक्षक देव होते हैं। धरण आदि प्रत्येक के छह छह अग्रमहिषियाँ हैं। धरणेन्द्र की तरह वाणव्यन्तरेन्द्रों का भी परिवार सहित वर्णन कहना चाहिए। वाणव्यन्तर देवों के एक दक्षिण दिशा का और एक उत्तर दिशा का, इस तरह प्रत्येक निकाय के दो दो इन्द्र होते हैं। वे इस प्रकार हैं-

काले य महाकाले, सुरूवपडिरूवपुण्णभद्दे य ।
अमरवइमाणिभद्दे भीमे य तहा महाभीमे ॥
किण्णर किंपुरिसे खलु सप्पुरिसे चेव तह महापुरिसे ।
अइकाय महाकाए गीयरई चेव गीयजसे ॥

अर्थ-काल और महाकाल, सुरूप और प्रतिरूप, पूर्णभद्र और अमरपति (इन्द्र) मणिभद्र, भीम और महाभीम। किन्नर और किम्पुरुष, सत्पुरुष और महापुरुष, अतिकाय और महाकाय, गीतरति और गीतयश।

वाणव्यन्तर देवों में और ज्योतिषी देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते हैं। इसलिए उनका यहाँ कथन नहीं करना चाहिए। इनके चार हजार सामानिक देव होते हैं और इनसे चौगुने अर्थात् सोलह हजार आत्मरक्षक देव होते हैं। प्रत्येक इन्द्र के चार चार अग्रमहिषियाँ होती हैं।

इन सब में दक्षिण के इन्द्रों के विषय में और सूर्य के विषय में द्वितीय गणधर श्री अग्निभूति ने पूछा है और उत्तर दिशा के इन्द्रों के विषय में तथा चन्द्रमा के विषय में तृतीय गणधर श्री वायुभूति अनगार ने पूछा है। इनमें से दक्षिण के देव और सूर्य देव अपने वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को ठसाठस भरने में समर्थ हैं और उत्तर दिशा के देव और चन्द्रदेव अपने वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भरने में समर्थ हैं।

देवराज शक्रेन्द्र की ऋद्धि

१० प्रश्न-'भंते !' त्ति भगवं दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अण-

गारे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–जइ णं भंते ! जोइसिंदे, जोइसराया एमहिड्ढीए, जाव–एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, सक्के णं भंते ! देविंदे, देवराया केमहिड्ढीए, जाव–केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?

१० उत्तर–गोयमा ! सक्के णं देविंदे, देवराया एवं महिड्ढीए, जाव–महाणुभागे, से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं, चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं, जाव–चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं जाव–विहरइ, एवंमहिड्ढीए, जाव–एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, एवं जहेव चमरस्स तहेव भाणियव्वं, नवरं–दो केवलकप्पे जंबूदीवे दीवे, अवसेसं तं चेव, एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो इमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते णं बुइए, नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वइ वा विउव्विस्सइ वा ।

कठिन शब्दार्थ–जोइसिंदे–ज्योतिषि के इन्द्र, सक्के–शक्र, देविंदे–देवेन्द्र, अवसेसं–बाकी ।

भावार्थ–१० प्रश्न–हे भगवन् ! ऐसा कह कर द्वितीय गौतम भगवान् अग्निभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले–हे भगवन् ! यदि ज्योतिषी-इन्द्र, ज्योतिषीराज ऐसी महा ऋद्धि वाला है और इतना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी बड़ी ऋद्धिवाला है और कितना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है ?

१० उत्तर–हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र मोटी ऋद्धि वाला है यावत्

महा प्रभावशाली है। वह वहाँ बत्तीस लाख विमानावासों पर तथा चौरासी हजार सामानिक देवों पर यावत् तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों पर एवं दूसरे बहुत से देवों पर स्वामीपना भोगता हुआ विचरता है। अर्थात् शक्रेन्द्र ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है। उसकी वैक्रिय शक्ति के सम्बन्ध में चमरेन्द्र की तरह जानना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि-वह अपने वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप जितने स्थल को भरने में समर्थ है। तिर्छा असंख्यात द्वीप समुद्रों जितने स्थल को भरने की शक्ति है, किन्तु यह तो उसका विषय मात्र है, केवल शक्ति रूप है अर्थात् बिना क्रिया की शक्ति है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् साक्षात् क्रिया द्वारा उन्होंने कभी ऐसा वैक्रिय किया नहीं, करते नहीं और भविष्यत्काल में करेंगे भी नहीं।

विवेचन-शक्रेन्द्र के प्रकरण में 'जाव चउण्हं चउरासीणं' में 'जाव' शब्द दिया है, उससे इतने पाठ का ग्रहण करना चाहिए-

'अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, चउण्हं लोगपालाणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं।'

अर्थ-देवेन्द्र देवराज शक्र के परिवार सहित आठ अग्रमहिषियाँ, चार लोकपाल, तीन परिषद्, सात अनीका (सेना) और सात अनीकाधिपति (सेनापति) हैं।

११ प्रश्न-जइ णं भंते ! सक्के देविंदे, देवराया एवंमहिड्ढीए, जाव-एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी तीसए नामं अणगारे पगइभद्दए, जाव-विणीए, छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सयंसि
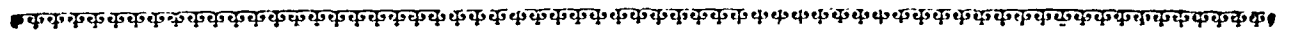
विमाणंसि, उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्ताए ओगाहणाए सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो सामाणियदेवत्ताए उववण्णे तएणं से तीसए देवे अहुणोववण्णमेत्ते समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा–आहार-पज्जत्तीए, सरीर-इंदिय-आण-पाणपज्जत्तीए, भासा-मणपज्जत्तीए; तएणं तं तीसयं देवं पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गयं समाणं सामाणियपरिसोववण्णया देवा करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसा-वत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं, विजएणं वद्धाविंति, वद्धावित्ता एवं वयासीः–अहो ! णं देवाणुप्पियेहिं दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देव-ज्जुई, दिव्वे देवाणुभावे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए; जारिसिया णं देवाणुप्पियेहिं दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देवज्जुई, दिव्वे देवाणुभावे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए तारिसिया णं सक्केण वि देविंदेण देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी, जाव–अभिसमण्णागया जारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं, देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी, जाव–अभिसमण्णा-गया, तारिसिया णं देवाणुप्पियेहिं वि दिव्वा देविड्ढी, जाव–अभिसमण्णागया; से णं भंते ! तीसए देवे केमहिड्ढीए, जाव–केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?

११ उत्तर– गोयमा ! महिड्ढीए, जाव–महाणुभागे; से णं तत्थ सयस्स विमाणस्स, चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं, चउण्हं अग्गम-

हिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं, देवीणं य जाव-विहरइ, एवं महिड्ढीए जाव-एवइयं, च णं पभू विउव्वित्तए, से जहा णामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, जहेव सक्कस्स तहेव जाव-एस णं गोयमा ! तीसयस्स देवस्स अयमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विसु वा, विउव्वइ वा, विउव्विस्सइ वा ।

१२ प्रश्न-जइ णं भंते ! तीसए देवे महिड्ढीए, जाव-एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो अवसेसा सामाणिया देवा के महिड्ढीया ?

१२ उत्तर-तहेव सव्वं, जाव-एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एगमेगस्स सामाणियस्स देवस्स इमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विउव्विसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा, तायत्तीसा य लोगपाल-अग्गमहिसी णं जहेव चमरस्स, नवरं-दो केवलकप्पे जंबूदीवे दीवे, अण्णं तं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति दोच्चे गोयमे जाव-विहरइ ।

कठिन शब्दार्थ-तीसए-तिष्यक अनगार, पगइभद्दए-प्रकृति से भद्र, अणिक्खित्तेणं-अनिक्षिप्त-निरन्तर, झूसित्ता-संयुक्त करके-सेवन करके, आलोइयपडिक्कंते-आलोचना प्रतिक्रमण करके, समाहिपत्ते-समाधि प्राप्त कर, उववायसभाए-उपपात-उत्पन्न होने की सभा में, देवदूसंतरिए-देव-वस्त्र से ढके हुए, ओगाहणाए-अवगाहना, उववन्नो-उत्पन्न हुआ,

अहुणोववण्णमेत्ते-अधुनोपपन्नमात्र-तत्काल उत्पन्न हुआ, **पज्जत्तीए**-पर्याप्ति-पूर्णता से, **पज्जत्तिभावं**-पर्याप्ति भाव से, **आणपाण-पज्जत्तीए**-श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से, **करयलपरिग्गहियं**-करतल परिगृहीत-दोनों हाथ जोड़कर, **दसणहं**-दस नखों को, **सिरसावत्तं**-मस्तक पर आवर्त्तन करते हुए, **लद्धे**-लब्ध हुआ-मिला, **पत्ते**-प्राप्त हुआ, **अभिसमण्णागए**-अभिसमन्वागत हुआ-सम्मुख आया, **जारिसिया**-जैसी, **तारिसिया**-वैसी, **वुइए**-कहा गया है, **संपत्तीए**-सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् साक्षात् क्रिया द्वारा ।

भावार्थ-११ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र ऐसी महान् ऋद्धि वाला है, यावत् इतना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है, तो आपका शिष्य 'तिष्यक' नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत, निरन्तर छठ छठ तप द्वारा अर्थात् निरन्तर बेले बेले पारणा करने से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ, सम्पूर्ण आठ वर्ष तक साधु पर्याय का पालन करके मासिक संलेखना के द्वारा अपनी आत्मा को संयुक्त करके तथा साठ भक्त अनशन का छेदन कर (पालन कर) आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त होकर, काल के समय में काल करके सौधर्म देवलोक में गया है । वह वहाँ अपने विमान में उपपात सभा के देव-शयनीय में (देवों के बिछौने में) देवदूष्य (देववस्त्र) से ढँके हुए अंगुल के असंख्यात भाग जितनी अवगाहना में देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देवरूप से उत्पन्न हुआ है ।

तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ वह तिष्यक देव, पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ अर्थात् आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनप्राणपर्याप्ति (श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति) और भाषामनःपर्याप्ति, इन पाँच पर्याप्तियों से उसने अपने शरीर की रचना पूर्ण की । जब वह तिष्यक देव, पाँचों पर्याप्तियों से पर्याप्त बन गया, तब सामानिक परिषद् के देव, दोनों हाथों को जोड़ कर एवं दसों अंगुलियों के दसों नखों को इकट्ठे करके मस्तक पर अञ्जलि करके जय विजय शब्दों द्वारा बधाया । इसके बाद वे इस प्रकार बोले कि-अहो ! आप देवानुप्रिय को यह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देव-कान्ति और दिव्य देव-प्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है । हे

देवानुप्रिय ! जैसी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रिय को मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, देवेन्द्र देवराज शक्र को भी मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है। जैसी दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, देवेन्द्र देवराज शक्र को मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रिय को मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है।

(अब अग्निभूति अनगार भगवान् से पूछते हैं) हे भगवन् ! तिष्यक देव कितनी महाऋद्धि वाला है और कितनी वैक्रिय शक्ति वाला है ?

११ उत्तर-वह तिष्यक देव महा ऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभाव वाला है। वह अपने विमान पर, चार हजार सामानिक देवों पर, परिवार सहित चार अग्रमहिषियों पर, तीन सभा पर, सात सेना पर, सात सेनाधिपतियों पर, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों पर और दूसरे बहुत से वैमानिक देवों पर तथा देवियों पर सत्ताधीशपना भोगता हुआ यावत् विचरता है। वह तिष्यक देव ऐसी महाऋद्धि वाला है यावत् इतना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है। युवति युवा के दृष्टान्तानुसार एवं आरों युक्त नाभि के दृष्टान्तानुसार वह शक्रेन्द्र जितनी विकुर्वणा करने की शक्ति वाला है। हे गौतम ! तिष्यक देव की जो विकुर्वणा शक्ति कही है, वह उसका सिर्फ विषय है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा कभी उसने इतनी विकुर्वणा की नहीं, करता भी नहीं और भविष्यत् काल में करेगा भी नहीं।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि तिष्यक देव इतनी महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने की शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज शक्र के दूसरे सब सामानिक देव कितनी महा ऋद्धि वाले हैं, यावत् कितनी विकुर्वणा शक्ति वाले हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! जिस तरह तिष्यक देव का कहा, उसी तरह
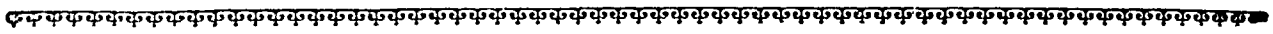
शक्रेन्द्र के सब सामानिक देवों का जानना चाहिए। किन्तु हे गौतम ! यह विकुर्वणा शक्ति उनका विषयमात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा इन्होंने कभी इतनी विकुर्वणा की नहीं, करते नहीं और भविष्यत् काल में भी करेंगे नहीं। शक्रेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषियों के विषय में चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये अपने वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप को भरने में समर्थ हैं। बाकी सारा वर्णन चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार यावत् विचरते हैं।

विवेचन–पहले शक्रेन्द्र की ऋद्धि और विकुर्वणा शक्ति का वर्णन किया गया, इसलिए उसके बाद उसके सामानिक देवों की ऋद्धि और विकुर्वणा के सम्बन्ध में पूछा गया है, यह प्रसंग प्राप्त ही है। इसके बाद प्रश्नकर्ता ने अपने परिचित श्री तिष्यक अनगार–जो कि काल करके शक्रेन्द्र के सामानिक देव रूप से उत्पन्न हुए हैं, उनकी ऋद्धि और विकुर्वणा के सम्बन्ध में पूछा है, यह भी प्रसंग प्राप्त ही है।

शङ्का–आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति, ये छह पर्याप्तियाँ कही गई हैं, किंतु यहाँ पर पांच ही पर्याप्तियां कही गई हैं, इसका क्या कारण है ?

समाधान–"**इह तु पञ्चधा भाषामनः–पर्याप्त्योर्बहुश्रुताभिमतेन केनापि कारणेन एकत्वविवक्षणात्**"

अर्थ–बहुश्रुत महापुरुषों ने अपने इष्ट किसी कारण से यहाँ (देवों में तथा नैरयिकों में) भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति को अलग अलग नहीं गिना है, किंतु दोनों को शामिल रूप में एक ही गिना है। क्योंकि देव और नैरयिकों में भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति, दोनों पर्याप्तियाँ शामिल ही बंधती हैं। इसलिए यहाँ पर पांच ही पर्याप्तियाँ कही गई हैं।

मूलपाठ में 'लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए' ये तीन शब्द आये हैं। इनका विशेषार्थ

करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि–

"लद्धे त्ति जन्मान्तरे तदुपार्जनापेक्षया, 'पत्ते' त्ति प्राप्त देवभवाऽपेक्षया, 'अभिसमण्णागए' त्ति तद्भोगाऽपेक्षया"।

अर्थ–लब्धः अर्थात् मिला, पूर्व जन्म में उसका उपार्जन किया। प्राप्त अर्थात् देव-भव की अपेक्षा प्राप्त। अभिसमन्वागत अर्थात् प्राप्त हुई भोग सामग्री को भोगना। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए मूलपाठ में उपरोक्त तीन शब्द आये हैं।

ईशानेन्द्र आदि की ऋद्धि और विकुर्वणा

१३ प्रश्न–'भंते !' त्ति भगवं तच्चे गोयमे वाउभूई अणगारे समणं भगवं जाव–एवं वयासी–जइ णं भंते ! सक्के देविंदे देव-राया एवं महिड्ढीए, जाव–एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया के महिड्ढीए ?

१३ उत्तर–एवं तहेव, नवरं–साहिए दो केवलकप्पे जंबूदीवे दीवे, अवसेसं तहेव।

भावार्थ–प्रश्न–१३ हे भगवन् ऐसा कह कर तृतीय गौतम गणधर भगवान् वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले–हे भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र यावत् ऐसी महा ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने की शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज ईशान कितनी महा ऋद्धि वाला है यावत् कितना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है ?

१३ उत्तर–हे गौतम ! जैसा शक्रेन्द्र के विषय में कहा, वैसा ही सारा वर्णन ईशानेन्द्र के लिए जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वह अपने

वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भर देता है। बाकी सारा वर्णन पहले की तरह जानना चाहिए।

विवेचन-यहाँ ईशानेन्द्र के प्रकरण को शक्रेन्द्र के प्रकरण के समान बतलाया है। इसका कारण यह है कि शक्रेन्द्र के प्रकरण में कही हुई बहुत सी बातों के साथ ईशानेन्द्र के प्रकरण में कही हुई बहुतसी बातों की समानता है, जो विशेषता है वह इस प्रकार है। ईशानेन्द्र के अट्ठाईस लाख विमान, अस्सी हजार सामानिक देव और तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षक देव हैं।

कुरूदत्तपुत्र अनगार आदि की ऋद्धि

१४ प्रश्न-जइ णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया एमहिड्ढीए, जाव-एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुरुदत्तपुत्ते नामं पगइभद्दए, जाव-विणीए, अट्ठमंअट्ठमेणं अणिक्खित्तेणं पारणए आयंबिलपरिग्गहिएणं तवेकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमूहे आयावणभूमिए आयावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणित्ता। अद्धमासिआए संलेहणाए अत्ताणं भूसित्ता, तीसं भत्ताइं अणसणाइं छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंते, समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे सयंसि विमाणंसि, जा तीसए वत्तव्वया सा सव्वेव अपरिसेसा कुरुदत्तपुत्ते० ?

१४ उत्तर-नवरं साइरेगे दो केवलकप्पे जबूंदीवे दीवे, अवसेसं

तं चेव, एवं सामाणिय-त्तायत्तीसग-लोगपाल-अग्गमहिसीणं, जाव एस णं गोयमा ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो एवं एगमेगाए अग्गमहिसीए देवीए अयमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते वुइए, नो चेव णं संपत्तीए विउव्विसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा ।

एवं सणंकुमारे वि, नवरं-चत्तारि केवलकप्पे जंबूदीवे दीवे, अदुत्तरं च णं तिरियमसंखेज्जे, एवं सामाणिय-त्तायत्तीस-लोगपाल-अग्गमहिसीणं असंखेज्जे दीव-समुद्दे सव्वे विउव्वंति, सणंकुमाराओ आरद्धा उवरिल्ला लोगपाला सव्वे वि असंखेज्जे दीव-समुद्दे विउव्वंति, एवं माहिंदे वि, नवरं-सातिरेगे चत्तारि केवलकप्पे जंबूदीवे दीवे, एवं बंभलोए वि, नवरं-अट्ठ केवलकप्पे, एवं लंतए वि, नवरं साइ-रेगे अट्ठ केवलकप्पे, महासुक्के सोलस केवलकप्पे, सहस्सारे साइरेगे सोलस. एवं पाणए वि, नवरं-बत्तीसं केवलकप्पे, एवं अच्चुए वि, नवरं साइरेगे बत्तीसं केवलकप्पे जंबूदीवे दीवे, अण्णं तं चेव । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति तच्चे गोयमे वाउभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, जाव-विहरइ ।

कठिन शब्दार्थ-पगिज्झिय-ग्रहण करके, सूराभिमुहे-सूर्य की तरफ मुख करके, आयावणभूमिए-आतापनभूमि में, आयावेमाणे-आतापना लेते हुए, आरद्धा उवरिल्ला-से लेकर ऊपर के, अण्णं-अन्य सब ।

भावार्थ-१४ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज ईशान ऐसी महा ऋद्धि वाला है, यावत् इतना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है, तो प्रकृति से भद्र

यावत् विनीत तथा निरन्तर अट्ठम यानी तेले तेले की तपस्या और पारणे में आयम्बिल ऐसी कठोर तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करने वाला, दोनों हाथ ऊँचे रख कर सूर्य की तरफ मुंह करके आतापना की भूमि में आतापना लेने वाला, आपका अन्तेवासी-शिष्य कुरुदत्तपुत्र नामक अनगार पूरे छह महीने तक श्रमण पर्याय का पालन करके, पन्द्रह दिन की संलेखना से अपनी आत्मा को संयुक्त करके, तीस भक्त तक अनशन का छेदन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिपूर्वक काल के अवसर पर काल करके, ईशान कल्प में अपने विमान में ईशानेन्द्र का सामानिक देव रूप से उत्पन्न हुआ है। इत्यादि सारा वर्णन जैसा तिष्यक देव के लिए कहा है, वह सारा वर्णन कुरुदत्तपुत्र देव के विषय में भी जानना चाहिए, तो हे भगवन् ! वह कुरुदत्तपुत्र देव, कितनी महाऋद्धि वाला यावत् कितना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! इस सम्बन्ध में सब पहले की तरह जान लेना चाहिए। विशेषता यह है कि कुरुदत्तपुत्र देव, अपने वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भरने में समर्थ है, इसी तरह दूसरे सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियों के विषय में भी जानना चाहिए। हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान की अग्रमहिषियों की यह विकुर्वणा शक्ति है, वह केवल विषय है, विषय मात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा कभी इतना वैक्रिय किया नहीं, करती नहीं और भविष्यत् काल में करेगी भी नहीं।

इसी तरह सनत्कुमार आदि देवलोकों के विषय में भी समझना चाहिए, किन्तु विशेषता इस प्रकार है:-सनत्कुमार देवलोक के देव, सम्पूर्ण चार जम्बूद्वीप जितने स्थल को भरने और तिर्छा असंख्यात द्वीप समुद्रों जितने स्थल को भरने की शक्ति है। इसी तरह सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियाँ, ये सब असंख्यात द्वीप समुद्र जितने स्थल को भरने की शक्ति वाले हैं। सनत्कुमार से आगे सब लोकपाल असंख्येय द्वीप समुद्रों जितने स्थल को भरने की शक्ति वाले हैं। इसी तरह माहेन्द्र नामक चौथे देवलोक में भी

समझना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण चार जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भरने में समर्थ हैं। इसी तरह ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक में भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वे सम्पूर्ण आठ जम्बूद्वीप जितने स्थल को भरने में समर्थ हैं। इसी प्रकार लान्तक नामक छठे देवलोक में भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण आठ जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भरने में समर्थ हैं। इसी तरह महाशुक्र नामक सातवें देवलोक के विषय में भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण सोलह जम्बूद्वीप जितने क्षेत्र को भरने में समर्थ हैं। इसी तरह सहस्रार नामक आठवें देवलोक के विषय में जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण सोलह जम्बूद्वीप से कुछ अधिक क्षेत्र को भरने में समर्थ हैं। इसी तरह प्राणत देवलोक के विषय में भी कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण बत्तीस जम्बूद्वीप जितने क्षेत्र को भरने में समर्थ हैं। इसी तरह अच्युत देवलोक के विषय में भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण बत्तीस जम्बूद्वीप से कुछ अधिक क्षेत्र को भरने में समर्थ हैं। बाकी सारा वर्णन पहले की तरह कहना चाहिए।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर यावत् विचरने लगे।

विवेचन--ईशानेन्द्र के पश्चात् उसके सामानिक देवों के विषय में प्रश्न पूछना प्रसंग प्राप्त है। तत्पश्चात् प्रश्नकार ने अपने परिचित कुरुदत्तपुत्र अनगार, जो काल करके ईशानेन्द्र के सामानिक देव रूप से उत्पन्न हुए हैं, उनकी ऋद्धि और विकुर्वणा शक्ति आदि के विषय में पूछा है, जो कि प्रसंग प्राप्त ही है।

सनत्कुमार के प्रकरण में मूलपाठ में 'अग्गमहिसीणं' शब्द दिया है। इसका कारण यह है कि यद्यपि सनत्कुमार देवलोक में देवियों की उत्पत्ति नहीं होती है, तथापि सौधर्म देवलोक में जो अपरिगृहीता देवियां उत्पन्न होती हैं और जिनकी स्थिति समयाधिक पल्योपम से लेकर दस पल्योपम तक की होती है, वे अपरिगृहीता देवियां सनत्कुमार

देवों के भोग के काम में आती है। इसलिए यहाँ 'अग्रमहिषी' का उल्लेख हुआ है।

इन देवलोकों के विमानों की संख्या बताने वाली गाथाएं इस प्रकार है;-

बत्तीस अट्ठावीसा बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा।
आरणे बंभलोया विमाणसंखा भवे एसा॥
पण्णासं चत्त छच्चेव सहस्सा लंतक सुक्क सहस्सारे।
सय चउरो आणय पाणएसु तिण्णि आरण्णच्चुयओ॥

अर्थ-(१) सौधर्म में बत्तीस लाख, (२) ईशान में अट्ठाईस लाख, (३) सनत्कुमार में बारह लाख, (४) माहेन्द्र में आठ लाख, (५) ब्रह्मलोक में चार लाख, (६) लान्तक में पचास हजार, (७) महाशुक्र में चालीस हजार, (८) सहस्रार में छह हजार, (९-१०) आणत और प्राणत में चार सौ, (११-१२) आरण और अच्युत में तीन सौ विमान हैं।

इनके सामानिक देवों की संख्या बतलाने वाली गाथा यह है;-

चउरासीई असीई बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा॥

अर्थ-पहले देवलोक में चौरासी हजार, दूसरे में अस्सी हजार, तीसरे में बहत्तर हजार, चौथे में सित्तर हजार, पांचवें में साठ हजार, छठे में पचास हजार, सातवें में चालीस हजार, आठवें में तीस हजार, नववें और दसवें में बीस हजार, ग्यारहवें और बारहवें में दस हजार सामानिक देव हैं।

यहाँ शक्रेन्द्र आदि एकान्तरित पांच इन्द्रों के विषय में अग्निभूति अनगार ने पूछा है और ईशानेन्द्र आदि एकान्तरित पांच इन्द्रों के विषय में वायुभूति अनगार ने पूछा है।

ईशानेन्द्र का भगवद् वंदन

१५ प्रश्न-तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं मोयाओ नयरीओ नंदणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं

रायगिहे नामं णयरे होत्था। (वण्णओ०) जाव--परिसा पज्जुवासइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया, सूलपाणी, वसहवाहणे, उत्तरड्ढलोगाहिवई, अट्ठावीसविमाणावाससयसहस्साहिवई, अरयंबरवत्थधरे, आलइयमालमउडे, नवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे, जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणे, पभासेमाणे, ईसाणे कप्पे, ईसाणवडिंसए विमाणे, जहेव रायप्पसेणइज्जे जाव–दिव्वं देविड्ढिं जाव–जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए। 'भंते!' त्ति, भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी:–अहो! णं भंते! ईसाणे देविंदे देवराया महिड्ढीए, ईसाणस्स णं भंते! सा दिव्वा देविड्ढी कहिं गया, कहिं अणुपविट्ठा?

१५ उत्तर–गोयमा! सरीरं गया। सरीरं अणुपविट्ठा।

१६ प्रश्न–से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सरीरं गया? सरीरं अणुपविट्ठा?

१६ उत्तर–गोयमा! से जहा णामए कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता, गुत्ता, गुत्तदुवारा णिवाया णिवायगंभीरा, तीसे णं कूडागारसालाए जाव कूडागारसाला दिट्ठंतो भाणियव्वो।

कठिन शब्दार्थ–अण्णया कयाइं–अन्यदा कभी–बाद में किसी दिन, पडिणिक्खमइ–निकलकर, सूलपाणी–शूलपाणि–हाथ में शूल नामक शस्त्र धारण करने वाला,

देवों के भोग के काम में आती है। इसलिए यहाँ 'अग्रमहिषी' का उल्लेख हुआ है।

इन देवलोकों के विमानों की संख्या बताने वाली गाथाएं इस प्रकार है;-

बत्तीस अट्ठावीसा बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा।
आरणे बंभलोया विमाणसंखा भवे एसा ॥
पण्णासं चत्त छच्चेव सहस्सा लंतक सुक्क सहस्सारे।
सय चउरो आणय पाणएसु तिण्णि आरण्णच्चुयओ ॥

अर्थ-(१) सौधर्म में बत्तीस लाख, (२) ईशान में अट्ठाईस लाख, (३) सनत्कुमार में बारह लाख, (४) माहेन्द्र में आठ लाख, (५) ब्रह्मलोक में चार लाख, (६) लान्तक में पचास हजार, (७) महाशुक्र में चालीस हजार, (८) सहस्रार में छह हजार, (९-१०) आणत और प्राणत में चार सौ, (११-१२) आरण और अच्युत में तीन सौ विमान हैं।

इनके सामानिक देवों की संख्या बतलाने वाली गाथा यह है;-

चउरासीई असीई बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ॥

अर्थ-पहले देवलोक में चौरासी हजार, दूसरे में अस्सी हजार, तीसरे में बहत्तर हजार, चौथे में सित्तर हजार, पांचवें में साठ हजार, छठे में पचास हजार, सातवें में चालीस हजार, आठवें में तीस हजार, नववें और दसवें में बीस हजार, ग्यारहवें और बारहवें में दस हजार सामानिक देव हैं।

यहाँ शक्रेन्द्र आदि एकान्तरित पांच इन्द्रों के विषय में अग्निभूति अनगार ने पूछा है और ईशानेन्द्र आदि एकान्तरित पांच इन्द्रों के विषय में वायुभूति अनगार ने पूछा है।

ईशानेन्द्र का भगवद् वंदन

१५ प्रश्न-तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं मोयाओ नयरीओ नंदणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं

रायगिहे नामं णयरे होत्था। (वण्णओ०) जाव--परिसा पज्जुवासइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया, सूलपाणी, वसहवाहणे, उत्तरड्ढलोगाहिवई, अट्ठावीसविमाणावाससयसहस्साहिवई, अरयंबरवत्थधरे, आलइयमालमउडे, नवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे, जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणे, पभासेमाणे, ईसाणे कप्पे, ईसाणवडिंसए विमाणे, जहेव रायप्पसेणइज्जे जाव-दिव्वं देविड्ढिं जाव-जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए। 'भंते!' त्ति, भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासीः-अहो! णं भंते! ईसाणे देविंदे देवराया महिड्ढीए, ईसाणस्स णं भंते! सा दिव्वा देविड्ढी कहिं गया, कहिं अणुपविट्ठा?

१५ उत्तर-गोयमा! सरीरं गया। सरीरं अणुपविट्ठा।

१६ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-सरीरं गया? सरीरं अणुपविट्ठा?

१६ उत्तर-गोयमा! से जहा णामए कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता, गुत्ता, गुत्तदुवारा णिवाया णिवायगंभीरा, तीसे णं कूडागारसालाए जाव कूडागारसाला दिट्ठंतो भाणियव्वो।

कठिन शब्दार्थ-अण्णया कयाइं-अन्यदा कभी-बाद में किसी दिन, पडिणिक्खमइ-निकलकर, सूलपाणी-शूलपाणि-हाथ में शूल नामक शस्त्र धारण करने वाला,

वसहवाहणे-वृषभवाहन- बैल पर सवारी करने वाला, उत्तरड्ढलोगाहिवई-लोक के उत्तरार्द्ध का स्वामी, अरयंबरवत्थधरे-आकाश के समान रजरहित-निर्मल वस्त्रों को पहनने वाला, आलइयमालमउडे-माला से सुशोभित मुकुट को मस्तक पर धारण करने वाला, नवहेमचारु-चित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे-कानों में पहने हुए नवीन सोने के सुन्दर, विचित्र एवं चंचल कुण्डलों से जिसका गण्डस्थल सुशोभित हो रहा है, पाउब्भूए-प्रादुर्भूत-प्रकट हुआ-उपस्थित हुआ, कूडागारसाला-कूटाकार शाला-शिखर के आकार वाला घर, सिया-स्याद्, दुहाओ-दोनों ओर से, लित्ता-लिप्त-लीपा हुआ, गुत्ता-गुप्त, णिवाया-निर्वात-हवा रहित, दिट्ठंतो-दृष्टान्त ।

भावार्थ-१५ प्रश्न-इसके बाद किसी एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी 'मोका' नगरी के उद्यान से बाहर निकल कर जनपद (देश) में विचरने लगे। उस काल उस समय में 'राजगृह' नामक नगर था। (वर्णन करने योग्य)। भगवान् वहाँ पधारे यावत् परिषद् भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

उस काल उस समय में देवेन्द्र देवराज शूलपाणि-(हाथ में शूल धारण करने वाला) वृषभ वाहन--बैल पर सवारी करने वाला, लोक के उत्तरार्द्ध का स्वामी, अट्ठाईस लाख विमानों का अधिपति, आकाश के समान रज रहित निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाला, माला से सुशोभित मुकुट को शिर पर धारण करने वाला, नवीन सोने के सुन्दर विचित्र और चञ्चल कुण्डलों से सुशोभित मुख वाला यावत् दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ ईशानेन्द्र, ईशानकल्प के ईशानावतंसक विमान में (रायपसेणीय सूत्र में कहे अनुसार) यावत् दिव्य देव ऋद्धि का अनुभव करता हुआ विचरता है। वह भगवान् के दर्शन करने के लिये आया और यावत् जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापिस चला गया।

इसके पश्चात् हे भगवन् ! इस प्रकार सम्बोधित करके गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि-हे भगवन् ! अहो !! देवेन्द्र देवराज ईशान ऐसी महाऋद्धि वाला है। हे भगवन् ! ईशानेन्द्र की वह दिव्य देवऋद्धि कहाँ गई और कहाँ प्रविष्ट हुई ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! वह दिव्य देवऋद्धि शरीर में गई, और शरीर में ही प्रविष्ट हुई।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! वह दिव्य देवऋद्धि शरीर में गई और शरीर में प्रविष्ट हुई, ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! जैसे कोई कूडागार (कूटाकार) शाला हो, जो कि दोनों तरफ से लिपी हुई हो, गुप्त हो, गुप्तद्वार वाली हो, पवन रहित हो, पवन के प्रवेश से रहित गम्भीर हो। ऐसी कूटाकारशाला का दृष्टान्त यहाँ कहना चाहिए।

विवेचन-इस चालू प्रकरण में इन्द्रों की वैक्रिय शक्ति, तेजोलेश्या आदि का वर्णन किया गया है।

एक समय दूसरे देवलोक का अधिपति देवेन्द्र देवराज ईशान, भगवान् की सेवा में आया और उसने बत्तीस प्रकार के नाटक बतलाये। जिसके लिए रायपसेणीय सूत्र में वर्णित सूर्याभदेव की वक्तव्यता की भलामण दी गई है। उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है;- सुधर्मा सभा के ईशान नाम के सिंहासन पर बैठा हुआ देवेन्द्र देवराज ईशान, महा अखण्ड नाटकों आदि के शब्दों द्वारा दिव्य और भोगने योग्य भोगों को भोगता हुआ रहता है। वह ईशानेन्द्र वहाँ अकेला नहीं है, किन्तु परिवार सहित है। उसका परिवार इस प्रकार है-अस्सी हजार सामानिक देव, चार लोकपाल, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियाँ, सात सेना, सात सेनाधिपति, तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षक देव और अनेक वैमानिक देव तथा देवियाँ। इस प्रकार के परिवार से वह ईशानेन्द्र परिवृत्त है।

एक समय उस ईशानेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान के द्वारा जम्बूद्वीप को देखा और देखते ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को राजगृह नगर में पधारे हुए देखा। भगवान् को देखते ही वह इन्द्र, एकदम अपने आसन से उठा, उठकर सात आठ कदम तीर्थङ्कर भगवान् के सामने गया, फिर दोनों हाथ जोड़कर भगवान् को वन्दना नमस्कार किया। इसके बाद अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रियों ! तुम राजगृह नगर में जाओ और वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करो। इसके बाद एक योजन जितने विशाल क्षेत्र को साफ करो। यह कार्य करके मुझे वापिस शीघ्र सूचित करो।" इन्द्र की आज्ञा पाकर उन आभियोगिक देवों ने वह सारा
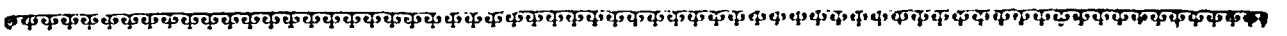
कार्य करके वापिस इन्द्र को सूचित कर दिया ।

इसके बाद इन्द्र ने अपने सेनाधिपति को बुला कर इस प्रकार कहा कि-"हे देवानुप्रिय!" तुम ईशानावतंसक नाम के विमान में घण्टा बजाओ और सब देव और देवियों को इस प्रकार कहो कि-हे देव और देवियों ! ईशानेन्द्र, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करने के लिए जाता है, इसलिए तुम शीघ्र ही अपनी महान् ऋद्धि से संयुक्त होकर इन्द्र के पास जाओ ।

जब सेनाधिपति ने इस प्रकार जाहिर किया, तो बहुत से देव और देवियाँ ईशानेन्द्र के पास उपस्थित हुए । उन समस्त देव और देवियों से परिवृत्त होकर एक लाख योजन परिमाण वाले विमान में बैठ कर ईशानेन्द्र, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना करने के लिए निकला । नन्दीश्वर द्वीप में पहुँच कर ईशानेन्द्र ने अपने विमान को छोटा बनाया । फिर वह राजगृह नगर में आया । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार प्रदक्षिणा की । फिर अपने विमान को जमीन से चार अगुंल ऊँचा रख कर, भगवान् के पास जाकर उन्हें वन्दना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा ।

फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म श्रवण करके इन्द्र ने इस प्रकार निवेदन किया कि-हे भगवन् ! आप तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं । सब जानते हैं और सब देखते हैं । मैं तो सिर्फ गौतमादि महर्षियों को दिव्य नाटक विधि दिखलाना चाहता हूँ । ऐसा कह कर ईशानेन्द्र ने दिव्य मण्डप की विकुर्वणा की । उस मण्डप में मणिपीठिका और सिंहासन की भी विकुर्वणा की । फिर भगवान् को प्रणाम करके इन्द्र सिंहासन पर बैठा । इसके बाद उसके दाहिने हाथ से एक सौ आठ देवकुमार निकले और बाएँ हाथ से एक सौ आठ देवकुमारियाँ निकलीं । फिर अनेक वादिन्त्रों और गीतों के साथ जन-मानस को रञ्जित करने वाला बत्तीस प्रकार का नाटक बतलाया । फिर उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव को वापिस समेट लिया और एक क्षण में ही वह पहले था वैसा अकेला हो गया । इसका विस्तृत वर्णन रायपसेणीय सूत्र से जानना चाहिए । फिर अपने परिवार सहित देवेन्द्र देवराज ईशान ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार किया और जिस दिशा से आया था, उस दिशा में वापिस चला गया अर्थात् अपने स्थान पर चला गया ।

तब गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा कि-हे भगवन् ! ईशानेन्द्र की वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति एवं दिव्य देवप्रभाव कहाँ गया ? कहाँ

प्रविष्ट हुआ ।

भगवान् ने फरमाया कि–हे गौतम ! कूटाकार शाला के दृष्टान्तानुसार वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, ईशानेन्द्र के शरीर में गया, उसके शरीर में ही प्रविष्ट हुआ ।

कूटाकार शाला के दृष्टान्त का आशय इस प्रकार है। जैसे–शिखर के आकार वाली कोई शाला (घर) हो और उसके पास बहुत से मनुष्य खड़े हों। इतने में बादलों की काली घटा चढ़ आई हो और वर्षा बरसने की तय्यारी हो। उस काली घटा को देखते ही जैसे वे सब मनुष्य उस शाला में प्रवेश कर जाते हैं। इसी प्रकार ईशानेन्द्र की वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, ईशानेन्द्र के शरीर में ही प्रविष्ट हो गया ।

ईशानेन्द्र का पूर्व भव

१७ प्रश्न–ईसाणेणं भंते ! देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देवज्जुई, दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे, किण्णा पत्ते, किण्णा अभिसमण्णागये ? के वा एस आसी पुव्वभवे, किं-णामए वा, किंगोत्ते वा, कयरंसि वा गामंसि वा नगरंसि वा, जाव सण्णिवेसंसि वा, किं वा सोच्चा, किं वा दच्चा, किं वा भोच्चा, किं वा किच्चा, किं वा समायरित्ता, कस्स वा तहारूवस्स वा समणस्स-वा, माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं, धम्मियं सुवयणं सोच्चा, निसम्म जं णं ईसाणेणं देविंदेणं, देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी जाव–अभिसमण्णागया ?

१७ उत्तर–एवं खलु गोयमा ! तेणं काले णं, तेणं समए णं

इहेव जंबूदीवे दीवे, भारहे वासे, तामलित्ती नामं णयरी होत्था। (वण्णओ०) तत्थ णं तामलित्तीए णयरीए तामली णामं मोरियपुत्ते गाहावई होत्था, अड्ढे, दित्ते, जाव-बहुजणस्स अपरिभूए या वि होत्था, तए णं तस्स मोरियपुत्तस्स तामलित्तस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुटुंबजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए, जाव-समुप्पज्जित्था, अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं, सुचिण्णाणं, सुपरिक्कंताणं, सुभाणं कल्लाणाणं, कडाणं कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसो, जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि, सुवण्णेणं वड्ढामि, धणेणं वड्ढामि, धण्णेणं वड्ढामि पुत्तेहिं वड्ढामि पसूहिं वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयणसंतसारसावएज्जेणं अईव अईव अभिवड्ढामि।

कठिन शब्दार्थ-एस-यह, आसि-था कयरंसि-किस, दच्चा-दिया, भोच्चा-खाया, किच्चा-किया, समायरित्ता-आचरण किया, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि-पूर्वरात्राऽपररात्र-काल समये-मध्य रात्रि में, अज्झत्थिए-आध्यात्मिक = संकल्प, सुचिण्णाणं-उत्तम आचार पालकर, सुपरिक्कंताणं-अच्छे पराक्रम से, कल्लाणफलवित्तिविसेसो-कल्याणकारी फल विशेष, वड्ढामि-बढ़ रहा है,

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान को वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव किस प्रकार लब्ध हुआ, प्राप्त हुआ और अभिसमन्वागत हुआ (सम्मुख आया) ? यह ईशानेन्द्र पूर्वभव में कौन था ? उसका नाम और गोत्र क्या था ? वह किस ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश में रहता था ? उसने क्या सुना ? क्या दिया ? क्या खाया ? क्या किया ? क्या आचरण किया ? किस तथारूप के श्रमण या माहन के पास एक

भी आर्य और धार्मिक वचन सुना था एवं हृदय में धारण किया था, जिससे कि देवेन्द्र देवराज ईशान को यह दिव्य देवऋद्धि यावत् मिली है, प्राप्त हुई है और सम्मुख आई है ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! उस काल उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में ताम्रलिप्ती नाम की नगरी थी। उस नगरी का वर्णन करना चाहिए। उस ताम्रलिप्ती नगरी में तामली नाम का मौर्यपुत्र (मौर्यवंश में उत्पन्न) गृहपति रहता था। वह तामली गृहपति धनाढ्य और दीप्ति वाला था यावत् वह बहुत से मनुष्यों द्वारा अपराभवनीय (नहीं दबने वाला) था। किसी एक समय में उस मौर्यपुत्र तामली गृहपति को रात्रि के पिछले भाग में कुटुम्बजागरण करते हुए ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे द्वारा पूर्वकृत सुआचरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याणरूप कर्मों का कल्याणफल रूप प्रभाव अभी तक विद्यमान है, जिसके कारण मेरे घर में हिरण्य (चाँदी) बढ़ता है, सुवर्ण बढ़ता है, रोकड़ रुपया रूप धन बढ़ता है, धान्य बढ़ता है एवं मैं पुत्रों द्वारा, पशुओं द्वारा और पुष्कल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, चन्द्रकान्त आदि मणि, प्रवाल आदि द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूं।

तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं, सुचिण्णाणं, जाव-कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उवेहमाणे विहरामि, तं जाव-ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि, जाव-अईव अईव अभिवड्ढामि, जावं च णं मे मित्त-णाइ-णियगसंबंधि-परियणो आढाइ, परियाणाइ, सक्कारेइ, सम्माणेइ, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं विणएणं पज्जुवासइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव--जलंते, सयमेव दारुमयं पडिग्गहं करेत्ता, विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, उवक्खडावेत्ता, मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परियणं आमं-

तेत्ता, तं मित्तणाइ णियग-संबंधिपरियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं, वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेणं य सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त-णाइणियग-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेता, तं मित्त-णाइ-णियग-संबंधि-परियणं, जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहं गहायं मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए, पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए, छट्ठस्स वि य णं पारणंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहं गहाय तामलित्तीए नयरीए उच्च-णीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए, अडित्ता सुद्धोदणं पडिगाहेत्ता, तं तिसत्तक्खुत्तो उदएणं पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहरित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ

कठिन शब्दार्थ—**उवेहमाणे**—उपेक्षा करता हुआ, **आढाति**—आदर करते, **दारुमयं**—लकड़ी का बना हुआ, **पडिग्गहं**—प्रतिग्रह—पात्र, **उवक्खडावेत्ता**—तय्यार करवा कर, **आमंतेत्ता**—बुलाकर, **पुरओ**—समक्ष, **पाणामाए पव्वज्जा**—प्राणामा नामक प्रव्रज्या, **अभिग्गहं**—अभिग्रह—प्रतिज्ञा विशेष, **अणिक्खित्तेणं**—निरंतर—बिना रुके, **पगिज्झिय**—ग्रहण करके, **तिसत्तक्खुत्तो**—इक्कीस बार, **संपेहेइ**—विचार करके, **पाउगं**—पादुका—खड़ाऊ ।

भावार्थ—पूर्वकृत, सुआचरित, यावत् पुराने कर्मों का नाश हो रहा है, इस बात को देखता हुआ भी यदि मैं उपेक्षा करता रहूं अर्थात् भविष्यत् कालीन

लाभ की तरफ उदासीन बना रहूं, तो यह मेरे लिये ठीक नहीं है। किन्तु जबतक मैं सोने चाँदी आदि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होरहा हूं और जबतक मेरे मित्र, ज्ञातिजन, कुटुम्बीजन, दास, दासी आदि मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामीरूप से मानते हैं, मेरा सत्कार, सन्मान करते हैं और मुझे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप, मान कर विनयपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, तब तक मुझे अपना कल्याण करलेना चाहिये। यही मेरे लिये श्रेयस्कर है। अतः कल प्रकाशवाली रात्रि होने पर अर्थात् प्रातःकाल का प्रकाश होने पर सूर्योदय के पश्चात् मैं स्वयं ही अपने हाथ से लकड़ी का पात्र बनाऊं और पर्याप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चार प्रकार का आहार तैयार करके मेरे मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन सम्बन्धी और दास दासी आदि सब को निमन्त्रित करके उनको सम्मानपूर्वक अशनादि चारों प्रकार का आहार जीमाकर, वस्त्र सुगंधित पदार्थ, माला और आभूषण आदि द्वारा उनका सत्कार सम्मान करके, उन मित्र ज्ञातिजनादि के समक्ष मेरे बड़े पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करके अर्थात् उसके ऊपर कुटुम्ब का भार डालकर और उन सब लोगों को पूछकर मैं स्वयं लकड़ी का पात्र लेकर एवं मुण्डित होकर 'प्राणामा' नाम की प्रव्रज्या अंगीकार करूँ और प्रव्रज्या ग्रहण करते ही इस प्रकार का अभिग्रह धारण करूं कि—मैं यावज्जीवन निरन्तर छठ छठ अर्थात् बेले बेले तपस्या करूं और सूर्य के सम्मुख दोनों हाथ ऊंचे करके आतापनाभूमि में आतापना लूं और बेले की तपस्या के पारणे के दिन आतापना की भूमि से नीचे उतर कर लकड़ी का पात्र हाथ में लेकर ताम्रलिप्ती नगरी में ऊंच, नीच और मध्यम कुलों से भिक्षा की विधि द्वारा शुद्ध ओदन अर्थात् केवल पकाये हुए चावल लाऊं और उनको पानी से इक्कीस बार धोकर फिर खाऊँ, इस प्रकार उस तामली गृहपति ने विचार किया।

संपेहित्ता, कल्लं पाउप्पभायाए जाव–जलंते, सयमेव दारु-मयं पडिग्गहं करेइ, करित्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं

उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता तओ पच्छा ण्हाए, कयबलिकम्मे, कयकोउय-मंगल्ल-पायच्छित्ते, सुद्धपावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिए, अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे, भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए, तएणंमित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं सद्धिं तं विउलं असण-पाण-खाइमं साइमं आसाएमाणे, वीसाएमाणे, परिभाएमाणे, परिभुंजेमाणे विहरइ, जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते, चोक्खे, परमसुइब्भूए, तं मित्तं जाव-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइम-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लाऽलंकारेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ, तस्सेव मित्त-णाइ-जाव-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेइ, ठावेत्ता ते मित्त-णाइ-जाव-परियणस्स, जेट्ठं पुत्तं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता, मुंडे भवित्ता, पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए।

कठिन शब्दार्थ—अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे—अल्पभार और महामूल्य के आभरण से शरीर को अलंकृत करके, आसाएमाणे—स्वाद लेते हुए, विसाएमाणे—विशेष रूप से चखते हुए, परिभाएमाणे—परिभोग करते हुए, जिमियभुत्तुत्तरागए—जीमने के बाद, आयंते—कुल्ले किये, चोक्खे—साफ—पवित्र हुए, परमसूइब्भूए—परम शूचिभूत हुए।

भावार्थ—फिर प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के पश्चात् स्वयं लकड़ी का पात्र बनाकर पर्याप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार तैयार करवाया, फिर स्नान, बलिकर्म करके कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त करके शुद्ध और उत्तम मांगलिक वस्त्र पहने और अल्पभार और महामूल्य वाले आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया, फिर भोजन के समय वह

उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता तओ पच्छा ण्हाए, कयबलिकम्मे, कयकोउय-मंगल्ल-पायच्छित्ते, सुद्धपावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिए, अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे, भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए, तए णं मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं सद्धिं तं विउलं असण-पाण-खाइमं साइमं आसाएमाणे, वीसाएमाणे, परिभाएमाणे, परिभुंजेमाणे विहरइ, जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते, चोक्खे, परमसुइब्भूए, तं मित्तं जाव-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइम-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लाऽलंकारेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ, तस्सेव मित्त-णाइ-जाव-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेइ, ठावेत्ता ते मित्त-णाइ-जाव-परियणस्स, जेट्ठं पुत्तं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता, मुंडे भवित्ता, पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए।

कठिन शब्दार्थ—अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे—अल्पभार और महामूल्य के आभरण से शरीर को अलंकृत करके, आसाएमाणे—स्वाद लेते हुए, विसाएमाणे—विशेष रूप से चखते हुए, परिभाएमाणे—परिभोग करते हुए, जिमियभुत्तुत्तरागए—जीमने के बाद, आयंते—कुल्ले किये, चोक्खे—साफ-पवित्र हुए, परमसूइब्भूए—परम शूचिभूत हुए।

भावार्थ—फिर प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के पश्चात् स्वयं लकड़ी का पात्र बनाकर पर्याप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार तैयार करवाया, फिर स्नान, बलिकर्म करके कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त करके शुद्ध और उत्तम मांगलिक वस्त्र पहने और अल्पभार और महामूल्य वाले आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया, फिर भोजन के समय वह

तामली गृहपति भोजन मण्डप में आकर उत्तम आसन पर सुखपूर्वक बैठा। इसके बाद मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन, सगेसम्बन्धी और दास दासी के साथ उस चारों प्रकार के आहार का स्वाद लेता हुआ, विशेष स्वाद लेता हुआ परस्पर देता हुआ अर्थात् जीमाता हुआ और स्वयं जीमता हुआ वह तामली गृहपति विचरने लगा। जीमने के पश्चात् उसने हाथ धोये और चुल्लु किया। अर्थात् मुख साफ करके शुद्ध हुआ। फिर उन सब स्वजन सम्बन्धी आदि का वस्त्र, सुगंधित पदार्थ और माला आदि से सत्कार सम्मान करके उनके समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित किया अर्थात् कुटुम्ब का भार संभलाया। फिर उन सब स्वजनादि को और ज्येष्ठ पुत्र को पूछकर, उस तामली गृहपति ने मुण्डित होकर 'प्राणामा' नाम की प्रव्रज्या अंगीकार की।

पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ;—'कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं, जाव-आहारित्तए त्ति कट्टु' इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता जावज्जीवाए छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगि-ज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ, छट्ठस्स, वि य णं पारणयंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहं गहाय तामलित्तीए णयरीए उच्च-णीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ, सुद्धोयणं पडिग्गाहइ, तिसत्तखुत्तो उदएणं पक्खालेइ, तओ पच्छा आहारं आहारेइ।

१८ प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ पाणामा पव्वज्जा?
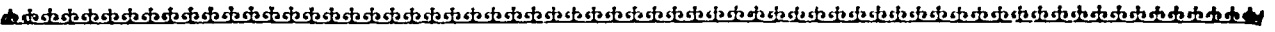
१७ उत्तर-गोयमा ! पाणामाए णं पव्वज्जाए पव्वइए समाणे जं जत्थ पासइ-इंदं वा, खंदं वा, रुद्दं वा, सिवं वा, वेसमणं वा, अज्जं वा, कोट्टकिरियं वा, रायं वा, जाव-सत्थवाहं वा, कार्क वा, साणं वा, पाणं वा, उच्चं पासइ उच्चं पणामं करेइ, णीयं पासइ णीयं पणामं करेइ, जं जहा पासइ, तं तहा पणामं करेइ, से तेण-ट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ पाणामा पव्वज्जा ।

कठिन शब्दार्थ-सुद्धोयणं-सुद्धोदन = केवल चावल ही, पडिग्गाहइ- ग्रहण करे, उदएणं-उदक-पानी से, पक्खालेइ-धोवे, जं जत्थ पासइ-जिसे जहां देखे, खंदं-स्कन्द, रुद्दं-रुद्र, अज्जं-आर्या-पार्वती, कोट्टकिरियं-महिषासुर को पीटती हुई चंडिका, साणं-श्वान-कुत्ता ।

भावार्थ-जिस समय तामली गृहपति ने 'प्राणामा' नाम की प्रव्रज्या अंगीकार की, उसी समय उसने इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया-यावज्जीवन में बेले बेले की तपस्या करूँगा यावत् पूर्व कथितानुसार भिक्षा की विधि द्वारा केवल ओदन (पकाये हुए चावल) लाकर उन्हें इक्कीस बार पानी से धोकर उनका आहार करूंगा । इस प्रकार अभिग्रह धारण करके यावज्जीवन निरन्तर बेले बेले की तपस्यापूर्वक दोनों हाथ ऊंचे रखकर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ वह तामली तापस विचरने लगा । बेले के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतर कर स्वयं लकड़ी का पात्र लेकर ताम्रलिप्ती नगरी में ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधिपूर्वक भिक्षा के लिए फिरता था । भिक्षा में केवल ओदन लाता था और उन्हें इक्कीस बार पानी से धोकर खाता था ।

भावार्थ-१८ प्रश्न-हे भगवन् ! तामली तापस द्वारा ली हुई प्रव्रज्या का नाम 'प्राणामा' किस कारण से कहा जाता है ?

उत्तर-हे गौतम ! जिस व्यक्ति ने 'प्राणामा' प्रव्रज्या ली हो, वह

जिसको जहाँ देखता है वहीं प्रणाम करता है अर्थात् इन्द्र, स्कन्द (कार्तिकेय) रुद्र (महादेव) शिव, वैश्रमण (उत्तर दिशा के लोकपाल-कुबेर) शान्त रूपवाली चण्डिका (पार्वती) रौद्र रूपवाली चण्डिका अर्थात् महिषासुर को पीटती चण्डिका (पार्वती) राजा, युवराज, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, सार्थवाह, कौआ, कुत्ता, चाण्डाल, इत्यादि सब को प्रणाम करता है। इनमें से उच्च व्यक्ति को देखकर उच्च रीति से प्रणाम करता है और नीच को देखकर नीची रीति से प्रणाम करता है अर्थात् जिस को जिस रूप में देखता है उसको उसी रूप में प्रणाम करता है। इस कारण हे गौतम ! इस प्रव्रज्या का नाम 'प्राणामा' प्रव्रज्या है।

तएणं से तामली मोरियपुत्ते तेणं ओरालेणं, विपुलेणं, पयत्तेणं, पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं सुक्के, भुक्खे, जाव-धमणि संतए जाए यावि होत्था, तए णं तस्स तामलिस्स बालतवस्सिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, जाव-समुप्पज्जित्था, एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं, विपुलेणं, जाव-उदग्गेणं, उदत्तेणं, उत्तमेणं, महाणुभागेणं तवोकम्मेणं, सुक्के, भुक्खे जाव-धमणिसंतए जाए, तं अत्थि जा मे उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे तावता मे सेयं, कल्लं जाव-जलंते, तामलित्तीए णगरीए, दिट्ठाभट्ठे य, पासंडत्थे य, गिहत्थे य, पुव्वसंगतिए य, पच्छासंगतिए य, परियायसंगतिए य आपुच्छित्ता तामलित्तीए णगरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छित्ता, पाउगं कुंडियामाइयं उवगरणं, दारुमयं च पडिग्गहं

एगंते एडित्ता तामलित्तीणयरीए उत्तर पुरत्थिमे दिसिभाए णियत्त-णियं मंडलं आलिहित्ता संलेहणा झूसणाझूसिअस्स भत्त-पाणपडि-याइक्खिअस्स, पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं जाव-जलंते जाव-आपुच्छइ, आपुच्छित्ता तामलित्तीए एगंते जाव-एडेइ, जाव-भत्त-पाण-पडियाइक्खिए पाओवगमणं णिवण्णे ।

कठिन शब्दार्थ-पयत्तेणं-प्रदत्त, पग्गहिएणं-प्रगृहीत, बालतवोकम्मेणं-अज्ञान पूर्वक तपस्या, अणिच्च जागरियं-अनित्य का चिन्तन करते हुए, उदग्गेणं-उदग्र, उदत्तेणं-उदात्त, दिट्ठाभट्ठे-दृष्टभाषित-देखकर बुलाये हुए अथवा देखे हुए बुलाये हुए, एगंते एडित्ता-एकान्त में रखकर, नियत्तणिय मंडलं-निवर्तनिक मंडल अपने शरीर प्रमाण, आलिहित्ता-आलेखकर, निवण्ण-निष्पन्न किया ।

भावार्थ-इसके पश्चात् वह मौर्यपुत्र तामली तापस उस उदार, विपुल, प्रदत्त और प्रगृहीत बाल तप द्वारा शुष्क (सूखा) बनगया, रूक्ष बनगया यावत् इतना दुबला होगया कि उसकी नाड़ियाँ बाहर दिखाई देने लग गई । इसके पश्चात् किसी एक दिन पिछली रात्रि के समय अनित्य जागरणा जागते हुए तामली बाल तपस्वी को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस उदार, विपुल यावत् उदग्र, उदात्त, उत्तम और महा प्रभावशाली तपःकर्म के द्वारा शुष्क और रूक्ष होगया हूं यावत् मेरा शरीर इतना कृश हो गया है कि नाड़ियाँ बाहर दिखाई देने लग गई है । इसलिये जबतक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकारपराक्रम है, तबतक मेरेलिए यह श्रेयस्कर है कि कल प्रातःकाल यावत् सूर्योदय होने पर मैं ताम्रलिप्ती नगरी में जाउँ । वहाँ पर दृष्टभाषित (देख कर जिनके साथ बातचीत की गई हो) पाखण्डी जन, गृहस्थ, पूर्व परिचित (गृहस्थावस्था के परिचित) पश्चात् परिचित (तपस्वी होने के बाद परिचय में आये हुए) और मेरी जितनी दीक्षा पर्यायवाले तापसों को पूछकर, ताम्रलिप्ती

नगरी के बीचोबीच से निकल कर, पादुका (खड़ाऊ) तथा कुण्डी आदि उपकरणों को और लकड़ी के पात्र को एकान्त में डालकर ताम्रलिप्ती नगरी के उत्तर पूर्व के दिशा भाग में अर्थात् ईशान कोण में 'निर्वर्तनिक' (एक परिमित क्षेत्र अथवा अपने शरीर परिमाण जगह) मण्डल को साफ करके संलेखना तप के द्वारा आत्मा को सेवित कर आहार पानी का सर्वथा त्याग करके पादपोपगमन संथारा करूँ एवं मृत्यु की चाहना नहीं करता हुआ शान्त चित्त से स्थिर रहूं। यह मेरे लिये श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर यावत् सूर्योदय होने पर यावत् पूर्व कथितानुसार पूछकर उस तामली बाल-तपस्वी ने अपने उपकरणों को एकान्त में रखकर यावत् आहार पानी का त्याग करके पादपोपगमन नाम का अनशन कर दिया।

बलिचंचा के देवों का आकर्षण और निवेदन

तेणं कालेणं तेणं समएणं बलिचंचा रायहाणी अणिंदा, अपुरोहिया या वि होत्था, तएणं ते बलिचंचा रायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं ओहिणा आभोएंति, आभोइत्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, अण्णमण्णं सद्दावेत्ता एवं वयासि–एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा, अपुरोहिया, अम्हे य णं देवाणुप्पिया। इंदाहीणा, इंदाहिट्ठिया, इंदाहीणकज्जा, अयं च देवाणुप्पिया ! तामली बालतवस्सी तामलित्तीए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभागे नियत्तणियमंडलं आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसिए, भत्तपाणपडियाइक्खिए,

पाओवगमणं णिवण्णे, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे तामलिं बालतवस्सिं बलिचंचाए रायहाणीए ठितिं पकप्पं पकरावेत्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता बलिचंचारायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छंति जेणेव रुयगिंदे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता वेउव्वियसमुग्घायेणं समोहण्णंति, जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, ताए उक्किट्ठाए, तुरियाए, चवलाए, चंडाए, जइणाए, छेयाए, सीहाए, सिग्घाए, दिव्वाए, उद्धुयाए, देवगईए तिरियं असंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबूदीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे जेणेव तामलित्ती णयरी, जेणेव तामली मोरियपुत्ते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तामलिस्स बालतवस्सिस्स उप्पिं, सपक्खिं, सपडिदिसिं ठिच्चा दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवज्जुइं, दिव्वं देवाणुभागं, दिव्वं बत्तीसविहं णट्टविहं उवदंसेंति, तामलिं बालतवस्सिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति, वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता ।

कठिन शब्दार्थ-अणिन्दा-इन्द्र रहित, आभोएंति-अवधिज्ञान से देखा, वत्थव्वया-वसनेवाले-रहनेवाले, ओहिणा इंदाहिट्ठिया-इन्द्राधिष्ठित, उप्पि-ऊपर, सपक्खि-सपक्ष-सामने, सपडिदिसि--सप्रतिदिश-ठीक उसी दिशा में, ठिच्चा-खड़े रह कर, ठिति पकरावेत्तए-स्थिति करावें (संकल्प करावें), तुरियाए-त्वरित, जइणाए-जयवाली, छेयाए-निपुण, उद्धयाए-उद्धूत, गतिविशेप-उवदंसेइ-दिखाया ।

भावार्थ-उस काल उस समय में बलिचंचा (उत्तर दिशा के असुरेन्द्र,

असुरराज चमर की राजधानी) इन्द्र और पुरोहित से रहित थी। तब बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियों ने उस तामली बाल तपस्वी को अवधिज्ञान द्वारा देखा। देख कर उन्होंने परस्पर एक दूसरे को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियों! इस समय बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रहित है। हे देवानुप्रियों! अपन सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित हैं अर्थात् इन्द्र की अधीनता में रहने वाले हैं। अपना सारा कार्य इन्द्र की अधीनता में होता है। हे देवानुप्रियों! यह तामली बाल तपस्वी ताम्रलिप्ती नगरी के बाहर ईशान कोण में निर्वर्तनिक मण्डल को साफ़ करके संलेखना के द्वारा अपनी आत्मा को संयुक्त करके आहार पानी का त्याग कर और पादपोपगमन अनशन को स्वीकार करके रहा हुआ है। तो अपने लिये यह श्रेयस्कर है कि अपनी इस बलिचंचा राजधानी में इन्द्ररूप से आने के लिये इस तामली बाल तपस्वी को संकल्प करावें। ऐसा विचार करके तथा परस्पर एक दूसरे की बात को मान्य करके वे सब असुरकुमार, बलिचंचा राजधानी के बीचोबीच से निकल कर रूचकेन्द्र उत्पात पर्वत पर आये। वहाँ आकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होकर यावत् उत्तर वैक्रिय रूप बनाकर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जयवती, निपुण, श्रम रहित, सिंह सदृश, शीघ्र, उद्धत और दिव्य देवगति द्वारा तिर्छे असंख्येय द्वीप समुद्रों के बीचोबीच होते हुए इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की ताम्रलिप्ती नगरी के बाहर जहाँ मौर्यपुत्र तामली बाल तपस्वी था, वहाँ आये। वहाँ आकर ऊपर आकाश में तामली बाल तपस्वी के ठीक सामने खड़े रहे। खड़े रहकर दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव और बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटक बतलाये। फिर तामली बाल तपस्वी की तीनवार प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार किया।

एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे बलिचंचारायहाणी-वत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीओ य देवाणुप्पियं वंदामो,

णमंसामो, जाव-पज्जुवासामो, अम्हाणं देवाणुप्पिया! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा, अपुरोहिया, अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया! इंदाहीणा, इंदाहिट्ठिया, इंदाहीणकज्जा, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! बलिचंचारायहाणिं आढाह, परियाणह, सुमरह, अट्ठं बंधह, णियाणं पकरेह, ठिइपकप्पं पकरेह, तए णं तुब्भे कालमासे कालं किच्चा बलिचंचारायहाणीए उववज्जिस्सह, तएणं तुब्भे अम्हं इंदा भविस्सह, तएणं तुब्भे अम्हेहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सह।

कठिन शब्दार्थ-आढाह-आदर करें, अट्ठं बंधह-अर्थ को बाँधलो-दृढ़ निश्चय करलो, णियाणं पकरेह-निदान करलो, ठिइपकप्पं करेह-स्थिति का संकल्प करो।

भावार्थ-वन्दना नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले हे देवानुप्रिय! हम बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियाँ आपको वन्दना नमस्कार करते हैं, यावत् आपकी पर्युपासना करते हैं। हे देवानुप्रिय! अभी हमारी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रहित है। हे देवानुप्रिय! हम सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित रहने वाले हैं। हमारा सारा कार्य इन्द्राधीन होता है। इसलिये हे देवानुप्रिय! आप बलिचंचा राजधानी का आदर करो, उसका स्वामीपन स्वीकार करो, उसका मन में स्मरण करो, उसके लिये निश्चय करो, निदान (नियाणा) करो और बलिचंचा राजधानी का स्वामी बनने का संकल्प करो। हे देवानुप्रिय! यदि आप हमारे कथनानुसार करेंगे, तो यहाँ काल के अवसर काल करके आप बलिचंचा राजधानी में उत्पन्न होंगे और वहाँ उत्पन्न होकर हमारे इन्द्र बनेंगे, तथा हमारे साथ दिव्य भोग भोगते हुए आनन्द का अनुभव करेंगे।

तामली द्वारा अस्वीकार

तएणं से तामली बालतवस्सी तेहिं बलिचंचारायहाणिवत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं, देवीहिं य एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं णो आढाइ, णो परियाणेइ, तुसिणीए संचिट्ठइ तएणं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीओ य तामलिं मोरियपुत्तं दोच्चं पि तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति, जाव अम्हं च णं देवाप्पिया ! बलिचंचारायहाणी अणिंदा, जाव-ठिइपकप्पं पकरेह, जाव-दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ, तए णं से बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीओ य तामलिणा बालतवस्सिणा अणाढाइज्जमाणा, अपरियाणिज्जमाणा, जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

कठिन शब्दार्थ-तुसिणीए संचिट्ठइ-चुपचाप रहा, वुत्तेसमाणे-कहने पर, अणाढाइज्जमाणा-अनादर किये हुए, पाउब्भूया-प्रादुर्भूत-प्रकट हुए।

भावार्थ-जब बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियों ने उस तामली बाल-तपस्वी को पूर्वोक्त प्रकार से कहा, तो उसने उनकी बात का आदर नहीं किया, स्वीकार नहीं किया, परन्तु मौन रहा।

तब वे बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियों ने उस तामली बाल-तपस्वी की फिर तीन बार प्रदक्षिणा करके दूसरी बार, तीसरी बार इसी प्रकार कहा कि आप हमारे स्वामी बनने का संकल्प

करें, इत्यादि। किन्तु उस तामली बाल-तपस्वी ने उनकी बात का कुछ भी उत्तर नहीं दिया और मौन रहा। इसके पश्चात् जब तामली बालतपस्वी के द्वारा उस बलिचंचा राजधानी में रहनेवाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियों का अनादर हुआ और उनकी बात मान्य नहीं हुई, तब वे देव और देवियाँ जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में वापिस चले गये।

ईशान कल्प में उत्पत्ति

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे कप्पे अणिंदे, अपुरोहिए या वि होत्था, तए णं से तामली बालतवस्सी बहुपडिपुण्णाइं सट्ठिं वाससहस्साइं परियाणं पाउणित्ता, दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता, कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे, ईसाणवडिंसए विमाणे, उववायसभाए देवसयणिज्जंसि, देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जभागमेत्तीए ओगाहणाए ईसाणे देविंदविरहकालसमयंसि ईसाणे देविंदत्ताए उववण्णे। तए णं से ईसाणे देविंदे, देवराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तं जहा-आहारपज्जत्तीए, जाव-भासा-मणपज्जत्तीए।

कठिन शब्दार्थ-देविंदविरहकालसमयंसि-देवेन्द्र के विरहकाल में, अहुणोववन्ने-अधुनोपपन्न-तत्काल उत्पन्न हुआ।

भावार्थ-उस काल उस समय में ईशान देवलोक इन्द्र और पुरोहित

रहित था। वह तामली बालतपस्वी पूरे साठ हजार वर्ष तक तापस पर्याय का पालन करके दो महीने की संलेखना से आत्मा को संयुक्त करके एक सौ बीस भक्त अनशन का छेदन करके और काल के अवसर काल करके ईशान देवलोक के ईशानावतंसक विमान की उपपात सभा की देवशय्या-जो कि देववस्त्र से ढकी हुई है, उसमें अंगुल के असंख्येय भाग जितनी अवगाहना में ईशान देवलोक के इन्द्र के विरह काल (अनुपस्थिति) में ईशानेन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ। तत्काल उत्पन्न हुआ वह देवेन्द्र देवराज ईशान, पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त बना। अर्थात् १ आहार पर्याप्ति २ शरीर पर्याप्ति ३ इन्द्रिय पर्याप्ति ४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और ५ भाषा मनःपर्याप्ति (देवों के भाषा और मनःपर्याप्ति शामिल बंधती है इसलिये) इन पांच पर्याप्तियों से पर्याप्त बना।

असुरकुमारों द्वारा तामली के शव की कदर्थना

तएणं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं कालगयं जाणित्ता, ईसाणे य कप्पे देविंदत्ताए उववण्णं पासित्ता आसुरुत्ता, कुविया, चंडिक्किया, मिसिमिसेमाणा बलिचंचारायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति, ताए उक्किट्ठाए, जाव-जेणेव भारहे वासे, जेणेव तामलित्तीए णयरी, जेणेव तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरए तेणेव उवागच्छंति, वामे पाए सुंबेण बंधंति, बंधित्ता तिक्खुत्तो मुहे उट्ठुहंति, उट्ठुहित्ता तामलित्तीए णयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्कचच्चर चउम्मुहमहापहेसु आकड्ढ-विकड्ढिं करेमाणा, महया महया सद्देणं
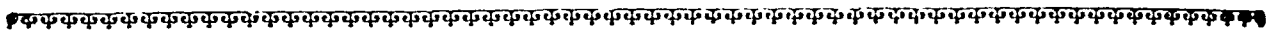
उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयासी-के स णं भो ! से तामली बालतवस्सी सयंगहियलिंगे पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए ? के स णं भो से ईसाणे कप्पे ईसाणे देविंदे देवराया ति कट्टु तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलंति, णिंदंति, खिसंति, गरिहंति, अव-मण्णंति, तज्जंति, तालेंति, परिवहेंति, पव्वहेंति आकड्ढ-विकड्ढिं करेंति, हीलेत्ता जाव-आकड्ढ-विकड्ढिं करेत्ता एगंते एडंति, जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

कठिन शब्दार्थ-आसुरुत्ता-क्रोधित हुए, कुविया-कुपित हुए, चंडिक्किया-भयंकर आकृति बनाई, मिसिमिसेमाणा-मिसमिसायमान-दाँत पीसते हुए, सुंबेणबंधइ-डोरी से बाँधा, उट्ठुहंति-थूंका, आकड्ढविकड्ढि करेमाणा-घसीटतेहुए, उग्घोसेमाणे-घोषणा करते हुए, सयंगहियलिंगे-बिना गुरु के स्वयं लिंग ग्रहण करनेवाला, अवमन्नंति-अपमान करते हैं, एगंते एडंति-एकान्त में डालदिया ।

भावार्थ-इसके बाद बलिचंचा राजधानी में रहनेवाले बहुत से असुर-कुमार देव और देवियों ने जब यह जाना कि तामली बाल-तपस्वी काल धर्म को प्राप्त हो गया है और ईशान देवलोक में देवेन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ है, तब उनको बड़ा क्रोध एवं कोप उत्पन्न हुआ । क्रोध के वश अत्यन्त कुपित हुए । तत्पश्चात् वे सब बलिचंचा राजधानी के बीचोबीच निकले यावत् उत्कृष्ट देव गति के द्वारा इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की ताम्रलिप्ति नगरी के बाहर जहाँ तामली बाल-तपस्वी का मृत शरीर था वहाँ आये । फिर तामली बाल-तपस्वी के मृत शरीर के बाएं पैर को रस्सी से बांधा । और उसके मुख में तीन बार थूका । फिर ताम्रलिप्ती नगरी के सिंघाड़े के आकार के तीन मार्गों में, चार मार्गों के चौक में (चतुर्मुख मार्गों में) एवं महा मार्गों में अर्थात् ताम्रलिप्ती नगरी के सभी प्रकार के मार्गों में उसके मृत शरीर को घसीटने लगे । और महा ध्वनि

द्वारा उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहने लगे कि "स्वयमेव तपस्वी का वेष पहन कर 'प्राणामा' प्रव्रज्या अंगीकार करनेवाला यह तामली बाल-तपस्वी हमारे सामने क्या है ? तथा ईशान देवलोक में उत्पन्न हुआ देवेन्द्र देवराज ईशान भी हमारे सामने क्या है ?" इस प्रकार कह कर उस तामली बाल तपस्वी के मृत शरीर की हीलना, निन्दा, खिंसा, गर्हा, अपमान, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना और भर्त्सना की और अपनी इच्छानुसार आड़ा टेढ़ा घसीटा। ऐसा करके उसके शरीर को एकान्त में डाल दिया और जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में वापिस चले गये।

ईशानेन्द्र का कोप

तएणं ते ईसाणकप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलिज्जमाणं, णिंदिज्जमाणं जाव-आकड्ढ-विकड्ढि कीरमाणं पासंति, पासित्ता आसुरुत्ता, जाव-मिसिमिसेमाणा जेणेव ईसाणे देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छंति, करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं, विजएणं वद्धावेंति, एवं वयासी :-एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलि-चंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पिये कालगए जाणित्ता ईसाणे कप्पे इंदत्ताए उववण्णे पासित्ता आसुरुत्ता, जाव-एगंते एडेंति, जामेव दिसिं पाउब्भूया

तामेव दिसिं पडिगया, तएणं से ईसाणे देविंदे देवराया तेसिं ईसाणकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य, देवीण य अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, णिसम्म आसुरुत्ते, जाव-मिसिमिसेमाणे तत्थेव सयणिज्जवरगये तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु बलिचंचारायहाणिं अहे, सपक्खि, सपडिदिसिं समभिलोएइ। तएणं सा बलिचंचा रायहाणी ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा अहे, सपक्खि, सपडिदिसिं- समभिलोइआ समाणी तेणं दिव्वपभावेणं इंगालब्भूया, मुम्मुरब्भूया, छारियब्भूया, तत्तकवेलगब्भूया, तत्ता समजोइब्भूया जाया या वि होत्था।

कठिन शब्दार्थ-सयणिज्जवरगये-शय्या में रहा हुआ, तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु-ललाटपर तीन रेखाएँ बनजायं ऐसी भृकुटी चढ़ाई, इंगालब्भूया-अंगारे जैसी, मुमुरब्भूया-आग के कण जैसी, छारियब्भूया-राख जैसी, तत्तकवेलगब्भूया-तपी हुई रेत जैसी, तत्तासमजोइयब्भूया-तपी हुई ज्योति के समान।

भावार्थ-इसके पश्चात् ईशान देवलोक में रहने वाले बहुत से वैमानिक देव और देवियों ने इस प्रकार देखा कि बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियाँ तामली बालतपस्वी के मृत शरीर की हीलना, निन्दा, खिसनादि कर रहे हैं और यावत् उस मृतकलेवर को अपनी इच्छा नुसार आड़ाटेढ़ा घसीट रहे हैं।

इस प्रकार देखने से उन देव और देवियों को बड़ा क्रोध आया। क्रोध से मिसमिसाट करते हुए वे देवेन्द्र देवराज ईशान के पास आकर दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर अञ्जलि करके इन्द्र को जय विजय शब्दों से बधाया, फिर वे इस प्रकार बोले-"हे देवानुप्रिय! बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले बहुत

से असुरकुमार देव और देवियां आप देवानुप्रिय को काल धर्म प्राप्त हुए एवं ईशान कल्प में इन्द्र रूप से उत्पन्न हुए देखकर बहुत कुपित हुए हैं, यावत् आपके मृत शरीर को अपनी इच्छानुसार आड़ाटेढ़ा घसीट कर एकान्त में डाल दिया है। और वे जिस दिशा से आये उसी दिशा में वापिस चले गये हैं। जब देवेन्द्र देवराज ईशान ने ईशान कल्प में रहनेवाले बहुत से वैमानिक देव और देवियों से इस बात को सुना तब वह बड़ा कुपित हुआ और क्रोध से मिसमिसाट करता हुआ देवशय्या में रहा हुआ ही वह ईशानेन्द्र, ललाट में तीन सल डालकर एवं भृकुटी चढ़ाकर बलिचंचा राजधानी की ओर एकटक दृष्टि से देखने लगा। इस प्रकार क्रोध से देखने पर उसके दिव्यप्रभाव से बलिचंचा राजधानी अंगार, अग्नि के कण, राख एवं तपी हुई बालू रेत के समान अत्यन्त तप्त होगई।

असुरों द्वारा क्षमा याचना

तएणं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तं बलिचंचारायहाणि इंगालब्भूयं, जाव-समजोइब्भूयं पासंति, पासित्ता भीया, *तत्था, तसिया, उव्विग्गा, संजायभया, सव्वओ समंता आधावेंति, परिधावेंति, अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा चिट्ठंति, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं परिकुव्वियं जाणित्ता ईसाणस्स देविंदस्स, देवरण्णो तं दिव्वं देविड्ढि, दिव्वं देवज्जुइं, दिव्वं देवाणुभागं, दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणा सव्वे सपक्खि सपडिदिसं ठिच्चा करयलपरिग्गहियं दसणहं

* टीका में ये शब्द 'उत्तत्था' और 'सुसिआ' लिखे हैं। पं. बेचरदासजी ने मूल में ये ही शब्द दिये हैं -: डोशी

सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धाविंति, एवं वयासी-अहो ! णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी, जाव-अभिसमण्णागया, तं दिव्वा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्ढी, जाव-लद्धा, पत्ता, अभिसमण्णागया, तं खामेमो देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खमंतुमरिहंतु णं देवाणुप्पिया ! णाइं भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए णं तिकट्टु एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेंति, तएणं से ईसाणे देविंदे देवराया तेहिं बलिचंचारायहाणिवत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामिए समाणे तं दिव्वं देविड्ढिं, जाव तेयलेस्सं पडिसाहरइ, तप्पभिइं च णं गोयमा ! ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं आढंति, जाव-पज्जुवासंति, ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो आणा-उववाय-वयण-णिद्देसे चिट्ठंति, एवं खलु गोयमा ! ईसाणेणं देविंदेणं, देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी जाव-अभिसमण्णागया ।

कठिन शब्दार्थ-भीया-डरे, तत्था-त्रास पाये, तसिया-शुष्क होगए, उव्विग्गा-उद्विग्न हुए, संजायभया-भय से व्याप्त, सव्वओसमंता-सभी ओर, आधावेंति परिधावेंति-दौड़ने और भागने लगे, अन्नमन्नस्स-अन्योन्य-एक दूसरे को, समतुरंगेमाणा-आलिंगन करने लगे-सोड़ में घुसने लगे, परिकुविय-कोपायमान, असहमाणा-सहन नहीं करते हुए, खमंतुमरिहंतु-क्षमा करने योग्य, भुज्जो भुज्जो-वारवार, पडिसाहरइ-वापिस खींची, गुत्ता-गुप्त, तप्पभिइं-तभी से, णिवाया-निर्वात-हवा रहित, आणा-उववाय-वयण-णिद्देसे-आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देश में,

भावार्थ-बलिचंचा राजधानी को तप्त हुई जानकर वे असुरकुमार देव और देवियाँ अत्यन्त भयभीत हुए, त्रस्त हुए, उद्विग्न हुए और भय के मारे चारों तरफ इधर उधर दौड़ने लगे, भागने लगे और एक दूसरे के पीछे छिपने लगे। जब असुरकुमार देव और देवियों को पता लगा कि ईशानेन्द्र के कुपित होने से यह हमारी राजधानी इस प्रकार तप्त बनगई है, तब वे सब ईशानेन्द्र की उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव और दिव्य तेजोलेश्या को सहन नहीं करते हुए, देवेन्द्र देवराज ईशान के ठीक सामने ऊप की ओर मुख करके दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर अञ्जलि करके ईशानेन्द्र को जय विजय शब्दों द्वारा बधाया और इस प्रकार निवेदन किया कि "हे देवानुप्रिय! आपको जो दिव्य देवऋद्धि यावत् देवप्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है, उसको हमने देखा। हे देवानुप्रिय ! हम अपनी भूल के लिये आप से क्षमा चाहते हैं। आप क्षमा प्रदान करें। आप क्षमा करने योग्य हैं। हम फिर कभी इस प्रकार की भूल नहीं करेंगे। इस प्रकार उन्होंने ईशानेन्द्र से अपने अपराध के लिये विनयपूर्वक क्षमा माँगी। उनके क्षमा माँगने पर ईशानेन्द्र ने उस दिव्य देवऋद्धि यावत् अपनी छोड़ी हुई तेजोलेश्या को वापिस खींच लिया।

हे गौतम ! तब से बलिचंचा राजधानी में रहने वाले असुरकुमार देव और देवियाँ, देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं यावत् उसकी पर्युपासना करते हैं और तभी से उनकी आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देश में रहते हैं। हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान को वह दिव्य देवऋद्धि यावत् इस प्रकार मिली है।

विवेचन-मूलपाठ में 'किं वा दच्चा, किं वा भोच्चा, किं वा किच्चा, किं वा समायरित्ता' शब्द आये हैं। इनका आशय इस प्रकार है-दच्चा = देकर अर्थात् दीन दुःखी को आहार पानी आदि देकर, भोच्चा = खाकर-अर्थात् अन्त प्रान्त (रूखा सूखा) खाकर, किच्चा = करके-तप एवं शुभ ध्यानादि करके। समायरित्ता = आचरण करके-प्रति लेखना प्रमार्जन आदि करके।

'धन' शब्द का अर्थ करते हुए यहाँ चार प्रकार का धन बतलाया गया है-गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य। गणिम-जिस चीज का गिनती से व्यापार होता है उसे 'गणिम' कहते हैं, जैसे-नारियल आदि, धरिम-तराजू में तोल कर जिस वस्तु का व्यवहार अर्थात् लेन देन होता है, उसे 'धरिम' कहते हैं। जैसे-गेहूँ, चावल, शक्कर आदि। मेय-जिस चीज का व्यवहार पायली (प्रस्थक) आदि से माप कर या हाथ, गज आदि से नाप कर होता है, उसे 'मेय' कहते हैं। जैसे कपड़ा आदि। जहाँ पर धान वगैरह पायली (प्रस्थक) आदि से माप कर लिये और दिये जाते हैं, वहाँ पर वे भी' मेय' हैं। परिच्छेद्य-गुण की परीक्षा करके जिस चीज का मूल्य निश्चित किया जाता है और तदनुसार उनका लेन देन होता है उसे 'परिच्छेद्य' कहते हैं। जैसे-रत्न आदि जवाहरात। बढ़िया वस्त्र आदि जिनके गुण की परीक्षा 'प्रधान है, वे भी परिच्छेद्य' गिने जाते हैं।

तामली गृहपति ने 'प्राणामा'●प्रव्रज्या अंगीकार की। 'प्राणामा' प्रव्रज्या का यह अर्थ है कि-जो व्यक्ति 'प्राणामा' प्रव्रज्या को अंगीकार करता है, वह जिस किसी प्राणी को जहाँ कहीं भी देखता है, वहीं उसे प्रणाम करता है।

१९ प्रश्न-ईसाणस्सणं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

१९ उत्तर-गोयमा ! साइरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

●वर्तमान समय में भी वैदिक लोग 'प्राणामा' प्रव्रज्या के व्रत को अंगीकार करते हैं। इस व्रत में दीक्षित बने हुए एक सज्जन के विषय में 'सरस्वती' नाम की मासिक पत्रिका भाग १३ अंक १ पृष्ठ १८० में इस प्रकार के समाचार छपे हैं-

"इसके बाद सब प्राणियों में भगवान् की भावना दृढ़ करने और अहंकार छोड़ने के इरादे से प्राणिमात्र को ईश्वर समझ कर आपने साष्टांग प्रणाम करना शुरू किया। जिस प्राणी को आप आगे देखते, उसी के सामने उसके पैरों पर आप जमीन पर लेट जाते। इस प्रकार ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक और गौ से लेकर गधे तक को आप साष्टांग नमस्कार करने लगे। (सरस्वती मासिक)

यहाँ पर बतलाई हुई 'प्राणामा' प्रव्रज्या और उपरि लिखित समाचार, ये दोनों समान मालूम होते हैं। यह विनयवादी मत है। ३६३ पाषण्डी मत में इनके ३२ भेद बतलाये गये हैं। सम्यग्ज्ञान के अभाव में ऐसी प्रवृत्ति की जाती है। वास्तव में तो गुण प्रकट होने पर ही आदर किया जाना चाहिए।

भावार्थ-१९ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक की कही गई है।

२० प्रश्न-ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, जाव-कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

२० उत्तर-गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव-अंतं काहिइ।

कठिन शब्दार्थ-उववज्जिहिइ-उत्पन्न होंगे, सिज्झिहिइ-सिद्ध होंगे।

भावार्थ-२० प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान, उस देवलोक की आयु पूर्ण होने पर यावत् कहाँ जाएगा और कहाँ उत्पन्न होगा ?

२० उत्तर-हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेगा।

शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के विमानों की ऊँचाई

२१ प्रश्न-सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो विमाणेहिंतो ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणा ईसिं उच्चयरा चेव, ईसिं, उण्णयतरा चेव, ईसाणस्स वा देविंदस्स, देवरण्णो विमाणेहिंतो सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणा ईसिं णीययरा चेव, ईसिं णिण्णयरा चेव ?

२१ उत्तर-हंता, गोयमा ! सक्कस्स तं चेव सव्वं णेयव्वं ।

२२ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२२ उत्तर-गोयमा ! से जहा णामए करयले सिया देसे उच्चे, देसे उण्णए, देसे णीए, देसे णिण्णे; से तेणट्ठेणं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जाव-ईसिं णिण्णयरा चेव ।

कठिन शब्दार्थ-ईसिं-ईषत्-थोड़ा सा, उच्चयरा-ऊँचे, उन्नयतरा-उन्नत, णीययतरा-नीचे, निण्णयरा-निम्न, करयले-करतल-हथेली, देसे-भाग-हिस्सा ।

भावार्थ-२१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र के विमानों से देवेन्द्र देवराज ईशान के विमान कुछ (थोड़े से) ऊँचे हैं, कुछ उन्नत हैं ? क्या देवेन्द्र देवराज ईशान के विमानों से देवेन्द्र देवराज शक्र के विमान कुछ नीचे हैं ? कुछ निम्न हैं ?

२१ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह से है । यहाँ ऊपर का सूत्रपाठ उत्तर रूप से समझना चाहिए । अर्थात् शक्रेन्द्र के विमानों से ईशानेन्द्र के विमान कुछ थोड़े से ऊँचे हैं, कुछ थोड़े से उन्नत हैं और ईशानेन्द्र के विमानों से शक्रेन्द्र के विमान कुछ थोड़े नीचे हैं, कुछ थोड़े निम्न है ।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! जैसे-हथेली का एक भाग कुछ ऊँचा और उन्नत होता है और एक भाग कुछ नीचा और निम्न होता है । इसी तरह शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के विमानों के विषय में जानना चाहिए । इसी कारण से पूर्वोक्त प्रकार से कहा जाता है ।

दोनों इन्द्रों का शिष्टाचार

२३ प्रश्न-पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स

देविंदस्स देवरण्णो अंतिअं पाउब्भवित्तए ?

२३ उत्तर-हंता, पभू।

२४ प्रश्न-से णं भंते ! किं आढायमाणे पभू, अणाढायमाणे पभू ?

२४ उत्तर-गोयमा ! आढायमाणे पभू, नो अणाढायमाणे पभू।

२५ प्रश्न-पभू णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया, सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतिअं पाउब्भवित्तए ?

२५ उत्तर-हंता, पभू।

२६ प्रश्न-से णं भंते ! किं आढायमाणे पभू, अणाढायमाणे पभू ?

२६ उत्तर-गोयमा ! आढायमाणे वि पभू, अणाढायमाणे वि पभू।

२७ प्रश्न-पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया, ईसाणं देविंदं देवरायं सपक्खिं, सपडिदिसिं समभिलोइत्तए ?

२७ उत्तर-जहा पाउब्भवणा, तहा दो वि आलावगा णेयव्वा।

२८ प्रश्न-पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया, ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए ?

२८ उत्तर-हंता, गोयमा ! पभू जहा पाउब्भवो।

कठिन शब्दार्थ-पभू-समर्थ, अंतियं-निकट-पास, पाउब्भवित्तए-प्रकट होने के लिए, हंता-हाँ, आढायमाणे-आदर करता हुआ, सपक्खिं-सपक्ष-चारों तरफ, सपडिदिसिं-सप्रतिदिश-सब तरफ, सभभिलोइत्तए-देखने के लिए, आलावगा-आलापक।

भावार्थ-२३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के पास आने में समर्थ है ?

२३ उत्तर-हाँ, गौतम ! शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र के पास आने में समर्थ है।

२४ प्रश्न-हे भगवन् ! जब शक्रेन्द्र ईशानेन्द्र के पास आता है, तो क्या ईशानेन्द्र का आदर करता हुआ आता है, या अनादर करता हुआ आता है ?

२४ उत्तर- हे गौतम ! जब शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र के पास आता है, तब वह उसका आदर करता हुआ आता है, किन्तु अनादर करता हुआ नहीं आता है।

२५ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान, देवेन्द्र देवराज शक्र के पास आने में समर्थ है ?

२५ उत्तर-हाँ, गौतम ! ईशानेन्द्र, शक्रेन्द्र के पास आने में समर्थ है।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! जब ईशानेन्द्र, शक्रेन्द्र के पास आता है, तो क्या वह शक्रेन्द्र का आदर करता हुआ आता है, या अनादर करता हुआ आता है !

२६ उत्तर-हे गौतम ! जब ईशानेन्द्र, शक्रेन्द्र के पास आता है, तब आदर करता हुआ भी आ सकता है और अनादर करता हुआ भी आ सकता है।

२७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के सपक्ष (चारों तरफ) सप्रतिदिश (सब तरफ) देखने में समर्थ है ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! जिस तरह से पास आने के सम्बन्ध में दो आलापक कहे हैं, उसी तरह से देखने के सम्बन्ध में भी दो आलापक कहने चाहिए।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के साथ आलाप संलाप-बातचीत करने में समर्थ है ?

२८ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह आलाप-संलाप-बातचीत करने में समर्थ है। जिस तरह पास आने के सम्बन्ध में दो आलापक कहे हैं, उसी तरह आलाप संलाप के विषय में भी दो आलापक कहने चाहिए ।

२९ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्की-साणाणं देविंदाणं, देवराईणं किच्चाइं, करणिज्जाइं समुप्पज्जंति ?

२९ उत्तर-हंता, अत्थि ।

३० प्रश्न-से कहमियाणिं पकरेंति ?

३० उत्तर-गोयमा ! ताहे चेवं णं से सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतिअं पाउब्भवइ, ईसाणे वा देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो अंतिअं पाउब्भवइ-इति "भो ! सक्का ! देविंदा ! देवराया ! दाहिणड्ढलोगाहिवई" ! इति "भो ! ईसाणा ! देविंदा ! देवराया ! उत्तरड्ढलोगाहिवई" । इति "भो ! इति भो !" त्ति ते अण्णमण्णस्स किच्चाइं, करणिज्जाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ।

सनत्कुमारेन्द्र की मध्यस्थता

३१ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्की-साणाणं देविंदाणं, देवराईणं विवादा समुप्पज्जंति ?

३१ उत्तर-हंता, अत्थि ।

३२ प्रश्न-से कहमियाणिं पकरेंति ?

३२ उत्तर-गोयमा ! ताहे चेव णं ते सक्की-साणा देविंदा देवरायाणो सणंकुमारं देविंदं देवरायं मणसी-करेंति, तएणं से संणकुमारे देविंदे देवराया तेहिं सक्की-साणेहिं देविंदेहिं देवराईहिं मणसी-कए समाणे खिप्पामेव सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं अंतिअं पाउब्भवइ, जं से वयइ तस्स आणा-उववाय-वयण-णिद्देसे चिट्ठन्ति ।

कठिन शब्दार्थ-आलावं संलावं-आलाप संलाप-बातचीत, किच्चाइं करणियाइं-कार्य होता है-प्रयोजन होता है। कहमिदाणिं पकरेंति-किस प्रकार करते हैं, अण्णमण्णस्स-एक दूसरे को, पच्चणुब्भवमाणा-प्रत्यनुभव-अपना काम करते हुए, विवादा-विवाद-झगड़ा, मणसीकरेंति-मन से स्मरण करते हैं, खिप्पामेव-शीघ्र ही, वयइ-कहते हैं ।

भावार्थ-२९ प्रश्न-हे भगवन् ! उन देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशान के बीच में परस्पर कोई कृत्य (प्रयोजन) करणीय (विधेय-कार्य) होता है ?

२९ उत्तर-हाँ, गौतम ! होता है ।

३० प्रश्न-हे भगवन् ! जब उन्हें कृत्य और करणीय होते हैं, तब वे किस प्रकार व्यवहार करते हैं ?

३० उत्तर-हे गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र को कार्य होता है, तब वह देवेन्द्र देवराज ईशान के पास आता है और जब देवेन्द्र देवराज ईशान को कार्य होता है, तब वह देवेन्द्र देवराज शक्र के पास आता है । उनके परस्पर सम्बोधित करने का तरीका यह है-ईशानेन्द्र पुकारता है कि-"हे दक्षिण लोकार्द्ध-पति देवेन्द्र देवराज शक्र !" शक्रेन्द्र पुकारता है कि-"हे उत्तर लोकार्द्धपति देवेन्द्र देवराज ईशान ! (यहाँ 'इति' शब्द कार्य को सूचित करने के लिए है

और 'भो' शब्द आमन्त्रणवाची है। 'इति भो! इति भो' यह उनके परस्पर सम्बोधित करने का तरीका है।) इस प्रकार सम्बोधित करके वे परस्पर अपना कार्य करते रहते हैं।

३१ प्रश्न-क्या देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशान, इन दोनों में परस्पर विवाद भी होता है?

३१ उत्तर-हाँ गौतम! उन दोनों इन्द्रों के बीच में विवाद भी होता है।

३२ प्रश्न-हे भगवन्! जब उन दोनों इन्द्रों के बीच में विवाद हो जाता है, तब वे क्या करते हैं?

३२ उत्तर-हे गौतम! जब शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र, इन दोनों के बीच में विवाद हो जाता है, तब वे दोनों, देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार का मन में स्मरण करते हैं। उनके स्मरण करते ही सनत्कुमारेन्द्र उनके पास आता है। वह आकर जो कहता है उसको वे दोनों इन्द्र मान्य करते हैं। वे दोनों इन्द्र उसकी आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देश में रहते हैं।

सनत्कुमारेन्द्र की भवसिद्धिकता

३३ प्रश्न-सणंकुमारे णं भंते! देविंदे देवराया, किं भवसिद्धिए, अभवसिद्धिए? सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी? परित्तसंसारए, अणंतसंसारए? सुलभबोहिए, दुल्लभबोहिए? आराहए, विराहए? चरिमे, अचरिमे?

३३ उत्तर-गोयमा! सणंकुमारे णं देविंदे देवराया भवसिद्धिए, नो अभवसिद्धिए। एवं सम्मदिट्ठी, परित्तसंसारए, सुलभ-

बोहिए, आराहए, चरमे-पसत्थं णेयव्वं ।

३४ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! ?

३४ उत्तर-गोयमा ! सणंकुमारे देविंदे देवराया बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं हियकामए, सुहकामए, पत्थकामए, आणुकंपिए, णिस्सेयसिए, हिय-सुह-(निस्सेयसिए निस्सेसकामए) से तेणट्ठेणं गोयमा ! सणंकुमारे णं भवसिद्धिए, जाव-नो अचरिमे ।

३५ प्रश्न-सणंकुमारस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

३५ उत्तर-गोयमा ! सत्त सागरोवमाणि ठिई पण्णत्ता ।

३६ प्रश्न-से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव-कहिं उववज्जिहिइ ?

३६ उत्तर-गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव-अंतं करेहिइ ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! ।

गाहाओ--

छट्ठ-ट्ठम मासो उ अद्धमासो वासाइं अट्ठ छम्मासा,

तीसग-कुरुदत्ताणं तव-भत्तपरिण्णा-परियाओ ।

उच्चत्त विमाणाणं पाउब्भव पेच्छणा य संलावे,
किंचि विवादुप्पत्ती सणंकुमारे य भवियत्तं ।

॥ मोया सम्मत्ता ॥

कठिन शब्दार्थ-परित्तसंसारए-संसार परिमित करनेवाला, विराहए-विराधक, चरिमे-अंतिम, पसत्थं नेयव्वं-प्रशस्त जानना चाहिए, हियकामए-हित चाहनेवाले, पत्थकामए-पथ्य चाहने वाले, अणुकंपिए-अनुकम्पा-कृपा करनेवाले, निस्सेयसिए-निःश्रेयस-मोक्ष चाहने वाले ।

भावार्थ-३३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है, या अभवसिद्धिक है ? सम्यग्दृष्टि है, या मिथ्यादृष्टि है ? परित्त संसारी (परिमित संसारी) है, या अनन्त संसारी है ? सुलभबोधि है, या दुर्लभबोधि है ? आराधक है, या विराधक है ? चरम है, या अचरम है ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं । इसी तरह वह सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि नहीं, परित्तसंसारी है, अनन्त संसारी नहीं, सुलभबोधि है, दुर्लभबोधि नहीं, आराधक है, विराधक नहीं, चरम है, अचरम नहीं। अर्थात् इस सम्बन्ध में सब प्रशस्त पद ग्रहण करने चाहिए ।

३४ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३४ उत्तर-हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, बहुत साधु, बहुत साध्वी, बहुत श्रावक, बहुत श्राविका, इन सब का हितकामी (हितेच्छु-हित चाहने वाला), सुखकामी (सुखेच्छु-सुख चाहने वाला), पथ्यकामी (पथ्येच्छु-पथ्य का चाहने वाला), अनुकम्पक (अनुकम्पा करने वाला), निःश्रेयसकामी (निःश्रेयस् अर्थात् कल्याण चाहने वाला) है। हित, सुख और निःश्रेयस् का कामी (चाहने वाला) है । इस कारण हे गौतम ! सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज भव-

सिद्धिक है यावत् चरम है, किन्तु अचरम नहीं है।

३५ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

३५ उत्तर-हे गौतम ! सनत्कुमार देवेन्द्र की स्थिति सात सागरोपम की कही गई है।

३६ प्रश्न-हे भगवन् ! सनत्कुमार देवेन्द्र की आयु पूर्ण होने पर वह वहाँ से चव कर यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ?

३६ उत्तर-हे गौतम ! सनत्कुमार वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

दो गाथाओं का अर्थ इस प्रकार है-तिष्यक श्रमण का तप छठ छठ (निरन्तर बेला बेला) था और एक मास का अनशन था। कुरुदत्तपुत्र श्रमण का तप अट्ठम अट्ठम (निरन्तर तेला तेला) था और अर्द्धमास (पन्द्रह दिन) का अनशन था। तिष्यक श्रमण की दीक्षापर्याय आठ वर्ष की थी और कुरुदत्त पुत्र की दीक्षापर्याय छह मास की थी। यह विषय इस उद्देशक में आया है। इसके अतिरिक्त दूसरे विषय भी आये हैं। वे इस प्रकार हैं-विमानों की ऊंचाई, एक इन्द्र का दूसरे इन्द्र के पास आना, उन्हें देखना, परस्पर आलाप संलाप (बातचीत) करना, उनका कार्य, विवाद की उत्पत्ति, उसका निपटारा, सनत्कुमार का भवसिद्धिकपन, इत्यादि विषयों का वर्णन इस उद्देशक में किया गया है।

॥ * मोका समाप्त ॥

विवेचन-शक्रेन्द्र के विमानों से ईशानेन्द्र के विमान कुछ उच्चत्तर और उन्नततर

* इस उद्देशक में बतलाये गये विषयों का वर्णन भगवान् ने 'मोका' नगरी में किया था। इसलिए इस उद्देशक का नाम 'मोआ उद्देसो'-मोका उद्देशक रखा गया है।

हैं। अर्थात् प्रमाण की अपेक्षा ऊंचे हैं और गुण की अपेक्षा उन्नत हैं। अथवा प्रासाद की अपेक्षा ऊंचे हैं और पीठ (शिखर) की अपेक्षा उन्नत हैं।

शंका-पहले और दूसरे देवलोक के विमानों की ऊँचाई के विषय में कहा है-

पंचसय उच्चत्तेणं आइमकप्पेसु होंति विमाणा।
एक्केक्कवुड्ढि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य॥

अर्थात्-पहले और दूसरे देवलोक में विमानों की ऊँचाई पांच पांच सौ योजन है। तीसरे चौथे में छह सौ, पांचवे छठे में सात सौ, सातवें आठवें में आठ सौ और नवें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में नौ सौ नौ सौ योजन ऊँचे विमान हैं। नवग्रैवेयक में एक हजार योजन और पांच अनुत्तर विमानों में ग्यारह सौ योजन ऊँचे विमान हैं।

यहाँ पर शंका यह होती है कि पहले और दूसरे देवलोक के विमानों की ऊँचाई पांच सौ पांच सौ योजन की बतलाई गई है, तो फिर यहाँ यह कैसे कहा गया है कि पहले देवलोक के विमानों से दूसरे देवलोक के विमान कुछ ऊँचे और उन्नत हैं।

समाधान-इस शंका का समाधान यह है कि-पांच सौ योजन की ऊँचाई का कथन सामान्य की अपेक्षा है और कुछ ऊँचे और कुछ उन्नत का कथन विशेष की अपेक्षा है। इसलिए दूसरे देवलोक के विमान चार छह अंगुल ऊँचे एवं उन्नत हों, तो भी किसी प्रकार का विरोध नहीं। सामान्य रूप से विमानों की ऊँचाई पांच सौ योजन ही बतलाई गई है। अर्थात् पांच सौ योजन की ऊँचाई का कथन सामान्य कथन है और कुछ ऊँचे और कुछ उन्नत का कथन विशेष कथन है। ये दोनों कथन भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से (सामान्य अपेक्षा से और विशेष अपेक्षा से) कहे गये होने के कारण दोनों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

'केरिसी विउव्वणा'-विकुर्वणा कितने प्रकार की है?' इस विषय का सारा वर्णन भगवान् ने 'मोका' नाम की नगरी में फरमाया था। इसलिए यह प्रथम उद्देशक 'मोआ उद्देस' 'मोका उद्देशक' इस नाम से कहा जाता है।

'सेवं भंते'! सेवं भंते!! हे भगवन्! यह इसी प्रकार है जैसा कि आप फरमाते हैं।

॥ तीसरे शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३—उद्देशक २

असुरकुमार देवों के स्थान

१ प्रश्न–तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था जाव–परिसा पज्जुवासइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए, चमरंसि सीहासणंसि, चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव–णट्टविहिं उवदंसेत्ता, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। 'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणे भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

१ उत्तर–गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे एवं जाव–अहेसत्तमाए पुढवीए, सोहम्मस्स कप्पस्स अहे जाव।

२ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! ईसिप्पब्भाराए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

२ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे।

३ प्रश्न–से कहिं खाइ णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

३ उत्तर–गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-

जोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एवं असुरकुमारदेववत्तव्वया, जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

कठिन शब्दार्थ-अहे-नीचे, इमीसे-इस ।

भावार्थ-१ प्रश्न-उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी । उस काल उस समय में चौसठ हजार सामानिक देवों से परिवृत्त (घिरे हुए) और चमर नामक सिंहासन पर बैठे हुए चमरेन्द्र ने भगवान् को देख कर यावत् नाटच-विधि बतलाकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापिस चला गया ।

हे भगवन् ! ऐसा कह कर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! क्या असुर-कुमार देव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे रहते हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् असुरकुमार देव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे नहीं रहते हैं, यावत् सातवीं पृथ्वी के नीचे भी नहीं रहते हैं । इसी तरह सौधर्म देवलोक के नीचे यावत् दूसरे सभी देव-लोकों के नीचे भी असुरकुमार देव नहीं रहते हैं ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या ईषत्प्रागभारा पृथ्वी के नीचे असुरकुमार देव रहते हैं ?

२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् ईषत्प्रागभारा पृथ्वी के नीचे भी असुरकुमार देव नहीं रहते हैं ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! तब ऐसा कौनसा प्रसिद्ध स्थान है जहाँ असुर-कुमार देव निवास करते हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई (जाड़ाई) एक लाख अस्सी हजार योजन की है । इसके बीच में असुरकुमार देव रहते हैं । (यहाँ पर असुरकुमार सम्बन्धी सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए । यावत् वे दिव्य भोग भोगते हुए विचरते हैं ।)

विवेचन-पहले उद्देशक में देवों की विकुर्वणा शक्ति के विषय में कहा गया है। दूसरे उद्देशक में भी असुरकुमार आदि देवों की गमनशक्ति के विषय में कहा गया है।

असुरकुमार आदि भवनवासी देव कहाँ रहते हैं ? इसके लिये कहा गया है;-

'उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चउसट्ठिं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति अक्खायं"।

अर्थात्-रत्नप्रभा का पृथ्वीपिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन है। उसमें से ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन के भाग में असुरकुमार देवों के चौसठ लाख भवनावास हैं।

असुरकुमारों का गमन सामर्थ्य

४ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं अहेगइ विसए ?

४ उत्तर-हंता, अत्थि।

५ प्रश्न-केवइयं च णं पभू ते असुरकुमाराणं देवाणं अहेगइ विसए पण्णत्ते ?

५ उत्तर-गोयमा ! जाव-अहे सत्तमाए पुढवीए, तच्चं पुण पुढविं गया य, गमिस्संति य।

६ प्रश्न-किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य, गमिस्संति य ?

६ उत्तर-गोयमा ! पुव्ववेरियस्स वा वेदणउदीरणयाए, पुव्व-

संगइस्स वा वेदणउवसामणयाए, एवं खलु असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य, गमिस्संति य।

कठिन शब्दार्थ-अहेगइविसए-नीचे जाने का विषय-शक्ति, केवतियं-कितनी, किंपत्तियं-किस कारण से, पुव्ववेरिस्स-पूर्व शत्रु का, पुव्वसंगइयस्स-पूर्व संगतिक-मित्र का, वेदणउदीरणयाए-दुःख देने के लिए, वेदणउवसामणयाए-दुःख का शमन करने के लिए-सुखी करने के लिए।

भावार्थ-४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असुरकुमारों का सामर्थ्य अपने स्थान से नीचे जाने का है ?

४ उत्तर-हाँ गौतम ! उनमें अपने स्थान से नीचे जाने का सामर्थ्य है।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! वे असुरकुमार, अपने स्थान से कितने नीचे जा सकते हैं ?

५ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार, सातवीं पृथ्वी तक नीचे जाने की शक्ति वाले हैं, परंतु वे वहाँ तक कभी गये नहीं, जाते नहीं और जायेंगे भी नहीं, किंतु तीसरी पृथ्वी तक गये हैं, जाते हैं और जावेंगे।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार देव, तीसरी पृथ्वी तक गये, जाते हैं और जायेंगे, इसका क्या कारण है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार देव अपने पूर्व शत्रु को दुःख देने के लिए और पूर्व मित्र का दुःख दूर कर सुखी बनाने के लिए तीसरी पृथ्वी तक गये हैं, जाते हैं और जायेंगे।

७ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियगइ-विसए पण्णत्ते ?

७ उत्तर-हंता, अत्थि।

८ प्रश्न- केवइयं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियं

गइविसए पण्णत्ते ?

८ उत्तर-गोयमा ! जाव-असंखेज्जादीव-समुद्दा, णंदिस्सरवरं पुण दीवं गया य, गमिस्संति य ।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव, तिरछी गति करने में समर्थ हैं ?

७ उत्तर-हाँ, गौतम ! असुरकुमार देव, तिरछी गति करने में समर्थ हैं ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से कितनी दूर तक तिरछी गति करने में समर्थ हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से यावत् असंख्य द्वीप समुद्रों तक तिरछी गति करने में समर्थ हैं, किंतु वे नन्दीश्वर द्वीप तक गये हैं, जाते हैं, और जाएँगे ।

असुरकुमारों के नन्दीश्वर गमन का कारण

९ प्रश्न-किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा णंदिस्सरवरं दीवं गया य, गमिस्संति य ?

९ उत्तर-गोयमा ! जे इमे अरिहंता भगवंता एएसि णं जम्मण-महेसु वा, णिक्खमणमहेसु वा, णाणुप्पायमहिमासु वा, परिणिव्वाण-महिमासु वा, एवं खलु असुरकुमारा देवा णंदीसरवरं दीवं गया य, गमिस्संति य ।

कठिन शब्दार्थ-नंदीसरवरं-नन्दीश्वर द्वीप को, जम्मणमहेसु-जन्म महोत्सव पर, निक्खमणमहेसु-निष्क्रमण-संसार त्याग कर प्रव्रज्या लेते समय होने वाले महोत्सव पर, णाणुप्पायमहिमासु-केवलज्ञान उत्पन्न होने पर महिमा करने, परिनिव्वाणमहिमासु-मोक्ष गमन पर महिमा करने ।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार देव नन्दीश्वर द्वीप तक गये हैं, जाते हैं और जायेंगे। इसका क्या कारण है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! अरिहंत भगवंतों के जन्म महोत्सव में, निष्क्रमण (दीक्षा) महोत्सव में, केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सव में और परिनिर्वाण महोत्सव में असुरकुमार देव, नन्दीश्वर द्वीप में गये हैं, जाते हैं और जायेंगे। अरिहन्त भगवन्तों के जन्म महोत्सव आदि असुरकुमार देवों के नन्दीश्वर द्वीप जाने में कारण है।

१० प्रश्न-अत्थि णं असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गइविसए ?

१० उत्तर-हंता, अत्थि।

११ प्रश्न-केवइयं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गइविसए ?

११ उत्तर-गोयमा ! जावऽच्चुए कप्पे, सोहम्मं पुण कप्पं गया य, गमिस्संति य।

कठिन शब्दार्थ-अच्चुए कप्पे-अच्युत कल्प-बारहवां देवलोक।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव, अपने स्थान से ऊर्ध्व (ऊँची) गति करने में समर्थ हैं ?

१० उत्तर-हाँ, गौतम ! वे अपने स्थान से ऊर्ध्व गति करने में समर्थ हैं।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से कितने ऊँचे जाने में समर्थ हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से यावत् अच्युत कल्प तक ऊपर जाने में समर्थ हैं। यह उनकी ऊंचे जाने की शक्ति मात्र है, किन्तु वे वहाँ तक कभी गये नहीं, किंतु सौधर्मकल्प तक वे गये हैं, जाते हैं और जावेंगे।

असुरकुमारों के सौधर्मकल्प में जाने का कारण

१२ प्रश्न-किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गया य, गमिस्संति य ?

१२ उत्तर-गोयमा ! तेसि णं देवाणं भवपच्चइयवेराणुबंधे, ते णं देवा विउव्वेमाणा, परियारेमाणा, वा आयरक्खे देवे वित्तासेंति, अहालहुसगाइं रयणाइं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमंति ।

१३ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं अहालहुसगाइं रयणाइं ?

१३ उत्तर-हंता, अत्थि ।

१४ प्रश्न-से कहमियाणिं पकरेंति ?

१४ उत्तर-तओ से पच्छा कायं पव्वहंति ।

कठिन शब्दार्थ-भवपच्चइयवेराणुबंधे-भवप्रत्यय वेरानुबन्ध से (जाति गत वैर से) आयरक्खेदेवे-आत्म रक्षक देव, वित्तासेंति-त्रास देते हैं, अहालहुसगाइं-छोटे छोटे, एगंतमंतं-एकान्त में, कहमियाणिं पकरेंति-क्या करते हैं, कायं-पव्वहंति-शरीर पर व्यथा भोगते हैं ।

भावार्थ-१२ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार देव, ऊपर सौधर्म देवलोक तक गये हैं, जाते हैं और जायेंगे, इसका क्या कारण है ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! क्या असुरकुमार देवों का उन वैमानिक देवों के साथ भवप्रत्ययिक वैर (जन्म से ही वैरानुबन्ध) है, इसलिए वैक्रिय रूप बनाते हुए तथा दूसरों की देवियों के साथ भोग भोगते हुए वे असुरकुमार देव, उन आत्मरक्षक देवों को त्रास पहुँचाते हैं तथा यथोचित छोटे छोटे रत्नों को लेकर (चुरा

कर) एकान्त स्थान में भाग जाते हैं।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या उन वैमानिक देवों के पास यथोचित छोटे छोटे रत्न होते हैं ?

१३ उत्तर-हाँ, गौतम ! उन वैमानिक देवों के पास यथोचित छोटे छोटे रत्न होते हैं।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! जब वे असुरकुमार देव, वैमानिक देवों के छोटे छोटे रत्न चुरा कर ले जाते हैं, तो वैमानिक देव उनका क्या करते हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! जब असुरकुमार देव, वैमानिक देवों के रत्न चुरा कर भाग जाते हैं, तब वे वैमानिक देव, असुरकुमारों को शारीरिक पीड़ा पहुँचाते हैं अर्थात् प्रहारों के द्वारा उनको पीटते हैं।

विवेचन-जब वे असुरकुमार देव, वैमानिक देवों के रत्नों को चुराकर एकान्त प्रदेश में भाग जाते हैं, तब वैमानिक देव, उन रत्न चुराने वाले असुरकुमार देवों के शरीर पर प्रहार करते हैं और इस प्रकार वे उन्हें पीड़ा पहुंचाते हैं। उस मार की वेदना कम से कम अन्तर्मुहूर्त्त तक और अधिक से अधिक छह महीने तक रहती है।

१५ प्रश्न-पभू णं भंते ! असुरकुमारा देवा तत्थ गया चेव समाणा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए।

१५ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं तओ पडिनियत्तंति, तओ पडिनियत्तित्ता इहमागच्छंति, आगच्छित्ता जइ णं ताओ अच्छ-राओ आढायंति परियाणंति, पभू णं ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए, अह णं ताओ अच्छराओ णो आढायंति, णो परियाणंति, णो णं पभू

ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए; एवं खलु गोयमा! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गया य, गमिस्संति य।

कठिन शब्दार्थ-अच्छराहिं सद्धिं-अप्सरा के साथ, पडिनियत्तंति-पिछे फिरकर।

भावार्थ-१५ प्रश्न-हे भगवन्! ऊपर (सौधर्म देवलोक में) गये हुए वे असुरकुमार देव, क्या वहाँ रही हुई अप्सराओं के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग भोगने में समर्थ हैं? अर्थात् वहाँ भोग, भोग सकते हैं?

१५ उत्तर-हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वे वहाँ उन अप्सराओं के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग नहीं भोग सकते हैं, किन्तु वे वहाँ से वापिस लौटते हैं और अपने स्थान पर आते हैं। यदि कदाचित् वे अप्सराएँ उनका आदर करें और उन्हें स्वामी रूप से स्वीकार करें, तो वे असुरकुमार देव, उन वैमानिक अप्सराओं के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग, भोग सकते हैं। परन्तु यदि वे अप्सराएँ उनका आदर नहीं करें और उन्हें स्वामी रूप से स्वीकार नहीं करें,तो वे असुरकुमार देव,उन वैमानिक अप्सराओं के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग नहीं भोग सकते हैं। हे गौतम! इस कारण से असुरकुमार देव सौधर्म कल्प तक गये हैं, जाते हैं, और जावेंगे।

आश्चर्य कारक

१६ प्रश्न-केवइयकालस्स णं भंते! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति, जाव-सोहम्मं कप्पं गया य, गमिस्संति य?

१६ उत्तर-गोयमा! अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं, अणंताहिं अवसप्पिणीहिं समइक्कंताहिं, अत्थि णं एस भावे लोयच्छेरयभूए

समुप्पज्जइ, जं णं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति, जाव-सोहम्मो कप्पो।

१७ प्रश्न-किं णिस्साए णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति, जाव-सोहम्मो कप्पो ?

१७ उत्तर-गोयमा ! से जहा नामए इह सबरा इ वा, बब्बरा इ वा, टंकणा इ वा, भुत्तुआ इ वा, पण्हया (पल्हया) इ वा, पुलिंदा इ वा एगं महं रण्णं वा, गड्डं वा, खड्डं वा, दुग्गं वा, दरिं वा, विसमं वा, पव्वयं वा णीसाए सुमहल्लमवि आसबलं वा, हत्थिबलं वा, जोहबलं वा, धणुबलं वा, आगलेंति, एवामेव असुरकुमारा वि देवा णण्णत्थ अरिहंते वा, अरिहंतचेइयाणि वा, अणगारे वा भावियप्पणो णिस्साए उड्ढं उप्पयंति, जाव-सोहम्मो कप्पो।

कठिन शब्दार्थ-उप्पयंति-ऊँचे उछलते हैं, गमिस्संति-जावेंगे, समइक्कंताहिं-बीत जाने के बाद, लोयच्छेरयभूए-लोक में आश्चर्यकारक, णिस्साए-निश्रा-आश्रय लेकर, रण्णं-अटवी-जंगल, दुग्गं-जलदुर्ग, दरिं-स्थल दुर्ग-पर्वत कन्दरा, सुमहल्लवि-अति विशाल, आसबलं-अश्व-बल, जोहबलं-योद्धाओं का बल, आगलेंति-अकुलाते हैं, थकाते हैं, णण्णत्थ-नान्यत्र-अन्य कहीं नहीं-निश्चित्त रूप से।

भावार्थ-१६ प्रश्न-हे भगवन् ! कितने समय में अर्थात् कितना समय बीतने पर असुरकुमार देव उत्पतित होते हैं अर्थात् सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ? गये हैं और जावेंगे ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी व्यतीत होने के पश्चात् लोक में आश्चर्यजनक यह समाचार सुना जाता है कि असुरकुमार देव ऊपर जाते हैं यावत् सौधर्म कल्प तक जाते हैं।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार देव, किस की निश्रा (आश्रय) लेकर सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार *शबर, बब्बर, ढंकण, भुत्तुअ, पण्हय और पुलिंद जाति के मनुष्य किसी घने जंगल, खाई, जलदुर्ग, गुफा या सघन वृक्षपुंज का आश्रय लेकर, एक सुव्यवस्थित विशाल अश्ववाहिनी, गजवाहिनी, पदाति और धनुर्धारी मनुष्यों की सेना, इन सब सेनाओं को पराजित करने का साहस करते हैं, इसी प्रकार असुरकुमार देव भी अरिहंत, अरिहंत-चैत्य तथा भावितात्मा अनगारों की निश्रा लेकर सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं, किन्तु वे बिना निश्रा के ऊपर नहीं जा सकते हैं ।

विवेचन-जिस प्रकार शबर बर्बर आदि अनार्य जाति के लोग पर्वत की गुफा, विषम स्थान आदि का आश्रय लेकर, हाथी, घोड़ा पैदल आदि से युक्त सेना को पराजित करने का साहस करते हैं, किन्तु किसी का आश्रय लिये बिना वे ऐसा साहस नहीं कर सकते, इसी तरह असुरकुमार देव भी अरिहन्त भगवान् का, अरिहन्त-चैत्यों का अर्थात् छद्मस्थावस्था में रहे हुए तीर्थङ्कर भगवान् का अथवा भावितात्मा अनगार का आश्रय लेकर ही ऊपर जा सकते हैं, आश्रय लिये बिना ऊपर नहीं जा सकते हैं ।

१८ प्रश्न-सव्वे वि णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति, जाव-सोहम्मो कप्पो ?

१८ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, महिड्ढिया णं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति, जाव-सोहम्मो कप्पो ।

१९ प्रश्न-एस वि णं भंते ! चमरे असुरिंदे, असुरकुमारराया उड्ढं उप्पइयपुव्विं जाव-सोहम्मो कप्पो ?

१९ उत्तर-हंता, गोयमा !

*शब्बर, बब्बर आदि उस समय की अनार्य जातियों के नाम हैं ।

२० प्रश्न-अहो णं भंते ! चमरे, असुरिंदे, असुरकुमारराया महिड्ढिए, महज्जुईए, जाव कहिं पविट्ठा ?

२० उत्तर-कूडागारसालादिट्ठंतो भाणियव्वो ।

कठिन शब्दार्थ-उप्पइअपुव्वि-पहले ऊँचा गया था ? दिट्ठंतो-दृष्टान्त ।

भावार्थ-१८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सभी असुरकुमार देव, सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् सभी असुरकुमार देव ऊपर नहीं जाते हैं, किन्तु महाऋद्धि वाले असुरकुमार देव ही यावत् सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ।

१९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या यह असुरेन्द्र असुरराज चमर भी पहले किसी समय ऊपर यावत् सौधर्म कल्प तक गया था ?

१९ उत्तर-हाँ, गौतम ! गया था।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! आश्चर्य है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है, ऐसी महाद्युति वाला है, तो हे भगवन् ! वह दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देव प्रभाव कहाँ गया ? कहाँ प्रविष्ट हुआ ?

२० उत्तर-हे गौतम ! पूर्व कथितानुसार यहाँ पर भी कूटाकारशाला का दृष्टान्त समझना चाहिए। यावत् वह दिव्य देवप्रभाव, कूटाकारशाला के दृष्टान्तानुसार चमरेन्द्र के शरीर में गया और शरीर में ही प्रविष्ट हो गया ।

चमरेन्द्र का पूर्व भव

२१ प्रश्न-चमरेणं भंते ! असुरिंदेणं असुररण्णा सा दिव्वा देविड्ढी, तं चेव जाव-किण्णा लद्धा, पत्ता, अभिसमण्णागया ?

२१ उत्तर-एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले बेभेले णामं सण्णिवेसे होत्था, वण्णओ। तत्थ णं बेभेले सण्णिवेसे पूरणे नामं गाहावई परिवसइ-अड्ढे, दित्ते, जहा तामलिस्स वत्तव्वया तहा णेयव्वा, णवरं-चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहं करेत्ता, जाव-विपुलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं जाव-सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहं गहाय मुंडे भवित्ता दाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए वि य णं समाणे तं चेव जाव-आयावणभूमीओ पच्चोरुहित्ता सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहं गहाय बेभेले सण्णिवेसे उच्च-णीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडेत्ता, जं मे पढमे पुडए पडइ कप्पइ मे तं पंथे पहियाणं दलइत्तए, जं मे दोच्चे पुडए पडइ कप्पइ मे तं काग-सुणयाणं दलइत्तए, जं मे तच्चे पुडए पडइ कप्पइ मे तं मच्छ-कच्छभाणं दलइत्तए,जं मे चउत्थे पुडए पडइ कप्पइ मे तं अप्पणा आहारेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए तं चेव णिरवसेसं जाव-जं मे चउत्थे पुडए पडइ तं अप्पणा आहारं आहारेइ। तएणं से पूरणे बालतवस्सी तेणं ओरालेणं, विउलेणं, पयत्तेणं पग्गहिएणं, बालतवोकम्मेणं तं चेव जाव-बेभेलस्स सण्णिवेसस्स मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता पाउय-कुंडियमाईयं उवगरणं, चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहं एगंतमंते

एडेइ, एडित्ता वेभेलस्स सण्णिवेसस्स दाहिणपुरत्थिमे दिसीभागे अद्धणियत्तणियमंडलं आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसिए, भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगमणं णिवण्णे।

कठिन शब्दार्थ–चउपुडयं–चार पुट–चार खानावाला दाणामा–'दानामा' नामक एक तापस प्रव्रज्या, पहियाणं–पथिक, काग सुणयाणं--कौए और कुत्ते।

भावार्थ–२१ प्रश्न–हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देवऋद्धि यावत् किस प्रकार लब्ध हुई–मिली, प्राप्त हुई और अभिसमन्वागत हुई–सम्मुख आई?

२१–उत्तर हे गौतम! उस काल उस समय में इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में 'बेभेल' नामक सन्निवेश था। वहाँ 'पूरण' नाम का एक गृहपति रहता था। वह आढ्य और दीप्त था। (उसका सब वर्णन तामली की तरह जानना चाहिए।) उसने भी समय आने पर किसी समय तामली के समान विचार कर कुटुंब का सारा भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को संभला दिया। फिर चार खण्ड वाला लकड़ी का पात्र लेकर, मुण्डित होकर 'दानामा' नामक प्रव्रज्या अंगीकार की। (यहाँ सारा वर्णन पहले की तरह समझना चाहिए), यावत् बेले के पारणे के दिन वह आतापना की भूमि से नीचे उतरा। स्वयं लकड़ी का चार खण्ड वाला पात्र लेकर 'बेभेल' नाम के सन्निवेश में ऊंच नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि से भिक्षा के लिये फिरा और भिक्षा के चार विभाग किये। पहले खण्ड में जो भिक्षा आवे वह मार्ग में मिलने वाले पथिकों को बाँट दी जाय, किंतु उसमें से स्वयं कुछ नहीं खाना। दूसरे खण्ड में जो भिक्षा आवे वह कौए और कुत्तों को खिला दी जाय और तीसरे खण्ड में जो भिक्षा आवे वह मछलियों और कछुओं को खिला दी जाय और चौथे खण्ड में जो भिक्षा आवे वह स्वयं आहार करना। पारणे के दिन मिली हुई भिक्षा का इस प्रकार विभाग करके वह पूरण बाल तपस्वी विचरता था।

वह पूरण बाल तपस्वी उस उदार, विपुल प्रदत्त और प्रगृहीत बाल तप कर्म के द्वारा शुष्क रुक्ष हो गया (यहाँ सब वर्णन पहले की तरह जानना चाहिए)। वह भी बेभेल सन्निवेश के बीचोबीच होकर निकला, निकल कर पादुका (खड़ाऊ) और कुण्डी आदि उपकरणों को तथा चार खण्ड वाले लकड़ी के पात्र को एकान्त में रख दिया। फिर बेभेल सन्निवेश के अग्निकोण में अर्द्ध निर्वर्तनिक मण्डल को साफ किया। फिर संलेखना झूषणा से अपनी आत्मा को युक्त करके, आहार पानी का त्याग करके वह पूरण बाल-तपस्वी 'पादपोपगमन' अनशन स्वीकार किया।

विवेचन–'दानामा' प्रव्रज्या उसको कहते हैं जिसमें दान की प्रधानता होती है। 'पूरण' तापस ने इस प्रव्रज्या को अंगीकार किया था। उसने चार खण्डवाला लकड़ी का पात्र ग्रहण किया था। उसके तीन खण्डों में आये हुए आहार का वह दान कर देता था, केवल चौथे खण्ड में आये हुए आहार को वह स्वयं भोगता था। जब पूरण ने देखा कि अब मेरा शरीर शुष्क, अशक्त और निर्बल हो गया है, तो वह धीरे धीरे बेभेल सन्निवेश के बाहर गया और पादपोपगमन अनशन कर लिया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा ! छउमत्थकालियाए एक्कारसवासपरियाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दुइज्जमाणे जेणेव सुंसुमारपुरे णयरे जेणेव असोयवणसंडे उज्जाणे, जेणेव असोयवरपायवे, जेणेव पुढवीसिलापट्टओ तेणेव उवागच्छामि, असोगवरपायवस्स हेट्ठा पुढवीसिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं परिगिण्हामि, दो वि पाए साहट्टु वग्घारियपाणी, एगपोग्गलणिविट्ठदिट्ठी, अणिमिसणयणे ईसिंपब्भारगएणं काएणं, अहापणिहिएहिं गत्तेहिं, सव्वि-

देएहिं गुत्ते एगराइयं महापडिमं उपसंपज्जेत्ता णं विहरामि।
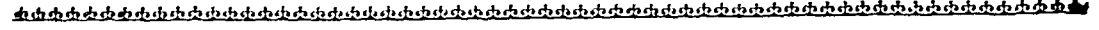
कठिन शब्दार्थ-असोयवरपायवस्स-अशोक का उत्तम वृक्ष, साहट्टु-संकुचित करके ग्घारियपाणी-दोनों हाथों को नीचे की तरफ लम्बा करके, एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठिए-एक द्गल पर दृष्टि स्थिर रखकर, अणिमिसणयणे-आँखों को नहीं टमकाते हुए, ईसिपब्भार-'एणं काएणं-शरीर के अग्रभाग को थोड़ा आगे झुकाकर, अहापणिहिए गत्तेहिं-यथास्थित ात्रों से ।

भावार्थ-(अब श्रमण भगवान् महावीरस्वामी अपनी हकीकत कहते हैं) -हे गौतम! उस काल उस समय मैं छद्मस्थ अवस्था में था। मुझे दीक्षा लिये ;ए ग्यारह वर्ष हुए थे। उस समय मैं निरन्तर छट्ठ छट्ठ अर्थात बेले बेले की तपस्या करता हुआ, तप संयम से आत्मा को भावित करता हुआ पूर्वानुपूर्वी से विचरता हुआ, ग्रामानुग्राम चलता हुआ सुंसुमारपुर नगर के अशोक वनखण्ड उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट के पास आया। वहाँ आकर मैंने उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक के ऊपर अट्ठम अर्थात् तेले की तपस्या स्वीकार करके, दोनों पाव कुछ संकुचित करके, हाथों को नीचे की तरफ लम्बा करके, सिर्फ एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके, आखों की पलकें न टमकाते हुए, शरीर के अग्रभाग को कुछ झुका कर, सर्व इन्द्रियों को गुप्त करके एकरात्रिकी महाप्रतिमा को अंगीकार कर ध्यानस्थ रहा।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरचंचा रायहाणी अणिंदा, अपुरोहिया या वि होत्था। तएणं से पूरणे बालतवस्सी बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं परियाणं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए उववायसभाए जाव-इंदत्ताए उववण्णे।

भावार्थ-उस काल उस समय में चमरचञ्चा राजधानी इन्द्र और पुरोहित रहित थी। वह 'पूरण' नाम का बाल-तपस्वी पूरे बारह वर्ष तक तापस पर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना से आत्मा को सेवित करके, साठ भक्त तक अनशन रख कर काल के अवसर काल करके चमरचञ्चा राजधानी की उपपातसभा में इन्द्र के रूप से उत्पन्न हुआ।

चमरेन्द्र का उत्पात

तएणं से चमरे असुरिंदे, असुरराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा-आहारपज्जत्तीए, जाव-भास-मणपज्जत्तीए। तएणं से चमरे असुरिंदे, असुरराया पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गए समाणे उड्ढं वीससाए ओहिणा आभोएइ जाव-सोहम्मो कप्पो, पासइ य तत्थ सक्कं देविंदं देवरायं, मघवं, पागसासणं, सयक्कउं, सहस्सक्खं, वज्जपाणिं, पुरंदरं, जाव-दस दिसाओ उज्जोवेमाणं, पभासेमाणं सोहम्मे कप्पे सोहम्मे वडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि, जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणं पासइ, इमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-के स णं एस अपत्थियपत्थए, दुरंतपंतलक्खणे, हिरिसिरिपरिवज्जिए, हीणपुण्णचाउद्दसे जं णं ममं इमाए एयारूवाए दिव्वाए देविड्ढीए, जाव-दिव्वे देवाणुभावे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए उप्पिं अप्पुस्सुए दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, एवं संपेहेइ

संपेहित्ता सामाणियपरिसोववण्णए देवे सद्दावेइ, एवं वयासी-के स णं एस देवाणुप्पिया ! अपत्थियपत्थए, जाव-भुंजमाणे विहरइ ? तएणं ते सामाणियपरिसोववण्णगा देवा चमरेणं असुरिंदेणं असुर-रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव-हयहियया करयलपरिग्ग-हियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया ! सक्के देविंदे देवराया जाव-विहरइ ।

कठिन शब्दार्थ-विससाए-स्वाभाविकरूप से, आभोइए-उपयोग लगाकर-जानकर, मघवं-मघवन्, पाकसासणं-पाकशासन, सयक्कउं-शतक्रतु, सहस्सक्खं-सहस्राक्ष-हजार आंख वाला, वज्जपाणिं-वज्रपाणी-हाथ में वज्र रखने वाला, पुरंदरं-पुरन्दर, अपत्थियपत्थए-मृत्यु को चाहने वाला, दुरंतपंतलक्खणे-बुरे लक्षणवाला, हरिसिरिपरिवज्जिए-लज्जा और शोभा से रहित, हीणपुण्णचाउद्दसे-अपूर्ण चतुर्दशी के दिन जन्मा हुआ, अप्पुस्सुए-घबराहट रहित, हयहियया-हृत हृदयवाले ।

भावार्थ-तत्काल उत्पन्न हुआ वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त बना । वे पांच पर्याप्तियां इस प्रकार हैं-आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषा-मनः पर्याप्ति (देवों के भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति शामिल बंधती है)। जब असुरेन्द्र असुरराज चमर, उपर्युक्त पांच पर्याप्तियों से पर्याप्त होगया, तब स्वाभाविक अवधिज्ञान के द्वारा सौधर्मकल्प तक ऊपर देखा । सौधर्मकल्प में देवेन्द्र देवराज मघवा, पाकशासन, शतक्रतु, सहस्राक्ष, वज्रपाणि, पुरन्दर, शक्र, को यावत् दस दिशाओं को उदद्योतित एवं प्रकाशित करते हुए सौधर्म कल्प में सौधर्मावतंसक नामक विमान में, शक्र नाम के सिंहासन पर बैठकर यावत् दिव्य भोग भोगते हुए देखा । देखकर उस चमरेन्द्र के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि-अरे ! यह अप्रार्थितप्रार्थक अर्थात् मरण

की इच्छा करनेवाला कुलक्षणी ह्री श्री परिवर्जित्त अर्थात् लज्जा और शोभा से रहित, हीन पूर्ण (अपूर्ण) चतुर्दशी का जन्मा हुआ यह कौन है ? मुझे यह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है,ऐसा होते हुए भी मेरे सिर पर बिना किसी हिचकिचाहट के दिव्य भोग भोगता हुआ विचरता है। ऐसा विचार कर चमरेन्द्र ने सामानिक सभा में उत्पन्न हुए देवों को बुला कर इस प्रकार कहा कि हे देवानुप्रियों ! यह अप्रार्थित-प्रार्थक (मरण का इच्छुक) भोग भोगने वाला कौन है ?

चमरेन्द्र का प्रश्न सुनकर हृष्टतुष्ट बने हुए उन सामानिक देवों ने दोनों हाथ जोड़ कर शिरसावर्तपूर्वक मस्तक पर अञ्जलि करके चमरेन्द्र को जय विजय शब्दों से बधाया। फिर वे इस प्रकार बोले कि-हे देवानुप्रिय ! यह देवेन्द्र देवराज शक्र यावत् भोग भोगता है।

विवेचन--वह पूरण तापस मृत्यु पाकर चमरेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ और उसने स्वभाव से ही अपने अवधिज्ञान से ऊपर देखा, तो अपने ऊपर शक्रेन्द्र को दिव्य-भोग भोगता हुआ दिखाई दिया। मूलपाठ में शक्रेन्द्र के लिए जो विशेषण रूप शब्द दिये हैं, उसका अर्थ इस प्रकार है-'मघवा'-महामेघ जिसके वश में हों उसे 'मघवा' कहते हैं। 'पाकशासन'-'पाक' नाम के बलवान् शत्रु को शिक्षा देनेवाला अर्थात् उसको परास्त करनेवाला। 'शतक्रतु'-शक्रेन्द्र के जीव ने कार्तिक सेठ के भव में श्रमणोपासक की पांचवीं प्रतिमा का एक सौ बार आचरण किया था, इसलिए शक्रेन्द्र को 'शतक्रतु' कहते हैं। यह (शतक्रतु) विशेषण सभी शक्रेन्द्रों के लिए नहीं है। 'सहस्राक्ष'-जिसके हजार आँखें हों उसको 'सहस्राक्ष' कहते हैं। शक्रेन्द्र के पाँच सौ मन्त्री हैं, उनके एक हजार आँखे हैं, वे सब शक्रेन्द्र के काम आती हैं। इसलिए औपचारिक रूप से वे सब आँखें शक्रेन्द्र की कहलाती हैं। इस कारण से शक्रेन्द्र को सहस्राक्ष कहते हैं। 'पुरन्दर'-असुरादि के नगरों का विनाश करने वाला होने से शक्रेन्द्र को 'पुरन्दर' कहते हैं। वह दक्षिणार्द्ध लोक का स्वामी है। बत्तीस लाख विमानों का अधिपति है। ऐरावण हाथी उसका वाहन है। वह सुरेन्द्र अर्थात् सुरों का इन्द्र है। वह रज रहित एवं आकाश के समान निर्मल वस्त्रों को पहनने वाला है। मस्तक पर माला युक्त मुकुट को धारण करने वाला है। कानों में नवीन, सुन्दर, विचित्र और चंचल स्वर्णकुण्डलों को पहनने से जिसके कपोलभाग (गाल) चमक रहे हैं। इस प्रकार के शक्रेन्द्र को अपने ऊपर

दिव्य भोग भोगते हुए चमरेन्द्र ने देखा। देख कर वह अत्यन्त कुपित हुआ और उसने कहा कि यह अप्रार्थित प्रार्थक अर्थात् अनिष्ट वस्तु की प्रार्थना करने वाला-मरण का इच्छुक दुरन्तपन्तलक्षण अर्थात् खराब लक्षणों वाला, हीनपुण्यचतुर्दशी का जन्मा हुआ कौन है?

'हीनपुण्यचतुर्दशी का जन्मा हुआ' का आशय यह है-जन्म के लिए चतुर्दशी (चौदस) तिथि पवित्र मानी गई है। अत्यन्त पुण्यवान् पुरुष के जन्म के समय ही पूर्ण चतुर्दशी होती है, किन्तु हीन चतुर्दशी (अपूर्ण चतुर्दशी) नहीं होती है। चमरेन्द्र ने शक्रेन्द्र के लिए यह विशेषण देकर अपना आक्रोश प्रकट किया है।

तएणं से चमरे असुरिंदे असुरराया तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, णिसम्म आसुरुत्ते, रुट्ठे, कुविए, चंडिक्किए, मिसिमिसेमाणे ते सामाणियपरिसोववण्णगे देवे एवं वयासी-'अण्णे खलु भो! सक्के; देविंदे देवराया; अण्णे खलु भो! से चमरे असुरिंदे असुरराया, महिड्ढीए खलु भो! से सक्के देविंदे देवराया, अप्पिड्ढीए खलु भो! से चमरे असुरिंदे असुरराया; तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु उसिणे, उसिणब्भूए जाए यावि होत्था। तएणं से चमरे असुरिंदे, असुरराया ओहिं पउंजइ, ममं ओहिणा आभोएइ, इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव-समुप्पज्जित्था-एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे दीवे भारहे वासे, सुसुमारपुरे णयरे असोगवणसंडे उज्जाणे, असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं णीसाए

सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता देवदूसं परिहेइ, परिहित्ता उववायसभाए पुरत्थिमिल्लेणं णिग्गच्छइ, जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव चोप्पाले पहरणकोसे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फलिहरयणं परामुसइ, परामुसित्ता एगे अबीए, फलिहरयणमायाय महया अमरिसं वहमाणे चमरचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव तिगिच्छकूडे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव-वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं जाव-उत्तरविउव्वियरूवं विउव्वइ, ताए उक्किट्ठाए जाव-जेणेव पुढविसिलापट्टए, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिणंपयाहिणं करेइ, जाव-णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते ! तुब्भं णीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु

कठिन शब्दार्थ-अण्णे-अन्य-दूसरा, अच्चासाइत्तए-नष्ट भ्रष्ट करने के लिए, उसिणे उसिणब्भूए-उष्ण हुआ उष्णता को प्राप्त हुआ-रुष्ठ हुआ, ओहिं पउंजइ-अवधिज्ञान का प्रयोग किया, परिहेइ-पहना, चोप्पाले पहरणकोसे-चतुष्पाल-चतुष्खण्ड नाम का शस्त्र रखने का भण्डार, फलिहरयणं-परिधरत्न नाम का शस्त्र, परामुसइ-लिया, अमरिसं वहमाणे-रोष को धारण करता हुआ।

भावार्थ-सामानिक देवों के उत्तर को सुनकर, अवधारण करके असुरेन्द्र असुरराज चमर, आशुरक्त हुआ अर्थात् क्रुद्ध हुआ, रुष्ट हुआ अर्थात् रोष में भरा, कुपित हुआ, चण्ड बना अर्थात् भयङ्कर आकृतिवाला बना और क्रोध के

आवेश में दाँत पीसने लगा। फिर उसने सामानिक सभा में उत्पन्न हुए देवों से इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रियों! देवेन्द्र देवराज शक्र कोई दूसरा है और असुरेन्द्र असुरराज चमर कोई दूसरा है। देवेन्द्र देवराज शक्र जो महाऋद्धि वाला है वह कोई दूसरा है और असुरेन्द्र असुरराज चमर जो अल्प ऋद्धि वाला है, वह कोई दूसरा है। हे देवानुप्रियों! मैं स्वयं देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हूँ" ऐसा कह कर वह चमर गर्म हुआ, और उस अस्वाभाविक गर्मी को प्राप्त कर वह अत्यन्त कुपित हुआ। इसके बाद उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। अवधिज्ञान के प्रयोग द्वारा चमरेन्द्र ने मुझे (श्रीमहावीर स्वामी को) देखा। मुझे देख कर चमरेन्द्र को इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि-'श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, द्वीपों में के जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के सुंसुमारपुर नाम के नगर के अशोक वन खण्ड नामक उद्यान में एक उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक पर तेले के तप को स्वीकार करके, एक रात्रि की महाप्रतिमा अंगीकार करके स्थित हैं। मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का आश्रय लेकर देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए जाऊँ।' ऐसा विचार कर वह चमरेन्द्र अपनी शय्या से उठा, उठ कर देवदूष्य (देव वस्त्र) पहना। पहन कर उपपात सभा से पूर्व दिशा की तरफ गया। फिर सुधर्मा में चोप्पाल (चतुष्पाल-चारों तरफ पाल वाला, चौखण्डा) नामक शस्त्रागार की तरफ गया। वहाँ जाकर परिघ-रत्न नामक शस्त्र लेकर किसी को साथ लिये बिना अकेला ही अत्यन्त कोप के साथ चमरचञ्चा राजधानी के बीचोबीच होकर निकला। फिर तिगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत पर आया। वहाँ वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होकर संख्येय योजन पर्यन्त उत्तरवैक्रिय रूप बनाया। फिर उत्कृष्ट देवगति द्वारा वह चमर, उस पृथ्वीशिलापट्टक की तरफ मेरे (श्री महावीर स्वामी के) पास आया। फिर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा करके मुझे वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला-"हे भगवन्! मैं आपका आश्रय लेकर स्वयमेव अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हूँ।"

उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमेइ, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, जाव-दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, एगं, महं, घोरं, घोरागारं, भीमं, भीमागारं, भासुरं, भयाणीयं, गंभीरं, उत्तासणयं, कालड्ढरत्त-मासरासिसंकासं जोयणसयसाहस्सीयं महा-बोंदिं विउव्वइ, विउव्वित्ता अप्फोडेइ, अप्फोडित्ता वग्गइ, वग्गित्ता गज्जइ, गज्जित्ता हयहेसियं करेइ, करित्ता हत्थिगुलगुलाइयं करेइ, करित्ता, रहघणघणाइयं करेइ, पायदद्दरगं करेइ, भूमिचवेडयं दल-यइ, सीहणादं नदइ, उच्छोलेइ, पच्छोलेइ तिवइं छिंदइ, वामं भुअं ऊसवेइ, दाहिणहत्थपदेसिणीए अंगुट्ठणहेण य वि तरिच्छमुहं विडं-बेइ, विडंबित्ता महया महया सद्देण कलकलरवं करेइ, एगे, अबीए फलिहरयणमायाय उड्ढं वेहासं उप्पइए। खोभंते चेव अहोलोअं, कंपेमाणे च मेइणीयलं, आकड्ढंते व तिरियलोअं, फोडेमाणे व अंबरतलं, कत्थइ गज्जंते, कत्थइ विज्जुयायंते, कत्थइ वासं वासमाणे, कत्थइ रयुग्घायं पकरेमाणे, कत्थइ तमुक्कायं पकरेमाणे, वाणमंतरे देवे वित्तासमाणे, जोइसिए देवे दुहा विभयमाणे, आयरक्खे देवे विपलायमाणे, फलिहरयणं अंबरतलंसि वियट्टमाणे, वियट्टमाणे, विउब्भाएमाणे, विउब्भाएमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव-तिरिय-मसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणे जेणेव सोहम्मे कप्पे, जेणेव सोहम्मवडेंसए विमाणे, जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगं पायं पउमवरवेइयाए करेइ, एगं पायं सभाए सुहम्माए करेइ, फलिहरयणेणं महया महया सद्देणं तिक्खुत्तो इंदकीलं आउडेए, आउडित्ता एवं वयासी–"कहि णं भो ! सक्के देविंदे देवराया ? कहि णं ताओ चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ ? जाव–कहि णं ताओ चत्तारि चउरासीईओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ ? कहि णं ताओ अणेगाओ अच्छराकोडीओ ? अज्ज हणामि, अज्ज वहेमि, अज्ज ममं अवसाओ अच्छराओ वसमुवणमंतु त्ति कट्टु तं अणिट्ठं, अकंतं, अप्पियं, असुभं, अमणुण्णं, अमणामं, फरुसं गिरं णिसिरइ ।

कठिन शब्दार्थ–घोरंघोरागारं–घोर और घोर आकारवाला, भीमं भीमागारं–भयानक, भयानक आकृतिवाला, भासुर–भास्वर, उत्तासणयं–त्रास उत्पन्न करने वाला, कालड्ढरत्तमासरासि संकासं–कृष्ण पक्ष की काली अर्द्धरात्रि और उड़द के ढेर के समान काला, महाबोंदि–बड़ा शरीर, अप्फोडेइ–हाथों को पछाड़ता है, वग्गइ–व्यग्र होता है, पायदद्दरगं–पैर पछाड़ता है, गज्जइ–गर्जना करता है, हयहेसियं करेइ–घोड़े की तरह हिनहिनाने लगा, उच्छोलेइ–उछलने लगा, तिवइं छिंदइ–त्रिपदी छेदने लगा, वामं भुयं ऊसवेइ–बाईं भुजा ऊंची करने लगा, दाहिण हत्थ पदेसिणीए–दाहिने हाथ की तर्जनी उंगली और अंगुठे के नख से, तिरिच्छमुहं विडंबेइ–मुंह को तिरछा करके विडंबित करने लगा, वेहासं–आकाश को, मेइणीयलं–भूमितल को, आकड्ढंते–संमुख खींचता हो वैसे, रयुग्घायं पकरेमाणे–धूलि की वर्षा करता हुआ, तमुक्कायं–अन्धकार करता हुआ, वित्तासमाणे–त्रासित करता, विपलायमाणे–भगाता हुआ, विउब्भायमाणे–उछालता हुआ, इंदकीलं आउडेइ–इन्द्रकील को ठोका, अवसाओ–वश में नहीं है, वसमुवणमंतु–वश में हो जावे, गिरं निसिरइ–वचन निकाले–शब्द कहे ।

भावार्थ–ऐसा कह कर चमरेन्द्र उत्तर पूर्व के दिग्विभाग में अर्थात् ईशान

कोण में चला गया। फिर उसने वैक्रिय समुद्घात किया यावत् वह दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत हुआ। ऐसा करके चमरेन्द्र ने एक महान् घोर, घोर आकृतिवाला, भयंकर, भयंकर आकृतिवाला, भास्वर, भयानक, गंभीर, त्रासजनक, कृष्णपक्ष की अर्द्धरात्रि तथा उड़दों के ढेर के समान काला, एक लाख योजन का ऊँचा मोटा शरीर बनाया। ऐसा करके वह चमरेन्द्र अपने हाथों को पछाड़ने लगा, उछलने कूदने लगा, मेघ की तरह गर्जना करने लगा, घोड़े की तरह हिनहिनाने लगा, हाथी की तरह चिघाड़ने लगा, रथ की तरह घन-घनाहट करने लगा, भूमि पर पैर पटकने लगा। भूमि पर चपेटा मारने लगा, सिंहनाद करने लगा, उछलने लगा, पछाड़ मारने लगा, त्रिपदी छेदने लगा, बाँई भुजा को ऊँचा करने लगा, दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली और अँगूठे के नख द्वारा अपने मुंह को विडंबित करने लगा (टेढ़ा मेढ़ा करने लगा) और महान् शब्दों द्वारा कलकल शब्द करने लगा। इस प्रकार करता हुआ मानो अधोलोक को क्षुभित करता हुआ, भूमितल को कम्पाता हुआ, तिरछा लोक को खींचता हुआ, गगनतल को फोड़ता हुआ, इस प्रकार करता हुआ वह चमरेन्द्र, कहीं गर्जना करता हुआ, कहीं बिजली की तरह चमकता हुआ, कहीं वर्षा के सदृश बरसता हुआ, कहीं पर धूलि की वर्षा करता हुआ, कहीं पर अन्धकार करता हुआ वह चमर ऊपर जाने लगा। जाते हुए उसने वाणव्यन्तर देवों को त्रासित किया, ज्योतिषी देवों के दो विभाग कर दिये और आत्मरक्षक देवों को भगा दिया। ऐसा करता हुआ वह चमरेन्द्र परिघ रत्न को फिराता हुआ (घुमाता हुआ) शोभित करता हुआ, उस उत्कृष्ट गति द्वारा यावत् तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रों के बीचो-बीच होकर निकला। निकल कर सौधर्मकल्प के सौधर्मावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में पहुंचा। वहां पहुंच कर उसने अपना एक पैर पद्मवर वेदिका के ऊपर रखा और दूसरा पैर सुधर्मा सभा में रखा। महान् हुंकार शब्द करते हुए उसने अपने परिघ रत्न द्वारा इन्द्रकील को तीन बार पीटा। फिर उसने चिल्ला कर कहा कि—"वह देवेन्द्र देवराज शक्र कहां है ? वे चौरासी हजार सामानिक देव कहां हैं ? वे तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव कहां हैं ?

तथा वे करोड़ों अप्सराएं कहाँ हैं ? आज मैं उनका हनन करता हूँ। जो अप्स-राएं अब तक मेरे वश में नहीं थीं, वे आज मेरे वश में हो जावें।" ऐसा करके चमरेन्द्र ने इस प्रकार के अनिष्ट,अकान्त,अप्रिय,अशुभ,असुन्दर, अमनोम (अमनो-हर) और अमनोज्ञ शब्द कहे।

तएणं से सक्के देविंदे देवराया तं अणिट्ठं जाव-अमणामं असु-यपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा, णिसम्म आसुरुत्ते, जाव-मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वयासी-"हं भो ! चमरा ! असुरिंदा ! असुरराया ! अपत्थियपत्थया ! जाव-हीणपुण्णचाउद्दसा ! अज्ज न भवसि न हि ते सुहमत्थीति कट्टु तत्थेव सीहासणवरगए वज्जं परामुसइ, परामुसित्ता, तं जलंतं, फुडंतं, तडतडंतं उक्कासहस्साइं विणिमुयमाणं, जालासहस्साइं पमुंचमाणं, इंगालसहस्साइं पविक्खिरमाणं पविक्खिरमाणं, फुलिंग-जालामालासहस्सेहिं चक्खुविक्खेवदिट्ठिपडिघायं पि पकरेमाणं हुय-वहअइरेगतेयदिप्पंतं, जइणवेगं, फुल्लकिंसुयसमाणं, महब्भयं, भयंकरं चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो वहाए वज्जं निसिरइ। तएणं से असुरिंदे असुरराया तं जलंतं, जाव-भयंकरं वज्जमभिमुहं आवय-माणं पासइ, पासित्ता झियाइ, पिहाइ; झियायित्ता पिहाइत्ता तहेव संभग्गमउडविडए, सालंबहत्थाभरणे, उड्ढंपाए, अहोसिरे, कक्खा-गयसेअं पिव विणिम्मुयमाणे विणिम्मुयमाणे ताए उक्किट्ठाए, जाव-

तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे जेणेव जंबूदीवे, जाव-जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव मम अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भीए भयगग्गरसरे 'भगवं सरणं' इति वुयमाणे ममं दोण्ह वि पायाणं अंतरंसि झत्ति वेगेण समोवडिए।

कठिन शब्दार्थ-**अणिट्ठं**-अनिष्ट, **असुअपुव्वं**-पहले कभी नहीं सुनी ऐसी, **सुहमत्थिति**-अस्तित्व नहीं रहेगा, **वज्जं**-वज्र, **उक्कासहस्साइं विणिमुयमाणं**-हजारों उल्काएँ छोड़ता हुआ, **पविक्खिरमाणा**-खिराता हुआ, **चक्खुविक्खेवदिट्ठिपडिग्घायं**-आँखों की देखने की शक्ति को रोकने वाला, **हुअवहअइरेगतेयदिप्पंतं**-हुत-अग्नि से भी अधिक तेज से दीप्त, **जइणवेगं**-बहुत वेगवाला, **फुल्लकिंसुअसमाणं**-खिले हुए केसु के फूल के समान लाल, **वहाए**-वध करने के लिए, **पिहाए**-स्पृहा करता है, **संभग्गमउडविडए**-मुकुट का तुर्रा टूट-गया, **सालंबहत्थाभरणे**-आलंब सहित हाथ के आभूषण वाला, **कक्खागयसेअं**-जिसकी काँख (बगल) में पसीना आ गया, **भयगग्गरसरे**-भय से कातर स्वर वाला, **समोवडिए**-गिरगया।

भावार्थ-इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र ने चमरेन्द्र के उपर्युक्त अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ एवं अश्रुतपूर्व (पहले कभी नहीं सुने ऐसे) कर्णकटु शब्दों को सुना, अवधारण किया, सुन कर और अवधारण करके अत्यन्त कुपित हुआ, यावत् कोप से धमधमायमान हुआ (मिसमिसाट करने लगा) ललाट में तीन सल डाल कर एवं भृकुटि तान कर शक्रेन्द्र ने चमरेन्द्र से इस प्रकार कहा- "हे भो ! अप्रार्थिप्रार्थक-जिसकी कोई इच्छा नहीं करता, ऐसे मरण की इच्छा करने वाला यावत् हीन पूर्ण (अपूर्ण) चतुर्दशी का जन्मा हुआ असुरेन्द्र असुरराज चमर ! आज तू नहीं है अर्थात् आज तेरा कल्याण नहीं है, आज तेरी खैर नहीं है, सुख नहीं है। ऐसा कह कर उत्तम सिंहासन पर बैठे हुए ही शक्रेन्द्र ने अपना वज्र उठाया उस जाज्वल्यमान, स्फुटिक, तड़तड़ाट करते हुए हजारों उल्कापात को छोड़ते हुए, हजरों अग्नि ज्वालाओं को छोड़ते हुए, हजारों अंगारों को बिखेरते हुए, हजारों स्फुलिंगों (शोलों) से आँखों को चुंधिया देने वाले, अग्नि

से भी अत्यधिक दीप्ति वाले, अत्यन्त वेगवान्, किंशुक (टेसु) के फूल के समान लाल, महाभयावह भयंकर वज्र को चमरेन्द्र के वध के लिए छोड़ा। इस प्रकार के जाज्वल्यमान यावत् भयंकर वज्र को चमरेन्द्र ने अपने सामने आता हुआ देखा। देखते ही वह विचार में पड़ गया कि 'यह क्या है ?' तत्पश्चात् वह वार वार स्पृहा करने लगा कि-'ऐसा शस्त्र मेरे पास होता, तो कैसा अच्छा होता' ? ऐसा विचार कर जिसके मुकुट का छोगा (तुर्रा) भग्न हो गया है ऐसा तथा आलंबवाले हाथ के आभूषणवाला वह चमरेन्द्र, ऊपर पैर और नीचे शिर करके, कांख (कक्षा) में आये हुए पसीने की तरह पसीना टपकाता हुआ वह उत्कृष्ट गति द्वारा यावत् तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रों के बीचोबीच होता हुआ जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के सुंसुमारपुर नगर के अशोक वनखण्ड उद्यान में उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट पर जहाँ मैं (श्री महावीर स्वामी) था, वहाँ आया। भयभीत बना हुआ, भय से कातर स्वर वाला-'हे भगवन् ! आप मेरे लिए शरण हैं'। ऐसा कह कर वह चमरेन्द्र, मेरे दोनों पैरों के बीच में गिर पड़ा अर्थात् छिप गया।

तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे अज्झत्थिए, जाव-समुप्पज्जित्था-"णो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया, णो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया, णो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अप्पणो णिस्साए उड्ढं उप्पइत्ता जाव-सोहम्मो कप्पो, णण्णत्थ अरिहंते वा, अरिहंतचेइयाणि वा, अणगारे वा भाविअप्पणो णीसाए उड्ढं उप्पयइ जाव-सोहम्मो कप्पो, तं महादुक्खं खलु तहारूवाणं अरिहंताणं भगवंताणं, अणगाराण य अच्चासायणाए त्ति कट्टु ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ममं ओहिणा

आभोएइ आभोइत्ता हा ! हा ! अहो ! हतो अहमंसि" त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव-दिव्वाए देवगईए वज्जस्स वीहिं अणुगच्छमाणे अणुगच्छमाणे तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं, जाव-जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, ममं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरइ, अवियाइं मे गोयमा ! मुट्ठिवाएणं केसग्गे वीइत्था । तएणं से सक्के देविंदे देवराया वज्जं पडिसाहरित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु भंते ! अहं तुब्भं णीसाए चमरेणं असुरिंदेणं, असुररण्णा सयमेव अच्चासाइए, तएणं मए परिकुविएणं समाणेणं चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो वहाए वज्जे णिसट्ठे, तएणं ममं इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव-समुप्पज्जित्था-णो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया, तहेव जाव-ओहिं पउंजामि, देवाणुप्पिए ओहिणा आभोएमि, हा ! हा ! अहो ! हओ म्हि त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव-जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि । देवाणुप्पियाणं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जंपडिसाहरामि, वज्जपडिसाहरणट्ठयाए णं इहमागए, इह समोसढे, इह संपत्ते, इहेव अज्ज उवसंपज्जित्ता णं विहरामि, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खमंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो एवं पकरणयाए त्ति कट्टु ममं वंदइ णमंसइ,

वंदित्ता णमंसित्ता, उत्तरपुरत्थिमयं दिसीभागं अवक्कमइ, वामेणं पादेणं तिक्खुत्तो भूमिं दलेइ, चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वयासी- "मुक्को सि णं भो चमरा ! असुरिंदा ! असुरराया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स पभावेणं-ण हि ते इयाणिं ममाओ भयं अत्थि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

कठिन शब्दार्थ-अच्चासायणाए--अत्यन्त आशातना, हतो अहमंसि-मैं मारा गया, चउरंगुलमसंपत्तं-पास पहुंचने में चार अंगुल की दूरी रही, वज्जस्स वीहिं-वज्र के रास्ते, मुट्ठिवाएणं केसग्गे वीइत्था-मुट्ठी के वायु से मेरे केशाग्र हिले, परिकुविएणं-विशेष कुपित होकर, णिसट्ठे-फेंका, खमंतुमरहंति-क्षमा करने योग्य हैं, भूमि दलेइ-पृथ्वी पर ठोका, मुक्को-मुक्त है।

भावार्थ-उसी समय देवेन्द्र देवराज शक्र को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर का इतना सामर्थ्य, इतनी शक्ति और इतना विषय नहीं है कि वह अरिहन्त भगवान्, अरिहन्त चैत्य या किसी भावितात्मा अनगार का आश्रय लिये बिना स्वयं अपने आप सौधर्म कल्प तक ऊंचा आ सकता है। इसलिए यदि यह चमरेन्द्र किसी अरिहन्त भगवान् यावत् भावितात्म अनगार का आश्रय लेकर यहाँ आया है, तो उन महापुरुषों की आशातना मेरे द्वारा फेंके हुए वज्र से होगी। यदि ऐसा हुआ, तो यह मुझे महान् दुःख रूप होगा'। ऐसा विचार कर शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया और उससे मुझे (श्री महावीर स्वामी को) देखा। मुझे देखते ही उसके मुख से ये शब्द निकल पड़े कि-"हा ! हा !! मैं मारा गया"। ऐसा कह कर वह शक्रेन्द्र, अपने वज्र को पकड़ लेने के लिये उत्कृष्ट तीव्र गति से वज्र के पीछे चला। वह शक्रेन्द्र, असंख्येय द्वीप समुद्रों के बीचोबीच होता हुआ यावत् उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे जहाँ मैं था उस तरफ आया और मेरे से सिर्फ चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड़ लिया। हे गौतम! जिस समय शक्रेन्द्र ने वज्र को पकड़ा उस समय

उसने अपनी मुट्ठी को इतनी तेजी से बन्द किया कि उस मुट्ठी की वायु से मेरे केशाग्र हिलने लग गये। इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र ने वज्र को लेकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और मुझे वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि-"हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर असुरेन्द्र असुरराज चमर मुझे मेरी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए आया था। इससे कुपित होकर मैंने उसे मारने के लिए वज्र फैंका। इसके बाद मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर स्वयं अपनी शक्ति से इतना ऊपर नहीं आ सकता है।' (इत्यादि कह कर शक्रेन्द्र ने पूर्वोक्त सारी बात कह सुनाई)

फिर शक्रेन्द्र ने कहा कि हे 'भगवन् ! फिर अवधिज्ञान के द्वारा मैंने आपको देखा। आपको देखते ही मेरे मुख से ये शब्द निकल पड़े कि-"हा ! हा !! मैं मारा गया"-'ऐसा विचार कर उत्कृष्ट दिव्य देवगति द्वारा जहाँ आप देवानुप्रिय विराजते हैं, वहाँ आया और आप से चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड़ लिया। वज्र को लेने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, समवसृत हुआ हूँ, सम्प्राप्त हुआ हूँ, उपसम्पन्न होकर विचरण कर रहा हूँ। हे भगवन् ! मैं अपने अपराध के लिए क्षमा मांगता हूँ। आप क्षमा करें। आप क्षमा करने के योग्य हैं। मैं ऐसा अपराध फिर नहीं करूँगा।" ऐसा कह कर मुझे वन्दना नमस्कार करके शक्रेन्द्र उत्तरपूर्व के दिग्विभाग (ईशानकोण) में चला गया। वहाँ जाकर शक्रेन्द्र ने अपने बाँएँ पैर से तीन बार भूमि को पीटा। फिर उसने असुरेन्द्र असुरराज चमर को इस प्रकार कहा-"हे असुरेन्द्र असुरराज चमर ! तू आज श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रभाव से बच गया है। अब तुझे मेरे से जरा भी भय नहीं है"। ऐसा कह कर वह शक्रेन्द्र जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापिस चला गया।

विवेचन-आक्रोश प्रकट करके चमरेन्द्र, शक्रेन्द्र को अपनी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए ऊपर सौधर्म देवलोक में गया। वहाँ शक्रेन्द्र ने उस पर अपना वज्र छोड़ा। चमरेन्द्र, तीव्र गति से दौड़ कर नीचे आया और भगवान् के चरणों के बीच में छिप गया। अपने वज्र को लेने के लिए शक्रेन्द्र वहाँ आया। वहाँ आकर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके

तथा अपने अपराध की क्षमा याचना करके एवं चमरेन्द्र को अपनी तरफ से अभय देकर वापिस अपने स्थान पर चला गया।

फेंकी हुई वस्तु को पकड़ने की देव-शक्ति

२२ प्रश्न-'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-देवे णं भंते ! महिड्ढीए, जाव-महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खिवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए ?

२२ उत्तर-हंता, पभू ।

२३ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-गिण्हित्तए ?

२३ उत्तर-गोयमा ! पोग्गले णं खिक्खिते समाणे पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता ततो पच्छा मंदगइ भवति, देवे णं महिड्ढीए पुव्विं पि य, पच्छा वि सीहे सीहगई चेव, तुरिए तुरियगई चेव, से तेणट्ठेणं जाव-पभू गेण्हित्तए ।

२४ प्रश्न-जइ णं भंते ! देवे महिड्ढीए, जाव-अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए, कम्हा णं भंते ! सक्केणं देविंदेण देवरण्णा, चमरे असुरिंदे असुरराया णो संचाइए साहत्थिं गेण्हित्तए ?

२४ उत्तर-गोयमा ! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गइविसए

उसने अपनी मुट्ठी को इतनी तेजी से बन्द किया कि उस मुट्ठी की वायु से मेरे केशाग्र हिलने लग गये। इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र ने वज्र को लेकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और मुझे वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि-"हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर असुरेन्द्र असुरराज चमर मुझे मेरी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए आया था। इससे कुपित होकर मैंने उसे मारने के लिए वज्र फैंका। इसके बाद मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर स्वयं अपनी शक्ति से इतना ऊपर नहीं आ सकता है।' (इत्यादि कह कर शक्रेन्द्र ने पूर्वोक्त सारी बात कह सुनाई)

फिर शक्रेन्द्र ने कहा कि हे 'भगवन् ! फिर अवधिज्ञान के द्वारा मैंने आपको देखा। आपको देखते ही मेरे मुख से ये शब्द निकल पड़े कि-"हा ! हा !! मैं मारा गया"-'ऐसा विचार कर उत्कृष्ट दिव्य देवगति द्वारा जहाँ आप देवानुप्रिय विराजते हैं, वहाँ आया और आप से चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड़ लिया। वज्र को लेने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, समवसृत हुआ हूँ, सम्प्राप्त हुआ हूँ, उपसम्पन्न होकर विचरण कर रहा हूँ। हे भगवन् ! मैं अपने अपराध के लिए क्षमा मांगता हूँ। आप क्षमा करें। आप क्षमा करने के योग्य हैं। मैं ऐसा अपराध फिर नहीं करूँगा।" ऐसा कह कर मुझे वन्दना नमस्कार करके शक्रेन्द्र उत्तरपूर्व के दिग्विभाग (ईशानकोण) में चला गया। वहाँ जाकर शक्रेन्द्र ने अपने बाँएँ पैर से तीन बार भूमि को पीटा। फिर उसने असुरेन्द्र असुरराज चमर को इस प्रकार कहा-"हे असुरेन्द्र असुरराज चमर ! तू आज श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रभाव से बच गया है। अब तुझे मेरे से जरा भी भय नहीं है"। ऐसा कह कर वह शक्रेन्द्र जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापिस चला गया।

विवेचन-आक्रोश प्रकट करके चमरेन्द्र, शक्रेन्द्र को अपनी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए ऊपर सौधर्म देवलोक में गया। वहाँ शक्रेन्द्र ने उस पर अपना वज्र छोड़ा। चमरेन्द्र, तीव्र गति से दौड़ कर नीचे आया और भगवान् के चरणों के बीच में छिप गया। अपने वज्र को लेने के लिए शक्रेन्द्र वहाँ आया। वहाँ आकर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके

तथा अपने अपराध की क्षमा याचना करके एवं चमरेन्द्र को अपनी तरफ से अभय देकर वापिस अपने स्थान पर चला गया ।

फैंकी हुई वस्तु को पकड़ने की देव-शक्ति

२२ प्रश्न-'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-देवे णं भंते ! महिड्ढीए, जाव-महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खिवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए ?

२२ उत्तर-हंता, पभू ।

२३ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-गिण्हित्तए ?

२३ उत्तर-गोयमा ! पोग्गले णं विक्खिते समाणे पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता ततो पच्छा मंदगइ भवति, देवे णं महिड्ढीए पुव्विं पि य, पच्छा वि सीहे सीहगई चेव, तुरिए तुरियगई चेव, से तेणट्ठेणं जाव-पभू गेण्हित्तए ।

२४ प्रश्न-जइ णं भंते ! देवे महिड्ढीए, जाव-अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए, कम्हा णं भंते ! सक्केणं देविंदेण देवरण्णा, चमरे असुरिंदे असुरराया णो संचाइए साहत्थिं गेण्हित्तए ?

२४ उत्तर-गोयमा ! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गइविसए

सीहे सीहे चेव, तुरिए तुरियगई चेव; उड्ढं गइविसए अप्पे अप्पे चेव, मंदे मंदे चेव, वेमाणियाणं उड्ढं गइविसए सीहे सीहे चेव, तुरिए तुरिए चेव, अहे गइविसए अप्पे अप्पे चेव, मंदे मंदे चेव, जावइयं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया उड्ढं उप्पयइ एक्केणं समएणं, तं वज्जे दोहिं, जं वज्जे दोहिं, तं चमरे तिहिं, सव्वत्थोवे सक्कस्स। देविंदस्स देवरण्णो उड्ढलोयकंडए, अहोलोयकंडए संखेज्जगुणे। जावइयं खेत्तं चमरे असुरिंदे असुरराया अहे उवयइ एक्केणं समएणं, तं सक्के दोहिं; जं सक्के दोहिं तं वज्जे तीहिं। सव्वत्थोवे चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो अहेलोगकंडए, उड्ढलोयकंडए संखेज्जगुणे, एवं खलु गोयमा ! सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा, चमरे असुरिंदे असुरराया णो संचाइए साहत्थिं गेण्हित्तए।

कठिन शब्दार्थ–खिवित्ता–फैंक कर, अणुपरियट्टित्ता–पीछे जाकर, विक्खित्ते समाणे–फेंकते समय, साहत्थि–अपने हाथ से, पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता–पहले शीघ्र गति होती है, सीहे–शीघ्र, तुरिए–त्वरित, णो संचाइए–समर्थ नहीं हुए, जावतियं–जितने, सव्वत्थोवे–सब से थोड़े, उड्ढलोयकंडए–उर्द्धलोक कंडक–ऊँचा जाने का समय मान।

भावार्थ २२ प्रश्न–'हे भगवन्' ! ऐसा कह कर भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और इस प्रकार कहा–'हे भगवन् ! देव महा ऋद्धिवाला है, महा कान्तिवाला यावत् महाप्रभाव वाला है, तो क्या वह किसी पुद्गल को पहले फैंक कर फिर उसके पीछे जाकर उसको पकड़ने में समर्थ है' ?

२२ उत्तर–हाँ गौतम ! पकड़ने में समर्थ है।

२३ प्रश्न–हे भगवन् ! देव, पहले फेंके हुए पुद्गल को उसके पीछे जा कर ग्रहण कर सकता है, इसका क्या कारण है ?

२३ उत्तर–हे गौतम ! जब पुद्गल फेंका जाता है, तब पहले उसकी गति शीघ्र होती है और पीछे उसकी गति मन्द हो जाती है। महा ऋद्धिवाला देव पहले भी और पीछे भी शीघ्र और शीघ्र गति वाला होता है, त्वरित और त्वरित गति वाला होता है। इसलिए देव फेंके हुए पुद्गल के पीछे जाकर उसे पकड़ सकता है।

२४ प्रश्न–हे भगवन् ! महा ऋद्धिवाला देव यावत् पीछे जाकर पुद्गल को पकड़ सकता है, तो देवेन्द्र देवराज शक्र,अपने हाथ से असुरेन्द्र असुरराज चमर को क्यों नहीं पकड़ सका ?

२४ उत्तर–हे गौतम ! असुरकुमार देवों का नीचे जाने का विषय शीघ्र, शीघ्र, तथा त्वरित, त्वरित होता है। ऊँचे जाने का विषय अल्प, अल्प तथा मन्द, मन्द होता है। वैमानिक देवों का ऊंचा जाने का विषय शीघ्र, शीघ्र तथा त्वरित, त्वरित होता है और नीचे जाने का विषय अल्प, अल्प तथा मन्द, मन्द होता है। एक समय में देवेन्द्र देवराज शक्र जितना क्षेत्र ऊपर जा सकता है, उतना क्षेत्र ऊपर जाने में वज्र को दो समय लगते हैं और उतना ही क्षेत्र ऊपर जाने में चमरेन्द्र को तीन समय लगते हैं। अर्थात् देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊर्ध्वलोक कण्डक (ऊंचा जाने का काल मान) सब से थोड़ा है और अधोलोक कण्डक (नीचे जाने का काल मान) उसकी अपेक्षा संख्येय गुणा है। एक समय में असुरेन्द्र असुरराज चमर, जितना क्षेत्र नीचा जा सकता है, उतना क्षेत्र नीचा जाने में शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं और उतना ही क्षेत्र नीचा जाने में वज्र को तीन समय लगते हैं अर्थात् असुरेन्द्र असुरराज चमर का अधोलोक कण्डक (नीचा जाने का काल मान) सब से थोड़ा है और ऊर्ध्वलोक कण्डक (ऊंचा जाने का काल मान) उससे संख्येय गुणा है। हे गौतम ! इस कारण से देवेन्द्र देवराज शक्र, अपने हाथ से असुरेन्द्र असुरराज चमर को पकड़ने में समर्थ नहीं हो सका।

इन्द्र की उर्ध्वादि गति

२५ प्रश्न–सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो उड्ढं, अहे, तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा, बहुए वा, तुल्ले वा, विसेसाहिए वा ?

२५ उत्तर–सव्वत्थोवं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया अहे उवयइ एक्केणं समएणं, तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ, उड्ढं संखेज्जे भागे गच्छइ ।

२६ प्रश्न–चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स, असुररण्णो उड्ढं, अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा, बहुए वा, तुल्ले वा, विसेसाहिए वा ?

२६ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवं खेत्तं चमरे असुरिंदे, असुरराया उड्ढं उप्पयइ एक्केणं समएणं, तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ, अहे संखेज्जे भागे गच्छइ ।

—वज्जं जहा सक्कस्स तहेव, नवरं–विसेसाहियं कायव्वं ।

कठिन शब्दार्थ–अप्पे–अल्प, बहुए–बहुत, तुल्ले–तुल्य–बराबर, विसेसाहिए–विशेषाधिक, उप्पयइ–जाता है ।

भावार्थ २५ प्रश्न–हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊर्ध्वगति विषय, अधोगति विषय और तिर्यग्गति विषय, इन सब में कौनसा विषय किस विषय से अल्प है, बहुत है, तुल्य (समान) है और विशेषाधिक है ?

२५ उत्तर-हे गौतम ! एक समय में देवेन्द्र देवराज शक्र, सब से कम क्षेत्र नीचे जाता है, उससे तिर्च्छा संख्येय भाग जाता है और उससे संख्येय भाग ऊपर जाता है।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर का ऊर्ध्व गति विषय, अधोगति विषय और तिर्यग्गति विषय, इन सब में कौनसा विषय, किस विषय से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर एक समय में जितना भाग (क्षेत्र) ऊपर जाता है, उससे तिर्च्छा संख्येय भाग जाता है और उससे नीचे संख्येय भाग जाता है।

वज्र सम्बन्धी गति का विषय शक्रेन्द्र की तरह जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि गति का विषय विशेषाधिक कहना चाहिए।

२७ प्रश्न-सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो उवयण-कालस्स य, उप्पयणकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुआ वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

२७ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अड्ढं उप्पयणकाले, उवयणकाले संखेज्जगुणे।

-चमरस्स वि जहा सक्कस्स, णवरं-सव्वत्थोवे उवयणकाले, उप्पयणकाले संखेज्जगुणे।

२८ प्रश्न-वज्जस्स पुच्छा ?

२८ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवे उप्पयणकाले, उवयणकाले विसेसाहिए।

२९ प्रश्न-एयस्सणं भंते ! वज्जस्स, वज्जाहिवइस्स, चमरस्स य, असुरिंदस्स असुररण्णो उवयणकालस्स य, उप्पयणकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुआ वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

२९ उत्तर-गोयमा ! सक्कस्स य उप्पयणकाले, चमरस्स य उवयणकाले, एए णं दोण्णि वि तुल्ला सव्वत्थोवा, सक्कस्स य उवयणकाले, वज्जस्स य उप्पयणकाले एस णं दोण्ह वि तुल्ले संखेज्ज-गुणे, चमरस्स य उप्पयणकाले, वज्जस्स य उवयणकाले एस दोण्ह वि तुल्ले विसेसाहिए ।

कठिन शब्दार्थ-उवयणकाले-अवपतनकाल-नीचे जाने का समय, उप्पयणकाले-उत्पतनकाल-ऊपर जाने का समय ।

भावार्थ २७ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र का नीचे जाने का काल और ऊपर जाने का काल इन दोनों कालों में से कौन सा काल, किस काल से अल्प है, बहुत है, तुल्य है या विशेषाधिक है ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊपर जाने का काल सब से थोड़ा है और नीचे जाने का काल संख्येय गुणा है ।

चमरेन्द्र का कथन भी शक्रेन्द्र के समान ही जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल सब से थोड़ा है और ऊपर जाने का काल संख्येय गुणा है ।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! वज्र का नीचे जाने का काल और ऊपर जाने का काल, इन दोनों कालों में से कौनसा काल अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! वज्र का ऊपर जाने का काल सब से थोड़ा है, नीचे जाने का काल उससे विशेषाधिक है ।

२९ प्रश्न–हे भगवन् ! वज्र, वज्राधिपति (शक्रेन्द्र) और चमरेन्द्र, इन सब का नीचे जाने का काल और ऊपर जाने का काल, इन दोनों कालों में से कौनसा काल किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

२९ उत्तर–हे गौतम ! शक्रेन्द्र का ऊपर जाने का काल और चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल, ये दोनों तुल्य हैं और सब से थोड़े हैं। शक्रेन्द्र का नीचे जाने का काल और वज्र का ऊपर जाने का काल, ये दोनों काल तुल्य हैं और संख्येय गुणा हैं। चमरेन्द्र का ऊपर जाने का काल और वज्र का नीचे जाने का काल, ये दोनों काल परस्पर तुल्य हैं और विशेषाधिक हैं।

विवेचन–यहाँ यह देखा जाता है कि कोई पुरुष पत्थर या गेंद आदि को फेंक कर जाते हुए उसको पीछे जाकर नहीं पकड़ सकता है, तो क्या देवों में भी यही बात है ? अथवा फेंके हुए पदार्थ के पीछे जाकर देव उसको पकड़ सकते हैं ? शक्रेन्द्र ने स्वयं फेंके हुए वज्र को उसके पीछे जाकर पकड़ लिया, तो वह चमरेन्द्र को क्यों नहीं पकड़ सका ? इत्यादि शंकाओं से प्रेरित होकर ये प्रश्नोत्तर किये गये हैं ?

शक्रेन्द्र को ऊंचा जाने में सब से थोड़ा काल लगता है, क्योंकि ऊंचा जाने में उसकी गति अति शीघ्र होती है। 'ऊर्ध्वलोक कण्डक' शब्द का अर्थ यह है–ऊर्ध्वलोक अर्थात् ऊपर का क्षेत्र। कण्डक का अर्थ है–काल-विभाग। शक्रेन्द्र का अधोलोक कण्डक संख्यात गुणा है अर्थात् ऊर्ध्वलोक कण्डक की अपेक्षा अधोलोक कण्डक दुगुना है, क्योंकि नीचे के क्षेत्र में जाने में शक्रेन्द्र की गति मन्द होती है। शक्रेन्द्र का ऊपर जाने का काल और चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल बराबर है। चमरेन्द्र एक समय में जितना क्षेत्र नीचे जाता है, उतना नीचा क्षेत्र जाने में शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं। शक्रेन्द्र एक समय में सब से थोड़ा क्षेत्र नीचे जाता है, क्योंकि नीचे जाने में उसकी गति मन्द होती है। कल्पना कीजिये–शक्रेन्द्र एक समय में एक योजन नीचे जाता है, डेढ़ योजन तिर्छा जाता है, और ऊपर दो योजन जाता है।

शंका–सूत्र में तो सिर्फ संख्यात गुणा लिखा है, परन्तु कोई नियमित माप नहीं बतलाया गया है, तो यहां नियमितता किस प्रकार बतलाई गई है ?

समाधान–"चमरेन्द्र" एक समय में जितना क्षेत्र नीचे जाता है, उतना ही क्षेत्र नीचे जाने में शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं। उधर शक्रेन्द्र का ऊपर जाने का काल और चमरेन्द्र

का नीचे जाने का काल बराबर है," इस कथन से यह निश्चित होता है कि शक्रेन्द्र जितना नीचा क्षेत्र दो समय में जाता है, उतना ही क्षेत्र ऊंचा एक समय में जाता है अर्थात् नीचे के क्षेत्र की अपेक्षा ऊपर का क्षेत्र दुगुना है। तिर्च्छा क्षेत्र, ऊर्ध्व क्षेत्र और अधःक्षेत्र के बीच में है, इसलिए उसका परिमाण भी बीच का होना चाहिए। इसलिए तिर्च्छे क्षेत्र का परिमाण डेढ़ योजन निश्चित किया गया है। चूर्णिकार ने भी यही बात कही है;—

"एगेणं समएणं उवयइ अहे णं जोयणं, एगेणेव समएणं तिरियं दिवड्ढं गच्छइ, उड्ढं दो जोयणाणि सक्को।"

अर्थ—शक्रेन्द्र एक समय में नीचे एक योजन जाता है, तिर्च्छा डेढ़ योजन जाता है, और ऊपर दो योजन जाता है।

चमरेन्द्र एक समय में सब से थोड़ा क्षेत्र ऊपर जाता है, क्योंकि ऊपर जाने में उसकी गति मन्द होती है। कल्पना कीजिये—एक समय में वह त्रिभाग न्यून तीन गाऊ (कोस) ऊपर जाता है। तिर्च्छी उसकी गति शीघ्रतर होती है, इसलिए एक समय में वह तिर्च्छी त्रिभागद्वयन्यून छह गाऊ होती है। और एक समय में नीचे आठ कोस की (दो योजन) होती है।

शंका—सूत्र में तो सिर्फ संख्यात भाग लिखा, परन्तु कोई नियमित परिमाण नहीं बतलाया गया है, तो यहाँ जो क्षेत्र की परिमितता बतलाई गई है वह कैसे ?

समाधान—शक्रेन्द्र की ऊर्ध्वगति और चमरेन्द्र की अधोगति बराबर (तुल्य) बतलाई गई है। शक्रेन्द्र एक समय में ऊपर दो योजन जाता है, तो चमरेन्द्र का अधोगमन एक समय में दो योजन बतलाना उचित ही है। तथा शक्रेन्द्र एक समय में जितना क्षेत्र ऊपर जाता है, उतना क्षेत्र ऊपर जाने में वज्र को दो समय और चमरेन्द्र को तीन समय लगते हैं। इस कथन से भी यह जाना जा सकता है कि शक्रेन्द्र का जितना उर्ध्वगति क्षेत्र है, उसका त्रिभाग जितना ऊर्ध्वगति क्षेत्र चमरेन्द्र का है। इसीलिए त्रिभाग न्यून तीन गाऊ यह नियत ऊर्ध्वगति क्षेत्र बतलाया गया है। ऊर्ध्वक्षेत्र और अधःक्षेत्र के बीच का तिर्यग्क्षेत्र है, इसलिए उसका प्रमाण त्रिभाग द्वय न्यून छह गाऊ बतलाया गया है। और अधोगति क्षेत्र दो योजन बतलाया गया है।

वज्र, एक समय में नीचे सब से थोड़ा क्षेत्र जाता है, क्योंकि नीचे जाने में उसकी मन्द गति है (कल्पनानुसार—वज्र का अधोगमन क्षेत्र, त्रिभाग न्यून योजन होता है। वह वज्र तिर्च्छा विशेषाधिक दो भाग जाता है, क्योंकि तिर्च्छा जाने में उसकी गति शीघ्रतर

होती है। विशेषाधिक दो भाग का मतलब है–योजन के विशेषाधिक दो त्रिभाग–अर्थात् त्रिभाग सहित तीन गाऊ। वह वज्र ऊंचा भी विशेषाधिक दो भाग जाता है। यहां विशेषाधिक दो भाग का मतलब यह है कि तिर्च्छा क्षेत्र में कहे हुए दो भाग से कुछ विशेषाधिक समझना चाहिये। वज्र, एक समय में ऊंचा एक योजन जाता है, क्योंकि ऊंचा जाने में वज्र की शीघ्रतम गति होती है।

शंका– मूलसूत्र में तो सामान्य रूप से विशेषाधिकता कही गई है, तो यहाँ नियमिततावाली विशेषाधिकता किस प्रकार कही गई है ?

समाधान–एक समय में चमरेन्द्र जितना नीचे जाता है, उतना ही नीचा जाने में शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं और वज्र को तीन समय लगते हैं। इस कथन से शक्रेन्द्र की अधोगति की अपेक्षा वज्र की अधोगति त्रिभाग न्यून है। इसलिए वज्र की अधोगति त्रिभाग न्यून योजन कही गई है। शक्रेन्द्र का अधोगमन का समय और वज्र का ऊर्ध्वगमन का समय, ये दोनों तुल्य बतलाये गये हैं। इस कथन से जाना जाता है कि–एक समय में शक्रेन्द्र जितना नीचे जाता है, उतना क्षेत्र, वज्र एक समय में ऊपर जाता है। शक्रेन्द्र एक समय में नीचे एक योजन जाता है और वज्र एक समय में ऊपर एक योजन जाता है, इसलिए वज्र की ऊर्ध्वगति एक योजन कही गई है। ऊर्ध्वगति और अधोगति के बीच में तिर्यग् गति है, इसलिए उसका परिमाण बीच का होना चाहिए, इसलिए उसका परिमाण त्रिभाग सहित तीन गाऊ बतलाया गया है।

यह गति विषयक क्षेत्र की अल्पबहुत्व कही गई है। इसके बाद गति के काल विषयक अल्पबहुत्व कही गई है। जो भावार्थ में बतला दी गई है।

चमरेन्द्र की चिन्ता और वीर वन्दन

तएणं से चमरे असुरिंदे असुरराया वज्जभयविप्पमुक्के, सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा महया अवमाणेणं अवमाणिए समाणे चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि

ओहयमणसंकप्पे चिंतासोगसागरसंपविट्ठे, करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए भूमिगयाए दिट्ठीए झियाइ, तएणं चमरं असुरिंदं असुररायं सामाणियपरिसोववण्णया देवा ओहयमणसंकप्पं जाव-झियायमाणं पासंति, पासित्ता करयल-जाव एवं वयासी-किं णं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा जाव-झियायह ? तएणं से चमरे असुरिंदे असुरराया ते सामाणियपरिसोववण्णए देवे एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए समणं भगवं महावीरं णीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासाइए, तओ तेणं परिकुविएणं समाणेणं ममं वहाए वज्जे णिसिट्ठे । तं भद्दं णं भवतु देवाणुप्पिया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स, जस्स म्हि पभावेणं अकिट्ठे, अव्वहिए, अपरितविए, इहमागए, इह समोसढे, इह संपत्ते, इहेव अज्ज उवसंपज्जित्ता णं विहरामि ।

कठिन शब्दार्थ-**वज्जभयविप्पमुक्के**-वज्र के भय से मुक्त होकर, **अवमाणेणं**-अपमान से, **ओहयमणसंकप्पे**-अपहतमनः संकल्प-अर्थात् जिसके मन का संकल्प नष्ट हो गया है, **चिंतासोअसागरसंपविट्ठे**-चिंता और शोक रूपी सागर में डुबा हुआ, **करयलपल्हत्थमुहे**-मुख को हथेली पर रख कर, **अट्टज्झाणोवगए**-आर्त्तध्यान को प्राप्त, **भूमिगयाए दिट्ठीए**-पृथ्वी की ओर नीची दृष्टि किये, **अव्वहिए**-बिना व्यथा के-अव्यथित, **अकिट्ठे**-क्लेश पाये बिना, **अपरिताविए**-बिना संताप के ।

भावार्थ-इसके बाद वज्र के भय से मुक्त बना हुआ, देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा महान् अपमान से अपमानित बना हुआ, नष्ट मानसिक संकल्प वाला, चिन्ता और शोक समुद्र में प्रविष्ट, मुख को हथेली पर रखा हुआ, दृष्टि को नीची झुका

कर आर्त्तध्यान करता हुआ असुरेन्द्र असुरराज चमर, चमरचञ्चा नामक राजधानी में, सुधर्मा सभा में, चमर नामक सिंहासन पर बैठ कर विचार करता है। इसके बाद नष्ट मानसिक संकल्प वाले यावत् विचार में पड़े हुए असुरेन्द्र असुरराज चमर को देख कर सामानिक सभा में उत्पन्न हुए देवों ने हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा कि-'हे देवानुप्रिय ! आज आप इस तरह आर्त्तध्यान करते हुए क्या विचार करते हैं ?' तब असुरेन्द्र असुरराज चमर ने उन सामानिक सभा में उत्पन्न हुए देवों से इस प्रकार कहा कि-'हे देवानुप्रियों ! मैंने अपने आप अकेले ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का आश्रय लेकर, देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने का विचार किया था। तदनुसार मैं सुधर्मा सभा में गया था। तब शक्रेन्द्र ने अत्यन्त कुपित होकर मुझे मारने के लिए मेरे पीछे वज्र फेंका। परन्तु हे देवानुप्रियों ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का भला हो कि जिनके प्रभाव से मैं अक्लिष्ट रहा हूँ, अव्यथित (व्यथा-पीड़ा रहित) रहा हूँ तथा परिताप पाये बिना यहाँ आया हूँ, यहाँ समवसृत हुआ हूँ, यहाँ सम्प्राप्त हुआ हूँ, यहाँ उपसम्पन्न होकर विचरता हूँ।

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो, णमंसामो जाव-पज्जुवासामो त्ति कट्टु चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं, जाव सव्विड्ढीए, जाव-जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं जाव-णमंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु भंते ! मए तुब्भं णीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासाइए, जाव-तं भद्दं णं भवतु देवाणुप्पियाणं जस्स म्हि पभावेणं अकिट्ठे जाव विहरामि, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं

अवक्कमइ, जाव-बत्तीसइबद्धं णट्टविहिं उवदंसेइ, जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए। एवं खलु गोयमा ! चमरेणं असुरिंदेणं असुररण्णा सा दिव्वा देविड्ढी लद्धा, पत्ता, जाव-अभिसमण्णागया, ठिई सागरोवमं, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव-अंतं काहिइ।

भावार्थ-हे देवानुप्रियों ! अपन सब चलें और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें। (भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि-हे गौतम !) ऐसा कह कर वह चमरेन्द्र चौसठ हजार सामानिक देवों के साथ यावत् सर्व ऋद्धि पूर्वक, यावत् उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, जहाँ मैं था वहाँ आया। मुझे तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोला-"हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर मैं स्वयं अपने आप अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने के लिये सौधर्मकल्प में गया था, यावत् आप देवानुप्रिय का भला हो कि जिनके प्रभाव से मैं क्लेश पाये बिना यावत् विचरता हूँ। हे देवानुप्रिय ! मैं उसके लिए आप से क्षमा मांगता हूँ," यावत् ऐसा कह कर वह ईशानकोण में चला गया, यावत् उसने बत्तीस प्रकार की नाटक विधि बतलाई। फिर वह जिस दिशा से आया था उसी दिशा में चला गया।

हे गौतम ! उस असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव इस प्रकार मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है। चमरेन्द्र की स्थिति एक सागरोपम की है। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा।

असुरकुमारों का सौधर्मकल्प में जाने का दूसरा कारण

३० प्रश्न-किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति,

जाव–सोहम्मो कप्पो ?

३० उत्तर–गोयमा ! तेसि णं देवाणं अहुणोववण्णाण वा चरिमभवत्थाण वा इमेयारूवे अज्झत्थिए, जाव–समुप्पज्जइ–अहो ! णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी लद्धा, पत्ता जाव–अभिसमण्णागया, जारिसिया णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी जाव–अभिसमण्णागया, तारिसिया णं सक्केणं देविंदेण देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव–अभिसमण्णागया । जारिसिया णं सक्केणं देविंदेण देवरण्णा जाव अभिसमण्णागया, तारिसिया णं अम्हेहि वि जाव–अभिसमण्णागया । तं गच्छामो णं सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो अंतियं पाउब्भवामो, पासामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढिं जाव–अभिसमण्णागयं, पासउ ताव अम्हे वि सक्के देविंदे देवराया दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमण्णागयं, तं जाणामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढिं जाव–अभिसमण्णागयं, जाणउ ताव अम्हे वि सक्के देविंदे, देवराया दिव्वं देविड्ढिं जाव–अभिसमण्णागयं । एवं खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति, जाव–सोहम्मो कप्पो ।

—सेवं भंते ! भंते ! त्ति ।

॥ चमरो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-अहुणोववण्णाण-तत्काल उत्पन्न हुए, चरिमभवत्थाण-भव का अंत होते समय, पासउ-देखें, जाणउ-जानें।

भावार्थ ३० प्रश्न-हे भगवन्! असुरकुमार देव यावत् सौधर्मकल्प तक ऊपर जाते हैं, इसका क्या कारण है?

३० उत्तर-हे गौतम! अधुनोत्पन्न अर्थात् तत्काल उत्पन्न हुए तथा चरम भवस्थ अर्थात् च्यवन की तैयारी वाले देवों को इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न होता है कि अहो! हमें यह दिव्य देवऋद्धि यावत् मिली है, प्राप्त हुई है, सम्मुख आई है। जैसी दिव्य देवऋद्धि यावत् हमें मिली है, यावत् सम्मुख आई है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि यावत् देवेन्द्र देवराज शक्र को मिली है यावत् सम्मुख आई है, और जैसी दिव्य देवऋद्धि देवेन्द्र देवराज शक्र को मिली है यावत् सम्मुख आई है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि यावत् हमें भी मिली है यावत् सम्मुख आई है। तो हम जावें और देवेन्द्र देवराज शक्र के सामने प्रकट होवें और देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा प्राप्त उस दिव्य देवऋद्धि को हम देखें तथा देवेन्द्र देवराज शक्र भी हमारे द्वारा प्राप्त दिव्य देवऋद्धि को देखें। देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा प्राप्त दिव्य देवऋद्धि को हम जानें तथा हमारे द्वारा प्राप्त दिव्य देवऋद्धि को देवेन्द्र देवराज शक्र जानें। इस कारण से हे गौतम! असुरकुमार देव यावत् सौधर्मकल्प तक ऊपर जाते हैं।

सेवं भंते! सेवं भंते!! अर्थात् हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।

चमरेन्द्र सम्बन्धी वृत्तान्त सम्पूर्ण हुआ।

विवेचन-पहले के प्रकरण में यह बतलाया गया था कि भवप्रत्यय वैरानुबन्ध अर्थात् भव सम्बन्धी वैर के कारण असुरकुमार देव सौधर्मकल्प तक जाते हैं। इस प्रकरण में उनके सौधर्मकल्प तक जाने का दूसरा कारण बतलाया गया है। वह यह है कि असुरकुमार देव शक्रेन्द्र की दिव्य देवऋद्धि को देखने और जानने के लिए तथा अपनी दिव्य देवऋद्धि शक्रेन्द्र को दिखलाने और बतलाने के लिए ऊपर सौधर्म कल्प तक जाते हैं।

॥ इति तृतीय शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३-उद्देशक-३

कायिकी आदि पांच क्रिया

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था। जाव-परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव-अंतेवासी मंडियपुत्ते णामं अणगारे पगइभद्दए जाव-पज्जुवासमाणे एवं वयासी-

१ प्रश्न-कइ णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

१ उत्तर-मंडियपुत्ता ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ। तं जहा-काइया, अहिगरणिया, पाओसिया, पारिआवणिया, पाणाइवाय-किरिया।

२ प्रश्न-काइया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?

२ उत्तर-मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-अणुवरय-कायकिरिया य, दुप्पउत्तकायकिरिया य।

३ प्रश्न-अहिगरणिया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?

३ उत्तर-मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-संजोयणाहिगरणकिरिया य, णिवत्तणाहिगरणकिरिया य।

४ प्रश्न-पाओसिया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?

४ उत्तर-मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-जीवपाओ-सिया य, अजीवपाओसिया य।

५ प्रश्न-पारियावणिया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?

५ उत्तर-मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-सहत्थ-पारियावणिया य, परहत्थपारियावणिया य।

६ प्रश्न-पाणाइवायकिरिया णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६ उत्तर-मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-सहत्थ-पाणाइवायकिरिया य, परहत्थपाणाइवायकिरिया य।

कठिन शब्दार्थ-काइया-कायिकी, अहिगरणिया-आधिकरणिकी, पाओसिआ-प्राद्वेषिकी, पारियावणिया-पारितापनिकी, पाणाइवाय किरिया-प्राणातिपातिकी क्रिया, अणुवरयकायकिरिया-अनुपरत-अविरत काय क्रिया, दुप्पउत्तकायकिरिया-दुष्पयुक्त काय क्रिया, संजोयणाहिगरणया-पृथक् रहे हुए अधिकरण के हिस्सों को जोड़ना, निवत्तणाहिगरणया-नये अधिकरण बनाना।

भावार्थ-उस काल उस समय में राजगृह नामका नगर था, यावत् परिषद् धर्मकथा सुन कर वापिस चली गई। उस काल उस समय में भगवान् के अन्तेवासी मण्डितपुत्र नामक अनगार (भगवान् के छठे गणधर) प्रकृति भद्र अर्थात् भद्र स्वभाववाले थे, यावत् पर्युपासना करते हुए वे इस प्रकार बोले-

१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ?

१ उत्तर-हे मण्डितपुत्र ! क्रियाएँ पाँच कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, और प्राणातिपातिकी क्रिया।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! कायिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

२ उत्तर-हे मण्डितपुत्र ! कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है।

यथा—१ अनुपरत-काय क्रिया और २ दुष्प्रयुक्त-काय क्रिया ।

३ प्रश्न—हे भगवन् ! आधिकरणिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

३ उत्तर—हे मण्डितपुत्र ! आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है । यथा—१ संयोजनाधिकरण क्रिया और २ निर्वर्तनाधिकरण क्रिया ।

४ प्रश्न—हे भगवन् ! प्राद्वेषिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

४ उत्तर—हे मण्डितपुत्र ! प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है । यथा—१ जीव प्राद्वेषिकी क्रिया और २ अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया ।

५ प्रश्न—हे भगवन् ! पारितापनिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

५ उत्तर—हे मण्डितपुत्र ! पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है । यथा—१ स्वहस्त पारितापनिकी और २ परहस्त पारितापनिकी ।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! प्राणातिपात क्रिया कितने प्रकार की कही गई है।

६ उत्तर—हे मण्डितपुत्र ! प्राणातिपात क्रिया दो प्रकार की कही गई है । यथा—१ स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया और २ परहस्त प्राणातिपात क्रिया।

विवेचन—दूसरे उद्देशक में चमर के उत्पात के सम्बन्ध में कथन किया गया है । उत्पात का अर्थ है—ऊपर जाना । यह एक प्रकार की क्रिया है । इस पर यह सहज शंका हो सकती है कि क्रिया किसे कहते हैं ? इस शंका के समाधान के लिए इस तीसरे उद्देशक के प्रारम्भ में ही क्रिया का स्वरूप बताया जाता है । कर्म बन्ध की कारण रूप चेष्टा को क्रिया कहते हैं । यहाँ क्रिया के पाँच भेद बतलाये गये हैं । यथा—कायिकी, आधिकरणिकी प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, और प्राणातिपातिकी । जो चय रूप हो, संगृहीत हो उसे 'काय' (शरीर) कहते हैं । उस काया में होने वाली अथवा काया द्वारा होने वाली क्रिया को 'कायिकी क्रिया' कहते हैं । इसके दो भेद हैं—अनुपरत-काय क्रिया और दुष्प्रयुक्त-काय क्रिया । विरति (त्याग वृत्ति) रहित प्राणी की जो शारीरिक क्रिया होती है, उसे 'अनुपरत-काय क्रिया' कहते हैं । यह क्रिया विरति रहित सब प्राणियों को लगती है । दुष्ट रीति से प्रयुक्त शरीर द्वारा होने वाली क्रिया को, अथवा दुष्ट मनुष्य की काया द्वारा होने वाली क्रिया को 'दुष्प्रयुक्त-काय क्रिया' कहते हैं । यह क्रिया प्रमत्त संयत के होती है,

क्योंकि विरति वाले प्राणी के भी प्रमाद होने से उसकी काया दुष्प्रयुक्त ह
जाती है।

जिस अनुष्ठान से अथवा बाह्य खड्गादि शस्त्र से आत्मा नरकादि दुर्गतियों व
अधिकारी होता है, उसे 'अधिकरण' कहते हैं। उस अधिकरण द्वारा होने वाली क्रिया व
'आधिकरणिकी क्रिया' कहते हैं। इसके दो भेद हैं-संयोजनाधिकरण क्रिया और निर्वर्तनाधि
करण क्रिया। संयोजन का अर्थ है-जोड़ना। जैसे कि हल के अलग अलग विभागों को इकट्
करके हल तैयार करना, किसी पदार्थ में विष (जहर) मिला कर एक मिश्रित पदा
तैयार करना, तथा पक्षियों को और मृगों को पकड़ने के लिए तैयार किये जाने वाले यन
के अलग अलग भागों को जोड़कर एक यन्त्र तैयार करना। इन सब क्रियाओं का समावे
'संयोजन' शब्द के अर्थ में होता है। इस प्रकार संयोजन रूप अधिकरण क्रिया को 'संय
जनाधिकरण क्रिया' कहते हैं। तलवार, भाला, बर्छी इत्यादि शस्त्रों की बनावट को 'नि
र्तन' कहते हैं, उस निर्वर्तन रूप अधिकरण क्रिया को 'निर्वर्तनाधिकरण क्रिया' कहते है
प्राद्वेषिकी क्रिया-मत्सर भाव को प्रद्वेष कहते हैं। मत्सर रूप निमित्त को लेकर होने वा
क्रिया अथवा मत्सर द्वारा होने वाली क्रिया अथवा मत्सर रूप क्रिया को 'प्राद्वेषिकी' क्रि
कहते हैं। इसके दो भेद हैं-जीव प्राद्वेषिकी क्रिया और 'अजीव प्राद्वेषिकी' क्रिया। अप
जीव पर तथा दूसरे जीव पर द्वेष करने से लगने वाली क्रिया को 'जीव प्राद्वेषिकी' क्रि
कहते हैं। अजीव पर द्वेष करने से लगने वाली क्रिया को 'अजीव प्राद्वेषिकी' क्रिया कहते हैं
पारितापनिकी क्रिया-परिताप अर्थात् पीड़ा पहुंचाने से लगने वाली क्रिया अथवा परित
रूप क्रिया को 'पारितापनिकी' क्रिया कहते हैं। इसके दो भेद हैं-स्वहस्त पारितापनिकी औ
परहस्त पारितापनिकी। अपने हाथ से अपने जीव को, दूसरे के जीव को तथा दोनों व
परिताप (दुःख की उदीरणा) पहुंचाने से लगने वाली क्रिया को 'स्वहस्त पारितापनिकी क्रिय
कहते हैं। इसी तरह परहस्तपारितापनिकी क्रिया भी समझनी चाहिए। प्राणाति
पात क्रिया-श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियां, मनोबल, वचन बल और कायाबल, ये तीन ब
श्वासोच्छ्वास बल-प्राण और आयुष्य बलप्राण, इन दस प्राणों को जीव से सर्वथा पृथक् क
देना 'प्राणातिपात' कहलाता है। प्राणातिपात से लगने वाली अथवा प्राणातिपात रूप क्रि
को प्राणातिपात क्रिया कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं-स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया और प
हस्त प्राणातिपात क्रिया। अपने हाथ से अपने प्राणों का तथा दूसरों के प्राणों का एवं दोन
के प्राणों का अतिपात करना, स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया कहलाती है। इसी तरह परहस
प्राणातिपात क्रिया के विषय में भी समझना चाहिए।

क्रिया और वेदना

७ प्रश्न–पुव्वं भंते ! किरिया, पच्छा वेयणा ? पुव्वं वेयणा, पच्छा किरिया ?

७ उत्तर–मंडियपुत्ता ! पुव्विं किरिया, पच्छा वेयणा। णो पुव्विं वेयणा पच्छा किरिया।

८ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?

८ उत्तर–हंता, अत्थि।

९ प्रश्न–कहं णं भंते ! समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?

९ उत्तर–मंडियपुत्ता ! पमायपच्चया, जोगनिमित्तं च; एवं खलु समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जइ।

कठिन शब्दार्थ–वेयणा–वेदना, पमायपच्चया–प्रमाद के कारण।

भावार्थ–७ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या पहले क्रिया होती है और पीछे वेदना होती है ? अथवा पहले वेदना होती है और पीछे क्रिया होती है ?

उत्तर–हे मण्डितपुत्र ! पहले क्रिया होती है और पीछे वेदना होती है, परन्तु पहले वेदना और पीछे क्रिया होती है, यह बात नहीं है !

८ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थों के क्रिया होती है ?

८ उत्तर–हाँ, मण्डितपुत्र ! होती है।

९ प्रश्न–हे भगवन् ! श्रमण निर्ग्रन्थों को क्रिया किस प्रकार होती है ? अर्थात् श्रमण निर्ग्रन्थ किस प्रकार क्रिया करते हैं ?

उत्तर-हे मण्डितपुत्र ! प्रमाद के कारण और योग निमित्त (शरीरादि की प्रवृत्ति) से श्रमण निर्ग्रन्थों को क्रिया होती है।

विवेचन-अगले प्रकरण में क्रिया के विषय में कहा गया है। अब क्रियाजन्य कर्म और कर्म जन्य वेदना के सम्बन्ध में कहा जाता है। 'क्रियते इति क्रिया' अर्थात् जो की जाय उसे क्रिया कहते हैं। क्रिया से कर्म उत्पन्न होता है। इसलिए जन्य और जनक में अभेद की विवक्षा करने से कर्म भी क्रिया कहा जा सकता है। अथवा यहाँ 'क्रिया' शब्द का अर्थ 'कर्म' है और कर्म के अनुभव को 'वेदना' कहते हैं। कर्म के बाद वेदना होती है, क्योंकि कर्मपूर्वक ही वेदना होती है। कर्म का सद्भाव पहले होता है और उसके बाद वेदना (कर्म का अनुभव) होती है।

अब क्रिया का स्वामित्व बतलाते हुए कहा जाता है कि श्रमण निर्ग्रन्थों के भी क्रिया होती है। इसके दो कारण हैं-प्रमाद और योग। जैसे कि-प्रमाद-दुष्प्रयुक्त शरीर की चेष्टा जन्य कर्म। योग से-जैसे कि ईर्यापथिकी (मार्ग में चलने की) क्रिया से लगने वाला कर्म। अतः प्रमाद और योग, इन दो कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थों के भी क्रिया होती है।

जीव की एजनादि क्रिया

१० प्रश्न-जीवे णं भंते ! सया समियं एयइ, वेयइ, चलइ, फंदइ, घट्टइ, खुब्भइ, उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ ?

१० उत्तर-हंता, मंडियपुत्ता ! जीवे णं सया समियं एयइ, जाव-तं तं भावं परिणमइ।

११ प्रश्न-जावं च णं भंते ! से जीवे सया समियं जाव-परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवइ ?

११ उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे ।

१२ प्रश्न—से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ—जावं च णं से जीवे सया समियं जाव—अंते अंतकिरिया ण भवइ ?

१२ उत्तर—मंडियपुत्ता ! जावं च णं से जीवे सया समियं जाव—परिणमइ, तावं च णं से जीवे आरंभइ, सारंभइ, समारंभइ; आरंभे वट्टइ, सारंभे वट्टइ, समारंभे वट्टइ; आरंभमाणे, सारंभमाणे, समारंभमाणे, आरंभे वट्टमाणे, सारंभे वट्टमाणे, समारंभे वट्टमाणे बहूणं पाणाणं, भूयाणं, जीवाणं, सत्ताणं, दुक्खावणयाए, सोयावणयाए, जूरावणयाए, तिप्पावणयाए, पिट्टावणयाए, परियावणयाए वट्टइ, से तेणट्ठेणं मंडियपुत्ता ! एवं वुच्चइ जावं च णं से जीवे सया समियं एयइ जाव—परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया ण भवइ ।

कठिन शब्दार्थ—समियं—समित—परिमाण पूर्वक, एयइ—कंपता है, वेयइ—विविध प्रकार से कंपता है, चलइ—चलता है, फंदइ—स्पन्दन क्रिया करता है—थोड़ा चलता है, घट्टइ—घटित होता है—सब दिशाओं में जाता है, खुब्भइ—क्षोभ को प्राप्त होता है, उदीरइ—उदीरता है—प्रबलता पूर्वक प्रेरणा करता है, परिणमइ—परिणमता है—उन उन भावों को प्राप्त होता है, आरंभइ—आरम्भ करता है अर्थात् पृथ्वीकायादि को उपद्रव करता है, सारंभइ—संरम्भ करता है अर्थात् पृथ्वीकायादि जीवों के नाश का संकल्प करता है, समारंभइ—समारम्भ करता है अर्थात् पृथ्वीकायादि जीवों को दुःख पहुँचाता है, वट्टइ—वर्त्तता है, सोआवणयाए—शोक उत्पन्न करके, जूरावणयाए—झूराने—रुलाने, तिप्पावणयाए—आँसू गिराने, पिट्टावणयाए—पिटवाना, अंतकिरिया-अन्तक्रिया अर्थात् मुक्ति ।

भावार्थ—१० प्रश्न—हे भगवन् ! क्या जीव, सदा समित रूप से—परिमाण

पूर्वक कंपता है ? विविध प्रकार से कंपता है ? चलता है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है ? स्पन्दन क्रिया करता है अर्थात् थोड़ा चलता है ? घटित होता है अर्थात् सब दिशाओं में जाता है ? क्षोभ को प्राप्त होता है ? उदीरता है अर्थात् प्रबलतापूर्वक प्रेरणा करता है ? और उन उन भावों में परिणमता है ?

१० उत्तर-हाँ, मण्डितपुत्र ! जीव सदा परिमित रूप से कंपता है, यावत् उन उन भावों में परिणमता है ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! जब तक जीव, परिमित रूप से कंपता है, यावत् उन उन भावों में परिणमता है तब तक क्या उस जीव की अन्तिम समय में (मरण समय में) अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है ?

११ उत्तर-हे मण्डितपुत्र ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि सक्रिय जीव की अन्त क्रिया नहीं होती है ।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! जब तक जीव, परिमित रूप से कंपता है यावत् तब तक उसकी अन्त क्रिया नहीं होती है, ऐसा कहने का क्या कारण है ?

१२ उत्तर-हे मण्डितपुत्र ! जब तक जीव, सदा परिमित रूप से कंपता है, यावत् उन उन भावों में परिणमता है, तब तक वह जीव, आरम्भ करता है, संरम्भ करता है, समारम्भ करता है, आरम्भ में प्रवर्तता है, संरम्भ में प्रवर्तता है, समारम्भ में प्रवर्तता है, आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ करता हुआ, आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ में प्रवर्तता हुआ जीव, बहुत से प्राण, भूत, जीव और सत्वों को दुःख पहुंचाने में, शोक कराने में, झुराने में, टपटप आँसू गिराने में, पिटाने में, त्रास उपजाने में और परिताप कराने में प्रवृत्त होता है, निमित्त कारण बनता है । इसलिए हे मण्डितपुत्र ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जब तक जीव, सदा परिमित रूप से कंपता है, यावत् उन उन भावों में परिणमता है, तब तक वह जीव, मरण समय में अन्तक्रिया नहीं कर सकता है ।

विवेचन-यहाँ क्रिया का प्रकरण होने से जीव की एजनादि क्रिया के विषय में कहा जाता है। यद्यपि यहाँ सामान्य जीव का कथन किया गया है, तथापि यहाँ सयोगी (मनोयोगी,

वचनयोगी, काययोगी) जीव का ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अयोगी जीव के एजनादि क्रियाएं नहीं होती हैं। सयोगी जीव एजन (कम्पन), विशेष एजन (विशेष कम्पन) चलन (एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना), स्पन्दन (थोड़ा चलना), घट्टन (सब दिशाओं में चलना), क्षुभित होता उदीरण आदि क्रियाएं करता है और उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण आदि पर्यायों को प्राप्त होता है। पूर्वोक्त क्रियाओं को करनेवाला जीव सकल कर्म क्षय रूप अन्तक्रिया नहीं कर सकता है। इसका कारण यह है कि उपर्युक्त क्रियाएं करने वाला जीव आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ करता है, इनमें प्रवृत्त होता है। आरम्भादि करता हुआ तथा आरम्भादि में प्रवृत्त होता हुआ जीव, बहुत से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को पीड़ित करता है, दुःखित करता है, त्रास पहुंचाता है, यावत् उनकी हिंसा करता है।

संरम्भ आदि का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है-

संकप्पो संरंभो, परितावकरो भवे समारंभो।
आरंभो उद्दवओ, सव्वनयाणं विसुद्धाणं ॥

अर्थ-पृथ्वीकायादि जीवों की हिंसा करने का संकल्प करना 'संरम्भ' कहलाता है। उन्हें परिताप उपजाना-सन्ताप देना 'समारम्भ' कहलाता है। उन जीवों की हिंसा करना 'आरम्भ' कहलाता है। यह सर्व विशुद्ध नयों का मत है।

क्रिया और कर्त्ता में कथञ्चित् भेद और कथञ्चित् अभेद होता है। यहाँ पर "आरंभ, संरम्भ, समारम्भ करता हुआ जीव' इस वाक्य द्वारा क्रिया और कर्त्ता में अभेद (एकता) बतलाया गया है। और 'आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ में प्रवर्तता हुआ जीव' इस वाक्य द्वारा क्रिया और कर्त्ता में भेद बतलाया गया है। 'आरंभमाणे, आरंभे वट्टमाणे' इत्यादि क्रियाओं का जो दूसरी बार प्रयोग किया गया है, वह उपर्युक्त भेदाभेद की बात को पुष्ट करने के लिए किया गया है।

१३ प्रश्न-जीवे णं भंते ! सया समियं णो एयइ जाव-णो तं तं भावं परिणमइ ?

१३ उत्तर-हंता, मंडियपुत्ता ! जीवे णं सया समियं जाव-णो परिणमइ।

१४ प्रश्न–जावं च णं भंते ! से जीवे नो एयइ जाव–णो तं तं भावं परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवइ ?

१४ उत्तर–हंता, जाव–भवइ ।

१५ प्रश्न–से केणट्ठेणं जाव–भवइ ?

१५ उत्तर–मंडियपुत्ता ! जावं च णं से जीवे सया समियं णो एयइ, जाव–णो परिणमइ, तावं च णं से जीवे णो आरंभइ, णो सारंभइ, णो समारंभइ; णो आरंभे वट्टइ, णो सारंभे वट्टइ, णो समारंभे वट्टइ; अणारंभमाणे, असारंभमाणे, असमारंभमाणे; आरंभे अवट्टमाणे, सारंभे अवट्टमाणे, समारंभे अवट्टमाणे बहूणं पाणाणं, भूयाणं, जीवाणं, सत्ताणं अदुक्खावणयाए, जाव–अपरितावणयाए वट्टइ ।

कठिन शब्दार्थ–अणारंभमाणे–आरंभ नहीं करता हुआ, अवट्टमाणे–प्रवृत्ति नहीं करता हुआ ।

भावार्थ–१३ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या जीव, सदा समित रूप से नहीं कंपता है, यावत् उन उन भावों में परिणत नहीं होता है ?

१३ उत्तर–हे मण्डितपुत्र ! हाँ, जीव, सदा समित नहीं कंपता है, यावत् उन उन भावों को नहीं परिणमता है अर्थात् जीव, निष्क्रिय होता है ।

१४ प्रश्न–हे भगवन् ! जब तक वह जीव, सदा समित नहीं कंपता है, यावत् उन उन भावों को नहीं परिणमता है, तब तक उस जीव की मरण समय में अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है ?

१४ उत्तर-हाँ, मण्डितपुत्र ! ऐसे जीव की अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसे जीव को यावत् मुक्ति होती है, इसका क्या कारण है ?

१५ उत्तर-हे मण्डितपुत्र ! जब वह जीव, सदा समित नहीं कंपता है, यावत् उन उन भावों में नहीं परिणमता है, तब वह जीव, आरम्भ नहीं करता है, संरम्भ नहीं करता है, समारम्भ नहीं करता है, आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ में प्रवृत्त नहीं होता है, आरंभ, संरम्भ, समारंभ नहीं करता हुआ तथा आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ में नहीं प्रवर्तता हुआ जीव, बहुत से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख पहुँचाने में यावत् परिताप उपजाने में निमित्त नहीं बनता है ।

विवेचन-अब अक्रिया के सम्बन्ध में कहा जाता है-शैलेशी अवस्था में योग का निरोध हो जाता है । इसीलिए एजनादि क्रिया नहीं होती । एजनादि क्रिया न होने से वह आरंभादि में प्रवृत्त नहीं होता और इसीलिए वह प्राणियों के दुःखादि का कारण नहीं बनता है । इसलिए योग-निरोध रूप शुक्लध्यान द्वारा अक्रिय आत्मा की सकल कर्मक्षय रूप अन्तक्रिया होती है ।

से जहा णामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा, से णूणं मंडियपुत्ता ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ? हंता, मसमसाविज्जइ ।

से जहा णामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदयबिंदुं पक्खिवेज्जा, से णूणं मंडियपुत्ता ! से उदयबिंदू तत्तंसि अयकवल्लंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ ? हंता विद्धंसमागच्छइ ।

से जहा णामए हरए सिया पुण्णे, पुण्णप्पमाणे, वोलट्टमाणे,

वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठइ ? हंता चिट्ठइ । अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरयंसि एगं महं णावं सयासवं, सयच्छिद्दं ओगाहेज्जा, से णूणं मंडियपुत्ता ! सा णावा तेहिं आसवदारेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणी, पुण्णा, पुण्णप्पमाणा, वोलट्टमाणा, वोसट्टमाणा, समभरघडत्ताए चिट्ठइ ? हंता चिट्ठइ । अहे णं केइ पुरिसे तीसे णावाए सव्वओ समंता आसवदाराइं पिहेइ, पिहित्ता णावा-उस्सिंचणएणं उदयं उस्सिंचिज्जा, से णूणं मंडियपुत्ता ! सा णावा तंसि उदयंसि उस्सिंचिज्जंसि समाणंसि खिप्पामेव उड्ढं उद्दाइ ? हंता, उद्दाइ ।

कठिन शब्दार्थ-तणहत्थयं-घास के पुले को, जायतेयंसि-अग्नि में, मसमसाविज्जइ-जल जाता है, तत्तंसि अयकवलंसि-लोहे की तप्त कड़ाई में, उदयबिंदु पक्खिवेज्जा-पानी की बूँद डाले, खिप्पामेव-शीघ्र, विद्धंसमागच्छइ-नष्ट हो जाती है, हरए-पानी का द्रह, पुण्णे-पूर्ण, वोलट्टमाणे-लबालब भरा हो, वोसट्टमाणे-पानी छलक रहा हो, सयासव सयच्छिद्दं-सैकड़ों छिद्र वाली, आसवदाराइं-पानी आने के मार्ग को, पिहइ-ढक दे, बन्द करदे, उस्सिंचणएणं-उलीचकर, खाली करके, उड्ढं उद्दाइ-ऊपर आवे ।

भावार्थ-जैसे कोई पुरुष, सूखे घास के पूले को अग्नि में डाले, तो क्या हे मण्डितपुत्र ! वह सूखे घास का पूला अग्नि मे डालते ही जल जाता है ? हाँ, भगवन् ! वह जल जाता है ।

जैसे कोई पुरुष, पानी की बूँद को तपे हुए लोह कडाह पर डाले, तो क्या हे मण्डितपुत्र ! तपे हुए लोह कडाह पर डाली हुई वह जलबिन्दू तुरन्त नष्ट हो जाती है ? हाँ, भगवन् ! वह तुरन्त नष्ट हो जाती है ।

कोई एक सरोवर-जो पानी से परिपूर्ण हो, पूर्ण भरा हुआ हो, लबालब भरा हुआ हो, बढ़ते हुए पानी के कारण उससे पानी छलक रहा हो, पानी से

भरे हुए घड़े के समान वह सर्वत्र पानी से व्याप्त हो। उस सरोवर में कोई पुरुष, सैकड़ों छोटे छिद्रोंवाली तथा सैकड़ों बड़े छिद्रोंवाली एक बड़ी नौका को डाल दे, तो क्या हे मण्डितपुत्र ! वह नाव, उन छिद्रों द्वारा पानी से भराती हुई पानी से परिपूर्ण भर जाती है ? वह पानी से लबालब भर जाती है ? उससे पानी छलकने लगता है ? तथा पानी से भरे हुए घड़े की तरह सर्वत्र पानी से व्याप्त हो जाती है ? हाँ, भगवन् ! वह पूर्वोक्त प्रकार से भर जाती है। हे मण्डितपुत्र ! कोई पुरुष, उस नाव के समस्त छिद्रों को बन्द करदे, तथा नाव में भरे हुए पानी को उलीच दे, तो क्या वह तुरन्त पानी के ऊपर आजाती है ? हाँ, भगवन् ! वह तुरन्त पानी के ऊपर आजाती है।

विवेचन—इस विषय को विशेष सरल करने के लिए सूखे घास के पूले को अग्नि में डालने का और तपे हुए लोह कड़ाह पर डाली गई जलबिन्दू का, ये दो उदाहरण दिये गये हैं। इस प्रकार एजनादि रहित मनुष्य के शुक्लध्यान के चतुर्थ भेद रूप अग्नि द्वारा कर्म रूप ईन्धन जल कर भस्म हो जाता है, तब उस जीव की मुक्ति हो जाती है।

निष्क्रिय मनुष्य की ही अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है। यह बात नाव के तीसरे उदाहरण द्वारा भी बतलाई गई है। आत्म-संवृत्त पुरुष की गमनादि क्रिया तो क्या, किन्तु उसके नेत्र का उन्मेष और निमेष रूप क्रिया भी सावधानता पूर्वक होती है। इसलिए उसको केवल ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। उपशान्त-मोह, क्षीण-मोह और सयोगी-केवली, इन तीन गुणस्थानों में रहे हुए जीव को एक सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है, क्योंकि वह सक्रिय है। उसे ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। वह ईर्यापथिकी क्रिया प्रथम समय में बद्ध-स्पृष्ट होती है अर्थात् प्रथम समय में वह कर्म रूप से उत्पन्न होती है, इसलिए वह 'बद्ध' कहलाती है और जीव-प्रदेशों के साथ उसका स्पर्श होता है, इसलिए वह 'स्पृष्ट' कहलाती है। दूसरे समय में उसका वेदन (अनुभव) हो जाता है, इसलिए वह 'वेदित *' कहलाती है। तीसरे समय में वह जीव-प्रदेशों से पृथक् हो जाती है, इसलिए वह 'निर्जीर्ण' कहलाती है। तीसरे समय में जब वह निर्जीर्ण हो जाती है, तो भविष्यत् काल में वह 'अकर्म' रूप हो जाती है। यद्यपि तीसरे समय में ही कर्म, अकर्म रूप हो जाता है, तथापि उस समय भाव-कर्म की

* एक समय में उदीरणा और उदय संभवित नहीं है। इसलिए यहाँ 'उदीरित' शब्द का अर्थ 'वेदित' किया गया है।

रहितता होने से और द्रव्य कर्म का सद्भाव होने से 'तीसरे समय में कर्म निर्जीर्ण हुआ'–ऐसा व्यवहार होता है और तत्पश्चात् चतुर्थ आदि समयों में 'कर्म अकर्म हुआ'–ऐसा व्यवहार होता है।

एवामेव मंडियपुत्ता ! अत्तत्तासंवुडस्स अणगारस्स ईरियासमियस्स जाव-गुत्तबंभयारिस्स, आउत्तं गच्छमाणस्स, चिट्ठमाणस्स, णिसीयमाणस्स, तुयट्टमाणस्स, आउत्तं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणं गेण्हमाणस्स, णिक्खिवमाणस्स, जाव-चक्खुपम्हणिवायमवि वेमाया सुहुमा ईरियावहिया किरिया कज्जइ, सा पढमसमयबद्धपुट्ठा, बिईयसमयवेइया, तईयसमयणिज्जरिया, सा बद्धा, पुट्ठा, उदीरिया, वेइया, णिज्जिण्णा, सेयकाले अकम्मं वा वि भवइ। से तेणट्ठेणं मंडियपुत्ता ! एवं वुच्चइ-जावं च णं से जीवे सया समियं णो एयइ, जाव-अंते अंतकिरिया भवइ।

कठिन शब्दार्थ-अत्तत्ता संवुडस्स-आत्मा में ही संवृत्त हुए, आउत्तं-उपयोग युक्त, चिट्ठमाणस्स-ठहरता हुआ, णिसीयमाणस्स-बैठता हुआ, तुयट्टमाणस्स-सोता हुआ, चक्खुपम्हणिवायमवि-आँखों की पलकों को टमकाते, वेमाया-विमात्रा से।

भावार्थ-हे मण्डितपुत्र ! इसी तरह अपनी आत्मा द्वारा आत्म संवृत, ईर्यासमिति आदि पांच समितियों से समित्त, मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियों से गुप्त, ब्रह्मचारी तथा उपयोगपूर्वक गमन करने वाले, सावधानी पूर्वक ठहरने वाले, सावधानता सहित बैठनेवाले, सावधानतापूर्वक सोनेवाले तथा सावधानतापूर्वक वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण आदि को उठानेवाले और रखनेवाले अनगार को अक्षिनिमेष (आँख की पलक टमकारने) मात्र समय में विमात्रापूर्वक सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। वह प्रथम समय में बद्ध-स्पृष्ट, दूसरे समय में वेदित

और तीसरे समय में निर्जीर्ण हो जाती है। अर्थात् बद्ध-स्पृष्ट, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण हुई वह क्रिया, भविष्यत्काल में अकर्म रूप हो जाती है। इसलिए हे मण्डितपुत्र ! जब तक वह जीव, सदा समित नहीं कंपता है, यावत् उन उन भावों को नहीं परिणमता है, तब मरण के समय में उसकी अन्तक्रिया (मुक्ति) हो जाती है। इस कारण से ऐसा कहा गया है।

विवेचन-'अत्तत्तासंवुडस्स' इस पद से यह सूचित किया गया है कि आश्रववाला संयत भी कर्म का वन्ध करता है, तव असंयत जीव कर्म का वन्ध करे, इसमें कहना ही क्या ? अर्थात् असंयत जीव तो निरन्तर कर्मों का वन्ध करता ही है। इससे यह वतलाया गया है कि कर्म रूप पानी से भरी जाती हुई जीव रूप नौका, नीचे डूवती ही है। जो नौका छिद्र रहित होती है, वह पानी में डूवती नहीं, किन्तु पानी पर तैरती है। इसी प्रकार आश्रव रहित निष्क्रिय जीव, संसार समुद्र से तिर जाता है।

प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत का समय

१६ प्रश्न-पमत्तसंजयस्स णं भंते ! पमत्तसंजमे वट्टमाणस्स सव्वा वि य णं पमत्तद्धा कालओ केवच्चिरं होइ ?

१६ उत्तर-मंडियपुत्ता ! एगजीवं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा।

१७ प्रश्न-अप्पमत्तसंजयस्स णं भंते ! अप्पमत्तसंजमे वट्टमाणस्स सव्वा वि णं अप्पमत्तद्धा कालओ केवच्चिरं होइ ?

१७ उत्तर-मण्डियपुत्ता ! एगजीवं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। णाणाजीवे सव्वद्धं।

—सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे मंडियपुत्ते अण-

गारे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ–पमत्तद्धा–प्रमत्त-काल, केवच्चिरं–कितना, पडुच्च–अपेक्षा से, देसूणा–कुछ कम, णाणाजीवे–अनेक प्रकार के जीव, सव्वद्धा–सर्व-काल।

भावार्थ–१६ प्रश्न–हे भगवन्! प्रमत्त-संयम का पालन करते हुए प्रमत्त-संयमी का सब काल कितना होता है?

१६ उत्तर–हे मण्डितपुत्र! एक जीव की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि, इतना प्रमत्त-संयम का काल होता है। अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वाद्धा (सब काल) प्रमत्त-संयम का काल होता है।

१७ प्रश्न–हे भगवन्! अप्रमत्त-संयम का पालन करते हुए अप्रमत्त-संयमी का सब मिल कर अप्रमत्त-संयम काल कितना होता है?

१७ उत्तर–हे मण्डितपुत्र! एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि, इतना अप्रमत्त-संयम का काल होता है। अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वाद्धा (सर्व काल) अप्रमत्त-संयम का काल है।

सेवं भंते! सेवं भंते!! हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर भगवान् मण्डितपुत्र अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करते हैं, वन्दना नमस्कार करके संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन–श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रमाद के कारण क्रिया लगती है, यह बात पहले बतलाई गई थी। अब यह बतलाया जाता है कि–संयत में प्रमत्तता और अप्रमत्तता कितने समय तक रहती है? इस विषय में प्रश्न करते हुए कहा गया है कि–प्रमत्त-संयत का सब काल, काल की अपेक्षा कितना होता है?

शंका–यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि इस सूत्र में "कालओ" और 'कियच्चिरं' ये दो शब्द क्यों दिये गये हैं? क्योंकि 'कालओ' इस शब्द का अर्थ 'कियच्चिरं' इस शब्द में आ जाता है। फिर सूत्र में 'कालओ' शब्द देने की क्या आवश्यकता है?

समाधान-'कालओ' यह शब्द 'क्षेत्र' का व्यवच्छेद करने के लिये दिया गया है, क्योंकि क्षेत्र विषयक प्रश्नों में भी 'कियच्चिरं' शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे कि-'ओहिणाणं खेत्तओ कियच्चिरं' अर्थात् अवधिज्ञान क्षेत्र की अपेक्षा कहाँ तक होता है? अवधिज्ञान, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात द्वीप समुद्र पर्यन्त होता है। काल की अपेक्षा अवधिज्ञान, साधिक (कुछ अधिक) छासठ सागरोपम होता है। इसलिए सूत्र में जो 'कालओ' शब्द दिया है, वह ठीक है और आवश्यक है।

प्रमत्त संयम का काल एक जीव की अपेक्षा एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वाद्धा (सर्व काल) है।

प्रमत्तसंयम का जघन्य काल एक समय, इस प्रकार घटित होता है कि-प्रमत्त संयम को प्राप्त करने के पश्चात् तुरन्त ही एक समय बीतने पर उसका मरण हो जाय। इस अपेक्षा जघन्य काल एक समय है। प्रमत्तगुणस्थानक और अप्रमत्त गुणस्थानक, इन दोनों गुणस्थानों का प्रत्येक का समय अन्तर्मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालवाले ये दोनों गुणस्थानक क्रम क्रम से बदलते रहते हैं, इन दोनों का सम्मिलित उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है, क्योंकि संयमी मनुष्य की उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटि होती है। इस प्रकार पूर्वकोटि आयुष्य वाला मनुष्य आठ वर्ष बीतने पर संयम अंगीकार करता है। अप्रमत्त के अन्तर्मुहूर्तों की अपेक्षा प्रमत्त के अन्तर्मुहूर्त बड़े होते हैं। इस प्रकार प्रमत्त के सब अन्तर्मुहूर्तों को मिलाने से देशोनपूर्व कोटि काल होता है।

इस विषय में अन्य आचार्यों का तो ऐसा कहना है कि प्रमत्त संयत का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष कम पूर्व-कोटि होता है।

जिस प्रकार प्रमत्त संयत का कथन किया गया है, उसी प्रकार अप्रमत्त संयत के सम्बन्ध में भी कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि अप्रमत्त संयत का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि अप्रमत्त गुणस्थानक में रहा हुआ जीव, अन्तर्मुहूर्त के बीच में मरता नहीं है। इस विषय में चूर्णिकार का मत तो इस प्रकार है कि-प्रमत्त संयत को छोड़कर बाकी सब सर्वविरत मनुष्य, अप्रमत्त होते हैं, क्योंकि उनमें प्रमाद का अभाव है। ऐसा कोई उपशम श्रेणी करता हुवा जीव एक मुहूर्त के बीच में ही काल कर जाय, तो उसके लिये जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त लब्ध होता है। और देशोन पूर्व-कोटि काल तो केवलज्ञानी की अपेक्षा से घटित होता है।

लवण समुद्र का प्रवाह

१८ प्रश्न-"भंते !" त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे चाउद्दस-ट्ठमु-द्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु अइरेगं वड्ढइ वा ? हायइ वा ?

१८ उत्तर-जहा जीवाभिगमे लवणसमुद्दवत्तव्वया णेयव्वा। जाव-लोयट्ठिई, लोयाणुभावे,

सेवं भंते ! भंते ! त्ति जाव विहरइ ।

तइओ किरिआ उद्देसो सम्मत्तो

कठिन शब्दार्थ-कम्हाणं-किसलिए, अतिरेगं-सिवाय, हायई-कम होता है, लोयट्ठिई -लोक स्थिति, लोयाणुभावे-लोकानुभाव ।

भावार्थ-१८ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा-

हे भगवन् ! लवण समुद्र चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन कैसे अधिक बढ़ता है और कैसे अधिक घटता है ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! जैसा जीवाभिगम सूत्र में लवण समुद्र के संबंध में कहा है, वैसा यहाँ पर भी जान लेना चाहिए, यावत् 'लोकस्थिति, लोकानुभाव' इस शब्द तक कहना चाहिए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् !

यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन–प्रमत्तता और अप्रमत्तता को लेकर 'सर्वाद्धा' का कथन किया गया है। अतः अब सर्वाद्धाभावी अन्य पदार्थों का निरूपण करने के लिये लवण समुद्र की जल वृद्धि और हानि विषयक प्रश्न किया गया है। इस प्रश्न के उत्तर के लिये जीवाभिगम सूत्र की भलामण दी गई है। जीवाभिगम सूत्र में कही हुई लवण समुद्र सम्बन्धी वक्तव्यता इस प्रकार है–

प्रश्न–हे भगवन् ! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन लवण समुद्र का जल अधिक क्यों बढ़ता है और अधिक क्यों घटता है ?

उत्तर–लवण समुद्र के बीच में चारों दिशाओं में चार महापाताल कलश हैं। प्रत्येक का परिमाण एक लाख योजन है। उनके नीचे के त्रिभाग में वायु है। बीच के भाग में जल और वायु है और ऊपर के भाग में केवल जल है। इन चार महापाताल कलशों के अतिरिक्त और भी छोटे छोटे पाताल कलश हैं। उनकी संख्या ७८८४ है। उनका परिमाण एक एक हजार योजन का है। उनमें भी पूर्वोक्त रीति से वायु, जलवायु और जल है। उनके वायु विक्षोभ से लवण समुद्र के जल में पूर्वोक्त तिथियों में वृद्धि और हानि होती है।

लवण समुद्र की शिखा का विष्कंभ (चौड़ाई) दस हजार योजन है और उसकी ऊंचाई सोलह हजार योजन है। उसके ऊपर आधा योजन जल वृद्धि और जल हानि होती है। इत्यादि।

प्रश्न–हे भगवन् ! लवण समुद्र जम्बूद्वीप को अपने पानी के प्रवाह से नहीं डूबाता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर–अरिहन्त आदि महापुरुषों के प्रभाव से वह नहीं डूबाता है तथा लोक की स्थिति ही ऐसी है। लोक का प्रभाव ही ऐसा है।

॥ इति तृतीय शतक का तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३-उद्देशक-४

अनगार की वैक्रिय शक्ति

१ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देवं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जायमाणं जाणइ पासइ ?

१ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगईए देवं पासइ, णो जाणं पासइ; अत्थेगईए जाणं पासइ, णो देवं पासइ; अत्थेगईए देवं पि पासइ, जाणंपि पासइ; अत्थेगईए णो देवं पासइ, णो जाणं पासइ ।

२ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देविं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जायमाणं जाणइ पासइ ?

२ उत्तर-गोयमा ! एवं चेव ।

३ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देवं सदेवीयं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जायमाणं जाणइ पासइ ?

३ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगईए देवं सदेवीयं पासइ, णो जाणं पासइ; एएणं अभिलावेणं चत्तारि भंगा ।

४ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं अंतो पासइ, बाहिं पासइ ?

४ उत्तर-चउभंगो । एवं-किं मूलं पासइ, कंदं पासइ ? चउभंगो । मूलं पासइ, खंधं पासइ ? चउभंगो । एवं मूलेणं बीयं

संजोएयव्वं, एवं कंदेण वि समं संजोएयव्वं जाव-वीयं। एवं जाव-पुप्फेण समं वीयं संजोएयव्वं।

५ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं फलं पासइ, वीयं पासइ ?

५ उत्तर-चउभंगो।

कठिन शब्दार्थ-भावियप्पा-भावितात्मा-संयम और तप से आत्मा को प्रभावित रखने वाले, समुग्घाएणं-समुद्घात-एकाग्रता युक्त प्रयत्न, जाणरूवेणं-यान रूप से, जायमाणं-जाते हुए, अत्थेगइए-कोई एक, अभिलावेणं-अभिलाप से-कथन से, चउभंगो-चतुर्भंग, संजोएयव्वं-संयोग करना।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर यान रूप से जाते हुए देव को जानते और देखते हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! कोई तो देव को देखते हैं, किन्तु यान को नहीं देखते हैं; कोई यान को देखते हैं, किन्तु देव को नहीं देखते हैं; कोई देव को भी देखते हैं और यान को भी देखते हैं और कोई देव को भी नहीं देखते और यान को भी नहीं देखते हैं।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत यान रूप से जाती हुई देवी को जानते और देखते हैं ?

२ उत्तर-हे गौतम ! जैसा देव के विषय में कहा, वैसा ही देवी के विषय में भी जानना चाहिए।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत यान रूप से जाते हुए देवी सहित देव को जानते और देखते हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! कोई तो देवी सहित देव को देखते हैं, परन्तु यान को नहीं देखते हैं। इत्यादि चार भंग कहना चाहिए।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, वृक्ष के आन्तरिक भाग

को देखते हैं या बाहरी भाग को देखते हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से चार भंग कहना चाहिए। इसी तरह क्या मूल को देखते हैं ? क्या कन्द को देखते हैं ? हे गौतम ! पहले की तरह चार भंग कहने चाहिए। क्या मूल को देखते हैं ? क्या स्कन्ध को देखते हैं ? हे गौतम ! यहाँ भी चार भंग कहना चाहिए। इस तरह मूल के साथ बीज तक संयुक्त करके कहना चाहिए। इसी प्रकार कन्द के साथ यावत् बीज तक कहना चाहिए। इसी तरह यावत् पुष्प का बीज तक संयोग करके कहना चाहिए।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, वृक्ष के फल को देखते हैं, या बीज को देखते हैं ?

५ उत्तर-हे गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से चार भंग कहना चाहिए।

विवेचन-तीसरे उद्देशक में क्रिया के सम्बन्ध में कथन किया गया है। वह क्रिया ज्ञानियों के प्रत्यक्ष होती है। इसलिये अब उस क्रिया की विचित्रता का कथन इस चौथे उद्देशक में किया जाता है।

यहाँ प्रश्न में अनगार के लिये 'भावितात्मा' विशेषण दिया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रायः करके तप संयम से भावितात्मावाले अनगारों को ही अवधिज्ञानादि लब्धियाँ होती हैं। प्रश्न यह किया गया है कि भावितात्मा अनगार, वैक्रिय रूप बनाकर विमान द्वारा जाते हुए देव को अपने ज्ञान द्वारा जानते हैं और दर्शन से देखते हैं ? इसके उत्तर में चौभंगी कही गई है, क्योंकि अवधिज्ञान की विचित्रता है। कोई अवधिज्ञानी, देव को देखता है, किंतु विमान को नहीं। कोई विमान को देखता है, किन्तु देव को नहीं। कोई देव और विमान दोनों को देखता है और कोई देव और विमान दोनों को ही नहीं देखता है। इसी तरह देवी की और देव सहित देवी की, प्रत्येक की चौभंगी कहनी चाहिए।

इसी प्रकरण में मूल, कन्द यावत् बीज तक प्रश्न किये गये हैं। मूल आदि दस पद ये हैं:-मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, (छाल) शाखा, प्रवाल (अंकुर) पत्र, पुष्प, फल, बीज।

इन दस पदों के द्विक संयोगी ४५ भंग होते हैं यथा-

१ मूल-कन्द (धड़) २ मूल-स्कन्ध (मोटा डाल) ३ मूल-छाल (त्वचा) ४ मूल-

शाखा (डाली) ५ मूल-प्रवाल (अंकुर) ६ मूल-पत्र ७ मूल-पुष्प ८ मूल-फल ९ मूल-वीज १०। कन्द-स्कन्ध ११ कन्द-छाल १२ कन्द-शाखा १३ कन्द-प्रवाल १४ कन्द-पत्र १५ कन्द-पुष्प १६ कन्द-फल १७ कन्द-वीज। १८ स्कन्ध-छाल १९ स्कन्ध-शाखा २० स्कन्ध-प्रवाल २१ स्कन्ध-पत्र २२ स्कन्ध-पुष्प २३ स्कन्ध-फल २४ स्कन्ध-वीज। २५ छाल-शाखा २६ छाल-प्रवाल २७ छाल-पत्र २८ छाल-पुष्प २९ छाल-फल ३० छाल-वीज। ३१ शाखा-प्रवाल ३२ शाखा-पत्र ३३ शाखा-पुष्प ३४ शाखा-फल ३५ शाखा-वीज। ३६ प्रवाल-पत्र ३७ प्रवाल-पुष्प ३८ प्रवाल-फल ३९ प्रवाल-वीज। ४० पत्र-पुष्प ४१ पत्र-फल ४२ पत्र-वीज। ४३ पुष्प-फल ४४ पुष्प-वीज। ४५ फल-वीज।

इन ४५ ही पदों में से प्रत्येक पद को लेकर चौभंगी कहनी चाहिये।

वायुकाय का वैक्रिय

६ प्रश्न-पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं इत्थिरूवं वा पुरिसरूवं वा हत्थिरूवं वा जाणरूवं वा एवं जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणियरूवं वा विउव्वित्तए ?

६ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, वाउकाए णं विउव्वेमाणे एगं महं पडागासंठियरूवं विउव्वइ।

७ प्रश्न-पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं पडागासंठियं रूवं विउव्वित्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?

७ उत्तर-हंता, पभू।

८ प्रश्न-से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ ?

८ उत्तर-गोयमा ! आयड्ढीए गच्छइ, णो परिड्ढीए गच्छइ,

जहा आयड्ढीए, एवं चेव आयकम्मुणा वि, आयप्पयोगेण वि भाणियव्वं ।

९ प्रश्न-से भंते ! किं ऊसिओदयं गच्छइ, पयओदयं गच्छइ ?

९ उत्तर-गोयमा ! ऊसिओदयं पि गच्छइ, पयओदयं पि गच्छइ ।

१० प्रश्न-से भंते ! किं एगओपडागं गच्छइ, दुहओपडागं गच्छइ ?

१० उत्तर-गोयमा ! एगओपडागं गच्छइ, नो दुहओपडागं गच्छइ ।

११ प्रश्न-से णं भंते ! किं वाउकाए पडागा ?

११ उत्तर-गोयमा ! वाउकाए णं से, णो खलु सा पडागा ।

कठिन शब्दार्थ-महं-बड़ा, जाणं-यान-शकट-गाड़ी, जुग्ग-युग्य-वेदिका से युक्त दो हाथ लम्बा वाहन+, गिल्ली-हाथी की अंबाड़ी, थिल्ली-घोड़े का पलाण, लाट देश में इसे 'थिल्ली' कहते हैं, सीअ-शिविका-पालखी, संदमाणीय-स्यन्दमानिका-पुरुष जितनी लम्बाई वाला एक वाहन विशेष जिसको 'म्याना' कहते हैं, पडागा संठियं-पताका-ध्वजा के आकार, आयड्ढीए-अपनी लब्धि से, परिड्ढीए-दूसरे की शक्ति से, आयप्पयोगेणं-आत्म प्रयोग से, ऊसिओदयं--उच्छ्रितोदय-ऊँची उठी हुई, पयओदयं-नीचे गिरी हुई ।

भावार्थ-६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वायुकाय एक बड़ा स्त्री रूप, पुरुष रूप, हस्ति रूप, यान रूप और इसी तरह युग्य (रिक्सागाड़ी) गिल्ली (अम्बारी) थिल्ली (घोड़े का पलाण) शिविका (शिखर के आकार से ढका हुआ एक प्रकार

+ वर्त्तमान में सिंहलद्वीप (सिलोन-कोलम्बो) में 'गोल' नाम का एक तालुका (जिला) है। उसमें प्रायः इस 'युग्य' सवारी का ही विशेष प्रचलन है, जिसको 'रिक्सागाड़ी' कहते हैं ।

का वाहन-पालखी) स्यन्दमानिका (म्याना) इन सब के रूपों की विकुर्वणा कर सकती है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् वायुकाय, उपर्युक्त रूपों की विकुर्वणा नहीं कर सकती । किन्तु विकुर्वणा करती हुई वायुकाय, एक बड़ी पताका के आकार जैसे रूप की विकुर्वणा करती है ।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वायुकाय, एक बड़ी पताका के आकार जैसे रूप की विकुर्वणा करके अनेक योजन तक गति कर सकती है ?

७ उत्तर-हां, गौतम ! वायुकाय ऐसा कर सकती है ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह वायुकाय, आत्मऋद्धि से गति करती है, या परऋद्धि से गति करती है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! वह वायुकाय, आत्म ऋद्धि से गति करती है, किन्तु परऋद्धि से गति नहीं करती । इसी तरह से वह आत्मकर्म से और आत्मप्रयोग से भी गति करती है । इस तरह कहना चाहिए ।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह वायुकाय, उच्छ्रित-पताका (उठी हुई ध्वजा) के आकार से गति करती है ? या पतित-पताका (पड़ी हुई ध्वजा) के आकार से गति करती है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! वह उच्छ्रित-पताका और पतित-पताका, इन दोनों आकार से गति करती है ।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वायुकाय, एक दिशा में एक पताका के समान रूप बना कर गति करती है, या दो दिशाओं में दो पताका के समान रूप बना कर गति करती है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! वह वायुकाय, एक दिशा में एक पताका के आकार रूप बना कर गति करती है, किन्तु दो दिशाओं में दो पताका के आकार वाला रूप बना कर गति नहीं करती ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! तो क्या वह वायुकाय, पताका है ?

११ उत्तर-हे गौतम ! वह वायुकाय पताका नहीं है, किन्तु वायुकाय है ।

विवेचन-वैक्रिय शक्ति का प्रकरण चल रहा है, इसलिए उसीसे सम्बन्धित बात यहाँ कही जाती है।

वायुकाय का स्वरूप 'पताका' के आकार है, इसलिए वैक्रिय अवस्था में भी वायु पताका के आकार ही रहती है। वह ऊंची पताका के आकार अर्थात् हवा से उड़ती हुई ध्वजा के आकार और पतित-पताका अर्थात् हवा से न उड़ती हुई ध्वजा, दोनों के आकार होकर गति करती है। वह एक दिशा में एक ध्वजा के आकार होकर गति करती है, किन्तु दो दिशाओं में दो ध्वजा के आकार होकर गति नहीं करती। वह अपनी लब्धि द्वारा, अपनी क्रिया द्वारा और अपने प्रयोग द्वारा गति करती है, किन्तु परऋद्धि, परक्रिया और पर-प्रयोग द्वारा गति नहीं करती। वह शकट पालखी, पलाण, अम्बारी, स्यन्दमानिका (म्याना) के आकार रूप नहीं बना सकती। किन्तु वैक्रिय रूप बनाती हुई वायुकाय, पताका के आकार ही रूप बनाती है।

मेघ का विविध रूपों में परिणामन

१२ प्रश्न-पभू णं भंते ! बलाहगे एगं महं इत्थिरूवं वा, जाव-संदमाणियरूवं वा परिणामेत्तए ?

१२ उत्तर-हंता, पभू ।

१३ प्रश्न-पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं इत्थिरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?

१३ उत्तर-हंता, पभू ।

१४ प्रश्न-से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ ?

१४ उत्तर-गोयमा ! णो आयड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ; एवं णो आयकम्मुणा, परकम्मुणा; णो आयपयोगेणं, परप्पयोगेणं; ऊसिओदयं वा गच्छइ, पयओदयं वा गच्छइ।

१५ प्रश्न-से भंते ! किं वलाहए इत्थी ?

१५ उत्तर-गोयमा ! वलाहए णं से, णो खलु सा इत्थी, एवं पुरिसे, आसे, हत्थी।

१६ प्रश्न-पभू णं भंते ! वलाहए एगं महं जाणरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमेत्तए ?

१६ उत्तर-जहा इत्थिरूवं तहा भाणियव्वं । णवरं-एगओचक्कवालं पि, दुहओचक्कवालं पि गच्छइ-भाणियव्वं । जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीया-संदमाणियाणं तहेव।

कठिन शब्दार्थ-(वलाहगे) वलाहक-मेघ। (आसे) अश्व-घोड़ा। चक्कवालं) चक्रवाल-पहिया।

भावार्थ-१२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वलाहक (मेघ) एक बड़ा स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप में परिणत होने में समर्थ है ?

१२ उत्तर-हाँ, गौतम ! वलाहक ऐसा होने में समर्थ है।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वलाहक, एक बड़ा स्त्रीरूप बनकर अनेक योजन तक जा सकता है ?

१३ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह जा सकता है।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह वलाहक, आत्मऋद्धि से गति करता है, या परऋद्धि से गति करता है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! वह आत्मऋद्धि से गति नहीं करता, किन्तु परऋद्धि से गति करता है। इसी तरह आत्मकर्म (आत्म क्रिया) से और आत्म-प्रयोग से गति नहीं करता, परन्तु परकर्म और पर-प्रयोग से गति करता है। वह उच्छ्रित-पताका (ऊंची ध्वजा-हवा से उड़ती हुई ध्वजा) और पतित-पताका (हवा से नहीं उड़ती हुई ध्वजा-गिरी हुई ध्वजा) दोनों के आकार रूप से गति करता है।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह बलाहक स्त्री है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! वह बलाहक स्त्री नहीं है, परन्तु बलाहक (मेघ) है। जिस प्रकार स्त्री के सम्बन्ध में कहा, उसी तरह पुरुष, घोड़ा, हाथी के विषय में भी कहना चाहिये। अर्थात् वह बलाहक पुरुष, घोड़ा और हाथी नहीं है, किन्तु बलाहक (मेघ) है।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह बलाहक, एक बड़ा यान (शकट-गाड़ी) का रूप बनकर अनेक योजन तक जा सकता है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! जैसे स्त्रीरूप के सम्बन्ध में कहा उसी तरह यान के सम्बन्ध में भी कहना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि वह यान (गाड़ी) के एक तरफ चक्र (पहिया) रखकर भी चल सकता है और दोनों तरफ चक्र रखकर भी चल सकता है। इसी तरह युग्य (रिक्सा गाड़ी) गिल्ली (अम्बारी) थिल्लि (घोड़े का पलाण) शिविका (पालखी) स्यन्दमानिका (म्याना) के रूपों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये।

विवेचन-रूप वदलने की क्रिया का प्रकरण चल रहा है। इसलिए आकाश में मेघों के जो अनेक रूप दिखाई देते हैं, उनके विषय में कहा जाता है। मेघ अजीव होने से उसमें विकुर्वणा शक्ति नहीं है। इसलिये उसके लिये 'विउव्वित्तए' शब्द न देकर 'परिणामेत्तए' शब्द दिया है। क्यों कि स्वभाव रूप परिणाम तो मेघों में भी होता है। मेघ अचेतन है। इसलिये वह आत्म ऋद्धि, आत्मकर्म (आत्म क्रिया) और आत्म प्रयोग से गति नहीं करता, परन्तु वायु अथवा देवादि द्वारा प्रेरित होकर करता है। इसलिये कहा गया है कि मेघ परऋद्धि, परकर्म (पर क्रिया) और पर प्रयोग से गति करता है।

जैसा स्त्री के रूप के सम्बन्ध में कहा गया है, वैसा ही युग्य, गिल्लि, थिल्लि, शिविका और सयन्दमानिका इन सब के रूप परिणमन सम्बन्धी सूत्र कहना चाहिये। केवल यान (शकट-गाड़ी) के विषय में विशेषता है। जो कि ऊपर सूत्र द्वारा कही गई है। क्यों कि चक्र (पहिया) सिर्फ गाड़ी के ही होता है। युग्य, गिल्लि, थिल्लि आदि के पहिया नहीं होता, इसलिये उनका कथन तो स्त्री रूप परिणमन के समान ही कहना चाहिये।

उत्पन्न होनेवाले जीवों की लेश्या

१७ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किंलेसेसु उववज्जइ ?

१७ उत्तर-गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ, तल्लेसेसु उववज्जइ, तं जहा-कण्हलेसेसु वा, णीललेसेसु वा, काउ-लेसेसु वा; एवं जस्स जा लेस्सा सा तस्स भाणियव्वा।

१८ प्रश्न-जाव-जीवे णं भंते ! जे भविए जोइसिएसु उव-वज्जित्तए पुच्छा ?

१८ उत्तर-गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तं जहा-तेउलेसेसु।

१९ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जे भविए वेमाणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किंलेसेसु उववज्जइ ?

१९ उत्तर-गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तं जहा-तेउलेसेसु वा, पम्हलेसेसु वा, सुक्क-

लेसेसु वा,

कठिन शब्दार्थ—जल्लेसाइं—जिस लेश्या के, परियाइत्ता—ग्रहण करके, भविए—होने योग्य।

भावार्थ—१७ प्रश्न—हे भगवन् ! जो जीव, नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है। वह कैसी लेश्यावालों में उत्पन्न होता ?

१७ उत्तर—हे गौतम ! जीव, जैसी लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है, वैसी ही लेश्यावालों में वह उत्पन्न होता है। वे इस प्रकार हैं—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या। इस तरह जिसकी जो लेश्या हो, उसकी वह लेश्या कहनी चाहिए। यावत् व्यन्तर देवों तक कहना चाहिए।

१८ प्रश्न—हे भगवन् ! जो जीव, ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य होता है, वह कैसी लेश्यावालों में उत्पन्न होता है ?

१८ उत्तर—हे गौतम ! जो जीव, जैसी लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है वह वैसी ही लेश्या वालों में उत्पन्न होता है। यथा—एक तेजोलेश्या।

१९ प्रश्न—हे भगवन् ! जो जीव, वैमानिक देवों में उत्पन्न होने योग्य होता है, वह कैसी लेश्यावालों में उत्पन्न होता है ?

१९ उत्तर—हे गौतम ! जो जीव जैसी लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है, वह वैसी ही लेश्या वालों में उत्पन्न होता है। यथा—तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या।

विवेचन—परिणमत (परिवर्तन) सम्वन्धी प्रकरण चल रहा है, इसलिये उसी के सम्वन्ध में दूसरी वात कही जाती है। जिससे आत्मा, कर्मों के साथ श्लिष्ट होती है, उसे 'लेश्या' कहते हैं। लेश्या के सम्वन्ध में कहा जा रहा है। जिस किसी भी लेश्या के द्रव्यों को भाव परिणाम पूर्वक ग्रहण करके ही अर्थात् आत्मा में अमुक नियत लेश्या का असर होने के पश्चात् ही जीव मरण को प्राप्त होता है और जिस लेश्या के द्रव्य ग्रहण किये होते हैं, उसी लेश्यावाले नारक आदि में जीव, उत्पन्न होता है। जैसा कि कहा है—

सव्वाहिं लेसाहिं पढमे समयम्मि संपरिणयाहिं ।
नो कस्स वि उववाओ परे भवे अत्थि जीवस्स ॥
सव्वाहिं लेसाहिं चरिमे समयम्मि संपरिणयाहिं ।
न वि कस्स वि उववाओ परे भवे अत्थि जीवस्स ॥
अंतमुहुत्तम्मि गये अंतमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहिं परिणयाहिं जीवा गच्छंति परलोयं ॥

अर्थ-जिस समय लेश्या के परिणाम का प्रथम समय होता है, उस समय किसी भी जीव का परभव में उपपात (जन्म) नहीं होता और जिस समय लेश्या के परिणाम का अन्तिम समय होता है, उस समय भी किसी भी जीव का परभव में उपपात नहीं होता लेश्या के परिणाम को अन्तर्मुहूर्त बीत जाने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव, परलोक में जाते हैं ।

मूल में नारक सम्बन्धी सूत्र कह कर फिर 'एवं' शब्द से चौवीस दण्डकों में से जो दण्डक शेष रहे हैं, उन सब का अतिदेश हो जाता है, तथापि ज्योतिषी और वैमानिक देवों के लिये जो अलग सूत्र कहा गया है, इसका कारण यह है कि ज्योतिषी और वैमानिक देवों में प्रशस्त (उत्तम) लेश्या होती है । इस बात को दिखलाने के लिये अलग सूत्र कहा गया है । अथवा 'विचित्रत्वात् सूत्रगतेः' अर्थात् सूत्र की गति विचित्र होती है । अतः ज्योतिषी और वैमानिक देवों का अलग कथन किया गया है ।

अनगार की पर्वत लाँघने की शक्ति

२० प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा, पल्लंघेत्तए वा ?

२० उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

२१ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा, पल्लंघेत्तए वा ?

२१ उत्तर-हंता, पभु ।

२२ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता जावइयाइं रायगिहे णयरे रूवाइं, एवइयाइं विउव्वित्ता वेभारं पव्वयं अंतो अणुप्पविसित्ता पभू समं वा विसमं करेत्तए, विसमं वा समं करेत्तए ?

२२ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, एवं चेव विईओ वि आलावगो, णवरं-परियाइत्ता पभू ।

कठिन शब्दार्थ-पल्लंघेत्तए-प्रलंघना-विशेष रूप से अथवा वारबार लांघना, अपरियाइत्ता-लिये बिना ही ।

भावार्थ-२० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना वैभार पर्वत को उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके वैभार पर्वत को उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है ?

२१ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह वैसा कर सकता है ।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ही राजगृह नगर में जितने रूप हैं, उतने रूपों की विकुर्वणा करके और वैभार पर्वत में प्रवेश करके, सम पर्वत को विषम कर सकता है ? अथवा विषम पर्वत को सम कर सकता है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वह बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ऐसा नहीं कर सकता है ।

इसी तरह दूसरा आलापक भी कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता

है कि वह बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके पूर्वोक्त प्रकार से कर सकता है।

विवेचन-पहले के प्रकरण में देवों के लेश्या-परिणाम के सम्बन्ध में कहा है। अब आगे के प्रकरण में भव्य-द्रव्य-देवरूप अनगारों द्वारा कृत पुद्गल परिणाम को सूचित किया जाता है।

कोई भी भावित आत्मा अनगार, बाहरी अर्थात् औदारिक शरीर से भिन्न वैक्रिय पुद्गलों को ग्रहण किये बिना राजगृह नगर के समीपस्थ क्रीड़ा स्थल रूप वैभार पर्वत को उल्लंघन (एक बार उल्लंघना) और प्रलंघन (बार बार उल्लंघन करना) नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि वैक्रिय पुद्गलों को ग्रहण किये बिना वैक्रिय शरीर बन नहीं सकता और पर्वत का उल्लंघन करने वाले मनुष्य का शरीर पर्वतातिक्रमी बड़ा वैक्रिय शरीर हुए बिना पर्वत का उल्लंघन और प्रलंघन नहीं हो सकता और इतना बड़ा वैक्रिय शरीर बाहरी वैक्रिय पुद्गलों को ग्रहण किये बिना बन ही नहीं सकता है। इसलिये बाहरी वैक्रिय पुद्गलों को ग्रहण करने के पश्चात् ही वह पर्वत का उल्लंघन और प्रलंघन करने में समर्थ होता है।

प्रमादी मनुष्य विकुर्वणा करते हैं

२३ प्रश्न-से भंते ! किं माई विउव्वइ, अमाई विउव्वइ ?

२३ उत्तर-गोयमा ! माई विउव्वइ, णो अमाई विउव्वइ।

२४ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ, जाव-णो अमाई विउव्वइ ?

२४ उत्तर-गोयमा ! माई णं पणीयं पाण-भोयणं भोच्चा भोच्चा वामेइ, तस्स णं तेणं पणीएणं पाणभोयणेणं अट्ठि-अट्ठि-मिंजा बहलीभवंति, पयणुए मंस-सोणिए भवइ; जे वि य से अहा-बायरा पोग्गला ते वि य से परिणमंति, तं जहा-सोइंदियत्ताए,

२१ उत्तर-हंता, पभु ।

२२ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा वाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता जावइयाइं रायगिहे णयरे रूवाइं, एवइयाइं विउव्वित्ता वेभारं पव्वयं अंतो अणुप्पविसित्ता पभू समं वा विसमं करेत्तए, विसमं वा समं करेत्तए ?

२२ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, एवं चेव विईओ वि आलावगो, णवरं-परियाइत्ता पभू ।

कठिन शब्दार्थ-पल्लंघेत्तए-प्रलंघना-विशेष रूप से अथवा वारवार लांघना, अपरियाइत्ता-लिये बिना ही ।

भावार्थ-२० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना वैभार पर्वत को उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके वैभार पर्वत को उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है ?

२१ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह वैसा कर सकता है ।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ही राजगृह नगर में जितने रूप हैं, उतने रूपों की विकुर्वणा करके और वैभार पर्वत में प्रवेश करके, सम पर्वत को विषम कर सकता है ? अथवा विषम पर्वत को सम कर सकता है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वह बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ऐसा नहीं कर सकता है ।

इसी तरह दूसरा आलापक भी कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता

२१ उत्तर-हंता, पभु ।

२२ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता जावइयाइं रायगिहे णयरे रूवाइं, एवइयाइं विउव्वित्ता वेभारं पव्वयं अंतो अणुप्पविसित्ता पभू समं वा विसमं करेत्तए, विसमं वा समं करेत्तए ?

२२ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, एवं चेव विईओ वि आलावगो, णवरं-परियाइत्ता पभू ।

कठिन शब्दार्थ-पल्लंघेत्तए-प्रलंघना-विशेष रूप से अथवा वारवार लांघना, अपरियाइत्ता-लिये बिना ही ।

भावार्थ-२० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना वैभार पर्वत को उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके वैभार पर्वत को उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है ?

२१ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह वैसा कर सकता है ।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ही राजगृह नगर में जितने रूप हैं, उतने रूपों की विकुर्वणा करके और वैभार पर्वत में प्रवेश करके, सम पर्वत को विषम कर सकता है ? अथवा विषम पर्वत को सम कर सकता है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वह बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ऐसा नहीं कर सकता है ।

इसी तरह दूसरा आलापक भी कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता

जाव-फासिंदियत्ताए; अट्ठि अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोमणहत्ताए, सुक्कत्ताए, सोणियत्ताए। अमाई णं लूहं पाण-भोयणं भोच्चा भोच्चा णो वामेइ, तस्स णं तेणं लूहेणं पाण-भोयणेणं अट्ठि-अट्ठिमिंजा पयणुभवंति, बहले मंस-सोणिए; जे वि य से अहाबायरा पोग्गला ते वि य से परिणमंति, तं जहा-उच्चारत्ताए पासवणत्ताए, जाव-सोणियत्ताए, से तेणट्ठेणं जाव-णो अमाई विउव्वइ।

—-माई णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ, णत्थि तस्स आराहणा। अमाई णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ, अत्थि तस्स आराहणा।

—सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो

कठिन शब्दार्थ-पणीयं-प्रणीत-घृतादि रस से भरपूर, वामेइ-वमन करता है, बहली भवंति-घन-दृढ़ होती है, पयणुए-पतले, अहाबायरा-यथा बादर, सुक्कत्ताए-शुक्र-वीर्य के रूप में, लूहेणं-रुक्ष-लूखा, अणालोइयपडिक्कंते-आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना, आराहणा-आराधना।

२३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या मायी (प्रमत्त) मनुष्य विकुर्वणा करता है ? या अमायी (अप्रमत्त) विकुर्वणा करता है ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! मायी (प्रमत्त) मनुष्य विकुर्वणा करता है, किंतु अमायी (अप्रमत्त) मनुष्य विकुर्वणा नहीं करता।

२४ प्रश्न-हे भगवन् ! मायी मनुष्य विकुर्वणा करता है और अमायी मनुष्य विकुर्वणा नहीं करता, इसका क्या कारण है ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! मायी मनुष्य प्रणीत (सरस) पान भोजन करता है। इस प्रकार बार बार प्रणीत पान भोजन करके वमन करता है। उस प्रणीत पान भोजन द्वारा उसकी हड्डियाँ और हड्डियों में रही हुई मज्जा, घन (गाढ़) होती है। उसका रक्त और मांस प्रतनु होता है। उस भोजन के जो यथा-बादर पुद्गल होते हैं, उनका उस उस रूप में परिणमन होता है। यथा-श्रोत्रेन्द्रिय रूप में यावत् स्पर्शनेन्द्रिय रूप में परिणमन होता है। तथा हड्डियाँ, हड्डियों की मज्जा, केश, श्मश्रु, रोम, नख, वीर्य और रक्त रूप में परिणमते हैं। अमायी मनुष्य तो रुक्ष (रूखा, सूखा) पान भोजन करता है और ऐसा भोजन करके वह वमन नहीं करता। उस रूखे सूखे भोजन द्वारा उसकी हड्डियाँ और हड्डियों की मज्जा प्रतनु (पतली) होती है और उसका रक्त और मांस घन (गाढ़ा) होता है। उस आहार के जो यथाबादर पुद्गल होते हैं, उनका परिणमन उच्चार (विष्ठा) प्रश्रवण (मूत्र) यावत् रक्त रूप से होता है। इस कारण से वह अमायी मनुष्य, विकुर्वणा नहीं करता।

मायी मनुष्य अपनी की हुई प्रवृत्ति की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना यदि काल कर जाय तो उसके आराधना नहीं होती, किन्तु अपनी की हुई प्रवृत्ति का पश्चात्ताप करने से अमायी बना हुआ वह मनुष्य यदि आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! यह इसी तरह है। हे भगवन् ! यह इसी तरह है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-आगे मायी और अमायी के सम्बन्ध में कथन किया गया है। यहाँ मायी का अर्थ 'प्रमत्त मनुष्य' लेना चाहिये, क्योंकि अप्रमत्त मनुष्य वैक्रिय नहीं करता है। प्रमत्त मनुष्य वर्ण, गन्धादि के लिये तथा शारीरिक बल, वृद्धि आदि के लिये विक्रिया स्वभाव रूप प्रणीत (गरिष्ठ) भोजन करता है। और उसका वमन विरेचन करता है। इससे वैक्रिय-करण भी होता है। वह गरिष्ठ भोजन के पुद्गलों को श्रोत्रेन्द्रिय आदि रूप में परिणमाता है। इसीसे उसके शरीर में रक्त मांस आदि की वृद्धि होती है और शरीर दृढ़ और पुष्ट बनता है। अमायी (अप्रमत्त) मनुष्य विक्रिया करने का इच्छुक नहीं होता। इसलिये

वह प्रणीत (गरिष्ठ) आहार आदि नहीं करता, किन्तु रूखा, सूखा आहार करता है और वह उसके उच्चार, प्रश्रवण आदि रूप में परिणत होता है।

जिस अनगार ने पहले मायी (प्रमत्त) होने के कारण वैक्रिय रूप बनाया था अथवा प्रणीत भोजन किया था, तत्पश्चात् वह उस विषयक पश्चाताप करने से अमायी (अप्रमत्त) हो जाता है और फिर वह आलोचना और प्रतिक्रमण करने के पश्चात् काल करता है, तो वह आराधक होता है।

॥ इति तीसरे शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ५

अनगार की विविध प्रकार की वैक्रिय शक्ति

१ प्रश्न-अणगारे णं भंते! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगं महं इत्थीरूवं वा, जाव-संदमाणियरूवं वा विउव्वित्तए?

१ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे।

२ प्रश्न-अणगारे णं भंते! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगं महं इत्थीरूवं वा, जाव-संदमाणियरूवं वा विउव्वित्तए?

२ उत्तर-हंता, पभू।

३ प्रश्न–अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू इत्थि-रूवाइं विउव्वित्तए ?

३ उत्तर–गोयमा ! से जहा णामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा णाभी अरगाउत्ता सिया, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, जाव–पभू णं, गोयमा ! अणगारे णं भावियप्पा केवलकप्पं जंबूदीवं दीवं बहूहिं इत्थिरूवेहिं आइण्णं, वितिकिण्णं, जाव–एस णं गोयमा ! अणगा-रस्स भावियप्पणो अयमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्विंति वा, विउव्विस्संतिवा–एवं परि-वाडीए णेयव्वं, जाव–संदमाणिया ।

कठिन शब्दार्थ–अपरियाइत्ता–लिये बिना, केवइयाइं–कितने, अयमेयारूवे–इसी प्रकार, परिवाडीए–परिपाटी पूर्वक–क्रमपूर्वक ।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्-गल ग्रहण किये बिना एक बड़ा स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप की विकुर्वणा कर सकता है ?

१ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । अर्थात् वह ऐसा नहीं कर सकता ।

२ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके एक बड़ा स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप की विकुर्वणा कर सकता है ?

२ उत्तर–हां, गौतम ! वह वैसा कर सकता है ।

३ प्रश्न–हे भगवन् ! भावितात्मा अनगार, कितने स्त्री रूपों की विकु-

र्वणा कर सकते हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! युवति युवा के दृष्टान्त से तथा आराओं से युक्त पहिये की धुरी के दृष्टान्त से भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीप को, बहुत से स्त्रीरूपों द्वारा आकीर्ण व्यतिकीर्ण यावत् कर सकता है अर्थात् ठसाठस भर सकता है। हे गौतम ! भावितात्मा अनगार का यह मात्र विषय है, परन्तु इतना वैक्रिय कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं। इस प्रकार क्रमपूर्वक यावत् स्यन्दमानिका सम्बन्धी रूप बनाने तक कहना चाहिए।

विवेचन-चौथे उद्देशक में विकुर्वणा के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है। और इस पांचवें उद्देशक में भी विकुर्वणा विषयक ही वर्णन किया जाता है।

उपर्युक्त प्रश्नोत्तरों में वैक्रिय द्वारा बनाये जानेवाले नाना रूपों का वर्णन किया गया है। भावितात्मा अनगार भी विक्रिया द्वारा नाना रूप बना सकता है।

४ प्रश्न-से जहा णामए केइ पुरिसे असि-चम्मपायं गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा असि-चम्मपायहत्थ-किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पइज्जा ?

४ उत्तर-हंता, उप्पइज्जा।

५ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू, असि-चम्महत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?

५ उत्तर-गोयमा ! से जहा णामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, तं चेव जाव-विउव्विंसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा।

कठिन शब्दार्थ-असिचम्मपायं-तलवार और ढाल अथवा म्यान, किच्चगएणं-किसी कार्यवश ।

भावार्थ-४ प्रश्न-हे भगवन् ! जैसे कोई पुरुष, हाथ में तलवार और ढाल अथवा म्यान लेकर जाता है, क्या उसी प्रकार कोई भावितात्मा अनगार भी उस पुरुष की तरह किसी कार्य के लिए स्वयं आकाश में ऊंचे उड़ सकता है ?

४ उत्तर-हाँ, गौतम ! उड़ सकता है ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! भावितात्मा अनगार तलवार और ढाल लिये हुए पुरुष के समान कितने रूप बना सकता है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! युवति युवा के दृष्टान्त से यावत् सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीप को ठसाठस भर सकता है, किन्तु कभी इतने वैक्रिय रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं ।

६ प्रश्न-से जहा णामए केइ पुरिसे एगओपडागं काउं गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा एगओपडागाहत्थकिच्च-गएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

६ उत्तर-हंता, गोयमा ! उपएज्जा ।

७ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू एग-ओपडागाहत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?

७ उत्तर-एवं चेव जाव-विउव्विंसु वा, विउव्वंति वा, विउ-व्विस्संति वा । एवं दुहओपडागं पि ।

भावार्थ-६ प्रश्न-हे भगवन् ! जैसे कोई पुरुष, हाथ में एक पताका लेकर

गमन करता है, क्या उसी तरह से भावितात्मा अनगार भी हाथ में पताका लिये हुए पुरुष के समान रूप बना कर स्वयं ऊपर आकाश में उड़ सकता है ?

६ उत्तर-हाँ, गौतम ! उड़ सकता है ।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! भावितात्मा अनगार, हाथ में पताका लेकर गमन करने वाले पुरुष के समान कितने रूप बना सकता है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहा वैसे ही जानना चाहिए अर्थात् वह ऐसे रूपों से सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीप को ठसाठस भर देता है, यावत् परन्तु कभी इतने रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनायेगा भी नहीं । इसी तरह दोनों तरफ पताका लिये हुए पुरुष के रूप के सम्बन्ध में कहना चाहिए ।

८ प्रश्न-से जहा णामए केइ पुरिसे एगओजण्णोवइयं काउं गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे णं भावियप्पा एगओजण्णोवइय-किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

८ उत्तर- हंता, उप्पएज्जा ।

९ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू एगओ-जण्णोवइयकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?

९ उत्तर-तं चेव जाव विउव्विसु वा, विउव्वंति वा, विउव्वि-स्संति वा । एवं दुहओजण्णोवइयं पि ।

कठिन शब्दार्थ-जण्णोवइय-जनेऊ ।

भावार्थ-८ प्रश्न-हे भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक तरफ जनेऊ (यज्ञो-पवीत) पहन कर गमन करता है । क्या उसी तरह भावितात्मा अनगार भी एक तरफ जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहने हुए पुरुष की तरह रूप बना कर ऊपर

आकाश में उड़ सकता है ?

८ उत्तर-हाँ, गौतम ! उड़ सकता है ।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! भावितात्मा अनगार, एक तरफ जनेऊ धारण करने वाले पुरुष के समान कितने रूप बना सकता है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिए अर्थात् वह ऐसे रूपों से सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीप को ठसाठस भर देता है, यावत् परन्तु कभी इतने रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं ।

१० प्रश्न-से जहा णामए केइ पुरिसे एगओपल्हत्थियं काउं चिट्ठेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा० ?

१० उत्तर-एवं चेव जाव-विकुव्विंसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा; एवं दुहओपल्हत्थियं पि ।

११ प्रश्न-से जहा णामए केइ पुरिसे एगओपलियंकं काउं चिट्ठेज्जा० ?

११ उत्तर-तं चेव जाव-विउव्विंसु वा, विकुव्वंति वा, विउव्विस्संति वा; एवं दुहओपलियंकं पि ।

कठिन शब्दार्थ-पल्हत्थियं-पलाठी, पलियंकं-पर्यङ्कासन ।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! जैसे कोई पुरुष, एक तरफ पलाठी लगाकर बैठे, इसी तरह क्या भावितात्मा अनगार भी उस पुरुष के समान रूप बनाकर स्वयं आकाश में उड़ सकता है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिये । यावत् इतने रूप कभी बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं । इसी तरह

दोनों तरफ पलाठी लगानेवाले पुरुष के रूप के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक तरफ पर्यङ्कासन करके बैठे, उसी तरह भावितात्मा अनगार भी उस पुरुष के समान रूप बनाकर स्वयं आकाश में उड़ सकता है ?

११ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिये, यावत् इतने रूप कभी बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं। इसी तरह दोनों तरफ पर्यङ्कासन करके बैठे हुए पुरुष के रूप के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये।

अनगार के अश्वादि रूप

१२ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगं महं आसरूवं वा, हत्थिरूवं वा, सीहरूवं वा, वग्घरूवं वा, विगरूवं वा, दीवियरूवं वा, अच्छरूवं वा, तरच्छरूवं वा, परासररूवं वा अभिजुंजित्तए ?

१२ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे।

१३ प्रश्न-अणगारे णं ०?

१३ उत्तर-एवं बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू।

१४ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा एगं महं आसरूवं वा अभिजुंजित्ता अणेगाइं जोयणाइं पभू गमित्तए ?

१४ उत्तर-हंता, पभू।

१५ प्रश्न-से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ ?

१५ उत्तर-गोयमा ! आयड्ढीए गच्छइ, णो परिड्ढिए; एवं आयकम्मुणा, णो परकम्मुणा; आयप्पओगेणं, णो परप्पओगेणं। उस्सिओदयं वा गच्छइ, पयओदयं वा गच्छइ।

१६ प्रश्न-से णं भंते ! किं अणगारे आसे ?

१६ उत्तर-गोयमा ! अणगारे णं से, णो खलु से आसे; एवं जाव परासररूवं वा।

कठिन शब्दार्थ--आसरूवं-अश्वरूप, अभिजुंजित्ता-संयुक्त करके।

भावार्थ-१२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना घोड़ा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया) द्वीपी (गेंडा) रीछ, तरच्छ (चीता) और पराशर (शरभ-अष्टापद) आदि के रूप बना सकता है ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना उपर्युक्त रूप नहीं बना सकता।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके उपर्युक्त रूप बना सकता है ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके वह भावितात्मा अनगार उपर्युक्त रूपों को बना सकता है।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, एक महान् अश्व का रूप बनाकर अनेक योजन तक जा सकता है ?

१४ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह वैसा कर सकता है।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह भावितात्मा अनगार, आत्म ऋद्धि से जाता है, या परऋद्धि से जाता है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! आत्मऋद्धि से जाता है, किन्तु परऋद्धि से

नहीं जाता। इसी तरह आत्म-कर्म (आत्म-क्रिया) और आत्म-प्रयोग से जाता है, किन्तु पर-कर्म और पर-प्रयोग से नहीं जाता। वह सीधा (खड़ा) भी जा सकता है और इससे विपरीत (गिरा हुआ) भी जा सकता है।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! इस तरह का रूप बनाया हुआ वह भावितात्मा अनगार, क्या अश्व कहलाता है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! वह अनगार है, परन्तु अश्व नहीं। इसी तरह यावत् पराशर (शरभ-अष्टापद) तक के रूपों के सम्बन्ध में भी कहना चाहिये।

१७ प्रश्न-से भंते ! किं माई विउव्वइ, अमाई वि विउव्वइ ?

१७ उत्तर-गोयमा ! माई विउव्वइ, णो अमाई विउव्वइ।

१८ प्रश्न-माई णं भंते ! तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ, कहिं उववज्जइ ?

१८ उत्तर-गोयमा ! अण्णयरेसु आभिओगेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववज्जइ।

१९ प्रश्न-अमाई णं भंते ! तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ, कहिं उववज्जइ ?

१९ उत्तर-गोयमा ! अण्णयरेसु अणाभिओगिएसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जइ।

—सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

गाहा-इत्थी असी पडागा जण्णोवइए य होइ बोधव्वे,
पल्हत्थिय पलियंके अभिओग विकुव्वणा माई ।

॥ ततियसए पंचमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-मायी-प्रमादी, आभियोगिक-सेवक, अमायी-अप्रमत्त ।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या मायी अनगार, विकुर्वणा करता है, या अमायी अनगार, विकुर्वणा करता है ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! मायी अनगार, विकुर्वणा करता है, किन्तु अमायी अनगार, विकुर्वणा नहीं करता ।

१८ प्रश्न--हे भगवन् ! पूर्वोक्त प्रकार से विकुर्वणा करने के पश्चात् उस सम्बन्धी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना यदि वह विकुर्वणा करने वाला मायी अनगार, काल करे तो कहाँ उत्पन्न होता है ?

१८ उत्तर--हे गौतम ! वह अनगार, किसी एक प्रकार के आभियोगिक देवलोकों में देवरूप से उत्पन्न होता है ।

१९ प्रश्न--हे भगवन् ! पूर्वोक्त प्रकार की विकुर्वणा सम्बन्धी आलोचना और प्रतिक्रमण करके जो अमायी साधु, काल करे तो कहाँ उत्पन्न होता है ?

१९ उत्तर--हे गौतम ! वह अनगार किसी एक प्रकार के अनाभियोगिक देवलोकों में देवरूप से उत्पन्न होता है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है-स्त्री, तलवार, पताका, जनेऊ, पलाठी और पर्यङ्कासन, इन सब रूपों के अभियोग और विकुर्वणा सम्बन्धी वर्णन इस उद्देशक में है । तथा इस प्रकार मायी अनगार करता है । यह बात भी बतलाई गई है ।

विवेचन-इन प्रश्नोत्तरों में भी विकुर्वणा सम्बन्धी वर्णन किया गया है । यहाँ 'मायी विकुव्वइ' पाठ है और किन्ही प्रतियों में 'मायी अभिजुंजइ' पाठ है । 'अभिजुंजइ' का अर्थ है 'अभियोग' करना अर्थात् विद्या आदि के बल से घोड़ा, हाथी, आदि के रूपों में प्रवेश

करके उनके द्वारा नाना प्रकार की क्रिया करवाना। 'विकुव्वइ' का अर्थ है 'विकुर्वणा करना' अर्थात् नाना प्रकार के रूप बनाना। सामान्य रूप से देखने पर अभियोग और विकुर्वण के अर्थों में अन्तर मालूम होता है। परन्तु वास्तव में क्रिया के फल की ओर देखा जाय, तो दोनों शब्दों के अर्थ में कोई भिन्नता नहीं है। क्योंकि अभियोग करनेवाला भी नवीन नवीन रूप बनाता है और विकुर्वणा करने वाला भी नवीन नवीन रूप बनाता है। इस अपेक्षा से अभियोग और विकुर्वणा में कोई अन्तर नहीं है। अभियोगादि करनेवाला मायी साधु, आभियोगिक देवों में उत्पन्न होता है। आभियोगिक देव, अच्युत देवलोक तक होते हैं। विद्या और लब्धि आदि से आजीविका करनेवाला साधु, आभियोगिकी भावना करता है। यथा:-

मंता-जोगं काउं भूइकम्मं तु जे पउंजेंति।
साय-रस-इड्ढिहेउं, अभियोगं भावणं कुणइ॥

अर्थ:-जो जीव साता, रस और समृद्धि के लिए मन्त्र और योग करके भूति-कर्म का प्रयोग करते हैं, वे आभियोगिकी भावना करते हैं अर्थात् जो मात्र वैषयिक सुखों के लिये और स्वादु आहार की प्राप्ति के लिये मन्त्र साधना करता है और भूतिकर्म का प्रयोग करता है, वह आभियोगिकी भावना करता है। ऐसी आभियोगिकी भावना करने वाला साधु, आभियोगिक अर्थात् सेवक जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

जो अनगार, उपर्युक्त प्रकार की विकुर्वणा करके फिर पश्चात्ताप करता है, वह अमायी बनजाता है। ऐसा अमायी साधु, आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो आराधक होता है और अनाभियोगिक देवों में उत्पन्न होता है।

सेवं भंते ! सेवं भंते ॥

॥ इति तीसरे शतक का पांचवा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ६

मिथ्या दृष्टि की विकुर्वणा

१ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा माई, मिच्छदिट्ठी वीरियलद्धीए, वेउव्वियलद्धीए, विभंगणाणलद्धीए वाणारसिं णयरीं समोहए, समोहणित्ता रायगिहे णयरे रूवाइं जाणइ, पासइ ?

१ उत्तर-हंता, जाणइ, पासइ ।

२ प्रश्न-से भंते ! किं तहाभावं जाणइ पासइ, अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?

२ उत्तर-गोयमा ! णो तहाभावं जाणइ पासइ; अण्णहाभावं जाणइ पासइ ।

३ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-णो तहाभावं जाणइ पासइ; अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?

३ उत्तर-गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ-एवं खलु अहं रायगिहे णयरे समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए णयरीए रूवाइं जाणामि पासामि; से से दंसणे विवच्चासे भवइ, से तेणट्ठेणं जाव-पासइ ।

४ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा माई, मिच्छदिट्ठी जाव-

रायगिहे णयरे समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए णयरीए रूवाइं जाणइ पासइ ?

४ उत्तर-हंता, जाणइ पासइ; तं चेव जाव-तस्स णं एवं हवइ-एवं खलु अहं वाणारसीए णयरीए समोहए, समोहणित्ता रायगिहे णयरे रूवाइं जाणामि पासामि; से से दंसणे विवच्चासे भवइ, से तेणट्ठेणं जाव-अण्णहाभावं जाणइ पासइ ।

५ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा माई मिच्छदिट्ठी वीरियलद्धिए, वेउव्वियलद्धीए, विभंगणाणलद्धीए वाणारसीं णयरीं रायगिहं च णयरं अंतरा एगं महं जणवयवग्गं समोहए, समोहणित्ता वाणारसिं णयरिं, रायगिहं च णयरं अंतरा एगं महं जणवयवग्गं जाणाइ पासइ ?

५ उत्तर-हंता, जाणइ पासइ ।

६ प्रश्न-से भंते ! किं तहाभावं जाणइ पासइ; अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?

६ उत्तर-गोयमा ! णो तहाभावं जाणइ पासइ; अण्णहाभावं जाणइ पासइ ।

७ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-पासइ ?

७ उत्तर-गोयमा ! तस्स खलु एवं भवइ-एस खलु वाणारसी णयरी, एस खलु रायगिहे णयरे; एस खलु अंतरा एगे महं जण-

वयवग्गे; णो खलु एस महं वीरियलद्धी, वेउव्वियलद्धी, विभंगणाण-लद्धी; इड्ढी, जुत्ती, जसे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए; से से दंसणे विवच्चासे भवइ, से तेणट्ठेणं जाव-पासइ ?

कठिन शब्दार्थ-तहाभावं-तथा भाव-यथार्थ रूप, अण्णहाभावं-अन्यथा भाव-विपरीत रूप, विवच्चासे-विपरीत, अंतरा-बीच में, जणवयवग्गे-जनपद-वर्ग ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! राजगृह नगर में रहा हुआ मिथ्यादृष्टि और मायी भावितात्मा अनगार, वीर्यलब्धि से, वैक्रियलब्धि से और विभंगज्ञान लब्धि से वाणारसी नगरी की विकुर्वणा करके क्या तद्गत रूपों को जानता और देखता है ?

१ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह उन रूपों को जानता और देखता है ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह तथाभाव (यथार्थ रूप) से जानता देखता है, या अन्यथाभाव (विपरीत रूप) से जानता देखता है ?

२ उतर-हे गौतम ! वह तथाभाव से नहीं जानता है और नहीं देखता है, किन्तु अन्यथा भाव से जानता और देखता है ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि वह तथा भाव से नहीं जानता और नहीं देखता, किन्तु अन्यथा भाव से जानता और देखता है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! उस साधु के मन में इस प्रकार विचार होता है कि वाराणसी में रहे हुए मैंने राजगृह नगर की विकुर्वणा की है और विकुर्वणा करके तद्गत अर्थात् वाणारसी के रूपों को जानता और देखता हूं, इस प्रकार उस का दर्शन विपरीत होता है । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वह तथा भाव से नहीं जानता नहीं देखता, किन्तु अन्यथा भाव से जानता देखता है ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वाणारसी में रहा हुआ मायी मिथ्यादृष्टि

भावितात्मा अनगार, यावत् राजगृह नगर की विकुर्वणा करके वाणारसी के रूपों को जानता और देखता है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! हाँ, वह उन रूपों को जानता और देखता है। यावत् उस साधु के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि राजगृह में रहा हुवा मैं वाणारसी नगरी की विकुर्वणा करके राजगृह के रूपों को जानता हूं और देखता हूं। इस प्रकार उसका दर्शन विपरीत होता है। इस कारण से यावत् वह अन्यथा भाव से जानता है और देखता है।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या मायी मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्य लब्धि से, वैक्रिय लब्धि से और विभंगज्ञान लब्धि से वाणारसी नगरी और राजगृह नगर के बीच में एक बड़े जनपद वर्ग (देश समूह) की विकुर्वणा करके उस (वाणारसी नगरी और राजगृह नगर के बीच में) बड़े जनपद वर्ग को जानता है और देखता है ?

५ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह उस जनपद वर्ग को जानता और देखता है।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह उस जनपद वर्ग को तथाभाव से जानता और देखता है अथवा अन्यथाभाव से जानता और देखता है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! वह उस जनपद वर्ग को तथाभाव से नहीं जानता और नहीं देखता, किन्तु अन्यथाभाव से जानता और देखता है।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! वह उनको अन्यथाभाव से जानता और देखता है, इसका क्या कारण है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! उस साधु के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि यह वाणारसी नगरी है और यह राजगृह नगर है तथा इन दोनों के बीच में यह एक बड़ा जनपद वर्ग है। परन्तु मेरी वीर्य लब्धि, वैक्रिय लब्धि और विभंगज्ञान लब्धि नहीं है। मुझे मिली हुई, प्राप्त हुई और सम्मुख आई हुई ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम नहीं है। इस प्रकार उस साधु का दर्शन विपरीत होता है। इस कारण से यावत् वह अन्यथाभाव से

जानता और देखता है।

सम्यग्दृष्टि अनगार की विकुर्वणा

८ प्रश्न-अणगारे णं भंते! भावियप्पा अमाई सम्मदिट्ठी वीरियलद्धीए, वेउव्वियलद्धीए, ओहिणाणलद्धीए रायगिहं णयरं समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए णयरीए रूवाइं जाणइ पासइ ?

८ उत्तर-हंता, जाणइ पासइ ।

९ प्रश्न-से भंते ! किं तहाभावं जाणइ पासइ; अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?

९ उत्तर-गोयमा ! तहाभावं जाणइ पासइ; णो अण्णहाभावं जाणइ पासइ ।

१० प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

१० उत्तर-गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ-एवं खलु अहं रायगिहे णयरे समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए णयरीए रूवाइं जाणामि पासामि; से से दंसणे अविवच्चासे भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ । बीओ आलावगो एवं चेव । णवरं-वाणारसीए णयरीए समोहणा णेयव्वा रायगिहे णयरे रूवाइं जाणइ, पासइ ।

११ प्रश्न–अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अमाई सम्मदिट्ठी वीरिय-लद्धीए, वेउव्वियलद्धीए, ओहिणाणलद्धीए रायगिहं णयरं, वाणा-रसिं णयरीं च अंतरा एगं महं जणवयवग्गं समोहए, समोहणित्ता रायगिहं णयरं वाणारसिं णयरीं, तं च अंतरा एगं महं जणवय-वग्गं जाणइ पासइ ?

११ उत्तर–हंता, जाणइ पासइ ।

१२ प्रश्न–से भंते ! किं तहाभावं जाणइ पासइ; अण्णहा-भावं जाणइ पासइ ?

१२ उत्तर–गोयमा ! तहाभावं जाणइ पासइ; णो अण्णहा-भावं जाणइ पासइ ।

१३ प्रश्न–से केणट्ठेणं ?

१३ उत्तर–गोयमा ! तस्स णं एवं भवति णो खलु एस राय-गिहे णयरे, णो खलु एस वाणारसी णयरी, णो खलु एस अंतरा एगे जणवयवग्गे; एस खलु ममं वीरियलद्धी, वेउव्वियलद्धी, ओहि-णाणलद्धी, इड्ढी, जुत्ती, जसे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए; से से दंसणे अविवच्चासे भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–तहाभावं जाणइ पासइ; णो अण्णहाभावं जाणइ पासइ ।

१४ प्रश्न–अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले

अपरियाइत्ता पभू एगं महं गामरूवं वा, णयररूवं वा, जाव-सण्णिवेसरूवं वा विउव्वित्तए ?

१४ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे; एवं बिईओ वि आलावगो, णवरं-बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू ।

१५ प्रश्न-अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू गामरूवाइं विउव्वित्तए ?

१५ उत्तर-गोयमा ! से जहा णामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, तं चेव जाव-विउव्विसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा; एवं जाव-सण्णिवेसरूवं वा ।

भावार्थ-८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वाणारसी नगरी में रहा हुआ अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार, अपनी वीर्य लब्धि से, वैक्रिय लब्धि से और अवधिज्ञान लब्धि से राजगृह नगर की विकुर्वणा करके वाणारसी के रूपों को जानता और देखता है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! हाँ, वह उन रूपों को जानता और देखता है ।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह उन रूपों को तथाभाव से जानता और देखता है ? अथवा अन्यथाभाव से जानता और देखता है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! वह उन रूपों को तथाभाव से जानता और देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से नहीं जानता और नहीं देखता ।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! उस साधु के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि वाणारसी नगरी में रहा हुआ मैं राजगृह नगर की विकुर्वणा करके वाणारसी के रूपों को जानता और देखता हूं । उसका दर्शन अविपरीत (सम्यक्)

होता है । इस कारण से वह तथाभाव से जानता और देखता है—ऐसा कहा जाता है । दूसरा आलापक भी इसी तरह कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि 'उसमें वाणारसी नगरी की विकुर्वणा और राजगृह नगर में रहे रूपों का देखना जानना कहना चाहिये ।

११ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्य लब्धि से, वैक्रिय-लब्धि से और अवधिज्ञान-लब्धि से, राजगृह नगर और वाणारसी नगरी के बीच में एक बड़े जनपद वर्ग की विकुर्वणा करके उस (राजगृह नगर और वाणारसी नगरी के बीच में) एक बड़े जनपद वर्ग को जानता और देखता है ?

११ उत्तर—हाँ, गौतम ! वह उस जनपद वर्ग को जानता और देखता है ।

१२ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या वह उस जनपद वर्ग को तथाभाव से जानता और देखता है, अथवा अन्यथाभाव से जानता और देखता है ?

१२ उत्तर—हे गौतम ! वह उस जनपद वर्ग को तथाभाव से जानता और देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से नहीं जानता और नहीं देखता ।

१३ प्रश्न—हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१३ उत्तर—हे गौतम ! उस साधु के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि न तो यह राजगृह नगर है और न यह वाणारसी नगरी है, तथा न यह इन दोनों के बीच में एक बड़ा जनपद वर्ग है, किन्तु यह मेरी वीर्यलब्धि है, वैक्रिय-लब्धि है, यह मुझे मिली हुई, प्राप्त हुई, और सम्मुख आई हुई ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम है। उसका दर्शन अविपरीत होता है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वह साधु तथाभाव से जानता और देखता है, परन्तु अन्यथाभाव से नहीं जानता और नहीं देखता है ।

१४ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना एक बड़े ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश के रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार दूसरा आलापक भी कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके वह साधु, उस प्रकार के रूपों की विकुर्वणा कर सकता है।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! वह भावितात्मा अनगार, कितने ग्राम रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! युवति युवा के दृष्टान्त से पहले कहे अनुसार सारा वर्णन जान लेना चाहिये। अर्थात् वह इस प्रकार के रूपों से सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीप को ठसाठस भर देता है। यावत् असंख्यात को भरने की शक्ति है। यह उसका मात्र विषय सामर्थ्य है। इसी तरह से यावत् सन्निवेश रूपों पर्यन्त कहना चाहिये।

विवेचन-पांचवे उद्देशक के समान इस छट्ठे उद्देशक में भी विकुर्वणा सम्बन्धी कथन किया गया है। यहाँ पर अन्यमतालम्बी साधु के विषय में कथन किया गया है। अतएव घर बार आदि का त्यागी होने से उसे अनगार तथा उसके (अन्यमत के) शास्त्र में कहे हुए शम, दम आदि नियमों को धारण करने वाला होने से भावितात्मा कहा गया है। वह मायी अर्थात् क्रोधादि कषाय वाला है और मिथ्यादृष्टि है। वह वीर्यलब्धि आदि से विकुर्वणा करता है। राजगृह नगर में रहा हुवा वह वाणारसी नगरी की विकुर्वणा करके राजगृह के पशु, पुरुष तथा महल आदि वस्तुओं को विभंगज्ञान द्वारा जानता और देखता है। वह विकुर्वणा करनेवाला विभंगज्ञानी जानता है कि मैंने राजगृह नगर की विकुर्वणा की है और मैं वाणारसी में रहे हुए रूपों को जानता और देखता हूं। उसका यह ज्ञान विपरीत है। क्योंकि वह अन्य रूपों को दूसरी तरह से जानता और देखता है। जैसे कि-दिग्मूढ मनुष्य, पूर्व दिशा को पश्चिम दिशा मानता है। इसी प्रकार उस अनगार का अनुभव विपरीत है। इसी प्रकार दूसरा सूत्र भी कहना चाहिये। तीसरे सूत्र में वाणारसी और राजगृह नगर के बीच में जनपद वर्ग (देश के समूह) की विकुर्वणा का है। विभंगज्ञानी वैक्रियकृत रूपों को भी स्वाभाविक रूप मानता है। इसलिये उसका वह दर्शन भी विपरीत है।

चमरेन्द्र के आत्म-रक्षक

१६ प्रश्न-चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो कइ आयरक्खदेवसाहस्सीओ पण्णताओ ?

१६ उत्तर-गोयमा ! चत्तारि चउट्ठीओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ पण्णताओ; तं णं आयरक्खा वण्णओ जहा रायप्पसेणइज्जे एवं सव्वेसिं इंदाणं जस्स जत्तिआ आयरक्खा ते भाणियव्वा ।

—सेवं भंते ! भंते ! त्ति ।

कठिन शब्दार्थ-आयरक्खा-आत्मरक्षक, जत्तिआ-जितने ।

भावार्थ-१६ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के कितने हजार आत्मरक्षक देव हैं ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के २५६००० दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देव हैं । यहाँ आत्मरक्षक देवों का वर्णन समझना चाहिये और जिस इन्द्र के जितने आत्म रक्षक देव हैं । उन सब का वर्णन करना चाहिये ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन-पहले के प्रकरण में विकुर्वणा सम्बन्धी वर्णन किया गया है । अब विकुर्वणा करने में समर्थ देवों के सम्बन्ध में कथन किया जाता है । जो देव शस्त्र लेकर इन्द्र के पीछे खड़े रहते हैं, वे 'आत्मरक्षक' कहलाते हैं । यद्यपि इन्द्र को किसी प्रकार का कष्ट या अनिष्ट होने की संभावना नहीं है, तथापि आत्मरक्षक देव, अपना कर्त्तव्य पालन करने के

लिये हर समय हाथ में शस्त्र लेकर खड़े रहते हैं। जिस प्रकार यहाँ स्वामी की रक्षा के लिये सेवकजन, (अंगरक्षक आदि) वस्त्रादि से सज्जित होकर शस्त्रादि से सन्नद्ध बद्ध होकर सेवामें तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार वे आत्मरक्षक देव भी बराबर सजधज कर, बख्तर आदि पहन कर हाथ में धनुष आदि शस्त्र लेकर, अपने स्वामी की रक्षा में दत्तचित होकर खड़े रहते हैं।

इस प्रकार आत्मरक्षक देवों सम्बन्धी सारा वर्णन यहाँ जानलेना चाहिये। जिस प्रकार चमरेन्द्र के आत्मरक्षक देवों का वर्णन किया है, उसी तरह सब इन्द्रों के आत्मरक्षक देवों का कथन करना चाहिये। उनकी संख्या इस प्रकार है-

चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्साओ असुरवज्जाणं।
सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खाओ ॥
चउरासीइ असीई बावत्तरि सत्तरि य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्स त्ति ॥

अर्थ-चमरेन्द्र के ६४ हजार सामानिक देव हैं। बलीन्द्र के ६० हजार सामानिक देव हैं। बाकी भवनपति देवों के शेष इन्द्रों के प्रत्येक के छह, छह हजार सामानिक देव हैं। शक्रेन्द्र के ८४ हजार सामानिक देव हैं। ईशानेन्द्र के ८० हजार, सनत्कुमारेन्द्र के ७२ हजार, माहेन्द्र के ७० हजार, ब्रह्मेन्द्र के ६० हजार, लान्तकेन्द्र के ५० हजार, शुक्रेन्द्र के ४० हजार, सहस्रारेन्द्र के ३० हजार, प्राणतेन्द्र के २० हजार और अच्युतेन्द्र के १० हजार सामानिक देव हैं। सामानिक देवों से चार गुणा आत्मरक्षक देव होते हैं।

सेवं भंते! सेवं भंते!

॥ इति तीसरे शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ७

लोकपाल सोमदेव

१ प्रश्न–रायगिहे णयरे जाव–पज्जुवासमाणे एवं वयासी–सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ लोगपाला पण्णत्ता ?

१ उत्तर–गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा–सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे ।

२ प्रश्न–एएसि णं भंते ! चउण्हं लोगपालाणं कइ विमाणा पण्णत्ता ?

२ उत्तर–गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तं जहा–संझप्पभे, वरसिट्ठे, सयंजले, वग्गू ।

३ प्रश्न–कहिं णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो सोमस्स महारण्णो संझप्पभे णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

३ उत्तर–गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारा-रूवाणं बहूइं जोयणाइं, जाव–पंच वडेंसिया पण्णत्ता, तं जहा–असोगवडेंसए, सत्तवण्णवडेंसए, चंपयवडेंसए, चूयवडेंसए, मज्झे सोहम्मवडेंसए; तस्स णं सोह-

मवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमे णं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणाइं वीइवइत्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो संझप्पभे णामं महाविमाणे पण्णत्ते-अद्धतेरसजोयण-सयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, उणयालीसं जोयणसयसहस्साइं, बावण्णं च सहस्साइं, अट्ठ य अडयाले जोयणसए किंचि विसेसा-हिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते, जा सूरियाभविमाणस्स वत्तव्वया सा अपरिसेसा भाणियव्वा, जाव-अभिसेओ; णवरं-सोमो देवो। संझप्पभस्स णं महाविमाणस्स अहे, सपक्खिं, सपडिदिसिं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सोमा णामं रायहाणी पण्णत्ता-एगं जोयणसय-सहस्सं आयामविक्खंभेणं जंबुद्दीवप्पमाणा; वेमाणियाणं पमाणस्स अद्धं णेयव्वं, जाव-उवरियलेणं, सोलस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, पण्णासं जोयणसहस्साइं, पंच य सत्ताणउए जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते; पासायाणं चत्तारि परिवाडीओ णेयव्वाओ, सेसा णत्थि।

कठिन शब्दार्थ-वडेंसिया-अवतंसक।

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा कि-हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र के कितने लोक-पाल कहे गये हैं?

१ उत्तर-हे गौतम! उसके चार लोकपाल कहे गये हैं। यथा-सोम,

यम, वरुण और वैश्रमण।

२ प्रश्न–हे भगवन् ! इन चार लोकपालों के कितने विमान कहे गये हैं?

२ उत्तर–हे गौतम ! इन चार लोकपालों के चार विमान कहे गये हैं। यथा–सन्ध्याप्रभ, वरशिष्ट, स्वयंज्वल और वल्गु।

३ प्रश्न–हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम नामक महाराज का सन्ध्याप्रभ नाम का महाविमान कहाँ है ?

३ उत्तर– हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामवाले द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारागण आते हैं। उनसे बहुत योजन ऊपर यावत् पांच अवतंसक हैं। यथा–अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चंपकावतंसक, चूतावतंसक, और बीच में सौधर्मावतंसक है। उस सौधर्मावतंसक महाविमान के पूर्व में, सौधर्म कल्प से असंख्य योजन दूर जाने के बाद वहाँ पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम नामक महाराज का सन्ध्याप्रभ नाम का महाविमान आता है। उसकी लम्बाई चौड़ाई साढे बारह लाख योजन की है। उसका परिक्षेप (परिधि) उनचालीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस (३९५२८४८) योजन से कुछ अधिक है। इस विषय में सूर्याभ देव के विमान की वक्तव्यता की तरह सारी वक्तव्यता अभिषेक तक कहनी चाहिए, इतना फर्क है कि यहाँ सूर्याभ देव के स्थान पर 'सोम देव' कहना चाहिए। सन्ध्याप्रभ महाविमान के सपक्ष सप्रति देश अर्थात् ठीक बराबर नीचे असंख्य योजन जाने पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज की सोमा नाम की राजधानी है। उस राजधानी की लम्बाई और चौड़ाई एक लाख योजन की है। वह राजधानी जम्बूद्वीप जितनी है। इस राजधानी के किले आदि का परिमाण वैमानिक देवों के किले आदि के परिमाण से आधा कहना चाहिए। इस तरह यावत् घर के पीठबन्ध तक कहना चाहिए। घर के पीठबन्ध का आयाम और विष्कम्भ अर्थात् लम्बाई चौड़ाई सोलह हजार योजन है। उसका परिक्षेप (परिधि) पचास

हजार पांच सौ सत्तानवें (५०५९७) योजन से कुछ अधिक है। प्रासादों की चार परिपाटी कहनी चाहिए, शेष नहीं।

सक्कस्स णं देविंदस्स, देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयण-णिद्देसे चिट्ठति, तं जहा-सोमकाइया इ वा, सोमदेवयकाइया इ वा, विज्जुकुमारा, विज्जुकुमारीओ; अग्गिकुमारा, अग्गिकुमारीओ; वायुकुमारा, वायुकुमारीओ; चंदा, सूरा, गहा, णक्खत्ता, तारारूवा-जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया, तप्पक्खिया, तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो सोमस्स महारण्णो आणाउववाय-वयण-णिद्देसे चिट्ठति।

कठिन शब्दार्थ-तब्भत्तिया-उसके भक्त, तप्पक्खिया-उसके पक्ष के, तब्भारिया-उसके अधिकार में।

भावार्थ-देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज की आज्ञा में, उपपात (समीपता) में, कहने में और निर्देश में ये देव रहते हैं, यथा-सोमकायिक, सोमदेवकायिक, विद्युत्कुमार, विद्युत्कुमारियाँ, अग्निकुमार, अग्निकुमारियाँ, वायुकुमार, वायुकुमारियाँ, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारारूप और इसी प्रकार के दूसरे भी सब उसके भक्त देव, उसके पक्ष के देव, और उसकी अधीनता में रहने वाले, ये सब देव उसकी आज्ञा में, उपपात में, कहने में और निर्देश में रहते हैं।

जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा-गहदंडा इ वा, गहमुसला इ वा, गहगज्जिया इ

वा, गहजुद्धा इ वा, गहसिंघाडगा इ वा, गहावसव्वा इ वा, अब्भा इ वा, अब्भरुक्खा इ वा, संझा इ वा, गंधव्वणयरा इ वा, उक्कापाया इ वा, दिसिदाहा इ वा, गज्जिआ इ वा, विज्जू इ वा, पंसुवुट्ठी इ वा, जूवे इ वा, जक्खालित्तए त्ति वा, धूमिया इ वा, महिया इ वा, रयुग्घाए त्ति वा, चंदोवरागा इ वा, सूरोवरागा इ वा, चंदपरिवेसा इ वा, सूरपरिवेसा इ वा, पडिचंदा इ वा, पडिसूरा इ वा, इंदधणू इ वा, उदगमच्छ-कपिहसिय-अमोह-पाईणवाया इ वा, पडीणवाया इ वा, जाव-संवट्टयवाया इ वा, गामदाहा इ वा, जाव सण्णिवेसदाहा इ वा, पाणक्खया, जणक्खया, धणक्खया, कुलक्खया, वसणब्भूया अणारिया-जे यावण्णे तहप्पगारा ण ते सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अण्णाया, अदिट्ठा, असुआ, अस्सु (मु) या अविण्णाया; तेसिं वा सोमकाइयाणं देवाणं सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा-इंगालए, वियालए, लोहिअक्खे, सणिच्चरे, चंदे, सूरे, सुक्के, बुहे, बहस्सई, राहू। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्तिभागं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अहावच्चा-भिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। एवं महिड्ढीए, जाव-महाणुभागे सोमे महाराया।

कठिन शब्दार्थ-अब्भा-अभ्र, उक्कापाया-उल्कापात, दिसिदाहा-दिग्दाह, धूमिआ-

धूमिका, महिआ-महिका, रयुग्घाए-रजोद्घात, चंदोवरागा-चन्द्र ग्रहण, कपिहसिय-कपिहसित, वसणब्भूया-व्यसनभूत, अण्णाया-अज्ञात, असुआ-अदृष्ट, अहावच्चा-अपत्य रूप।

भावार्थ-इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में जो ये कार्य होते हैं। यथा-ग्रहदण्ड, ग्रहमूसल, ग्रहगर्जित इसी तरह ग्रहयुद्ध, ग्रहशृंगाटक, ग्रहापसव्य, अभ्रवृक्ष, सन्ध्या, गन्धर्वनगर, उल्कापात, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत्, धूल की वृष्टि, यूप, यक्षोद्दीप्त, धूमिका, महिका, रजउद्घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य, कपिहसित, अमोघ, पूर्वदिशा के पवन पश्चिम दिशा के पवन, यावत् संवर्त्तक पवन, ग्रामदाह, यावत् सन्निवेश-दाह, प्राणक्षय, जनक्षय, धनक्षय, कुलक्षय यावत् व्यसनभूत, अनार्य (पाप रूप) तथा उस प्रकार के दूसरे भी सब कार्य देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज से अज्ञात (नहीं जाने हुए) अदृष्ट (नहीं देखे हुए) अश्रुत (नहीं सुने हुए) अस्मृत (स्मरण नहीं किये हुए) तथा अविज्ञात (विशेष रूप से न जाने हुए) नहीं होते हैं। अथवा ये सब कार्य सोमकायिक देवों से भी अज्ञात आदि नहीं होते हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज को यह देव, अपत्य रूप से अभिमत हैं। यथा-अंगारक (मंगल) विकोलिक, लोहिताक्ष, शनैश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति और राहु।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोममहाराज की स्थिति तीन भाग सहित एक पल्योपम की है। और उसके अपत्य रूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की होती है। इस प्रकार सोम महाराज, महाऋद्धि, यावत् महाप्रभाव वाला है।

विवेचन-छठे उद्देशक में इन्द्रों के आत्म-रक्षक देवों का वर्णन किया गया है। अब इस सातवें उद्देशक में इन्द्रों के लोकपालों का वर्णन किया जाता है। इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में, इस रत्न प्रभा पृथ्वी के बहु समरमणीय भूमि भाग से ऊँचे चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, ताराओं से बहुत सैकड़ों योजन, हजारों योजन, लाखों योजन, करोड़ों योजन, और बहुत कोटाकोटि योजन ऊंचा जाने पर सौधर्म कल्प आता है। वह कल्प, पूर्व

पश्चिम में लम्बा है और उत्तर दक्षिण में विस्तृत (चौड़ा) है। वह अर्ध चन्द्राकार है। सूर्य की कान्ति के समान उसका वर्ण है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई असंख्य कोटाकोटि योजन है। और उसकी परिधि भी असंख्य कोटाकोटि योजन है। उसमें ३२ लाख विमान हैं। वे वज्रमय हैं और निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं। उस सौधर्म-कल्प के बीचोबीच होकर सौधर्मावतंसक से पूर्व में असंख्य योजन दूर जाने पर शक्रेन्द्र के लोकपाल 'सोम' नाम के महाराज का 'सन्ध्याप्रभ' नामका महाविमान है। जिस प्रकार रायपसेणी सूत्र में सूर्याभ देव के विमान का वर्णन है, उसी तरह इसके विमान का भी वर्णन कहना चाहिये, यावत् अभिषेक तक कहना चाहिए। वह वक्तव्यता बहुत विस्तृत है। अतः यहाँ नहीं लिखी गई है।

वैमानिक देवों के सौधर्म विमान में रहे हुए महल, किला, दरवाजा आदि का जो परिमाण बतलाया गया है, उससे आधा परिमाण सोम लोकपाल की राजधानी में समझना चाहिये। इसमें सुधर्मा सभा आदि स्थान नहीं है, क्योंकि वे सब स्थान तो सोम की उत्पत्ति के स्थान पर ही होते हैं।

सोम लोकपाल के परिवार रूप जो देव हैं, वे सोमकायिक कहलाते हैं। सोम लोकपाल के जो सामानिक देव हैं, वे 'सोमदेव' कहलाते हैं तथा सोमदेवों के परिवाररूप जो देव हैं, वे 'सोमदेव कायिक' कहलाते हैं। ये सब देव तथा सोम में भक्ति रखनेवाले तथा उसकी सहायता करनेवाले देव तथा उसकी अधीनता में रहनेवाले ये सब देव सोम की आज्ञा में रहते हैं।

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में होने वाले ग्रह, दण्ड आदि सारे कार्य सोम महाराज से अज्ञात नहीं है अर्थात् अनुमान की अपेक्षा अज्ञात नहीं हैं। अदृष्ट (प्रत्यक्ष की अपेक्षा नहीं देखे हुए) नहीं है। अश्रुत (दूसरे के पास से नहीं सुने हुए) नहीं हैं। अस्मृत (मन की अपेक्षा याद नहीं किये हुए) नहीं है। तथा अविज्ञात (अवधिज्ञान की अपेक्षा नहीं जाने हुए) नहीं है।

अंगारक (मंगल ग्रह) आदि देव, सोम महाराज के अपत्य रूप से अभिमत हैं। अर्थात् वे अभिमत वस्तु का संपादन करने वाले हैं।

यहाँ अपत्य रूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। इनमें यद्यपि चन्द्र और सूर्य के नाम भी आये हैं और उनकी स्थिति अर्थात् चन्द्र की स्थिति एक पल्योपम एक लाख वर्ष है और सूर्य की स्थिति एक पल्योपम एक हजार वर्ष की है। तथापि उस ऊपर की बढ़ी हुई स्थिति को यहां नहीं गिना गया है। अंगारक आदि तो ग्रह है। उनकी

स्थिति एक पल्योपम की है। इसलिये यहां उनकी स्थिति एक पल्योपम की बतलाई गई है।

लोकपाल यम देव

४ प्रश्न–कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो, जमस्स महारण्णो वरसिट्ठे णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

४ उत्तर–गोयमा ! सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स दाहिणेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीईवइत्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो जमस्स महारण्णो वरसिट्ठे णामं विमाणे पण्णत्ते–अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं, जहा सोमस्स विमाणं तहा जाव–अभिसेओ; रायहाणी तहेव, जाव–पासायपंतीओ; सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो इमे देवा आणा, जाव–चिट्ठंति; तं जहा–जमकाइया इ वा, जमदेवकाइया इ वा; पेयकाइया इ वा, पेयदेवयकाइया इ वा; असुरकुमारा, असुरकुमारीओ; कंदप्पा णिरयवाला, आभिओगा; जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया, तप्पक्खिया, तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो जमस्स महारण्णो आणाए जाव–चिट्ठंति;

कठिन शब्दार्थ--निरयवाला–नरकपाल, आभिओगा–सेवा करनेवाले।

भावार्थ–४ प्रश्न–हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज का वरशिष्ट नाम का महाविमान कहाँ है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! सौधर्मावतंसक नाम के महाविमान से दक्षिण में सौधर्मकल्प में असंख्य हजार योजन आगे जाने पर, देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराजा का वरशिष्ट नाम का महान् विमान है। उसकी लम्बाई चौड़ाईसाढ़े बारह लाख योजन है, इत्यादि सारा वर्णन सोम महाराजा के सन्ध्याप्रभ महाविमान की तरह कहना चाहिये, यावत् अभिषेक तक। राजधानी और प्रासादों की पंक्तियों के विषय में भी उसी तरह कहना चाहिये। देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज की आज्ञा में यावत् ये देव रहते हैं:-यमकायिक, यमदेव-कायिक, प्रेतकायिक, प्रेतदेव-कायिक, असुरकुमार, असुरकुमारियाँ, कन्दर्प, नरकपाल, अभियोग और इसी प्रकार के वे सब देव जो यम महाराज की भक्ति, पक्ष और अधीनता रखते हैं, ये सब यम महाराज की आज्ञा में यावत् रहते हैं।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा-डिंबा इ वा, डमरा इ वा, कलहा इ वा, बोला इ वा, खारा इ वा, महाजुद्धा इ वा, महासंगामा इ वा, महासत्थणिवडणा इ वा, एवं महापुरिसणिवडणा इ वा, महारुहिरणिवडणा इ वा, दुब्भूआ इ वा, कुलरोगा इ वा, गामरोगा इ वा, मंडलरोगा इ वा, नगररोगा इ वा, सीसवेयणा इ वा, अच्छिवेयणा इ वा, कण्णवेयणा इ वा, णहवेयणा इ वा, दंतवेयणा इ वा, इंदग्गहा इ वा, खंदग्गहा इ वा, कुमारग्गहा इ वा, जक्खग्गहा इ वा, भूयग्गहा इ वा, एगाहिया इ वा, वेयाहिया इ वा, तेयाहिया इ वा, चाउत्थहिया इ वा, उव्वेयगा इ वा, कासा इ वा, सासा इ वा, जरा

इ वा, दाहा इ वा, कच्छकोहा इ वा, अजीरया, पंडुरोगा, हरिसा इ वा, भगंदरा इ वा, हिययसूला इ वा, मत्थयसूला इ वा, जोणिसूला इ वा, पाससूला इ वा, कुच्छिसूला इ वा, गाममारी इ वा, नगरमारी इ वा, खेडमारी इ वा, कब्बडमारी इ वा, दोणमुहमारी इ वा, मडम्बमारी इ वा, पट्टणमारी इ वा, आसममारी इ वा, संबाहमारी इ वा, सण्णिवेसमारी इ वा, पाणक्खया, जणक्खया, धणक्खया, कुलक्खया, वसणभूया अणारिया, जे यावि अण्णे तहप्पगारा ण ते सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो जमस्समहारण्णो अण्णाया, ते सिं वा जमकाइयाणं देवाणं। सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो जमस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चा अभिण्णाया होत्था; तं जहा-

अंबं अंबरिसे चेव सामे सबले त्ति यावरे,
रुद्दो-वरुद्दे काले य महाकाले त्ति यावरे।
असी य असिपत्ते कुंभे(असिपत्ते धणू कुंभे)वालू वेयरणी त्ति य,
खरस्सरे महाघोसे एमेए पण्णरसाऽऽहिया।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो सत्तिभागं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, एवं महिड्ढीए, जाव-जमे महाराया।

कठिन शब्दार्थ-डिवा-विघ्न, डमरा-राजकुमारादि कृत उपद्रव, कलहा-वचनों द्वारा

कृत क्लेश, महासत्थनिवडणा-महाशस्त्र निपतन,महापुरिसनिवडणा-महापुरुष मरण, महारुहिरनिवडणा-महारुधिर निपात, दुब्भूआ-दुर्भूत-दुष्टजन, अच्छिवेयणा-आँखों की पीड़ा, इन्दग्गहा-इन्द्रग्रह, एगाहिआ-एकान्तर ज्वर, उव्वेयगा-उद्वेग, कासा-खांसी, हरिसा-बवासिर-मसा।

भावार्थ-इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में जो ये कार्य होते हैं- डिम्ब (विघ्न) डमर (उपद्रव) कलह, बोल, खार (पारस्परिक मत्सरता) महायुद्ध, महा-संग्राम, महाशस्त्र-निपतन, इसी तरह महापुरुषों की मृत्यु, महारुधिर का निपतन, दुर्भूत, (दुष्टजन) कुलरोग, मण्डलरोग, नगररोग, शिर दर्द, नेत्र वेदना, कर्ण वेदना, नख वेदना, दन्त वेदना, इन्द्र ग्रह, स्कन्द ग्रह, कुमार ग्रह, यक्ष ग्रह, एकान्तर ज्वर, द्विअन्तर ज्वर, त्रिअन्त ज्वर, चतुरन्तर, (चौथिया-बुखार) उद्वेग, खांसी, श्वास (दम) बलनाशक ज्वर, दाह ज्वर, कच्छ-कोह (शरीर के कक्षादि भागों का सड़ जाना) अजीर्ण, पाण्डुरोग, हरसरोग, भगन्दर, हृदयशूल, मस्तकशूल, योनिशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, ग्राममारी, नगरमारी, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पट्टण, आश्रम संबाध और सन्निवेश इन सब की मारी (मृगी रोग), प्राणक्षय, जनक्षय, कुलक्षय, व्यसनभूत, अनार्य (पापरूप), और इसी प्रकार के दूसरे सब कार्य देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराजा से अथवा यमकायिक देवों से अज्ञात आदि नहीं है। देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराजा के ये देव अपत्य रूप से अभिमत हैं-अम्ब, अम्बरिष, श्याम, शबल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनुष, कुम्भ, बालू, वैतरणी, खरस्वर और महाघोष-ये पन्द्रह हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराजा की स्थिति तीन भाग सहित एक पल्योपम की है और उसके अपत्य रूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की है। यम महाराजा ऐसी महाऋद्धि वाला और महा प्रभाववाला है।

विवेचन-विघ्न, क्लेश, उपद्रव, युद्ध, महायुद्ध, संग्राम, महासंग्राम रोग, ज्वर आदि सारे कार्य यम महाराज और यमकायिक देवों से अज्ञात आदि नहीं होते हैं। यम महाराज

को अपत्य रूप से अभिमत अम्ब, अम्बरीष आदि देव होते हैं। वे 'परमाधार्मिक' देव कहलाते हैं। ये तीसरी नारकी तक नैरयिक जीवों को नाना प्रकार कष्ट देते हैं। परमाधार्मिक देवों के पन्द्रह भेद हैं। जिनके नाम ऊपर बतलाये गये हैं। उनका अर्थ इस प्रकार है-

(१) अम्ब-असुर जाति के जो देव नारकी जीवों को ऊपर आकाश में लेजाकर एक दम छोड़ देते हैं।

(२) अम्बरीष-जो छुरी आदि के द्वारा नारकी जीवों के छोटे छोटे टुकड़े करके भाड़ में पकने योग्य बनाते हैं।

(३) श्याम-जो रस्सी या लात घूंसे आदि से नारकी जीवों को पीटते हैं और भयङ्कर स्थानों में पटक देते हैं तथा जो काले रंग के होते हैं, वे 'श्याम' कहलाते हैं।

(४) शबल-जो नारकी जीवों के शरीर की आँतें, नसें और कलेजे आदि को बाहर खींच लेते हैं तथा शबल अर्थात् चितकबरे रंग वाले होते हैं, उन्हें 'शबल' कहते हैं।

(५) रुद्र (रौद्र)-जो भाला, बर्छी आदि शस्त्रों में नारकी जीवों को पिरो देते हैं और जो रौद्र (भयङ्कर) होते हैं, उन्हें 'रुद्र' कहते हैं।

(६) उपरुद्र (उपरौद्र)-जो नैरयिकों के अंगोपांगों को फाड़ डालते हैं और जो महारौद्र (अत्यन्त भयङ्कर) होते हैं, उन्हें 'उपरुद्र' कहते हैं।

(७) काल-जो नैरयिकों को कड़ाही में पकाते हैं और काले रंग के होते हैं, उन्हें 'काल' कहते हैं।

(८) महाकाल-जो उनके चिकने मांस के टुकड़े टुकड़े करते हैं, एवं उन्हें खिलाते हैं और बहुत काले होते हैं उन्हें 'महाकाल' कहते हैं।

(९) असिपत्र-जो वैक्रिय शक्ति द्वारा असि अर्थात् तलवार के आकार वाले पत्तों से युक्त वन की विक्रिया करके उसमें बैठे हुए नारकी जीवों के ऊपर वे तलवार सरीखे पत्ते गिरा कर तिल सरीखे छोटे छोटे टुकड़े कर डालते हैं, उन्हें 'असिपत्र' कहते हैं।

(१०) धनुष-जो धनुष के द्वारा अर्द्ध चन्द्रादि बाणों को फेंक कर नारकी जीवों के कान आदि को छेद देते हैं, भेद देते हैं और भी दूसरी प्रकार की पीड़ा पहुंचाते हैं, उन्हें 'धनुष्' कहते हैं।

(११) कुम्भ जो नारकी जीवों को कुम्भियों में पकाते हैं, उन्हें 'कुम्भ' कहते हैं।

(१२) वालू-जो वैक्रिय के द्वारा बनाई हुई कदम्ब पुष्प के आकारवाली अथवा वज्र के आकारवाली वालू रेत में नारकी जीवों को चने की तरह भूनते हैं, उन्हें 'वालू'

(वालूक) कहते हैं।

(१३) वैतरणी–जो असुर मांस, रुधिर, राध, ताम्बा, सीसा आदि गरम पदार्थों से उबलती हुई नदी में नारकी जीवों को फेंक कर उन्हें तैरने के लिए बाध्य करते हैं, उन्हें 'वैतरणी' कहते हैं।

(१४) खरस्वर–जो वज्र कण्टकों से व्याप्त शाल्मली वृक्ष पर नारकी जीवों को चढ़ा कर, कठोर स्वर करते हुए अथवा करुण रुदन करते हुए नारकी जीवों को खींचते, हैं उन्हें 'खरस्वर' कहते हैं।

(१५) महाघोष–जो डर से भागते हुए नारकी जीवों को पशुओं की तरह बाड़े में बन्द कर देते हैं तथा जोर से चिल्लाते हुए उन्हें वहीं रोक रखते हैं, उन्हें 'महाघोष' कहते हैं।

पूर्वजन्म में क्रूर क्रिया तथा संक्लिष्ट परिणामवाले हमेशा पाप में लगे हुए भी कुछ जीव, पञ्चाग्नि तप आदि अज्ञान पूर्वक किये गये कायाक्लेश से आसुरी गति को प्राप्त करते हैं, वे ही परमाधार्मिक बनकर पहली तीन नरकों में नारकी जीवों को कष्ट देते हैं। जिस तरह यहां कोई मनुष्य भैंसे, मेंढे और कुक्कुट (मुर्गा) आदि के युद्ध को देख कर खुश होते हैं। उसी तरह परमाधार्मिक देव भी कष्ट पाते हुए नारकी जीवों को देखकर खुश होते हैं। खुश होकर अट्टहास करते हैं, तालियां बजाते हैं। इन बातों से परमाधार्मिक देव बड़ा आनन्द मानते हैं।

लोकपाल वरुण देव

५ प्रश्न–कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सयंजले णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

५ उत्तर–गोयमा ! तस्स णं सोहम्मवडेंसयस्स विमाणस्स पच्चत्थिमेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं, जहा सोमस्स तहा विमाण-रायहाणीओ भाणियव्वा, जाव–पासायवडेंसया। णवरं–णाम-णाणत्तं। सक्कस्स णं वरुणस्स महारण्णो जाव–चिट्ठंति, तं जहा–

वरुणकाइया इ वा, वरुणदेवयकाइया इ वा, णागकुमारा, णागकुमारीओ, उदहिकुमारा, उदहिकुमारीओ, थणियकुमारा, थणियकुमारीओ; जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिआ, जाव–चिट्ठंति। जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा–अइवासा इ वा, मंदवासा इ वा, सुवुट्ठी इ वा, दुवुट्ठी इ वा, उदब्भेदा इ वा, उदप्पीला इ वा, उव्वाहा इ वा, पव्वाहा इ वा, गामवाहा इ वा जाव सण्णिवेसवाहा इ वा; पाणक्खया, जाव–तेसिं वा वरुणकाइयाणं देवाणं। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो जाव–अहावच्चाऽभिण्णाया होत्था, तं जहा–कक्कोडए, कद्दमए, अंजणे, संखवालए, पुंडे, पलासे, मोए, जए, दहिमुहे, अयंपुले, कायरिए। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, एमहिड्ढीए, जाव–वरुणे महाराया।

कठिन शब्दार्थ–अइवासा–अति वृष्टि, सुवुट्ठी–सुवृष्टि, उदब्भेदा–उदकोद्भेद, उदप्पीला–उदकोत्पील–तालाव आदि में पानी का समूह, उव्वाहा–पानी का थोड़ा वहना।

भावार्थ–५ प्रश्न–हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज का स्वयंज्वल नाम का महा विमान कहाँ है?

५ उत्तर–हे गौतम! सौधर्मावतंसक विमान से पश्चिम में, सौधर्म-कल्प से असंख्य योजन दूर जाने पर वरुण महाराज का स्वयंज्वल नाम का महा

विमान आता है। इसका सारा वर्णन सोम महाराज के महा विमान की तरह जानना चाहिये। इसी तरह विमान, राजधानी यावत् प्रासादावतंसकों के विषय में भी जानना चाहिये। केवल नामों में अन्तर है।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज की आज्ञा में यावत् ये देव रहते हैं—वरुणकायिक, वरुणदेव कायिक, नागकुमार, नागकुमारियां, उदधिकुमार, उदधिकुमारियां, स्तनितकुमार, स्तनितकुमारियां और इसी प्रकार के उसकी भक्ति और पक्ष रखनेवाले तथा अधीनस्थ देव उनकी आज्ञा में यावत् रहते हैं।

इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में जो ये कार्य उत्पन्न होते हैं। यथा—अतिवृष्टि, मन्दवृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, उदकोद्भेद (पहाड़ आदि से निकलने वाला झरना) उदकोत्पील (तालाव आदि में पानी का समूह), अपवाह (पानी का थोड़ा बहना) प्रवाह (पानी का प्रवाह) ग्रामवाह (ग्राम का बहजाना) यावत् सन्निवेशवाह (सन्निवेश का बहजाना) प्राण-क्षय और इसी प्रकार के दूसरे सब कार्य वरुण महाराज से अथवा वरुणकायिक देवों से अज्ञात आदि नहीं है।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज के ये देव अपत्य रूप से अभिमत हैं—कर्कोटक, कर्दमक, अञ्जन, शंखपालक, पुण्ड्र, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अयंपुल, और कातरिक।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज की स्थिति देशोन दो पल्योपम की है और उसके अपत्य रूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की है। वरुण महाराज ऐसा महाऋद्धिवाला और महा प्रभाववाला है।

विवेचन—वरुण के प्रकरण में वर्षा सम्बन्धी वर्णन किया गया है। वेगपूर्वक बरसती हुई वर्षा को 'अतिवर्षा' और धीरे बरसती हुई वर्षा को 'मन्द-वर्षा' कहा गया है। जिस वर्षा से धान्य आदि अच्छी तरह पक जाय उसे 'सुवृष्टि' और जिससे धान्य आदि न पक सके उसे 'दुर्वृष्टि' कहा है। पर्वत की तलहटी आदि स्थानों से पानी का निकलना 'उदकोद्भेद,' तालाब आदि में एकत्रित पानी का समूह 'उदकोत्पील', पानी का प्रवल, बहाव 'प्रवाह' और मन्द बहाव 'अपवह' कहलाता है। तथा पानी के द्वारा होने वाले प्राणक्षय

आदि का भी यहां ग्रहण किया गया है। लवण-समुद्र में ईशान-कोण में अनुवेलन्धर नामक नागराज का आवास रूप पहाड़ कर्कोटक पर्वत है। और उस पर्वत पर रहने वाला नागराज भी कर्कोटक कहलाता है। इसी तरह लवण-समुद्र में अग्नि-कोण में विद्युतप्रभ नाम का पर्वत है। उस पर कर्दमक नामक नागराज रहता है। वायुकुमार देवों के राजा वेलम्ब के लोकपाल का नाम अञ्जन है और धरण नाम के नागराज के लोकपाल का नाम 'शंखपालक' है।

लोकपाल वैश्रमण देव

६ प्रश्न-कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो वग्गु णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

६ उत्तर-गोयमा ! तस्स णं सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स उत्तरेणं जहा सोमस्स महाविमाण-रायहाणिवत्तव्वया तहा णेयव्वा, जाव-पासायवडेंसया। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स इमे देवा आणा-उववाय-वयण णिद्देसे चिट्ठंति,

भावार्थ-६ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज का वल्गु नाम का महाविमान कहाँ है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! सौधर्मावतंसक नाम के महाविमान से उत्तर में है। इसका सारा वर्णन सोम महाराज के महाविमान के समान जानना चाहिए यावत् राजधानी और प्रासादावतंसक तक का वर्णन उसी तरह जानना चाहिए।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज की आज्ञा में, उपपात में, वचन में और निर्देश में ये देव रहते हैं। यथा-वैश्रमण कायिक, वैश्रमणदेव कायिक, सुवर्णकुमार, सुवर्णकुमारियाँ, द्वीपकुमार, द्वीपकुमारियाँ, दिक्कुमार, दिक्कुमारियाँ, वाणव्यन्तर, वाणव्यन्तरदेवियाँ, तथा इसी प्रकार वे सब देव जो

उसकी भक्ति पक्ष और अधीनता रखते हैं, वे सब उसकी आज्ञा आदि में रहते हैं।

तं जहा-वेसमणकाइया इ वा, वेसमणदेवयकाइया इ वा, सुवण्णकुमारा, सुवण्णकुमारीओ; दीवकुमारा, दीवकुमारीओ; दिसाकुमारा, दिसाकुमारीओ; वाणमंतरा, वाणमंतरीओ; जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिआ, जाव-चिट्ठंति। जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा-अयागरा इ वा, तउयागरा इ वा, तंबागरा इ वा, एवं सीसागरा इ वा, हिरण्णागरा इ वा, सुवण्णागरा इ वा, रयणागरा इ वा, वइरागरा इ वा, वसुहारा इ वा, हिरण्णवासा इ वा, सुवण्णवासा इ वा, रयणवासा इ वा, वइरवासा इ वा, आभरणवासा इ वा, पत्तवासा इ वा, पुप्फवासा इ वा, फलवासा इ वा, बीयवासा इ वा, मल्लवासा इ वा, वण्णवासा इ वा, चुण्णवासा इ वा, गंधवासा इ वा, वत्थवासा इ वा; हिरण्णवुट्ठी इ वा, सुवण्णवुट्ठी इ वा, रयणवुट्ठी इ वा, वइरवुट्ठी इ वा, आभरणवुट्ठी इ वा, पत्तवुट्ठी इ वा, पुप्फवुट्ठी इ वा, फलवुट्ठी इ वा, बीयवुट्ठी इ वा, मल्लवुट्ठी इ वा, वण्णवुट्ठी इ वा, चुण्णवुट्ठी इ वा, गंधवुट्ठी इ वा, वत्थवुट्ठी इ वा, भायणवुट्ठी इ वा, खीरवुट्ठी इ वा; सुकाला इ वा, दुक्काला इ वा, अप्पग्घा इ वा, महग्घा इ वा, सुभिक्खा इ वा, दुब्भिक्खा इ वा, कयविक्कया इ वा, सण्णिही इ वा,

सण्णिचया इ वा, णिही इ वा, णिहाणाइं वा, चिरपोराणाइं वा, पहीणसामियाइं वा, पहीणसेउयाइं वा, पहीणमग्गाणि वा पहीण-गोत्तागाराइं वा; उच्छण्णसामियाइं वा, उच्छण्णसेउयाइं वा, उच्छ-ण्णगोत्तागाराइं वा, सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु वा, णयरणिद्धवणेसु वा, सुसाण-गिरि-कंदर-संति-सेलो-वट्ठाण-भवणगिहेसु सण्णिक्खित्ताइं चिट्ठंति; ण ताइं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अण्णायाइं, अदिट्ठाइं; असुयाइं, अस्सु (मु) याइं, अविण्णायाइं; तेसिं वा वेसमणकाइयाणं देवाणं।

कठिन शब्दार्थ-अयागरा-लोह की खान, तउयागरा-रांगा-कलई की खान, णिहा-णाइं-निधान, अप्पग्घा-सस्ताई, महग्घा-महँगाई, सन्निहि-संग्रह-संचय किया हुआ, निहि-निधि, चिरपोराणाइं-बहुत समय के पुराने, पहीणसामियाइं-जिनके स्वामी नष्ट हो चुके हों, उच्छण्णसामियाइं-जिनके स्वामी समाप्त हो चुके हों, नगर निद्धवणेसु-नगर की गटरों में, सुसाण-श्मशान, गिरि-पर्वत, कंदर-गुफा, संति-शांतिगृह।

भावार्थ-इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में जो ये कार्य होते हैं। यथा-लोह की खानें, रांगा की खानें, ताम्बा की खानें, शीशा की खानें, हिरण्य (चांदी) सुवर्ण रत्न और वज्र की खानें, वसुधारा, हिरण्य, सुवर्ण, रत्न, वज्र, गहना, पत्र, पुष्प, फल, बीज, माला, वर्ण, चूर्ण, गन्ध और वस्त्र इन सब की वर्षा। तथा कम या अधिक हिरण्य, सुवर्ण, रत्न, वज्र, आभरण, पत्र, पुष्प, फल, बीज, माल्य, वर्ण, चूर्ण, गन्ध, वस्त्र, भाजन और क्षीर की वृष्टि, सुकाल, दुष्काल, अल्पमूल्य (सस्ता), महामूल्य (महंगा), भिक्षा की समृद्धि, भिक्षा की हानि, खरीदना, बेचना, सन्निधि (घी गुड़ादि का संचय), सन्निचय (अनाज का संचय), निधियाँ, निधान, चिरपुरातन (बहुत पुराने) जिनके स्वामी नष्ट हो गये हैं ऐसे खजाने, जिनकी सार संभाल करने वाले नहीं हैं ऐसे खजाने, प्रहीण

मार्ग और नष्ट गोत्र वाले खजाने, स्वामी रहित खजाने, जिनके स्वामियों के नाम और गोत्र तथा घर नाम-शेष हो गये हैं ऐसे खजाने, शृंगाटक (सिंघाडे के आकार वाले) मार्गों में, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ, सामान्य मार्ग, नगर के गन्दे नाले, श्मशान, पर्वतगृह, पर्वत गुफा, शान्तिगृह, पर्वत को खोद कर बनाये गये घर, सभास्थान, निवासगृह आदि स्थानों में गाढ़ कर रखा हुआ धन, ये सब पदार्थ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज से तथा वैश्रमणकायिक देवों से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत और अविज्ञात नहीं हैं।

सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चाऽभिण्णाया होत्था, तं जहा–पुण्णभद्दे, माणिभद्दे, सालिभद्दे, सुमणभद्दे, चक्के, रक्खे, पुण्णरक्खे, स (प) व्वाणे, सव्वजसे, सव्वकामे, समिद्धे, अमोहे, असंगे। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, अहावच्चाऽभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, एमहड्ढीए, जाव–वेसमणे महाराया।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

भावार्थ–देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज के ये देव अपत्य रूप से अभिमत हैं। यथा–पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र सुमनोभद्र, चक्र, रक्ष, पूर्णरक्ष, सद्वान्, सर्वयश, सर्वकाय, समृद्ध, अमोघ और असंग।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज की स्थिति दो पल्योपम है और उसके अपत्य रूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की है। इस प्रकार वैश्रमण महाराज महा ऋद्धिवाला और महा प्रभाववाला है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन-वैश्रमण देव के विवेचन में धन, धान्य और उनके भण्डारों का वर्णन किया गया है। तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म आदि प्रसंगों पर आकाश से जो धनवृष्टि होती है, उसे 'वसुधारा' कहते हैं। चाँदी को अथवा बिना घड़े हुए सोने को 'हिरण्य' कहते हैं। झरमर झरमर बरसता हुआ पानी 'वर्षा' कहलाता है और वेगपूर्वक बरसता हुआ पानी 'वृष्टि' कहलाता है। जिस समय में भिक्षुओं को भिक्षा सरलता से मिल जाती है। उसे 'सुभिक्ष' और इससे विपरीत 'दुर्भिक्ष' कहलाता है। घी, गुड़ आदि के संग्रह को 'सन्निधि' और धान्य के संग्रह को 'संनिचय' कहते हैं। जो धन जमीन में गाढ़ा हुआ है, जिसको बहुत समय हो गया है, जिसका कोई स्वामी नहीं है, अथवा जिसका स्वामी मर गया है और यहाँ तक कि उसके नाम, गोत्र भी समाप्त हो गये हैं और सगे सम्बन्धी तथा उनका घर बार भी नहीं रहा है, ऐसे धन भण्डार जो श्मशानगृह यावत् गिरि-गुफा, शान्तिगृह आदि में गाढ़ा हुआ है, अथवा इसी प्रकार के जितने भी धन-भण्डार हैं, वे सब वैश्रमण देव और वैश्रमण-कायिक देवों से अज्ञात आदि नहीं हैं।

॥ इति तीसरे शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ८

देवेन्द्र

१ प्रश्न-रायगिहे णयरे जाव-पज्जुवासमाणे एवं वयासी-असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव-विहरंति ?

१ उत्तर-गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव-विहरंति। तं जहा-चमरे असुरिंदे, असुरराया; सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे; बली

वइरोयणिंदे, वइरोयणराया; सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे।

२ प्रश्न-णागकुमाराणं भंते! पुच्छा?

२ उत्तर-गोयमा! दस देवा आहेवच्चं, जाव-विहरंति; त जहा-धरणे णं णागकुमारिंदे, णागकुमारराया; कालवाले, कोल-वाले, सेलवाले, संखवाले; भूयाणंदे णागकुमारिंदे, णागकुमारराया; कालवाले, कोलवाले, संखवाले, सेलवाले।

-जहा णागकुमारिंदाणं एयाए वत्तव्वयाए णेयव्वं एवं इमाणं णेयव्वं, सुवण्णकुमाराणं-वेणुदेवे, वेणुदाली, चित्ते, विचित्ते, चित्त-पक्खे, विचित्तपक्खे। विज्जुकुमाराणं-हरिकंत, हरिस्सह, पभ, सुप्पभ, पभकंत सुप्पभकंत। अग्गिकुमाराणं-अग्गिसीह, अग्गिमाणव, तेउ, तेउसीह, तेउकंत, तेउप्पभ। दीवकुमाराणं-पुण्ण, विसिट्ठ, रूय, रूयंस, रूयकंत, रूयप्पभ। उदहिकुमाराणं-जलकंते, जलप्पभ, जल, जलरूय, जलकंत, जलप्पभ। दिसाकुमाराणं-अमियगई, अमियवाहणे, तुरियगई, खिप्पगई, सीहगई, सीहविक्कमगई। वाउकुमाराणं-वेलंब, पभंजण, काल, महाकाल, अंजण, रिट्ठ। थणियकुमाराणं-घोस, महाघोस, आवत्त, वियावत्त, नंदियावत्त, महानंदियावत्त। एवं भाणियव्वं जहा असुरकुमारा।

सोम कालवाल चित्तप्पभ तेयरूव जल तुरियगई काल आउत्त।

कठिन शब्दार्थ-आहेवच्चं-आधिपत्य-अधिपतिपना, पुच्छा-पृच्छा-प्रश्न पूछना।

एयाए-सम्बन्ध में ।

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा-हे भगवन् ! असुरकुमार देवों पर कितने देव अधिपतिपना करते हुए यावत् विचरते हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार देवों पर अधिपतिपना भोगते हुए यावत् दस देव विचरते हैं । वे इस प्रकार हैं-असुरेन्द्र असुरराज चमर, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण, वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि, सोम, यम, वरुण और वैश्रमण ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! नागकुमार देवों पर कितने देव अधिपतिपना करते हुए यावत् विचरते हैं ।

२ उत्तर-हे गौतम ! नागकुमार देवों पर अधिपतिपना करते हुए यावत् दस देव विचरते हैं । वे इस प्रकार हैं-नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण, कालवाल, कोलवाल, शैलपाल शंखपाल, नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द, कालवाल, कोलवाल, शंखपाल और शैलपाल ।

जिस प्रकार नागकुमारों के इन्द्रों के सम्बन्ध में वक्तव्यता कही गई है, उसी प्रकार इन देवों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये । सुवर्णकुमार देवों पर-वेणुदेव, वेणुदालि, चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष । विद्युतकुमारों के ऊपर हरिकान्त, हरिसह, प्रभ, सुप्रभ, प्रभाकान्त और सुप्रभाकान्त । अग्निकुमार देवों पर-अग्निसिंह, अग्निमाणव, तेजस्, तेजःसिंह, तेजकान्त और तेजप्रभ । द्वीपकुमार देवों पर-पूर्ण, विशिष्ट, रूप, रूपांश, रूपकान्त और रूपप्रभ। उदधिकुमार देवों पर-जलकान्त, जलप्रभ, जल, जलरूप, जलकान्त और जलप्रभ । दिशाकुमार देवों पर-अमितगति, अमितवाहन, त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति, और सिंहविक्रमगति । वायुकुमार देवों पर-वेलम्ब, प्रभंजन, काल, महाकाल, अंजन और अरिष्ट । स्तनित कुमार देवों पर-घोष, महाघोष, आवर्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त और महानन्दिकावर्त । इन सब का कथन असुरकुमारों की तरह कहना चाहिये ।

दक्षिण भवनपति के इन्द्रों के प्रथम लोकपालों के नाम इस प्रकार हैं-सोम, कालवाल, चित्र, प्रभ, तेजस्, रूप, जल, त्वरित गति, काल और आयुक्त ।

३ प्रश्न-पिसायकुमाराणं पुच्छा ?

३ उत्तर-गोयमा ! दो देवा आहेवच्चं, जाव-विहरंति, तं जहा-

काले य महाकाले सुरूव-पडिरूव-पुण्णभद्दे य,
अमरवई माणिभद्दे भीमे य तहा महाभीमे ।
किण्णर-किंपुरिसे खलु सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे,
अइकाय-महाकाए गीयरई चेव गीयजसे ।
एए वाणमंतराणं देवाणं ।

जोइसियाणं देवाणं दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा-चंदे य, सूरे य ।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! पिशाचकुमारों पर अधिपतिपना करते हुए कितने देव विचरते हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! उन पर अधिपतिपना भोगते हुए दो दो देव हैं। यथा-काल और महाकाल । सुरूप और प्रतिरूप । पूर्णभद्र और मणिभद्र । भीम और महाभीम । किन्नर और किम्पुरुष । सत्पुरुष और महापुरुष । अतिकाय और महाकाय । गीतरति और गीतयश । ये सब वाणव्यन्तर देवों के इन्द्र हैं ।

ज्योतिषी देवों पर अधिपतिपना भोगते हुए दो देव यावत् विचरते हैं । यथा-चन्द्र और सूर्य ।

४ प्रश्न-सोहम्मी-साणेसु णं भंते ! कप्पेसु कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?

४ उत्तर-गोयमा ! दस देवा जाव-विहरंति, तं जहा-सक्के देविंदे देवराया; सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे। ईसाणे देविंदे देवराया; सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे। एसा वत्तव्वया सव्वेसु वि कप्पेसु एए चेव भाणियव्वा। जे य इंदा ते य भाणियव्वा।

—सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

भावार्थ-४ प्रश्न-हे भगवन् ! सौधर्म और ईशान देवलोक में अधिपतिपना भोगते हुए यावत् कितने देव विचरते हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! उन पर अधिपतिपना भोगते हुए यावत् दस देव हैं। यथा-देवेन्द्र देवराज शक्र, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण और देवेन्द्र देवराज ईशान, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण। यह सारी वक्तव्यता सब देवलोकों में कहनी चाहिए और जिसमें जो इन्द्र है वह कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन-सातवें उद्देशक में देवों की वक्तव्यता कही गई है और इस आठवें उद्देशक में भी देवों सम्बन्धी वक्तव्यता ही कही जाती है। मूलपाठ में जो दस अक्षर कहे गये हैं। वे दक्षिण भवनपति देवों के इन्द्रों के प्रथम लोकपालों के नामों के आद्याक्षर (पहला पहला अक्षर) हैं। उनके पूरे नामों को सूचित करने वाली गाथा यह है-

सोमे य कालवाले, चित्तप्पभ तेउ तह रूए चेव,
जल तह तुरियगई य काले आउत्त पढमा उ ॥

अर्थ- सोम, कालवाल, चित्र, प्रभ, तेजस्, रूप, जल, त्वरितगति, काल और आयुक्त।

दूसरी जगह तो ऐसा कहा गया है कि दक्षिण दिशा के लोकपालों के प्रत्येक सूत्र में जो तीसरा और चौथा कहा गया है वह उत्तर दिशा के लोकपालों में चौथा और तीसरा कहना चाहिए।

सौधर्म और ईशान के सम्बन्ध में जो वक्तव्यता कही है, वैसी ही वक्तव्यता इन्द्रों के निवासवाले सब देवलोकों के विषय में कहनी चाहिए। सनत्कुमारादि इन्द्र युगलों के

विषय में दक्षिण के इन्द्र की अपेक्षा उत्तर के इन्द्र सम्बन्धी लोकपालों में तीसरे और चौथे के नाम विपरीत क्रम से कहने चाहिए। इन प्रत्येक देवलोकों में ये सोम आदि नाम ही कहने चाहिए, किन्तु भवनपतियों के इन्द्रों के लोकपालों के समान दूसरे दूसरे नाम नहीं कहने चाहिए। सौधर्म आदि बारह देवलोकों में शक्र आदि दस इन्द्र हैं, क्योंकि नववें दसवें देवलोक में एक इन्द्र है और ग्यारहवें बारहवें देवलोक में एक इन्द्र है। इस प्रकार बारह देवलोकों में दस इन्द्र हैं।

॥ इति तीसरे शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ९

इन्द्रियों के विषय

१ प्रश्न-रायगिहे जाव एवं वयासी-कइविहे णं भंते ! इंदियविसए पण्णत्ते ?

१ उत्तर-गोयमा ! पंचविहे इंदियविसए पण्णत्ते, तं जहा-सोइंदियविसए जाव जीवाभिगमे जोइसिय उद्देसओ णेयव्वो अपरिसेसो।

कठिन शब्दार्थ-अपरिसेसो-सम्पूर्ण ।

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! इन्द्रियों के विषय कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! इन्द्रियों के विषय पाँच प्रकार के कहे गये हैं। यथा-श्रोत्रेन्द्रिय का विषय, इत्यादि। इस सम्बन्ध में जीवाभिगम सूत्र में कहा हुआ ज्योतिष्क उद्देशक सम्पूर्ण कहना चाहिए।

विवेचन-देवों को अवधिज्ञान होने पर भी उन्हें इन्द्रियों के उपयोग की आवश्यकता रहती है। इसलिए इस नववें उद्देशक में इन्द्रियों के विषयों का निरूपण किया जाता है।

इन्द्रियों के विषय का कथन करने के लिए जीवाभिगम सूत्र के ज्योतिष्क उद्देशक का अतिदेश (भलामण) किया गया है। वह इस प्रकार है-

प्रश्न-हे भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के विषय सम्बन्धी पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-हे गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है यथा-शुभ शब्द परिणाम और अशुभ शब्द परिणाम।

प्रश्न-हे भगवन् ! चक्षु इन्द्रिय के विषय सम्बन्धी पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-हे गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है। यथा-सुरूप परिणाम और दूरूप परिणाम।

प्रश्न-हे भगवन् ! घ्राणेन्द्रिय के विषय सम्बन्धी पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-हे गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है। यथा-सुरभिगन्ध परिणाम और दुरभिगन्ध परिणाम।

प्रश्न-हे भगवन् ! रसनेन्द्रिय के विषय सम्बन्धी पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-हे गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है। यथा-सुरस परिणाम और दूरस परिणाम।

प्रश्न-हे भगवन् ! स्पर्शनेन्द्रिय के विषय सम्बन्धी पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर—हे गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है। यथा—सुख स्पर्श परिणाम और दुःख स्पर्श परिणाम।

दूसरी प्रतियों में तो इन्द्रियों के विषय सम्बन्धी सूत्र के अतिरिक्त उच्चावचसूत्र और सुरभि सूत्र, ये दो सूत्र और कहे गये हैं। यथा—

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या उच्चावच शब्द परिणामों के द्वारा परिणाम को प्राप्त होते हुए पुद्गल 'परिणमते हैं'—ऐसा कहना चाहिए ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! 'परिणमते हैं'—ऐसा कहना चाहिए।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या शुभ शब्दों के पुद्गल अशुभ शब्दपने परिणमते हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! परिणमते हैं। इत्यादि।

॥ तीसरे शतक का नवमा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक १०

इन्द्र की परिषद्

१ प्रश्न—रायगिहे जाव एवं वयासी—चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?

१ उत्तर—गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिया, चंडा, जाया, एवं जहाणुपुव्वीए जाव—अच्चुओ कप्पो।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

कठिन शब्दार्थ—परिसाओ—परिषदाएं—सभाएं, तओ—तीन, जहाणुपुव्विए—यथानुपूर्वी—क्रमपूर्वक।

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के कितनी परिषदाएँ (सभाएँ) कही गई हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! उसके तीन परिषदाएँ कही गई हैं । यथा-शमिका (अथवा-शमिता) चण्डा और जाता । इस प्रकार क्रमपूर्वक यावत् अच्युत कल्प तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं ।

विवेचन-नवमें उद्देशक में इन्द्रियों के विषय में कथन किया गया है । देव भी इन्द्रियोंवाले होते हैं । इसलिये इस दसवें उद्देशक में देवों के सम्बन्ध में कथन किया जाता है । चमरेन्द्र के तीन परिषदा हैं । समिका, (शमिका-शमिता) चण्डा और जाता । उनका विस्तृत वर्णन जीवाभिगम सूत्र में है । उसमें से कुछ वर्णन यहाँ दिया जाता है । समिका-स्थिर स्वभाव और समता के कारण इसे 'समिका' कहते हैं । अथवा अपने पर स्वामी द्वारा किये हुए कोप एवं उतावल को शान्त करने की सामर्थ्यवाली होने से इसे 'शमिका' कहते हैं । अथवा उद्धतता रहित एवं शान्त स्वभाव वाली होने से इसे शमिका कहते हैं । शमिता के समान महत्ववाली न होने से साधारण कोपादि के प्रसंग पर कुपित हो जाने के कारण दूसरी परिषद् को 'चण्डा' कहते हैं । गंभीर स्वभाव न होने के कारण विना ही प्रयोजन कुपित हो जानेवाली सभा का नाम 'जाता' है । इन तीनों सभाओं को क्रमशः आभ्यन्तर परिषद्, मध्यम परिषद् और बाह्य परिषद् कहते हैं । अर्थात् शमिता आभ्यन्तर परिषद् है, चण्डा मध्यम परिषद् है और जाता बाह्य परिषद् है । जब इन्द्र को कोई प्रयोजन होता है, तब वह आदर पूर्वक आभ्यन्तर परिषद् को बुलाता है और उसके सामने अपना प्रयोजन कहता है । मध्यम परिषद् बुलाने पर अथवा न बुलाने पर आती है और इन्द्र आभ्यन्तर परिषद् के साथ की हुई बातचीत को उसके सामने प्रकट करके निर्णय करता है । बाह्य सभा, बिना बुलाये आती है । इसके सामने इन्द्र अपने निर्णय किये हुए कार्य को कहता है और उसे सम्पादित करने की आज्ञा देता है । नव-निकाय के इन्द्रों की परिषद् के नाम असुरकुमारों के समान ही हैं ।

वाणव्यन्तर देवों की तीन परिषदा के नाम इस प्रकार है-इसा, तुडिया, दृढरथा

(दृढरथा)। ज्योतिषी देवों के तीन परिषदा के नाम–तुम्बा, तुडिया और पर्वा। वैमानिक देवों की तीन परिषदा के नाम–शमिका, चण्डा और जाता।

चमरेन्द्र की आभ्यन्तर परिषदा में २४००० देव और ३५० देवियाँ हैं। मध्यम परिषदा में २८००० देव और ३०० देवियाँ हैं। बाह्य परिषदा में ३२००० हजार देव और २५० देवियाँ हैं। देवों की स्थिति क्रमशः ढ़ाई पल्योपम, दो पल्योपम और डेढ़ पल्योपम हैं। देवियों की स्थिति क्रमशः डेढ पल्योपम, एक पल्योपम और आधा पल्योपम हैं। बलीन्द्र की तीनों परिषदा में क्रमशः बीस हजार, चौवीस हजार और अट्ठाईस हजार देव हैं। और चार सौ पचास, चार सौ और तीन सौ पचास देवियाँ हैं। देवों की स्थिति क्रमशः ३॥ पल्योपम, ३ पल्योपम और २॥ पल्योपम हैं और देवियों की स्थिति क्रमशः ढ़ाई पल्योपम, दो पल्योपम और डेढ़ पल्योपम हैं।

दक्षिण दिशा के नवनिकाय के देवों की तीन परिषदा में क्रमशः साठ हजार, सत्तर-हजार और अस्सीहजार देव हैं। स्थिति आधा पल्योपम झाझेरी, आधा पल्योपम और देशोन आधा पल्योपम हैं। देवियाँ क्रमशः एक सौ पचहत्तर, एक सौ पचास और एक सौ पचीस हैं। इनकी स्थिति क्रमशः देशोन आधा पल्योपम, पाव पल्योपम झाझेरी और पाव पल्योपम की है।

उत्तर दिशा के नवनिकाय के देवों की तीन परिषदाओं में क्रमशः पचास हजार, साठ हजार और सित्तर हजार देव हैं। इनकी स्थिति क्रमशः देशोन एक पल्योपम, आधा पल्योपम झाझेरी और आधा पल्योपम हैं। देवियाँ २२५, २०० और १७५ हैं। इनकी स्थिति क्रमशः आधा पल्योपम, देशोन आधा पल्योपम और पाव पल्योपम झाझेरी है।

वाणव्यन्तर देवों के ३२ इन्द्र हैं और ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र हैं। इनकी प्रत्येक की तीन परिषदाओं में क्रमशः आठ हजार, दस हजार और बारह हजार देव हैं। इनकी स्थिति क्रमशः आधा पल्योपम, देशोन आधा पल्योपम और पाव पल्योपम झाझेरी है। देवियाँ क्रमशः एक सौ, एक सौ और एक सौ है। इनकी स्थिति पाव पल्योपम झाझेरी, पाव पल्योपम और देशोन पाव पल्योपम की है।

शक्रेन्द्र की तीनों परिषदा में क्रमशः बारह हजार, चौदह हजार और सोलह हजार देव हैं। इनकी स्थिति क्रमशः पाँच पल्योपम, चार पल्योपम और तीन पल्योपम हैं। देवियाँ क्रमशः सात सौ, छह सौ और पांच सौ हैं। इनकी स्थिति क्रमशः तीन पल्योपम, दो पल्योपम और एक पल्योपम की है।

ईशानेन्द्र की तीनों परिषदाओं में क्रमशः दस हजार, बारह हजार और चौदह हजार देव हैं। इनकी स्थिति क्रमशः सात पल्योपम, छह पल्योपम और पांच पल्योपम हैं। देवियाँ, क्रमशः नव सौ, आठ सौ और सात सौ हैं। इनकी स्थिति क्रमशः पांच पल्योपम, चार पल्योपम और तीन पल्योपम हैं। सनत्कुमारेन्द्र की तीनों परिषदा में क्रमशः ८ हजार, १० हजार और १२ हजार देव हैं *। इनकी स्थिति क्रमशः साढे चार सागर और पांच पल्योपम, साढे चार सागर और चार पल्योपम तथा साढे चार सागर और तीन पल्योपम हैं। माहेन्द्र इन्द्र की तीन परिषदा में क्रमशः छह हजार, आठ हजार और दस हजार देव हैं। इन की स्थिति क्रमशः साढ़े चार सागर सात पल्योपम, साढे चार सागर छह पल्योपम और साढे चार सागर पांच पल्योपम हैं। ब्रह्म इन्द्र की तीनों परिषदाओं में क्रमशः चार हजार, छह हजार और आठ हजार देव हैं। इनकी स्थिति क्रमशः ८।। सागर ५ पल्योपम, ८।। सागर ४ पल्योपम और ८। सागर ३ पल्योपम हैं। लान्तक इन्द्र की तीनों परिषदाओं में क्रमशः दो हजार, चार हजार और छह हजार देव हैं। इनकी स्थिति क्रमशः १२ सागर ७ पल्योपम, १२ सागर ६ पल्योपम, और १२ सागर ५ पल्योपम है। महाशुक्र इन्द्र की तीनों परिषदाओं में क्रमशः एक हजार, दो हजार और चार हजार देव हैं। इनकी स्थिति १५।। सागर ५ पल्योपम, १५।। सागर ४ पल्योपम और १५।। सागर ३ पल्योपम है। सहस्रार इन्द्र की तीनों परिषदाओं में क्रमशः पांच सौ, एक हजार और दो हजार देव हैं। इनकी स्थिति १७।। सागर ७ पल्योपम, १७।। सागर ६ पल्योपम और १७।। सागर ५ पल्योपम है। नववाँ आणत देवलोक और दसवाँ प्राणत देवलोक, इन दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र है। उस प्राणतेन्द्र की तीनों परिषदाओं में क्रमशः ढाई सौ, पांच सौ और एक हजार देव हैं। इनकी स्थिति क्रमशः १९ सागर ५ पल्योपम, १९ सागर ४ पल्योपम और १९ सागर ३ पल्योपम है। ग्यारहवां आरण देवलोक और बारहवाँ अच्युत देवलोक इन दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र-अच्युतेन्द्र है। इसकी तीनों परिषदाओं में क्रमशः एक सौ पच्चीस, दो सौ पचास और पांच सौ देव हैं। इनकी स्थिति २१ सागर ७ पल्योपम, २१ सागर ६ पल्योपम और २१ सागर ५ पल्योपम है।

नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में परिषदाएं नहीं होती हैं। वे सब देव समान ऋद्धिवाले होते हैं। उनमें छोटे बड़े का भाव और स्वामी सेवक का विचार नहीं

* दूसरे देवलोक से आगे देवियाँ नहीं होती। इसलिये दूसरे देवलोक से आगे देवियों की संख्या और स्थिति नहीं बतलाई गई।
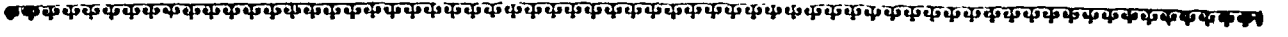
होता है। इनमें इन्द्र नहीं होता। वे सब अहमिन्द्र (स्वयं ही इन्द्र) होते हैं। इत्यादि वर्णन जीवाभिगम सूत्र में हैं।

॥ इति तीसरे शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

तीसरा शतक समाप्त

शतक ४

उद्देशक १, २, ३, ४

ईशानेन्द्र के लोकपाल

गाहा--चत्तारि विमाणेहिं चत्तारि य होंति रायहाणीहिं,
णेरईए लेस्साहि य दस उद्देसा चउत्थसये ।

१ प्रश्न-रायगिहे णयरे जाव एवं वयासी-ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ लोगपाला पण्णत्ता ?

१ उत्तर-गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा-सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे ।

२ प्रश्न-एएसि णं भंते ! लोगपालाणं कइ विमाणा पण्णत्ता ?

२ उत्तर-गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तं जहा-सुमणे,

सव्वओभद्दे, वग्गू, सुवग्गू ।

३ प्रश्न-कहि णं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सुमणे णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

३ उत्तर-गोयमा ! जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव-ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते, तत्थ णं जाव-पंच वडेंसया पण्णत्ता, तं जहा-अंकवडेंसए, फलिहवडेंसए, रयणवडेंसए, जायरूववडेंसए, मज्झे ईसाणवडेंसए; तस्स णं ईसाणवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीईवइत्ता तत्थ णं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सुमणे णामं महाविमाणे पण्णत्ते अद्धतेरसजोयण०, जहा सक्कस्स वत्तव्वया तईयसए तहा ईसाणस्स वि जाव-अच्चणिया सम्मत्ता ।

चउण्हं वि लोगपालाणं विमाणे विमाणे उद्देसओ, चउसु वि विमाणेसु चत्तारि उद्देसा अपरिसेसा, णवरं-ठिईए णाणत्तं-

आइ दुय विभागूणा, पलिया धणयस्स होंति दो चेव ।
दोसतिभागा वरुणे, पलियमहावच्चदेवाणं ।

चउत्थे सए पढम-बिईय-तईय चउत्था उद्देसा सम्मत्ता ॥४-४॥

कठिन शब्दार्थ-अच्चणिया-अर्चनिका, अपरिसेसा-पूर्ण-शेष नहीं रहे, णाणत्तं-नानात्व-अन्तर, आदि-प्रारंभ के ।

गाथा का अर्थ-इस चौथे शतक में दस उद्देशक हैं। इनमें से पहले के चार उद्देशकों में विमान सम्बन्धी कथन किया गया है। पांचवें से लेकर आठवें उद्देशक तक के चार उद्देशकों में राजधानियों का वर्णन है। नवमें उद्देशक में नैरयिकों का वर्णन है और दसवें उद्देशक में लेश्या सम्बन्धी वर्णन है। इस प्रकार इस शतक में दस उद्देशक हैं।

१ प्रश्न-राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान के कितने लोकपाल कहे गये हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! उसके चार लोकपाल कहे गये हैं। यथा:-सोम, यम, वैश्रमण और वरुण।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! इन लोकपालों के कितने विमान कहे गये हैं ?

२ उत्तर-हे गौतम ! उनके चार विमान कहे गये हैं। यथा-सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु और सुवल्गु।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज का सुमन नामक महाविमान कहाँ है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से यावत् ईशान नामक कल्प (देवलोक) है। उसमें यावत् पांच अवतंसक हैं। यथा-अंकावतंसक, स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक, और जातरूपावतंसक। इन चारों अवतंसकों के बीच में ईशानावतंसक है। उस ईशानावतंसक महाविमान से पूर्व में तिर्च्छा असंख्येय हजार योजन जाने पर देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज का 'सुमन' नाम का महाविमान है। उसका आयाम और विष्कम्भ अर्थात् लम्बाई और चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है। इसकी सारी वक्तव्यता, तीसरे शतक में शक्रेन्द्र के लोकपाल सोम के महाविमान की वक्तव्यता के अनुसार अर्चनिका की समाप्ति तक कहनी चाहिए।

एक लोकपाल के विमान की वक्तव्यता जहाँ पूरी होती है, वहाँ एक

उद्देशक की समाप्ति होती है। इस प्रकार चार लोकपालों के चार विमानों की वक्तव्यता में चार उद्देशक पूर्ण होते हैं। परन्तु इनकी स्थिति में अन्तर है। वह इस प्रकार है-सोम और यम महाराजा की स्थिति त्रिभाग न्यून दो दो पल्योपम की है, वैश्रमण की स्थिति दो पल्योपम की है और वरुण की स्थिति त्रिभाग सहित दो पल्योपम की है। अपत्य रूप देवों की स्थिति एक पल्योपम की है।

विवेचन-तीसरे शतक में प्रायः देवों के सम्बन्ध में ही कथन किया गया है। अब इस चौथे शतक में भी प्रायः देवों के सम्बन्ध में ही कथन किया जाता है-

चौथे शतक के दस उद्देशक हैं। प्रत्येक उद्देशक में किस विषय का वर्णन है। यह बात गाथा में बतलाई गई है। गाथा का अर्थ ऊपर दे दिया गया है। पहले के चार उद्देशकों में विमान सम्बन्धी कथन है और पांचवे से आठवें तक चार उद्देशकों में चार राजधानियों का वर्णन है। नवमें उद्देशक में नैरयिकों का और दसवें उद्देशक में लेश्याओं का वर्णन है। यह क्रम से आगे बतलाया जायगा।

॥ इति चौथे शतक का उद्देशक एक, दो, तीन, चार समाप्त ॥
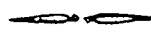
शतक ४ उद्देशक ५, ६, ७, ८

लोकपालों की राजधानियाँ

१-रायहाणीसु वि चत्तारि उद्देसा भाणियव्वा, जाव-महिड्ढीए, जाव-वरुणे महाराया।

॥ चउत्थे सए पंचम-छट्ठ-सत्त-मठमा उद्देसा सम्मत्ता ॥

कठिन शब्दार्थ-रायहाणीसु-राजधानियों में, भाणियव्वा-कहना चाहिए ।

भावार्थ-१ -राजधानियों के विषय में ऐसा समझना चाहिए कि जहाँ एक एक राजधानी का वर्णन समाप्त होता है, वहाँ एक एक उद्देशक पूर्ण हुआ समझना चाहिए । इस तरह से चारों राजधानियों के वर्णन में चार उद्देशक पूर्ण होते हैं । इस तरह पांचवें से लेकर आठवें उद्देशक तक चार उद्देशक पूर्ण हुए, यावत् वरुण महाराज ऐसी महाऋद्धि वाला है ।

विवेचन-राजधानियों के सम्बन्ध में चार उद्देशक कहने चाहिए। वे इस प्रकार हैं-

प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज की सोभा नामक राजधानी कहाँ है ?

हे गौतम ! सोमा राजधानी सुमन नामक महाविमान के बराबर नीचे है । इत्यादि सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र में कथित विजय राजधानी के वर्णन के समान है । इस प्रकार एक एक राजधानी के सम्बन्ध में एक एक उद्देशक कहना चाहिए । इस तरह पांचवें से लेकर आठवें उद्देशक तक चार उद्देशकों में चार राज धानियों का वर्णन है ।

'द्वीपसागर प्रज्ञप्ति' ग्रंथ की संग्रहणी गाथाओं में बतलाया है कि-शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के सोम आदि लोकपालों की, प्रत्येक की चार चार राजधानियाँ ग्यारहवें कुण्डल-वर द्वीप में हैं, तथा वह पर्वत, उसकी उँचाई, लम्बाई, चौड़ाई आदि का वर्णन किया है ।

कुण्डलवर द्वीप में जिन नगरियों का वर्णन है, वे नगरियाँ भिन्न हैं और यहां जो राजधानियाँ बतलाई गई है, वे उनसे भिन्न हैं । जिस प्रकार शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों की नगरियाँ नन्दीश्वर द्वीप में भी हैं और कुण्डलवर द्वीप में भी हैं, उसी प्रकार सोम आदि लोकपालों की नगरियों के विषय में भी समझना चाहिए ।

॥ इति चौथे शतक का उद्देशक पांच, छह. सात, आठ समाप्त ॥
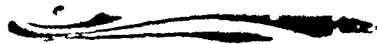
शतक ४ उद्देशक ९

नैरयिक ही नरक में जाता है

१ प्रश्न–णेरइए णं भंते ! णेरइएसु उववज्जइ, अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ ?

१ उत्तर–पण्णवणाए लेस्सापए तईओ उद्देसओ भाणियव्वो, जाव–णाणाइं ।

॥ चउत्थसए णवमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ–णाणाइं–ज्ञानों तक ।

भावार्थ–१ हे भगवन् ! क्या जो नैरयिक है वह नैरयिकों में उत्पन्न होता है ? या जो अनैरयिक है, वह नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

१ उत्तर–हे गौतम ! प्रज्ञापना सूत्र के लेश्यापद का तीसरा उद्देशक यहाँ कहना चाहिए और वह ज्ञानों के वर्णन तक कहना चाहिए ।

विवेचन–पहले के उद्देशकों में देवों सम्बन्धी वर्णन किया गया है । अब इस नववें उद्देशक में नैरयिक जीवों का वर्णन किया जाता है, क्योंकि जिस प्रकार देवों के वैक्रिय शरीर होता है, उसी प्रकार नैरयिक जीवों के भी वैक्रिय शरीर होता है । इसलिए देवों के बाद नैरयिक जीवों की वक्तव्यता कहना ठीक ही है ।

यहाँ नैरयिकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर प्रज्ञापना सूत्र के सत्तरहवें लेश्या पद के तीसरे उद्देशक का अतिदेश किया गया है । वह इस प्रकार है–

प्रश्न–हे भगवन् ! क्या नैरयिक ही नैरयिकों में उत्पन्न होता है, या अनैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उत्तर–हे गौतम ! नैरयिक ही नैरयिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु अनैरयिक, नैरयिकों

में उत्पन्न नहीं होता है।

यहाँ से जो तिर्यञ्च या मनुष्य मर कर नरक में उत्पन्न होता है, उसकी तिर्यञ्च सम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी आयु तो यहाँ समाप्त हो जाती है। उसके पास सिर्फ एक नरक की आयु ही बंधी हुई होती है। यहाँ से मर कर नरक में पहुँचते हुए मार्ग में जो एक दो आदि समय लगते हैं, वे उसी बंधी हुई नरकायु में से ही कम होते हैं। इस प्रकार वह जीव, मार्ग में जाते हुए (वाटे वहते हुए) भी नरकायु को ही भोगता है। जो नरकायु को भोगता है, वह नैरयिक है। इस कारण से यहाँ कहा गया है कि नैरयिक ही नैरयिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु अनैरयिक, नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता है।

ऋजुसूत्र नय, वर्तमान पर्याय को कहता है, भूत और भविष्यत् काल की तरफ उसकी उदासीनता रहती है। इसलिए ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा यह कहना सर्वथा उचित ही हैं कि नैरयिक ही नैरयिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु अनैरयिक, नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता है। इसी तरह शेष दण्डकों के जीवों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

प्रज्ञापना सूत्र के सतरहवें लेश्यापद का तीसरा उद्देशक कहाँ तक कहना चाहिए? तो इसके लिए कहा गया है कि-ज्ञान सम्बन्धी वर्णन तक कहना चाहिए। वह इस प्रकार है-'हे भगवन्! कृष्ण लेश्यावाला जीव, कितने ज्ञानवाला होता?'

हे गौतम! वह दो ज्ञानवाला, या तीन ज्ञानवाला, या चार ज्ञानवाला होता है। यदि दो ज्ञान होते हैं, तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं। यदि तीन ज्ञान होते हैं, तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते हैं, अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यायज्ञान होते हैं। यदि चार ज्ञान होते हैं, तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान होते हैं। इत्यादि जानना चाहिए।

॥ इति चौथे शतक का नववां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ४ उद्देशक १०

लेश्या का परिवर्तन

१ प्रश्न–से णूणं भंते ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए, तावण्णत्ताए० ?

१ उत्तर–एवं चउत्थो उद्देसओ पण्णवणाए चेव लेस्सापदे णेयव्वो, जाव–

परिणाम-वण्ण-रस-गंध-सुद्ध-अपसत्थ-संकिलिट्ठ-ण्हा,
गइ-परिणाम-पएसो-गाह-वग्गणा-ट्ठाणमप्पबहुं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

॥ चउत्थसए दसमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

–: चतुर्थ शतक समाप्त :–

कठिन शब्दार्थ–पप्प–प्राप्त करके, तारूवत्ताए–तद्रूप से–उस रूप से, तावण्णत्ताए–तद्वर्ण से–उस वर्ण से ।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या का संयोग प्राप्त करके तद्रूप और तद्वर्ण से परिणमती है ?

१ उत्तर–हे गौतम ! प्रज्ञापना सूत्र में कहे हुए लेश्या-पद का चौथा उद्देशक यहां कहना चाहिए और वह यावत् 'परिणाम' इत्यादि द्वार गाथा तक कहना चाहिए ।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है–परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध शुद्ध, अप्रशस्त,

संक्लिष्ट, उष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाहना, वर्गणा, स्थान और अल्प-बहुत्व। ये सारी बातें लेश्याओं के विषय में कहनी चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन–नववें उद्देशक के अन्त में लेश्या का कथन किया गया है। इसलिए अब इस दसवें उद्देशक में भी लेश्या के सम्बन्ध में ही कहा जाता है। लेश्या के सम्बन्ध में किये गये प्रश्न के उत्तर में प्रज्ञापना सूत्र के सतरहवें लेश्यापद के चौथे उद्देशक का अतिदेश किया गया है। जिसका आशय इस प्रकार है;–

हे भगवन् ! क्या कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या को प्राप्त होकर तद्रूप, तद्वर्ण, तद्-गन्ध, तद्रस और तत्स्पर्श रूप से वारम्वार परिणमती है ?

उत्तर–हाँ गौतम ! कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या को प्राप्त करके तद्रूप यावत् तत्स्पर्श-पने वारम्वार परिणमती है।

इसका तात्पर्य यह है कि कृष्ण-लेश्या के परिणाम वाला जीव, नील-लेश्या के योग्य द्रव्यों को ग्रहण करके मरण को प्राप्त होता है, तब वह नील-लेश्या के परिणामवाला होकर उत्पन्न होता है, क्योंकि कहा है–

"जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसे उववज्जइ"

अर्थ–जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके जीव, मृत्यु को प्राप्त होता है, उसी लेश्या वाला होकर दूसरे स्थान में उत्पन्न होता है। जो कारण होता है, वही संयोगवश कार्यरूप वन जाता है। जैसे कि कारण रूप मिट्टी, साधन संयोग से कार्यरूप (घटादि रूप) वन जाती है, उसी तरह कृष्ण-लेश्या भी कालान्तर में साधन-संयोगों को प्राप्त कर नील-लेश्या के रूप में वदल जाती है। कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या रूप में वदलने से इन दोनों में वास्तविक भेद नहीं है, किन्तु औपचारिक भेद है।

प्रश्न–हे भगवन् ! कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या को प्राप्त करके तद्रूप यावत् तत्स्पर्श रूप से परिणमती है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर–हे गौतम ! जिस प्रकार दूध को छाछ का संयोग मिलने से वह मधुरादि गुणों को छोड़ कर छाछ के रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रूप में परिणत हो जाता है, उसी तरह हे गौतम ! कृष्ण-लेश्या भी नील-लेश्या को प्राप्त करके तद्रूप यावत् तत्स्पर्श-पने परिणम जाती है।

जिस प्रकार सफेद वस्त्र, लाल पीले आदि रंग के संयोग को प्राप्त करके उसी रंग रूप, वर्णरूप यावत् रंग के स्पर्श रूप परिणम जाता है, उसी प्रकार कृष्ण-लेश्या भी नील-लेश्या को प्राप्त करके तद्रूप यावत् तत्स्पर्श रूप से परिणम जाता है।

जिस प्रकार कृष्ण-लेश्या नील-लेश्या का कहा, उसी प्रकार नील-लेश्या कापोत-लेश्या पने, कापोत-लेश्या तेजो-लेश्यापने, तेजोलेश्या पद्मलेश्यापने और पद्मलेश्या शुक्ललेश्यापने परिणम जाती है। इत्यादि सारा वर्णन कहना चाहिए।

प्रज्ञापना सूत्र के सत्तरहवें 'लेश्या पद' का चौथा उद्देशक कहाँ तक कहना चाहिये ? तो इसके लिये कहा गया है कि 'परिणाम' इत्यादि द्वार गाथा में कहे हुए द्वारों की समाप्ति तक यह उद्देशक कहना चाहिये। उनमें से परिणाम द्वार का कथन तो कर दिया गया है। वर्ण द्वार में प्रश्न किया गया है कि 'हे भगवन् ! कृष्ण-लेश्या आदि का वर्ण कैसा है ?'

उत्तर-कृष्ण-लेश्या का वर्ण, मेघ आदि के समान काला है। नील-लेश्या का वर्ण, भ्रमर आदि के समान नीला है। कापोतलेश्या का वर्ण, खदिरसार (खेरसार-कत्था) के समान कापोत है। तेजो-लेश्या का वर्ण, शशक रक्त (खरगोश के खून) के समान लाल है। पद्मलेश्या का वर्ण, चम्पक आदि के पुष्प के समान पीला है। और शुक्ललेश्या का वर्ण, शंख आदि के समान सफेद है।

लेश्याओं का रस इस प्रकार है-कृष्णलेश्या का रस, नीम वृक्ष के समान तिक्त (कड़वा) है। नीललेश्या का रस, सूंठ के समान कटु (तीखा) है। कापोतलेश्या का रस, कच्चे बेर के समान कषैला है। तेजो-लेश्या का रस, पके हुए आम्र के समान खटमीठा होता है। पद्म-लेश्या का रस, चन्द्रप्रभा आदि मदिरा के समान कटुकषायमधुर(तीखा, कषैला और मधुर तीनों संयुक्त) है। शुक्ल-लेश्या का रस, गुड़ आदि के समान मीठा है।

लेश्याओं की गंध इस प्रकार है-कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्याओं की गन्ध, दुरभिगन्ध है। और तेजो, पद्म और शुक्ल, इन तीन लेश्याओं की गन्ध, सुरभिगन्ध है।

कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएं अशुद्ध हैं, अप्रशस्त हैं, संक्लिष्ट हैं, शीत और रूक्ष हैं और दुर्गति का कारण हैं। तेजो, पद्म और शुक्ल, ये तीन लेश्याएं शुद्ध हैं, प्रशस्त हैं, असंक्लिष्ट हैं, स्निग्ध और उष्ण हैं तथा सुगति का कारण हैं।

लेश्याओं का परिणाम तीन प्रकार का कहा गया है। यथा-जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। इनमें से प्रत्येक के तीन तीन भेद करने से नौ, इत्यादि प्रकार से आगे आगे भेद करने चाहिए। छहों लेश्याओं में से प्रत्येक लेश्या, अनन्त प्रदेशवाली है। और इस तरह

छहों लेश्याओं में से प्रत्येक लेश्या की अवगाहना असंख्यात आकाश-प्रदेश में है। कृष्णादि छहों लेश्याओं के योग्य द्रव्य वर्गणा, औदारिक आदि वर्गणा की तरह अनन्त हैं। तरतमता के कारण विचित्र अध्यवसायों के निमित्तरूप कृष्णादि द्रव्यों के समूह असंख्य हैं। क्योंकि अध्यवसायों के स्थान भी असंख्य हैं।

लेश्याओं के स्थानों का अल्प बहुत्व इस प्रकार है-द्रव्यार्थ रूप से कापोत-लेश्या के जघन्य स्थान सब से थोड़े हैं। द्रव्यार्थ रूप से नील-लेश्या के जघन्य स्थान उससे असंख्य गुणा हैं। द्रव्यार्थ रूप से कृष्ण-लेश्या के जघन्य स्थान असंख्य गुणा हैं। द्रव्यार्थ रूप से तेजो-लेश्या के जघन्य स्थान असंख्य गुणा हैं। द्रव्यार्थ रूप से पद्म-लेश्या के जघन्य स्थान उससे असंख्य गुणा हैं। और द्रव्यार्थ रूप से शुक्ल-लेश्या के जघन्य स्थान भी असंख्य गुणा हैं। इत्यादि रूप से सारा वर्णन प्रज्ञापना पद के लेश्या पद के चौथे उद्देशक के अनुसार जानना चाहिये।

॥ इति चौथे शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

चौथा शतक समाप्त
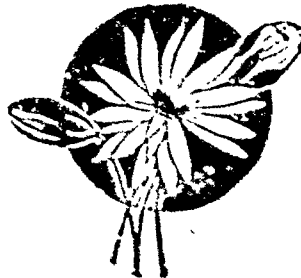
शतक ५

उद्देशक १

सूर्य का उदय अस्त होना

चंप-रवि अणिल गंठिय सद्दे छउमाऽऽउ एयण णियंठे,
रायगिहं चंपा-चंदिमा य दस पंचमम्मि सए ।

कठिन शब्दार्थ-गंठिय-जालग्रंथी, अणिल-वायु, एयण-कम्पन ।

भावार्थ-अब पांचवां शतक प्रारम्भ होता है । इसमें दस उद्देशक हैं । प्रथम उद्देशक में सूर्य सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं । ये प्रश्नोत्तर चंपानगरी में हुए थे । दूसरे उद्देशक में वायु सम्बन्धी वर्णन है । तीसरे उद्देशक में जालग्रन्थि का उदाहरण देकर वर्णन किया गया है । चौथे उद्देशक में शब्द सम्बन्धी प्रश्नोत्तर है । पाचवें उद्देशक में छद्मस्थ सम्बन्धी वर्णन है । छट्ठे उद्देशक में आयुष्य सम्बन्धी, सातवें उद्देशक में पुद्गलों के कंपन सम्बन्धी, आठवें उद्देशक में निर्ग्रन्थि-पुत्र अनगार सम्बन्धी, नवमें उद्देशक में राजगृह सम्बन्धी और दसवें उद्देशक में

चन्द्र सम्बन्धी वर्णन है यह वर्णन चम्पा नगरी में किया गया था। इस प्रकार पांचवें शतक के ये दस उद्देशक हैं।

विवेचन—चौथे शतक के अन्त में लेश्याओं सम्बन्धी कथन किया गया है, इसलिये अब लेश्यावाले जीवों के सम्बन्ध में कुछ कथन किया जाय तो उचित ही है। इसलिये इस पांचवें शतक में प्रायः लेश्यावाले जीवों के सम्बन्ध में निरूपण किया गया है। इस प्रकार चौथे और पांचवें शतक का यह परस्पर सम्बन्ध है। इस शतक में दस उद्देशक हैं। जिन के विषयों का वर्णन करने वाली गाथा का सामान्य अर्थ ऊपर दिया गया है। इन दस उद्देशकों में से पहला सूर्य सम्बन्धी उद्देशक और दसवां चन्द्र सम्बन्धी उद्देशक है। इन दोनों उद्देशकों का कथन चंपानगरी में हुआ था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं रायहाणी होत्था। वण्णओ। तीसे णं चंपाए णयरीए पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था। वण्णओ। सामी समोसढे, जाव—परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्ते णं जाव एवं वयासी—

१ प्रश्न—जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया उदीण-पाईण-मुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति, पाईण-दाहिणमुग्गच्छ दाहिण-पडीणमागच्छंति, दाहिण-पडीणमुग्गच्छ पडीण-उदीणमागच्छंति, पडीणउदीणमुग्गच्छ उदीणपाईणमागच्छंति?

१ उत्तर—हंता, गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ जाव—उदीण-पाईणमागच्छंति।

२ प्रश्न—जया णं भंते! जंबूद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे हवइ,

तया णं उत्तरड्ढेऽवि दिवसे भवइ; जया णं उत्तरड्ढेऽवि दिवसे भवइ, तया णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं राई हवइ ?

२ उत्तर-हंता, गोयमा ! जया णं जंबूद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वि दिवसे जाव-राई भवइ ।

३ प्रश्न-जया णं भंते ! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि दिवसे भवइ, जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवइ, तया णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं राई भवइ ?

३ उत्तर-हंता, गोयमा ! जया णं जंबूदीवे दीवे मंदरपुरत्थिमे णं दिवसे, जाव-राई भवइ ।

कठिन शब्दार्थ-उदीण पाईण-उत्तर पूर्व के बीच की दिशा अर्थात् ईशान कोण, दाहिण पडीण-दक्षिण और पश्चिम के बीच की दिशा अर्थात् नैऋत्य कोण, पडीण उदीण-पश्चिम और उत्तर दिशा के बीच अर्थात् वायव्य कोण, पाईण दाहिण-पूर्व और दक्षिण के बीच की दिशा अर्थात् आग्नेय कोण, उदीण-उदय होकर ।

भावार्थ-१ प्रश्न-उस काल उस समय में चंपा नाम की नगरी थी, वर्णन करने योग्य-समृद्ध । उस चंपा नगरी के बाहर पूर्णभद्र नाम का चैत्य (व्यंतरायतन) था । वह भी वर्णन करने योग्य था । वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे, यावत् परिषदा भगवान् को वन्दन करने के लिये और धर्मोपदेश सुनने के लिये गई और यावत् परिषदा वापिस लौट गई ।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम गोत्री इन्द्रभूति अनगार थे, यावत् उन्होंने इस प्रकार पूछा-

हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सूर्य, ईशान कोण में उदय होकर अग्नि कोण में अस्त होते हैं ? क्या अग्निकोण में उदय होकर नैऋत्य कोण में अस्त होते हैं ? क्या नैऋत्य कोण में उदय होकर वायव्य कोण में अस्त होते हैं ? क्या वायव्य कोण में उदय होकर ईशान कोण में अस्त होते हैं ?

१ उत्तर-हाँ, गौतम ! सूर्य इसी तरह उदय और अस्त होते हैं। जम्बूद्वीप में सूर्य उत्तर पूर्व अर्थात् ईशान कोण में उदय होकर यावत् ईशान कोण में अस्त होते हैं।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है, और जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है, तब जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है ?

२ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है। अर्थात् जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है तब यावत् रात्रि होती है।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व में जब दिन होता है, तब पश्चिम में भी दिन होता है ? और जब पश्चिम में दिन होता है तब जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर दक्षिण दिशा में रात्रि होती है ?

३ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है। अर्थात् जब जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व में दिन होता है तब यावत् रात्रि होती है।

विवेचन-पांचवे शतक के प्रथम उद्देशक का विवेचन प्रारंभ होता है। जम्बूद्वीप में दो सूर्य होते हैं। उत्तर दिशा के पास के प्रदेश को 'उदीचीन' और पूर्व दिशा के पास के प्रदेश को 'प्राचीन' कहते हैं। उत्तर और पूर्व दिशा के बीच के भाग को 'ईशान कोण' कहते हैं। क्रमपूर्वक ईशानकोण में सूर्य उदय होकर पूर्व और पश्चिम दिशा के बीच भाग में अर्थात् अग्निकोण में अस्त होता है। 'अमुक समय में सूर्य उदय होता है और अमुक समय में अस्त होता है' यह व्यवहार केवल दर्शक लोगों की अपेक्षा से है, क्योंकि समग्र भूमण्डल पर सूर्य के उदय और अस्त का समय नियत नहीं है। वास्तव में देखा जाय तो सूर्य तो सदा भूमण्डल पर विद्यमान ही रहता है, परन्तु जब सूर्य के सामने किसी प्रकार की आड़ (व्यवधान-ओट) आजाती है, तब उस देश के लोग सूर्य को नहीं देख सकते और तब वे इस

प्रकार का व्यवहार करते हैं कि सूर्य अस्त हो गया और जब सूर्य के सामने किसी प्रकार की आड़ नहीं होती है तब उस देश के लोग सूर्य को देख सकते हैं, तब वे कहते हैं कि सूर्य उदय हो गया है। तात्पर्य यह है कि दर्शक लोगों की दृष्टि की अपेक्षा से ही सूर्य के उदय और अस्त का व्यवहार होता है। कहा भी है;—

> जह जह समये समये पुरओ संचरइ भक्खरो गयणे।
> तह तह इओ वि णियमा जायइ रयणी य नावत्थो ॥
> एवं च सइ णराणं उदयत्थमणाइं होंति अणिययाइं।
> सयदेसभेए कस्सइ किंचि ववदिस्सइ णियमा ॥

अर्थ—ज्यों ज्यों सूर्य प्रतिसमय आकाश में आगे गति करता जाता है, त्यों त्यों इस तरफ रात्रि होती जाती है। इसलिए सूर्य की गति पर ही उदय और अस्त का व्यवहार निर्भर है। मनुष्यों की अपेक्षा उदय और अस्त ये दोनों क्रियाएं अनियत हैं, क्योंकि देश भेद के कारण कोई किसी प्रकार का व्यवहार करते हैं।

उपरोक्त सूत्र से यह बात बतलाई गई है कि सूर्य आकाश में सब दिशाओं में गति करता है। जो लोग ऐसा मानते हैं कि—सूर्य पश्चिम तरफ के समुद्र में प्रवेश करके पाताल में चला जाता है और फिर पूर्व की ओर के समुद्र के ऊपर उदय होता है। इस मत का खंडन उपरोक्त सूत्र से हो जाता है।

शंका—उपरोक्त सूत्र से यह स्पष्ट है कि सूर्य चारों दिशाओं में गति करता है और इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि उसका प्रकाश सदा कायम रहता है, तो फिर कहीं रात्रि और कहीं दिवस ऐसा विभाग जो देखने में आता है, वह किस प्रकार बन सकता है? उपरोक्त कथनानुसार तो सब जगह सदा दिन ही रहना चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है। इसका क्या कारण है?

समाधान—उपरोक्त शंका का समाधान यह है कि यद्यपि सूर्य सभी दिशाओं में गति करता है, तथापि उसका प्रकाश मर्यादित है अर्थात् उसका प्रकाश अमुक सीमा तक फैलता है, उससे आगे नहीं। यह नियत है, इसलिये जगत् में जो रात्रि दिवस का व्यवहार होता है वह बाधा रहित है। अर्थात् जितनी सीमा तक सूर्य का प्रकाश, जितने समय तक पहुंचता है, उतनी सीमा में उतने समय तक दिवस होता है और शेष सीमा में उतने समय तक रात्रि होती है यह व्यवहार सूर्य का प्रकाश मर्यादित होने के कारण ठीक है। जम्बूद्वीप में दो सूर्य होते है, इसलिये एक ही समय में दो दिशाओं में दिवस होता है और

दो दिशाओं में रात्रि होती है। यहाँ दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध का यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि एक ही पदार्थ का नीचे का भाग दक्षिणार्द्ध और ऊपर का भाग उत्तरार्द्ध कहलाता है, किन्तु यहां 'अर्द्ध' शब्द का अर्थ 'मात्र' अमुक भाग है। इसलिये 'दक्षिणार्द्ध' शब्द का अर्थ यह है कि दक्षिण दिशा में आया हुआ भाग, और उत्तरार्द्ध का अर्थ है उत्तर दिशा में आया हुआ भाग। इसलिये दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध शब्दों के द्वारा उस सम्पूर्ण खण्ड का ग्रहण नहीं किया गया है। इसलिये पूर्व और पश्चिम दिशा में उस समय रात्रि होती है।

दिन-रात्रि मान

४ प्रश्न-जया णं भंते ! जंबूदीवे दीवे दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

४ उत्तर- हंता, गोयमा ! जया णं जंबूदीवे जाव-दुवालसमुहुत्ता राई भवइ।

५ प्रश्न-जया णं जंबूदीवे मंदरस्स पुरत्थिमे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जंबूदीवे दीवे पच्चत्थिमेण वि उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जया णं पच्चत्थिमे णं उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं भंते ! जंबूदीवे दीवे उत्तरे दुवालसमुहुत्ता जाव-राई भवइ ?

५ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-भवइ ।

६ प्रश्न-जया णं भंते ! जंबूदीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं उत्तरे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं पच्चत्थिमे णं साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

६ उत्तर-हंता, गोयमा ! जया णं जंबूदीवे जाव-राई भवइ ।

७ प्रश्न-जया णं भंते ! जंबूदीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमे णं अट्ठारस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं पच्चत्थिमे णं अट्ठारसमुहुत्ताणं-तरे दिवसे भवइ तया णं जंबूदीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे साइरेगदुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

७ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-भवइ ।

एवं एएणं कमेण ओसारेयव्वं, सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई भवइ; सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा तेरसमुहुत्ता राई, सोलसमुहुत्ते दिवसे चोद्दसमुहुत्ता राई, सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगचउद्दसमुहुत्ता राई, पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई, पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा पण्णरसमुहुत्ता राई, चोद्दसमुहुत्ते दिवसे सोलसमुहुत्ता राई, चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा सोलस-

मुहुत्ता राई, तेरसमुहुत्ते दिवसे सत्तरसमुहुत्ता राई, तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा सत्तरसमुहुत्ता राई ।

८ प्रश्न-जया णं जंबूदीवे दीवे दाहिणड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि, जया णं उत्तरड्ढे तया णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ ?

८ उत्तर-हंता, गोयमा ! एवं चेव उच्चारेयव्वं, जाव-राई भवइ ।

९ प्रश्न-जया णं भंते ! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि, जया णं पच्चत्थिमे णं वि तया णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ ?

९ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-राई भवइ ।

कठिन शब्दार्थ-ओसारेयव्वं-घटाते जाना चाहिये ।

भावार्थ-४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जब उत्तरार्द्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है, तब जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है ?

४ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होती है। अर्थात् जम्बूद्वीप में यावत् बारह मुहूर्त की रात्रि होती है ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व में जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है, तब जम्बूद्वीप के पश्चिम में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है ? और जब पश्चिम में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है, तब जम्बूद्वीप के उत्तरार्द्ध में जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है ?

५ उत्तर-हाँ, गौतम ! इसी तरह होता है ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में दक्षिणार्द्ध में जब अठारह मुहूर्तानन्तर (अठारह मुहूर्त से कुछ कम) दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम दिशा में सातिरेक (कुछ अधिक) बारह मुहूर्त की रात्रि होती है ?

६ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होती है ।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व में जब अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है, तब पश्चिम में अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है ? और जब पश्चिम में अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है । तब जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से उत्तर दक्षिण में सातिरेक बारह मुहूर्त रात्रि होती है ?

७ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होती है ?

इस क्रम से दिन का परिमाण घटाना चाहिये और रात्रि का परिमाण बढ़ाना चाहिये । जब सत्तरह मुहूर्त का दिन होता है, तब तेरह मुहूर्त की रात्रि होती है । जब सत्तरह मुहूर्तानन्तर दिन होता है, तब सातिरेक तेरह मुहूर्त रात्रि होती है । जब सोलह मुहूर्त का दिन होता है तब चौदह मुहूर्त की रात्रि होती है । जब सोलह मुहूर्तानन्तर दिन होता है, तब सातिरेक चौदह मुहूर्त की रात्रि होती है । जब पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है, तब पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है । जब पन्द्रह मुहूर्तानन्तर दिन होता है, तब सातिरेक पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है । जब चौदह मुहूर्त का दिन होता है, तब सोलह मुहूर्त की रात्रि होती है । जब चौदह मुहूर्तानन्तर दिन होता है, तब सातिरेक सोलह मुहूर्त की रात्रि

होती है। जब तेरह मुहूर्त का दिन होता है, तब सत्तरह मुहूर्त की रात्रि होती है। जब तेरह मुहूर्तान्तर दिन होता है, तब सातिरेक सत्तरह मुहूर्त रात्रि होती है।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में दक्षिणार्द्ध में जब जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी उसी तरह होता है? और जब उत्तरार्द्ध में भी उसी तरह होता है, तब जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है?

८ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होती है। इस प्रकार सब कहना चाहिये यावत् रात्रि होती है।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व में जब जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है, तब क्या पश्चिम में भी इसी तरह होता है और जब पश्चिम में भी इसी तरह होता है, तब जम्बूद्वीप के उत्तर दक्षिण में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है?

९ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होती है।

विवेचन-जब दक्षिण और उत्तर में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब पूर्व और पश्चिम में बारह मुहूर्त की रात्रि होती है। सूर्य के सब १८४ मण्डल हैं। उन में से जम्बूद्वीप में ६५ मण्डल हैं और बाकी ११९ मण्डल लवण समुद्र में है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल में होता है तब अठारह मुहूर्त का दिन होता है और बारह मुहूर्त की रात्रि होती है। दिवस और रात्रि दोनों के मिलाकर तीस मुहूर्त होते हैं। जब सूर्य बाहरी मण्डल से आभ्यन्तर मण्डल की ओर आता है, तब क्रमशः प्रत्येक मण्डल में दिवस बढ़ता जाता है और रात्रि घटती जाती है और जब सूर्य आभ्यन्तर मण्डल से बाहरी मण्डल की ओर प्रयाण करता है, तब प्रत्येक मण्डल में डेढ़ मिनट से कुछ अधिक रात्रि बढ़ती जाती है और दिवस उतना ही घटता जाता है। तात्पर्य यह है कि जब दिवस बड़ा होता है, तो रात्रि छोटी होती है और जब रात्रि बड़ी होती है, तब दिवस छोटा होता है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से निकल कर उसके पास वाले दूसरे मण्डल में जाता है, तब मुहूर्त के $\frac{२}{६१}$ भाग जितना कम अठारह मुहूर्त का दिन होता है। दिन के इस परिमाण को शास्त्र में 'अष्टादशमुहूर्तानन्तर' कहा गया है। क्योंकि यह समय अठारह मुहूर्त का दिन होने के तुरन्त बाद में ही आता है।

स प्रकार जब दिन कम होना प्रारम्भ होता है, तब रात्रि बारह मुहूर्त और मुहूर्त ६१ भाग जितनी होती है अर्थात् इस तरह रात्रि भी बढ़ने लगती है। तात्पर्य यह कि दिवस का जितना भाग घटता है, उतना ही भाग रात्रि का बढ़ जाता है, क्योंकि होरात्र तीस मुहूर्त का होता है। इस तरह पूर्वोक्त क्रम द्वारा सम्भव पूर्वक दिन का रिमाण घटाते जाना चाहिये। जब सूर्य दूसरे मण्डल से ३१ वें मण्डल के अर्द्ध भाग में ाता है, तब दिवस सत्तरह मुहूर्त का होता है और रात्रि तेरह मुहूर्त की होती है। हाँ से चलता हुआ सूर्य जब ३२ वे मण्डल के आधे भाग में जाता है, तब एक मुहूर्त के ६१ भाग कम सत्तरह मुहूर्त का दिन होता है और रात्रि मुहूर्त के ६१ भाग अधिक तेरह हूर्त की होती है। ३२ वे मण्डल से चलता हुआ सूर्य जब ६१ वे मण्डल में जाता है, तब ोलह मुहूर्त का दिन होता है और चौदह मुहूर्त की रात्रि होती है। जब सूर्य दूसरे से २ वें मण्डल के अर्द्ध भाग में जाता है, तब दिन पन्द्रह मुहूर्त का होता है और रात्रि भी न्द्रह मुहूर्त की होती है। जब सूर्य १२२ वें मण्डल में जाता है, तब दिवस चौदह मुहूर्त का ाता है और जब १५३ वें मण्डल के अर्द्ध भाग में जाता है, तब तेरह मुहूर्त का दिन होता और जब दूसरे से सर्व बाह्य १८३ वें मण्डल में सूर्य जाता है, तब ठीक बारह मुहूर्त ा दिन होता है और उस समय रात्रि अठारह मुहूर्त की होती है। अर्थात् जितने परिमाण दिन घटता जाता है, उतने ही परिमाण में रात्रि बढ़ती जाती है। इस सब का तात्पर्य ह है कि दिन और रात्रि दोनों के मिलकर ३० मुहूर्त होते हैं। इसलिये दिन के परिमाण जितनी हानि होती है, तब रात्रि के परिमाण में उतनी ही वृद्धि होती है और जब ात्रि के परिमाण में जितनी हानि होती है, तब उतनी ही दिन के परिमाण में वृद्धि होती । दोनों के मिलकर ३० मुहूर्त होते है, यह सुनिर्णीत है।

वर्षा का प्रथम समय

१० प्रश्न—जया णं भंते ! जंबूद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समये पडिवज्जइ; जया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया

णं जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं अणंतर-पुरक्खडे समयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ ?

१० उत्तर-हंता, गोयमा ! जया णं जंबूद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तह चेव जाव-पडिवज्जइ।

११ प्रश्न-जया णं भंते ! जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं पच्चत्थिमेण वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ। जया णं पच्चत्थिमेण वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं जाव-मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे णं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवण्णे भवइ ?

११ उत्तर-हंता, गोयमा ! जया णं जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं एवं चेव उच्चारेयव्वं, जाव-पडिवण्णे भवइ ?

एवं जहा समएणं अभिलावो भणिओ वासाणं तहा आव-लियाए वि भाणियव्वो; आणपाणूण वि, थोवेण वि, लवेण वि, मुहुत्तेण वि, अहोरत्तेण वि, पक्खेण वि, मासेण वि, उउणा वि, एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणियव्वो।

कठिन शब्दार्थ-पडिवज्जइ-होता है, वासाणं-वर्षा में, अणंत्तरपुरक्खडे-अनन्तर पुरस्कृत अर्थात् उसी समय के बाद, अणंतरपुरक्खड समयंसि-अनन्तर बाद के समय में, आवलियाए-आवलिका, आणपाणूण-आनपान-श्वासोच्छ्वास, थोवेण-स्तोक, लवेण-लव, अहोरत्ते-रातदिन, उउणा-ऋतु।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में वर्षा

ऋतु का प्रथम समय होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है और जब उत्तरार्द्ध में वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है, तब जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व पश्चिम में वर्षा ऋतु का प्रथम समय अनन्तरपुरस्कृत समय में होता है अर्थात् जिस समय दक्षिणार्द्ध में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है, उसी समय के पश्चात् तुरन्त दूसरे समय में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है ?

१० उत्तर-हाँ, गौतम ! इसी तरह होता है अर्थात् जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है, तब उसी तरह यावत् होता है।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! जब जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में वर्षाऋतु का प्रथम समय होता है, तब पश्चिम में भी वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है और जब पश्चिम में वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है, तब यावत् मेरु पर्वत के उत्तरदक्षिण में वर्षा ऋतु का प्रथम समय-अनन्तरपश्चात्कृत समय में होता है अर्थात् मेरु पर्वत से पश्चिम में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के प्रथम समय पहले एक समय में वहाँ मेरु पर्वत से उत्तर दक्षिण में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है ?

११ उत्तर-हाँ, गौतम ! इसी तरह होता है, अर्थात् जब जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है, उससे पहले एक समय में उत्तर दक्षिण में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है। इस तरह यावत् सारा कथन कहना चाहिए।

जिस प्रकार वर्षा ऋतु के प्रथम समय के विषय में कहा गया है, उसी तरह वर्षा ऋतु के प्रारम्भ की प्रथम आवलिका के विषय में भी कहना चाहिए। इसी तरह आनपान, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु इन सब के सम्बन्ध में भी समय की तरह कहना चाहिए।

समणाउसो ! जहा ओसप्पिणीए आलावओ भणिओ एवं उस्सप्पिणीए वि भाणियव्वो ।

कठिन शब्दार्थ—हेमंताणं—हेमन्त ऋतु, गिम्हाणं—ग्रीष्म ऋतु, अयणे—अयन, जुएण—युग से, अवट्ठिए—अवस्थित—स्थिर ।

१२ प्रश्न—हे भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में हेमन्त ऋतु का प्रथम समय होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी हेमन्त ऋतु का प्रथम समय होता है और जब उत्तरार्द्ध में इस तरह होता है, तब जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में हेमन्त ऋतु का प्रथम समय अनन्तर पुरस्कृत समय में होता है ? इत्यादि ।

१२ उत्तर—हे गौतम ! इस विषयक सारा वर्णन वर्षा ऋतु के वर्णन के समान जान लेना चाहिए। इसी तरह ग्रीष्म ऋतु का भी वर्णन समझ लेना चाहिए। हेमन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतु के प्रथम समय की तरह, उनकी प्रथम आवलिका यावत् ऋतु पर्यन्त सारा वर्णन कहना चाहिए। इस प्रकार वर्षा ऋतु, हेमन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतु, इन तीनों का एक सरीखा वर्णन है । इसलिए इन तीनों के तीस आलापक होते हैं ।

१३ प्रश्न—हे भगवन् ! जब जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में प्रथम 'अयन' होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अयन होता है ?

१३ उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार 'समय' के विषय में कहा, उसी प्रकार 'अयन' के विषय में भी कहना चाहिए । यावत् उसके प्रथम समय, अनन्तर पश्चात्कृत समय में होता है । इत्यादि सारा वर्णन कहना चाहिए ।

जिस प्रकार 'अयन' के विषय में कहा उसी प्रकार संवत्सर, युग, वर्षशत् वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनूपुरांग, अर्थनूपुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम । इन सब के

सम्बन्ध में भी पूर्वोक्त प्रकार से समझना चाहिए।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी होती है और जब उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब क्या जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, किंतु हे दीर्घजीविन् श्रमण ! वहां अवस्थित काल होता है ?

१४ उत्तर-हां, गौतम ! इसी तरह होता है। यावत् पहले की तरह सारा वर्णन कहना चाहिए। जिस प्रकार अवसर्पिणी के विषय में कहा है, उसी तरह उत्सर्पिणी के विषय में भी कहना चाहिए।

विवेचन-तीन ऋतुओं का एक 'अयन' होता है। दो 'अयन' का एक संवत्सर (वर्ष) होता है। पांच संवत्सर का एक 'युग' होता है। बीस युग का एक वर्षशत (सौ वर्ष) होता है। दस वर्षशत का एक वर्षसहस्र (एक हजार वर्ष) होता है। सौ वर्ष सहस्रों का एक वर्षशतसहस्र (एक लाख वर्ष) होता है। चौरासी लाख वर्षों का एक 'पूर्वांग' होता है। एक पूर्वांग को अर्थात् चौरासी लाख को चौरासी लाख से गुणा करने से एक 'पूर्व' होता है। एक पूर्व को चौरासी लाख से गुणा करने से एक 'त्रुटितांग' होता है। एक त्रुटितांग को चौरासी लाख से गुणा करने पर एक 'त्रुटित' होता है। इस प्रकार पहले की राशि को चौरासी लाख से गुणा करने पर उत्तरोत्तर राशियां बनती जाती हैं। वे इस प्रकार हैं—अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनूपुरांग, अर्थनूपुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका।

जाते हैं, आयु और अवगाहना घटती जाती है, तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का क्रमशः ह्रास होता जाता है, उसे 'अवसर्पिणी' काल कहते हैं। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हीन होते जाते हैं। शुभ भाव घटते जाते हैं और अशुभ भाव बढ़ते जाते हैं। अवसर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। इसके छह विभाग होते हैं, जिन्हें 'आरा' कहते हैं।

उत्सर्पिणी काल–जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते जाते हैं, आयु और अवगाहना बढ़ती जाती है तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार और पराक्रम की वृद्धि होती जाती है, उसे 'उत्सर्पिणी' काल कहते हैं। जीवों की तरह इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी शुभ होते जाते हैं। अशुभतम भाव अशुभतर, अशुभ, शुभ, शुभतर होते हुए यावत् शुभतम हो जाते हैं। अवसर्पिणी काल में क्रमशः ह्रास होते हुए हीनतम अवस्था आजाती है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होते हुए क्रमशः उच्चतम अवस्था आजाती है। यह काल भी दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। इसके भी छह आरे होते हैं।

लवण समुद्र में सूर्योदय

१५ प्रश्न–लवणे णं भंते! समुद्दे सूरिया उदीण पाईणमुग्गच्छ०?

१५ उत्तर–ज च्चेव जंबूद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया स च्चेव सव्वा अपरिसेसिया लवणसमुद्दस्स वि भाणियव्वा, णवरं–अभिलावो इमो णेयव्वो। जया णं भंते! लवणे समुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तं चेव जाव–तया णं लवणसमुद्दे पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं राई भवति। एएणं अभिलावेणं णेयव्वं।

१६ प्रश्न–जया णं भंते! लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे पढमा ओस-

प्पिणी पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया णं लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णेवत्थि ओसप्पिणी, णेवत्थि उस्सप्पिणी समणाउओ ! ?

१६ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-समणाउओ ।

कठिन शब्दार्थ-अभिलावो-अभिलाप, णेवत्थि-नहीं होना ।

भावार्थ-१५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या लवणसमुद्र में सूर्य ईशानकोण में उदय होकर अग्निकोण में जाते हैं ? इत्यादि सारा प्रश्न पूछना चाहिए ।

१५ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार जम्बूद्वीप में सूर्यों के सम्बन्ध में वक्तव्यता कही गई है, वह सम्पूर्ण वक्तव्यता लवण-समुद्र के सम्बन्ध में भी कहनी चाहिए । इतनी विशेषता है कि इस वक्तव्यता में पाठ का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए-"हे भगवन् ! जब लवण-समुद्र के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, इत्यादि सारा कथन उसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् तब लवणसमुद्र में पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है । इस अभिलाप द्वारा सारा वर्णन जान लेना चाहिए ।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! जब लवणसमुद्र के दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है ? और जब उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब लवणसमुद्र के पूर्व पश्चिम में अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, परन्तु वहाँ अवस्थित काल होता है ?

१६ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है, यावत् अवस्थित काल होता है ।

कोण में उदय होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

१७ उत्तर–हे गौतम ! जिस प्रकार की वक्तव्यता जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में कहीगई है, उसी प्रकार की सारी वक्तव्यता धातकीखण्ड के सम्बन्ध में भी कहनी चाहिए, परन्तु विशेषता यह है कि पाठ का उच्चारण करते समय सब आलापक इस प्रकार कहने चाहिए–

१८ प्रश्न–हे भगवन् ! जब धातकीखण्ड के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है, और जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है, तब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है ?

१८ उत्तर–हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है, यावत् रात्रि होती है ।

१९ प्रश्न–हे भगवन् ! जब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व में दिन होता है, तब पश्चिम में भी दिन होता है और जब पश्चिम में दिन होता है, तब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से उत्तर दक्षिण में रात्रि होती है ?

१९ उत्तर–हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है और इसी अभिलाप से जानना चाहिए । यावत् (रात्रि होती है)

२० प्रश्न–हे भगवन् ! जब दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी होती है, और जब उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, परन्तु अवस्थित काल होता है ?

२० उत्तर–हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है, यावत् अवस्थित काल होता है ।

जिस प्रकार लवणसमुद्र के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार कालोदधि के विषय में भी कहना चाहिए । इसमें इतनी विशेषता है कि 'लवणसमुद्र' के स्थान पर 'कालोदधि' का नाम कहना चाहिए ।

२१ प्रश्न–हे भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में सूर्य, ईशानकोण में

१९ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव भवइ-एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं जाव० ।

२० प्रश्न-जया णं भंते ! दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी तया णं उत्तरड्ढे ? जया णं उत्तरड्ढे तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णत्थि ओसप्पिणी जाव-समणाउसो ! ?

२० उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-समणाउसो ! ।

जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया तहा कालोदस्स वि भाणियव्वा, णवरं कालोदस्स णामं भाणियव्वं ।

२१ प्रश्न-अब्भितरपुक्खरद्धेणं भंते ! सूरिया उदीणपाईणमुग्गच्छ० ?

२१ उत्तर-जहेव धायइसंडस्स वत्तव्वया तहेव अब्भितरपुक्खरद्धस्स वि भाणियव्वा, णवरं-अभिलावो जाणियव्वो जाव-तया णं अब्भितरपुक्खरद्धे मंदराणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णेवत्थि अवसप्पिणी। णेवत्थि उस्सप्पिणी-अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ! ।

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति ।

॥ पंचमसए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-अब्भितरपुक्खरद्धे-आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध, अवट्ठिए-अवस्थित ।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या धातकीखण्ड द्वीप में सूर्य, ईशान-

इसे 'लवण समुद्र' कहते हैं। यह दो लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। इसमें चार सूर्य और चार चन्द्र हैं। जम्बूद्वीप का आकार गोल रुपया जैसा है और लवण समुद्र का आकार भी गोल है, किन्तु बीच में जम्बूद्वीप में होने से कंकण, चूड़ी और कड़ा जैसा गोल है। जम्बूद्वीप से लवणसमुद्र ने चौबीस गुणी जगह रोकी है।

धातकीखंड और पुष्करार्द्ध में सूर्योदय

१७ प्रश्न–धायइसंडे णं भंते! दीवे सूरिया उदीणपाईण-मुग्गच्छ० ?

१७ उत्तर–जहेव जंबूद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया स च्चेव धायइ-संडस्स वि भाणियव्वा, णवरं–इमेणं अभिलावेणं सव्वे आलावगा भाणियव्वा।

१८ प्रश्न–जया णं भंते! धायइसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे वि, जया णं उत्तरड्ढे वि तया णं धायइ-संडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं राई भवइ।

१८ उत्तर–हंता, गोयमा! एवं चेव जाव–राई भवइ।

१९ प्रश्न–जया णं भंते! धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमेणं दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि ? जया णं पच्च-त्थिमेण वि तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाण उत्तरेणं दाहि-णेणं राई भवइ ?

१९ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव भवइ-एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं जाव० ।

२० प्रश्न-जया णं भंते ! दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी तया णं उत्तरड्ढे ? जया णं उत्तरड्ढे तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णत्थि ओसप्पिणी जाव-समणाउसो ! ?

२० उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-समणाउसो ! ।

जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया तहा कालोदस्स वि भाणियव्वा, णवरं कालोदस्स णामं भाणियव्वं ।

२१ प्रश्न-अब्भिंतरपुक्खरद्धेणं भंते ! सूरिया उदीणपाईण-मुग्गच्छ० ?

२१ उत्तर-जहेव धायइसंडस्स वत्तव्वया तहेव अब्भिंतरपुक्खरद्धस्स वि भाणियव्वा, णवरं-अभिलावो जाणियव्वो जाव-तया णं अब्भिंतरपुक्खरद्धे मंदराणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णेवत्थि अवसप्पिणी । णेवत्थि उस्सप्पिणी-अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ! ।

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति ।

॥ पंचमसए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-अब्भिंतरपुक्खरद्धे-आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध, अवट्ठिए-अवस्थित ।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या धातकीखण्ड द्वीप में सूर्य, ईशान-

इसे 'लवण समुद्र' कहते हैं। यह दो लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। इसमें चार सूर्य और चार चन्द्र हैं। जम्बूद्वीप का आकार गोल रुपया जैसा है और लवण समुद्र का आकार भी गोल है, किन्तु बीच में जम्बूद्वीप में होने से कंकण, चूड़ी और कड़ा जैसा गोल है। जम्बूद्वीप से लवणसमुद्र ने चौबीस गुणी जगह रोकी है।

धातकीखंड और पुष्करार्द्ध में सूर्योदय

१७ प्रश्न-धायइसंडे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीणपाईण-मुग्गच्छ० ?

१७ उत्तर-जहेव जंबूद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया स च्चेव धायइ-संडस्स वि भाणियव्वा, णवरं-इमेणं अभिलावेणं सव्वे आलावगा भाणियव्वा।

१८ प्रश्न-जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे वि, जया णं उत्तरड्ढे वि तया णं धायइ-संडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं राई भवइ।

१८ उत्तर-हंता, गोयमा ! एवं चेव जाव-राई भवइ।

१९ प्रश्न-जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमेणं दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि ? जया णं पच्च-त्थिमेण वि तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाण उत्तरेणं दाहि-णेणं राई भवइ ?

१९ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव भवइ-एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं जाव० ।

२० प्रश्न-जया णं भंते ! दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी तया णं उत्तरड्ढे ? जया णं उत्तरड्ढे तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णत्थि ओसप्पिणी जाव-समणाउसो ! ?

२० उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-समणाउसो ! ।

जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया तहा कालोदस्स वि भाणियव्वा, णवरं कालोदस्स णामं भाणियव्वं ।

२१ प्रश्न-अब्भिंतरपुक्खरद्धेणं भंते ! सूरिया उदीणपाईणमुग्गच्छ० ?

२१ उत्तर-जहेव धायइसंडस्स वत्तव्वया तहेव अब्भिंतरपुक्खरद्धस्स वि भाणियव्वा, णवरं-अभिलावो जाणियव्वो जाव-तया णं अब्भिंतरपुक्खरद्धे मंदराणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णेवत्थि अवसप्पिणी। णेवत्थि उस्सप्पिणी-अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ! ।

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति ।

॥ पंचमसए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-अब्भिंतरपुक्खरद्धे-आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध; अवट्ठिए-अवस्थित ।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या धातकीखण्ड द्वीप में सूर्य, ईशान-

कोण में उदय होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

१७ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार की वक्तव्यता जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में कहीगई है, उसी प्रकार की सारी वक्तव्यता धातकीखण्ड के सम्बन्ध में भी कहनी चाहिए, परन्तु विशेषता यह है कि पाठ का उच्चारण करते समय सब आलापक इस प्रकार कहने चाहिए-

१८ प्रश्न-हे भगवन् ! जब धातकीखण्ड के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है, और जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है, तब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है ?

१८ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है, यावत् रात्रि होती है ।

१९ प्रश्न-हे भगवन् ! जब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व में दिन होता है, तब पश्चिम में भी दिन होता है और जब पश्चिम में दिन होता है, तब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से उत्तर दक्षिण में रात्रि होती है ?

१९ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है और इसी अभिलाप से जानना चाहिए । यावत् (रात्रि होती है)

२० प्रश्न-हे भगवन् ! जब दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी होती है, और जब उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, परन्तु अवस्थित काल होता है ?

२० उत्तर-हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है, यावत् अवस्थित काल होता है ।

जिस प्रकार लवणसमुद्र के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार कालोदधि के विषय में भी कहना चाहिए । इसमें इतनी विशेषता है कि 'लवणसमुद्र' के स्थान पर 'कालोदधि' का नाम कहना चाहिए ।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में सूर्य, ईशानकोण में

उदय होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार धातकीखंड द्वीप की वक्तव्यता कही गई, उसी तरह आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध के विषय में भी कहनी चाहिए, किंतु इतनी विशेषता है कि 'धातकीखंड द्वीप' के स्थान पर 'आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध' का नाम कहना चाहिए, यावत् आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, किन्तु अवस्थित काल होता है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन-लवण समुद्र के चारों ओर धातकीखण्ड द्वीप है । वह चार लाख योजन का वलयाकार है । इसमें बारह सूर्य और बारह चन्द्रमा हैं । धातकीखण्ड के चारों तरफ कालोद समुद्र है । वह आठ लाख योजन का वलयाकार है । इसमें बयालीस सूर्य और बयालीस चन्द्रमा हैं । कालोद समुद्र के चारों तरफ पुष्करवरद्वीप है । वह सोलह लाख योजन का वलयाकार है । उसके बीच में मानुषोत्तर पर्वत आ गया है । यह पर्वत अढ़ाई द्वीप दो समुद्र के चारों ओर, गढ़ किले की तरह गोल है । यह पर्वत बीच में आजाने से पुष्करवर द्वीप के दो विभाग हो गये हैं-आभ्यन्तर पुष्करवर द्वीप और बाह्य पुष्करवर द्वीप । आभ्यंतर पुष्करवर द्वीप में ७२ सूर्य और ७२ चन्द्र हैं । वह पर्वत मनुष्य क्षेत्र की मर्यादा करता है, इसलिए इसे मानुषोत्तर पर्वत कहते हैं । इसके आगे भी असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, किन्तु उनमें किसी में भी मनुष्य नहीं हैं । मनुष्य क्षेत्र में ढ़ाई द्वीप और दो समुद्र हैं अर्थात् जम्बूद्वीप धातकीखण्ड द्वीप और अर्द्ध पुष्करवर द्वीप । लवणसमुद्र और कालोद समुद्र । ढाई द्वीप और दो समुद्र की लम्बाई चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन की है । अर्द्ध पुष्करवर द्वीप की दूसरी ओर तिर्यञ्च पशु पक्षी आदि हैं । पुष्करवर द्वीप से आगे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, वे एक एक से दुगुने दुगुने होते गये हैं । सब के अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है । यह सब से बड़ा है। स्वयम्भूरमण समुद्र ने अर्द्ध राजु से कुछ अधिक जगह रोक ली है । इस समुद्र के चौतरफ बारह योजन घनोदधि, घनवात और तनुवात है । यहां तिर्च्छालोक का अन्त होता है । इसके आगे अलोक है । अलोक में आकाशास्तिकाय के सिवाय कुछ नहीं है । अढ़ाई द्वीप में कुल १३२ सूर्य और १३२ चन्द्र हैं । वे सब चर (गति करनेवाले) हैं । इससे आगे अचर (स्थिर) हैं । इसलिए अढ़ाई द्वीप में ही दिवस रात्रि आदि समय का व्यवहार होता

है, इसीलिए इसे (अढ़ाई द्वीप समुद्र को अथवा मनुष्य क्षेत्र को) 'समयक्षेत्र' कहते हैं। इससे आगे दिन रात्रि आदि समय का व्यवहार नहीं होता। क्योंकि वहां सूर्य चन्द्र आदि के विमान जहाँ के तहाँ स्थिर हैं। दिन रात्रि आदि समय का व्यवहार सूर्य चन्द्र की गति पर निर्भर है।

॥ इति पांचवें शतक का पहला उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक २

स्निग्ध पथ्यादि वायु

१ प्रश्न-रायगिहे णयरे जाव एवं वयासी-अत्थि णं भंते ! ईसिंपुरेवाया, पच्छा वाया, मंदा वाया, महावाया वायंति ?

१ उत्तर-हंता, अत्थि।

२ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! पुरत्थिमे णं ईसिंपुरेवाया, पच्छा वाया, मंदा वाया, महावाया वायंति ?

२ उत्तर-हंता, अत्थि। एवं पच्चत्थिमे णं, दाहिणे णं उत्तरे णं, उत्तरपुरत्थिमे णं, दाहिणपुरत्थिमे णं, दाहिणपच्चत्थिमे णं उतरपच्चत्थिमे णं।

३ प्रश्न-जया णं भंते! पुरत्थिमे णं ईसिंपुरेवाया, पच्छा वाया,

मंदा वाया, महावाया वायंति; तया णं पच्चत्थिमेण वि ईसिंपुरेवाया, जया णं पच्चत्थिमे णं ईसिंपुरेवाया तया णं पुरत्थिमेण वि?

३ उत्तर-हंता, गोयमा ! जया णं पुरत्थिमे णं, तया णं पच्चत्थिमेण वि ईसिंपुरेवाया० जया णं पच्चत्थिमेण वि ईसिंपुरेवाया० तया णं पुरत्थिमेण वि ईसिंपुरेवाया एवं दिसासु, विदिसासु ।

कठिन शब्दार्थ-ईसिंपुरेवाया-ईषत्पुरोवात-कुछ स्निग्धता युक्त वायु, पच्छावाया-पथ्यवात-वनस्पति आदि को हितकर वायु ।

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में यावत् इस प्रकार बोले कि-हे भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात बहती हैं (चलती हैं)?

१ उत्तर-हाँ, गौतम ! उपरोक्त वायु बहती हैं ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पूर्व दिशा में ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात बहती हैं ?

२ उत्तर-हाँ, गौतम ! उपरोक्त वायु पूर्व दिशा में बहती हैं । इसी तरह पश्चिम में, दक्षिण में, उत्तर में, ईशानकोण में, अग्निकोण में, नैऋत्यकोण में और वायव्यकोण में उपरोक्त वायु बहती हैं ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! जब पूर्व में ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात बहती हैं, तब पश्चिम में भी ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, और जब पश्चिम में ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब क्या पूर्व में भी वे वायु बहती हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! जब पूर्व में ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब वे सब पश्चिम में भी बहती हैं और जब पश्चिम में ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब पूर्व में भी वे सब वायु बहती हैं । इसी प्रकार सब दिशाओं में और विदिशाओं में भी कहना चाहिये ।

विवेचन–पहले उद्देशक में दिशाओं को लेकर दिवस आदि का विभाग बतलाया गया है। अब इस दूसरे उद्देशक में भी दिशाओं को लेकर वायु सम्वन्धी वर्णन किया जाता है। इसमें सब से पहले वायु के भेद बतलाये गये हैं। स्वल्प ओस आदि की स्निग्धता युक्त वायु को 'ईषत्पुरोवात' कहते हैं। वनस्पति आदि के लिये लाभदायक और हितकर वायु को 'पथ्यव्रात' कहते हैं। धीरे धीरे चलने वाली वायु को 'मन्दवात' कहते हैं। उद्दण्ड, प्रचण्ड और तूफानी वायु को 'महावात' कहते हैं।

चार दिशा और चार विदिशा, इन आठों के सम्बन्ध में आठ सूत्र कहे गये हैं। आगे दो सूत्र दिशाओं के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर कहे गये हैं। और दो सूत्र विदिशाओं के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर कहे गये हैं।

४ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! दीविच्चगा ईसिंपुरेवाया ?

४ उत्तर–हंता।

५ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! सामुद्दगा ईसिंपुरेवाया ?

५ उत्तर–हंता, अत्थि।

६ प्रश्न–जया णं भंते ! दीविच्चया ईसिंपुरेवाया तया णं सामुद्दया वि ईसिंपुरेवाया जया णं सामुद्दया ईसिंपुरेवाया तया णं दीविच्चया वि ईसिंपुरेवाया ?

६ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे।

७ प्रश्न–से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ, जया णं दीविच्चया ईसिंपुरेवाया, णो णं तया सामुद्दया ईसिंपुरेवाया, जया णं सामुद्दया ईसिंपुरेवाया, णो णं तया दीविच्चया ईसिंपुरेवाया ?

७ उत्तर–गोयमा ! तेसि णं वायाणं अण्णमण्णविवच्चासेणं

लवणे समुद्दे वेलं णाइक्कमइ । से तेणट्ठेणं जाव वाया वायंति ।

कठिक शब्दार्थ–दीविच्चगा–द्वीप सम्बन्धी, सामुद्दगा–सामुद्रिक–समुद्र सम्बन्धी ।

४ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु, द्वीप में भी होती हैं ?

४ उत्तर–हाँ, गौतम होती हैं ।

५ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु, समुद्र में भी होती हैं ?

५ उत्तर–हाँ, गौतम होती हैं ।

६ प्रश्न–हे भगवन् ! जब द्वीप ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब क्या समुद्र भी ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती है, और जब समुद्र की ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब द्वीप की भी ये सब वायु बहती हैं ?

६ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

७प्रश्न–हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि जब द्वीप की ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हों, तब समुद्र की ईषत्पुरोवात आदि वायु नहीं बहती ? और जब समुद्र की ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हों, तब द्वीप की ईषत्पुरोवात आदि वायु नहीं बहती ?

७ उत्तर–हे गौतम ! वे सब वायु परस्पर व्यत्यय रूप से (एक दूसरे के साथ नहीं, परन्तु पृथक् पृथक्) बहती हैं । जब द्वीप की ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब समुद्र की नहीं बहती और जब समुद्र की ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब द्वीप की नहीं बहती । इस प्रकार यह वायु, परस्पर विपर्यय रूप से बहती हैं और इस प्रकार वे वायु लवण समुद्र की वेला का उल्लंघन नहीं करती । इस कारण यावत् पूर्वोक्त रूप से वायु बहती हैं ।

विवेचन–द्वीप और समुद्र सम्बन्धी वायु के विषय में यह बतलाया गया है कि जब समुद्र सम्बन्धी ईषत्पुरोवात आदि बहती हैं, उस समय द्वीप सम्बन्धी ईषत्पुरोवात आदि नहीं बहती । और जब द्वीप सम्बन्धी ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब समुद्र सम्बन्धी ईषत्पुरोवात आदि वायु नहीं बहती । ये वायु समुद्र की वेला का उल्लंघन नहीं करती है ।

इसका कारण यह है कि वायु के द्रव्यों का सामर्थ्य इसी प्रकार का है और वेला का स्वभाव भी इसी प्रकार का है। तात्पर्य यह है कि वायु के द्रव्यों का सामर्थ्य, वेला को उल्लंघन नहीं कराने का है और वेला का स्वभाव भी इसी प्रकार का है।

वायु का स्वरूप

८ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! ईसिंपुरेवाया, पच्छा वाया, मंदा वाया महावाया वायंति ?

८ उत्तर-हंता, अत्थि।

९ प्रश्न-कया णं भंते ! ईसिंपुरेवाया जाव-वायंति ?

९ उत्तर-गोयमा ! जया णं वाउयाए अहारियं रियंति, तया णं ईसिंपुरेवाया जाव-वायंति।

१० प्रश्न-अत्थि णं भंते ! ईसिंपुरेवाया ?

१० उत्तर-हंता, अत्थि।

११ प्रश्न-कया णं भंते ! ईसिंपुरेवाया ?

११ उत्तर-गोयमा ! जया णं वाउयाए उत्तरकिरियं रियइ, तया णं ईसिंपुरेवाया जाव-वायंति।

१२ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! ईसिंपुरेवाया ?

१२ उत्तर-हंता, अत्थि।

१३ प्रश्न-कया णं भंते ! ईसिंपुरेवाया, पच्छा वाया ?

१३ उत्तर-गोयमा ! जया णं वाउकुमारा, वाउकुमारीओ अप्पणो वा, परस्स वा, तदुभयस्स वा अट्ठाए वाउकायं उदीरेंति, तया णं ईसिंपुरेवाया, जाव-वायंति ।

१४ प्रश्न-वाउयाए णं भंते ! वाउयायं चेव आणमंति वा, पाणमंति वा ?

१४ उत्तर-जहा खंदए तहा चत्तारि आलावगा णेयव्वा अणेगसयसहस्स, पुट्ठे उद्दाइ, ससरीरी णिक्खमइ ।

कठिन शब्दार्थ-अहारियं-अपने स्वभाव के अनुसार, रियंति-गति करता है, पुट्ठे-स्पृष्ट होकर-स्पर्श पाकर ।

भावार्थ-८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात हैं ?

८ उत्तर-हाँ गौतम हैं ।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु कब बहती हैं ?

९ उत्तर-हे गौतम ! जब वायुकाय अपने स्वभाव पूर्वक गति करती है, तब ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं ।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु हैं ?

१० उत्तर-हाँ, गौतम हैं ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु कब बहती हैं ।

११ उत्तर-हे गौतम ! जब वायुकाय उत्तर क्रिया पूर्वक अर्थात् वैक्रिय शरीर बनाकर गति करती है, तब ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं ।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु हैं ?

१२ उत्तर-हाँ, गौतम हैं ।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु कब बहती हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! जब वायुकुमार देव और वायुकुमार देवियाँ अपने लिये, दूसरों के लिये अथवा उभय के लिये (अपने और दूसरे दोनों के लिए) वायुकाय की उदीरणा करते हैं, तब ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय को ही श्वास रूप में ग्रहण करती है, और निःश्वास रूप में छोड़ती है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! इस सम्बन्ध में स्कन्दक परिव्राजक के उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए, यावत् (१) अनेक लाख वार मरकर, (२) स्पृष्ट होकर, (३) मरती है और (४) शरीर सहित निकलती है। इस प्रकार चार आलापक कहने चाहिये।

विवेचन-वायुकाय के बहने में वायुकाय के तीन रूप बनते हैं। यह बात यहां दूसरी तरह से तीन सूत्रों द्वारा बतलाई गई है।

शङ्का-'अत्थि णं भंते ! ईसिंपुरेवाया' इत्यादि सूत्र तो पहले आ चुका है। फिर उसे यहाँ पुनः क्यों बतलाया गया ?

समाधान-चालू प्रकरण में यह सूत्र प्रस्तावना के रूप में रखा गया है। दूसरीबार बतलाने का यही कारण है। इसलिए इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं है।

यहां ईषत्पुरोवात आदि के बहने के तीन कारणों का निर्देश किया गया है। अर्थात् ईषत्पुरोवात आदि वायु, अपनी स्वाभाविक गति से बहती है, उत्तर-वैक्रिय करके बहती है और वायुकुमार आदि द्वारा की हुई उदीरणा से बहती है। वायुकाय का मूल शरीर तो औदारिक है और वैक्रिय शरीर इसका उत्तर शरीर है। इस उत्तर शरीर पूर्वक जो गति होती है उसे 'उत्तरक्रिय या उत्तर-वैक्रिय' कहते हैं।

शङ्का-वायुकाय के बहने के तीन कारणों का निर्देश एक ही सूत्र द्वारा किया जा सकता है, फिर यहाँ अलग अलग तीन सूत्र क्यों कहे गये हैं ?

समाधान-सूत्र की गति विचित्र होने से यहाँ पर तीन सूत्र कहे गये हैं। दूसरी वाचना में तो इन तीन कारणों को भिन्न भिन्न वायु के बहने में कारण बतलाया गया है। यथा-ईषत्पुरोवात, पथ्यवात और मन्दवात, ये तीन स्वभाव से बहती है। ईषत्पुरोवात, पथ्य-वात और महावात, इन तीनों के बहने में उत्तर-वैक्रिय कारण हैं, और तीसरा कारण चारों वाय के बहने का है। इसलिये तीन सूत्रों का पृथक् पृथक् कहना उचित है।

वायुकाय का प्रकरण होने से अब वायु के सम्बन्ध में एक दूसरी बात बताई जाती है।

‡ वायुकाय, वायुकाय को ही बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करती है और छोड़ती है। जिस वायु को वह श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करती है, वह वायु निर्जीव है। वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाखों वार मरकर, वायुकाय में ही उत्पन्न हो जाती है। वायुकाय, स्वकाय शस्त्र के साथ में अथवा पर-काय शस्त्र के साथ अर्थात् पर निमित्त से (पंखे आदि से उत्पन्न हुई वायु से स्पृष्ट होकर मरण को प्राप्त होती है। किंतु बिना स्पृष्ट हुए मरण को प्राप्त नहीं होती। (यह बात सोपक्रम आयुवाले जीवों की अपेक्षा से है) वायुकाय के चार शरीर होते हैं। जिन में से औदारिक और वैक्रिय शरीर की अपेक्षा तो वह अशरीरी होकर परलोक में जाती है। तथा तैजस् और कार्मण शरीर की अपेक्षा सशरीरी परलोक में जाती है।

ओदन आदि के शरीर

१५ प्रश्न-अह भंते ! उदणे, कुम्मासे, सुरा एए णं किं सरीरा त्ति वत्तव्वं सिया ?

१५ उत्तर-गोयमा ! उदणे, कुम्मासे सुराए य जे घणे दव्वे एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थाईआ सत्थपरिणामिया अगणिज्झामिया अगणिझूसिया अगणिसेविया अगणिपरिणामिया अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया, सुराए य जे दवे दव्वे एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च आउजीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थाईया, जाव-अगणिकायसरीरा इ वत्तव्वं सिया।

---

‡ इस प्रकरण का विस्तृत विवेचन भ० शतक २ उद्देशक १ सूत्र ८ से १२ तक स्कन्दक प्रकरण में किया गया है। इसलिये विशेष जिज्ञासुओं को प्रथम भाग पृ. ३८२ में देखना चाहिये।

कठिन शब्दार्थ-उदण्णे-ओदन, कुम्मासे-कुल्माष-उड़द, सुरा-मदिरा, घणे-घन-गाढ़ा, पुव्वभावपण्णवणं-पूर्व भाव प्रज्ञापना-पूर्व अवस्था का वर्णन, पडुच्च-अपेक्षा, सत्थातीआ-शस्त्रातीत-शस्त्र लगने के बाद, अगणिज्झामिया-अग्नि से जलने पर।

भावार्थ-१५ प्रश्न-हे भगवन् ! ओदन (चावल), कुल्माष-उड़द और सुरा-मदिरा, इन द्रव्यों का शरीर किन जीवों का कहलाता है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! ओदन, कुल्माष और मदिरा में जो घन-कठिन द्रव्य है, वह पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा वनस्पति जीवों के शरीर हैं। जब वे ओदन आदि द्रव्य शस्त्रातीत (ऊखल मूसल आदि द्वारा पूर्व पर्याय से अतिक्रांत) हो जाते हैं, शस्त्र परिणत (शस्त्र लगने से नये आकार के धारक) हो जाते हैं, अग्नि-ध्यामित (अग्नि से जलाये जाने पर काले वर्ण के बने हुए), अग्नि झूषित (अग्नि में जल जाने से पूर्व स्वभाव से रहित बने हुए) अग्नि सेवित और अग्नि-परिणामित (अग्नि में जल जाने पर नवीन आकार को धारण किये हुए) हो जाते हैं, तब वे द्रव्य अग्नि के शरीर कहलाते हैं। तथा सुरा (मदिरा) में जो प्रवाही पदार्थ है, वह पूर्व भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा अप्काय जीवों के शरीर हैं। जब वह प्रवाही पदार्थ शस्त्रातीत यावत् अग्नि परिणामित हो जाते हैं, तब अग्निकाय के शरीर हैं, इस प्रकार कहे जाते हैं।

१६ प्रश्न-अह णं भंते ! अये, तंबे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया-एए णं किंसरीरा इ वत्तव्वं सिया ?

१६ उत्तर-गोयमा ! अये, तंबे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया-एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च पुढवी जीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थाईया, जाव-अगणिजीवसरीरा इ वत्तव्वं सिया।

कठिन शब्दार्थ-अये-लोहा, तंबे-ताम्बा, तउए-त्रपुष्-कलई-रांगा, सीसए-सीसा,

उवले–कोयला, कसट्टिया–कसट्टिका–लोहे का काट ।×

भावार्थ–१६ प्रश्न–हे भगवन् ! लोह, तांबा, त्रपुष्–कलई, सीसा, उपल (कोयला) और कसट्टिका (लोह का काट–मैल), ये सब द्रव्य किन जीवों के शरीर कहलाते हैं ?

१६ उत्तर–हे गौतम ! लोह, तांबा, कलाई, सीसा, कोयला और काट, ये सब पूर्व-भाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा पृथ्वीकाय जीवों के शरीर कहलाते हैं और पीछे शस्त्रातीत यावत् शस्त्र-परिणामित होने पर अग्नि जीवों के शरीर कहलाते हैं ।

१७ प्रश्न–अह णं भंते ! अट्ठी, अट्ठिज्झामे, चम्मे, चम्मज्झामे, रोमे, रोमज्झामे, सिंगे, सिंगज्झामे, खुरे, खुरज्झामे, णखे, णखज्झामे–एए णं किंसरीरा इ वत्तव्वं सिया ?

१७ उत्तर–गोयमा ! अट्ठी, चम्मे, रोमे, सिंगे, खुरे, णहे–एए णं तसपाणजीवसरीरा । अट्ठिज्झामे, चम्मज्झामे, रोमज्झामे, सिंग-खुर-णहज्झामे–एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा; तओ पच्छा सत्थाईया, जाव–अगणि त्ति वत्तव्वं सिया।

कठिन शब्दार्थ–अट्ठि–हड्डी ।

भावार्थ–१७ प्रश्न–हे भगवन् ! हड्डी, अग्नि द्वारा ज्वलित हड्डी, चमड़ा, अग्नि ज्वलित चमड़ा, रोम, अग्नि ज्वलित रोम, सींग, अग्नि ज्वलित सींग, खुर, अग्नि ज्वलित खुर, नख, अग्नि ज्वलित नख, ये सब किन जीवों के शरीर कहलाते हैं ?

१७ उत्तर–हे गौतम ! हड्डी, चर्म, रोम, सींग, खुर और नख, ये सब

× कसट्टिका का अर्थ 'कषपट्टिका' अर्थात् 'कसौटी' भी किया है ।

त्रस जीवों के शरीर कहलाते हैं और जली हुई हड्डी, जला हुआ चमड़ा, जले हुए रोम और जले हुए सींग, खुर, नख, ये सब पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा त्रस जीवों के शरीर कहलाते हैं, और पीछे शस्त्रातीत आदि हो जाने पर-'अग्नि जीवों के शरीर' कहलाते हैं।

१८ प्रश्न-अह भंते ! इंगाले, छारिए, भुसे, गोमए-एए णं किंसरीरा इ वत्तव्वं सिया ?

१८ उत्तर-गोयमा ! इंगाले, छारिए, भुसे, गोमए-एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणामिया वि, जाव-पंचिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणामिया वि, तओ पच्छा सत्थाईया, जाव-अगणिजीवसरीरा इ वत्तव्वं सिया।

कठिन शब्दार्थ-इंगाले-अंगारा, छारिए-राख, भुसे-भूसा-घास, गोमए-गोवर।

भावार्थ-१८ प्रश्न-हे भगवन् ! अंगार, राख, भूसा और गोबर (छाणा) ये सब, किन जीवों के शरीर कहलाते हैं ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! अंगार, राख, भूसा और गोबर (छाणा) ये सब पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों के शरीर हैं, और यावत् यथा-संभव पचेन्द्रिय जीवों के शरीर भी कहलाते हैं, शस्त्रातीत आदि हो जाने पर यावत् अग्नि 'जीवों के शरीर' कहलाते हैं।

विवेचन-पहले प्रकरण में वायुकाय के सम्बन्ध में कथन किया गया है। अब वनस्पतिकाय आदि के शरीर के विषय में कथन किया जाता है। मदिरा में दो जाति के पदार्थ हैं-कठिन और प्रवाही। गुड़ आदि 'कठिन' पदार्थ है और पानी 'प्रवाही' पदार्थ है। जो कठिन पदार्थ है, वह पूर्वभाव-प्रज्ञापना अर्थात् पहले के द्रव्य की अपेक्षा वनस्पति का शरीर है, क्योंकि गुड़ की पूर्वावस्था वनस्पति रूप है। इसी तरह ओदन (चावल) की भी पूर्वावस्था वनस्पति रूप है। जब वह अग्नि रूप शस्त्र से जल कर पूर्व अवस्था को छोड़ देता है,

रूपान्तर हो जाता है, तब वह 'अग्नि का शरीर' कहा जाता है। अंगार और राख ये दोनों लकड़ी से बनते हैं। लकड़ी (गीली लकड़ी) वनस्पति है। इसलिए ये दोनों पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा वनस्पति रूप एकेन्द्रिय जीवों के शरीर है। भूसा, गेहूँ या जौ आदि से बनता है। हरे गेहूं और जौ आदि धान्य वनस्पति है। इसलिए भूसा, पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा वनस्पति रूप एकेन्द्रिय जीवों का शरीर है। गोमय (गोबर) पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों का शरीर है, क्योंकि जब गाय आदि पशु घास भूसा आदि खाते हैं, तो उनसे गोबर बनता है। जब गाय आदि पशु, बेइन्द्रिय आदि जीवों का भक्षण कर जाते हैं, तब उन पदार्थों से बना हुआ गोबर, बेइन्द्रिय आदि जीवों का शरीर कहलाता है। अर्थात् गाय आदि पशु जितनी इन्द्रियोंवाले जीवों का भक्षण करें, उनसे बने हुए गोबर को पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा उतनी ही इन्द्रियों वाले जीवों का शरीर गिनना चाहिए।

लवण समुद्र

१९ प्रश्न-लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते ?

१९ उत्तर-एवं णेयव्वं, जाव-लोगट्ठिई, लोगाणुभावे।

सेवं भंते ! सेवं भंते !, त्ति भगवं जाव विहरइ।

॥ पंचमसए दुइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-चक्कवाल विक्खंभेणं-चक्रवाल विष्कम्भ अर्थात् सब जगह की चौड़ाई।

भावार्थ-१९ प्रश्न-हे भगवन् ! लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ (सब जगह की चौड़ाई) कितना कहा गया है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहे अनुसार जान लेना चाहिए, यावत् लोकस्थिति लोकानुभाव तक कहना चाहिए।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् !

यह इसी प्रकार है ! ! ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-पहले के प्रकरण में पृथ्वीकाय, वनस्पतिकाय आदि के शरीर सम्बन्धी वर्णन किया गया है। अब अप्काय रूप लवण समुद्र का स्वरूप बतलाया जाता है।

यहाँ लवण समुद्र के विषय में प्रश्न करने पर 'जीवाभिगम' सूत्र का अतिदेश किया गया है। इस विषयक वर्णन जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में है। वह इस प्रकार है।

हे भगवन् ! लवण समुद्र का संस्थान कैसा है ?

हे गौतम ! गोतीर्थ, नौका, शीपसम्पुट, अश्वस्कन्ध और वलभी के समान गोल है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ, परिक्षेप, उद्वेध, उत्सेध और सर्वाग्र कितना है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ दो लाख योजन का है। उसका परिक्षेप पन्द्रह लाख ईक्यासी हजार एक सौ ऊनचालीस (१५८११३९) योजन से कुछ अधिक है। उसका उद्वेध (गहराई-ऊंडाई) एक हजार योजन है। उसका उत्सेध (ऊंचाई-शिखर) सोलह हजार योजन है। उसका सर्वाग्र सतरह हजार योजन है।

हे भगवन् ! इतना विस्तृत और विशाल यह लवणसमुद्र, जम्बूद्वीप को क्यों नहीं डूबा देता, यावत् जलमय क्यों नहीं कर देता है ?

हे गौतम ! इस जम्बूद्वीप के भरत और एरवर्त क्षेत्रों में अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण, विद्याधर, श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका और धर्मात्मा मनुष्य हैं, जो स्वभाव से भद्र और विनीत हैं, उपशान्त हैं, स्वभाव से ही जिनके क्रोधादि कषाय मन्द हैं। जो सरल, कोमल, जितेन्द्रिय, भद्र और नम्र होते हैं। उनके प्रभाव से लवण समुद्र, जम्बूद्वीप को डूबाता नहीं है यावत् जलमय नहीं करता है। इत्यादि वर्णन यावत् 'लोक स्वभाव है.' तक कहना चाहिये। इसलिए लवणसमुद्र जम्बूद्वीप को डूबाता नहीं है, यावत् जलमय नहीं करता है।

॥ इति पांचवें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ३

अन्य-तीर्थियों की आयु-बन्ध विषयक मान्यता

१ प्रश्न—अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति, भासंति, पण्णवेंति, एवं परूवेंति—से जहा णामए जालगंठिया सिया, आणुपुव्विगढिया, अणंतरगढिया, परंपरगढिया, अण्णमण्णगढिया, अण्णमण्णगरुयत्ताए, अण्णमण्णभारियत्ताए, अण्णमण्णगरुयसंभारियत्ताए, अण्णमण्णघडत्ताए जाव—चिट्ठइ, एवामेव बहूणं जीवाणं बहुसु आजाइसयसहस्सेसु बहूइं आउयसहस्साइं आणुपुव्विगढियाइं, जाव—चिट्ठंति । एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पडिसंवेदेइ । तं जहा—इहभवियाउयं च परभवियाउयं च । जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ तं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ, जाव—से कहमेयं भंते ! एवं ?

१ उत्तर—गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया तं चेव जाव परभवियाउयं च । जे ते एवमाहंसु तं मिच्छा, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि, जाव परूवेमि—जहा णामए जालगंठिया सिया, जाव—अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति, एवामेव एगमेगस्स जीवस्स बहूहिं आजाइसयसहस्सेहिं बहूइं आउयसहस्साइं आणुपुव्विगढियाइं

जाव चिट्ठंति। एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पडिसंवेदेइ। तं जहा–इहभवियाउयं वा, परभवियाउयं वा; जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ णो तं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ, जं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ णो तं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ; इहभवियाउयस्स पडिसंवेयणाए णो परभवियाउयं पडिसंवेदेइ, परभवियाउयस्स पडिसंवेयणाए णो इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ। एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पडिसंवेदेइ। तं जहा–इहभवियाउयं वा, परभवियाउयं वा।

कठिन शब्दार्थ–अण्णउत्थिया–अन्यतीर्थिक, एवमाइक्खंति–इस प्रकार कहते हैं, पण्णवंति–बताते हैं, परूवंति–प्ररूपणा करते हैं, आणुपुव्विगढिया–क्रमशः गांठे लगाई हो, जालगंठिया–जालग्रन्थि, अणंतरगढिया–एक के बाद दूसरी अन्तर रहित गांठ लगाई हो, परम्परगढ़िया–पंक्तिबद्ध गुंथी हुई हो, अण्णमण्णगढ़िया–परस्पर ग्रथित हो, आजाइसयसहस्सेसु–लाखों जन्म, पडिसंवेदेइ–अनुभवता है, पडिसंवेयणाए–भोगता हुआ–वेदता हुआ।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! अन्य-तीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं, कि जैसे कोई एक जाल हो, उस जाल में क्रमपूर्वक गांठें दी हुई हों, बिना अन्तर एक के बाद एक गांठें दी हुई हों, परम्परा गूंथी हुई हों, परस्पर गूंथी हुई हों, ऐसी वह जालग्रंथि विस्तारपने, परस्पर भारपने, परस्पर विस्तार और भारपने, परस्पर समुदायपने रहती है अर्थात् जैसे जाल एक है, परन्तु उसमें अनेक गांठें परस्पर संलग्न रहती हैं, वैसे ही क्रमपूर्वक लाखों जन्मों से सम्बन्धित बहुत से आयुष्य बहुत से जीवों के साथ परस्पर क्रमशः गुम्फित हैं। यावत् संलग्न रहे हुए हैं। इस कारण उन जीवों में का एक जीव भी एक समय में दो आयुष्य को वेदता है अर्थात् दो आयुष्य का अनुभव करता है। यथा–एक ही जीव, इस भव का आयुष्य वेदता है और

वही जीव, परभव का भी आयुष्य वेदता है। जिस समय इस भव का आयुष्य वेदता है, उसी समय परभव का भी आयुष्य वेदता है, यावत् हे भगवन् ! यह किस तरह है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! अन्यतीर्थियों ने जो यह कहा है कि यावत् 'एक ही जीव, एक ही समय में इस भव का और परभव का आयुष्य दोनों को वेदता है-' वह मिथ्या है। हे गौतम ! मैं तो इस तरह कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि जैसे कोई एक जाल हो और वह यावत् अन्योन्य समुदायपने रहता है, इसी प्रकार क्रमपूर्वक अनेक जन्मों से सम्बन्धित अनेक आयुष्य, एक एक जीव के साथ शृंखला (सांकल) की कड़ी के समान परस्पर क्रमशः गुम्फित होते हैं। इसलिये एक जीव एक समय में एक आयुष्य को वेदता है। यथा-इसभव का आयुष्य, अथवा परभव का आयुष्य। परन्तु जिस समय इस भव का आयुष्य वेदता है उस समय वह परभव का आयुष्य नहीं वेदता है और जिस समय वह परभव का आयुष्य वेदता है, उस समय इस भव का आयुष्य नहीं वेदता। इस भव का आयुष्य वेदने से पर भव का आयुष्य नहीं वेदा जाता। और परभव का आयुष्य वेदने से इस भव का आयुष्य नहीं वेदा जाता। इस प्रकार एक जीव, एक समय में, एक आयुष्य को वेदता है-इस भव का आयुष्य अथवा परभव का आयुष्य।

विवेचन-पहले प्रकरण में लवण समुद्र का वर्णन किया गया है। यह सब कथन सर्वज्ञ द्वारा कथित है, अतएव सत्य है। किन्तु मिथ्यादृष्टि पुरुषों द्वारा प्ररूपित बात मिथ्या भी होती है। उसका नमूना दिखलाने के लिये इस तीसरे उद्देशक के प्रारंभ में अन्यतीर्थियों द्वारा कल्पित दो आयुष्य वेदन का कथन किया गया है। अन्यतीर्थियों का कहना है कि एक जीव, एक ही समय में इस भव का आयुष्य और परभव का आयुष्य-यों दोनों आयुष्य वेदता है। इसके लिये उन्होंने जाल (मछलियां पकड़ने का साधन) का दृष्टान्त दिया है। और बतलाया है कि जिस प्रकार एक के बाद एक, क्रमपूर्वक, अन्तर रहित गांठें देकर जाल बनाया जाता है। वह जाल उन सब गांठों से गुम्फित यावत् संलग्न रहता है। इसी तरह जीवों ने अनेक भव किये हैं। उन अनेक जीवों के अनेक आयुष्य उस जाल की गांठों के

समान परस्पर संलग्न हैं। इसलिये एक जीव दो भव का आयुष्य वेदता है।

भगवान् ने फरमाया कि अन्यतीर्थियों का उपरोक्त कथन मिथ्या है। आयुष्य के लिये अनेक जीवों के एक साथ तथा एक जीव के एक साथ दो आयुष्य वेदन के लिये उन्होंने जो जालग्रन्थि का दृष्टान्त दिया है, वह अयुक्त है। क्योंकि यदि आयुष्य को जालग्रन्थि के समान माना जाय तो अनेक जीवों का आयुष्य एक साथ रहने का प्रसंग आयेगा, जो कि बाधित है। तथा जैसे एक जाल के साथ अनेक ग्रन्थियाँ हैं, उसी तरह एक जीव के साथ अनेक भवों के आयुष्य का सम्बन्ध होने से अनेक गति के वेदन का प्रसंग आवेगा। किन्तु यह भी प्रत्यक्ष से बाधित है। इसी प्रकार दो भव का आयुष्य का वेदन मानने से दो भवों को भोगने का भी प्रसंग आवेगा। किन्तु यह भी प्रत्यक्ष बाधित है। इसलिये एक जीव एक समय में दो आयुष्य का वेदन करता है, यह मान्यता मिथ्या है। आयुष्य के लिये जालग्रंथि का जो दृष्टान्त है, वह केवल शृंखला (सांकल) रूप समझना चाहिए। जिस प्रकार शृंखला की कड़ियाँ परस्पर संलग्न हैं, उसी तरह एक भव के आयुष्य के साथ दूसरे भव का आयुष्य प्रतिबद्ध है और उसके साथ तीसरे चौथे आदि भवों का आयुष्य क्रमशः प्रतिबद्ध है। इस तरह भूतकालीन हजारों आयुष्य मात्र सांकल के समान सम्बन्धित है। तात्पर्य यह है कि एक के बाद दूसरे आयुष्य का वेदन होता जाता है। परन्तु एक ही भव में अनेक आयुष्य प्रतिबद्ध नहीं है। अतः एक जीव, एक समय में एक ही आयुष्य का वेदन करता है अर्थात् इस भव के आयुष्य का वेदन करता है अथवा पर भव के आयुष्य का वेदन करता है।

आयुष्य सहित गति

२ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जे भविए णेरइएसु उववज्जित्तए से णं किं साउए संकमइ ? णिराउए संकमइ ?

२ उत्तर-गोयमा ! साउए संकमइ, णो णिराउए संकमइ।

३ प्रश्न-से णं भंते ! आउए कहिं कडे, कहिं समाइण्णे ?

३ उत्तर-गोयमा ! पुरिमे भवे कडे, पुरिमे भवे समाइण्णे;

एवं जाव-वेमाणियाणं दंडओ।

४ प्रश्न-से णूणं भंते ! जे जं भविए जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तं जहा-णेरइयाउयं वा, जाव-देवाउयं वा ?

४ उत्तर-हंता, गोयमा ! जे जं भविए जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तं जहा-णेरइयाउयं वा, तिरि-मणु-देवाउयं वा। णेरइयाउयं पकरेमाणे सत्तविहं पकरेइ। तं जहा-रयणप्पभापुढविणेरइयाउयं वा, जाव-अहेसत्तमापुढविणेरइयाउयं वा, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे पंचविहं पकरेइ, तं जहा-एगिंदियतिरिक्खजोणियाउयं वा भेओ सव्वो भाणियव्वो। मणुस्साउयं दुविहं, देवाउयं चउव्विहं।

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति।

॥ पंचमसए तइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-भविए-होने योग्य, साउए-आयुष्य सहित, संकमइ-जाता है, णिराउए-बिना आयुष्य के, कडे-किया, समाइण्णे-आचरण किया, पुरिमे-पूर्व के।

भावार्थ-२ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव नरक में उत्पन्न होने वाला है, क्या वह जीव यहीं से आयुष्य सहित होकर नरक में जाता है अथवा आयुष्य रहित होकर नरक में जाता है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! जो जीव नरक में उत्पन्न होने वाला है, वह यहीं से आयुष्य सहित होकर नरक में जाता है, परन्तु आयुष्य रहित होकर नरक में नहीं जाता।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! उस जीव ने वह आयुष्य कहाँ बांधा ? और

उस आयुष्य सम्बन्धी आचरण कहाँ किया है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! उस जीव ने वह आयुष्य, पूर्व-भव में बांधा है और उस आयुष्य सम्बन्धी आचरण भी पूर्वभव में ही किया है । जिस प्रकार यह बात नैरयिक के लिये कही गई है । उसी प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डकों में कहनी चाहिये ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य होता है, क्या वह जीव, उस योनि सम्बन्धी आयुष्य बांधता है ? यथा-नरक योनि में उत्पन्न होने योग्य जीव, क्या नरक योनि का आयुष्य बांधता है, यावत् देवगति में उत्पन्न होने योग्य जीव, क्या देव योनि का आयुष्य बाँधता है ?

४ उत्तर-हाँ, गौतम ! ऐसा ही करता है, अर्थात् जो जीव, जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य होता है, वह जीव उस योनि सम्बन्धी आयुष्य बांधता है । नरक में उत्पन्न होने योग्य जीव, नरक योनि का आयुष्य बांधता है । तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीव, तिर्यंच योनि का आयुष्य बांधता है । मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीव, मनुष्य योनि का आयुष्य बांधता है और देवयोनि में उत्पन्न होने योग्य जीव, देवयोनि का आयुष्य बांधता है । जो जीव, नरक का आयुष्य बांधता है, वह सात प्रकार की नरकों में से किसी एक प्रकार की नरक का आयुष्य बांधता है । यथा-रत्नप्रभा पृथ्वी का आयुष्य अथवा यावत् अधः सप्तम पृथ्वी (सातवीं नरक) का आयुष्य बांधता है । जो जीव, तिर्यंच योनि का आयुष्य बांधता है ? वह पांच प्रकार के तिर्यंचों में से किसी एक तिर्यंच सम्बन्धी आयुष्य बांधता है । यथा-एकेंद्रिय तिर्यंच का आयुष्य, इत्यादि । इस संबंधी सारा विस्तार यहां कहना चाहिये । जो जीव, मनुष्य सम्बन्धी आयुष्य बांधता है, वह दो प्रकार के मनुष्यों में से किसी एक प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी आयुष्य को बांधता है । सम्मूच्छिम मनुष्य का अथवा गर्भज मनुष्य का । जो जीव, देव सम्बन्धी आयुष्य बांधता है, वह चार प्रकार के देवों में से किसी एक प्रकार के देव का आयुष्य बांधता है । यथा-भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और

वैमानिक। इन में से किसी एक प्रकार के देव का आयुष्य बांधता है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन–यह आयुष्य सम्बन्धी प्रकरण चल रहा है। इसलिए यहाँ पर भी आयुष्य सम्बन्धी बात कही जाती है।

जीव, परभव की आयुष्य इस भव में ही बांधते हैं और उस आयुष्य सम्बन्धी कारणों को बांधने का आचरण भी इसी भव में करते हैं। केवल वे जीव ही परभव का आयुष्य नहीं बांधते हैं जो चरमशरीरी होते हैं, क्योंकि वे समस्त कर्मों का क्षय कर उसी भव में मोक्ष चले जाते हैं।

जो जीव, परभव का आयुष्य बांधता है, वह नरकादि चारों गतियों में से किसी एक गति का आयुष्य बांधता है। नरक गति का आयुष्य बांधता है, तो सात नरकों में से किसी एक नरक का आयुष्य बांधता है। इसी तरह तिर्यञ्चों में एकेंद्रियादि किसी एक का आयुष्य बांधता है। मनुष्यों में सम्मूर्च्छिम और गर्भज, इन दो में से किसी एक का आयुष्य बांधता है। यदि देवगति का आयुष्य बांधता है, तो भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, इन चारों में से किसी एक का आयुष्य बांधता है। तात्पर्य यह है कि परभव का आयुष्य, इसी भव में बंधता है और वह एक ही वक्त बंधता है।

॥ इति पांचवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ४

शब्द श्रवण

१ प्रश्न-छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ ? तं जहा-संखसद्दाणि वा, सिंगसद्दाणि वा, संखियसद्दाणि वा, खरमुहीसद्दाणि वा, पोयासद्दाणि वा, परिपिरियासद्दाणि वा, पणवसद्दाणि वा, पडहसद्दाणि वा, भंभासद्दाणि वा, होरंभसद्दाणि वा, भेरिसद्दाणि वा, झल्लरीसद्दाणि वा, दुंदुभिसद्दाणि वा, तयाणि वा, वितयाणि वा, घणाणि वा, झुसराणि वा ?

१ उत्तर-हंता, गोयमा ! छउमत्थे णं मणुस्से आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ । तं जहा-संखसद्दाणि वा, जाव-झुसराणि वा ।

२ प्रश्न-ताइं भंते ! किं पुट्ठाइं सुणेइ, अपुट्ठाइं सुणेइ ?

२ उत्तर-गोयमा ! पुट्ठाइं सुणेइ, णो अपुट्ठाइं सुणेइ, जाव णियमा छद्दिसिं सुणेइ ।

३ प्रश्न-छउमत्थे णं भंते ! मणूसे किं आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ ?

३ उत्तर-गोयमा ! आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, णो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ ।

४ प्रश्न-जहा णं भंते ! छउमत्थे मणूसे आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, णो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ; तहा णं भंते ! केवली मणुस्से किं आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, णो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ ?

४ उत्तर-गोयमा ! केवली णं आरगयं वा, पारगयं वा, सव्व-दूरमूलमणंतियं सद्दं जाणइ पासइ ।

५ प्रश्न-से केणट्ठेणं तं चेव केवली णं आरगयं वा, पारगयं वा, जाव-पासइ ?

५ उत्तर-गोयमा ! केवली णं पुरत्थिमेणं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ; एवं दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं, उड्ढं, अहे मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ; सव्वं जाणइ केवली, सव्वं पासइ केवली; सव्वओ जाणइ, पासइ; सव्वकालं सव्वभावे जाणइ केवली, सव्वभावे पासइ केवली; अणंते णाणे केवलिस्स, अणंते दंसणे केवलिस्स; णिव्वुडे णाणे केवलिस्स, णिव्वुडे-दंसणे केवलिस्स से तेणट्ठेणं जाव-पासइ ।

कठिन शब्दार्थ-आउडिज्जमाणाइं-बजाये जाते हुए, पुट्ठाइं-स्पर्श होने पर, आरगयाइं-इन्द्रियों के समीप रहे हुए-इन्द्रिय गोचर, पारगयाइं-इन्द्रियों से दूर रहे हुए-इन्द्रिय अगोचर, पासइ-देखते हैं, मियं-मित, णिव्वुडे णाणे-जिनके ज्ञान की ओट हट गई है ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य, बजाये जाते हुए वादिन्त्र के शब्दों को सुनता है ? यथा-शंख के शब्द, रणशृंग (एक प्रकार का बाजा) के शब्द, शंखिका (छोटे शंख) के शब्द, खरमुही (काहली नामक बाजा)

के शब्द, पोता (बड़ी काहली) के शब्द परिपरिता (परिपरिका-सूअर के मुख से मढ़े हुए मुख वाला एक प्रकार का बाजा), पणव (ढोल) के शब्द, पटह (ढोलकी) के शब्द, भंभा (ढक्का-छोटी भेरी) के शब्द, होरम्भ (एक प्रकार का बाजा) के शब्द, भेरी के शब्द, झल्लरी (झालर) के शब्द, दुंदुभि के शब्द, तत शब्द (तांत वाला बाजा-वीणा आदि के शब्द) वितत शब्द (ढोल आदि विस्तृत बाजे के शब्द), घन शब्द (ठोस बाजे के शब्द-कांस्य और ताल आदि बाजे के शब्द), शुषिर शब्द (पोले बाजे के शब्द, वंशी-बांसुरी आदि के शब्द) इत्यादि बाजों के शब्दों को क्या छद्मस्थ मनुष्य सुनता है ?

१ उत्तर-हाँ, गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य, बजाये जाते हुए शंख यावत् शुषिर (बांसुरी) आदि सभी बाजों के शब्दों को सुनता है ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह छद्मस्थ मनुष्य, स्पृष्ट (कान के साथ स्पर्श किये हुए) शब्दों को सुनता है, अथवा अस्पृष्ट (कान के साथ स्पर्श नहीं किये हुए) शब्दों को सुनता है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य, स्पृष्ट शब्दों को सुनता है, किन्तु अस्पृष्ट शब्दों को नहीं सुनता । यावत् नियम से छह दिशा से आये हुए स्पृष्ट शब्दों को सुनता है ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य, आरगत (आराद्गत-इन्द्रिय विषय के समीप रहे हुए) शब्दों को सुनता है, अथवा पारगत (इन्द्रिय विषय से दूर रहे हुए) शब्दों को सुनता है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य, आरगत शब्दों को सुनता है, किन्तु पारगत शब्दों को नहीं सुनता ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य, आरगत शब्दों को सुनता है, और पारगत शब्दों को नहीं सुनता, तो क्या उसी प्रकार केवली मनुष्य भी आरगत शब्दों को सुनता है और पारगत शब्दों को नहीं सुनता ?

४ उत्तर-हे गौतम ! केवली मनुष्य तो आरगत शब्दों को और पारगत शब्दों को तथा दूर, निकट, अत्यन्त दूर और अत्यन्त निकट, इत्यादि सभी प्रकार के शब्दों को जानते और देखते हैं।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! केवली भगवान् आरगत शब्दों को पारगत शब्दों को यावत् सब प्रकार के शब्दों को जानते हैं और देखते हैं। इसका क्या कारण है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! केवली भगवान्, पूर्व दिशा की मित वस्तु को भी जानते देखते हैं और अमित वस्तु को भी जानते देखते हैं। इसी तरह दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा की मित वस्तु को भी और अमित वस्तु को भी जानते हैं और देखते हैं। केवली भगवान् सब जानते हैं और सब देखते हैं। केवली भगवान्, सर्वतः (सभी ओर) जानते और देखते हैं। केवली भगवान् सभी काल में सभी भावों (पदार्थों) को जानते और देखते हैं। केवली भगवान् के अनन्त ज्ञान और अनन्त-दर्शन होता है। केवली भगवान् का ज्ञान और दर्शन निरावरण होता है अर्थात् उनके ज्ञान और दर्शन पर किसी प्रकार का आवरण नहीं होता। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि-केवली भगवान् आरगत और पारगत शब्दों को यावत् सभी प्रकार के शब्दों को जानते और देखते हैं।

विवेचन-इसके पहले तीसरे उद्देशक में अन्य मतावलम्बी छद्मस्थ मनुष्य का वर्णन किया गया है। अब इस चौथे उद्देशक में छद्मस्थ और केवली मनुष्य सम्बन्धी वक्तव्यता कही जाती है। यह तीसरे उद्देशक और चौथे उद्देशक का परस्पर सम्बन्ध है।

मुख के साथ शंख का संयोग होने से, हाथ के साथ ढोल का संयोग होने से, लकड़ी के टुकड़े के साथ झालर का संयोग होने से, तथा इसी तरह के अन्यान्य पदार्थों के साथ अनेक प्रकार के बाजों का संयोग होने से अथवा बजाने के साधन रूप अनेक प्रकार के पदार्थों द्वारा पीटने से, एवं उनका संयोग होने से, अनेक प्रकार के बाजों से, अनेक प्रकार के शब्द उत्पन्न होते हैं। उन शब्दों एवं शब्द-द्रव्यों को स्पृष्ट एवं इन्द्रिय विषय होने पर, छद्मस्थ मनुष्य सुनता है। केवली मनुष्य आरगत शब्दों और पारगत शब्दों को अत्यन्त दूर रहे हुए, अत्यन्त

निकट रहे हुए तथा बीच में रहे हुए एवं सभी प्रकार के शब्दों को जानते और देखते हैं। केवली भगवान् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा यावत् सभी दिशा और विदिशाओं में रहे हुए मित और अमित अर्थात् संख्य, असंख्य और अनन्त सभी पदार्थों को जानते और देखते हैं। क्योंकि केवली भगवान् का ज्ञान अनन्त पदार्थों को विषय करता है, इसलिये वह अनन्त ज्ञान है। घाती कर्मों का क्षय कर देने से उनका ज्ञान अक्षय, निरावरण, वितिमिर एवं विशुद्ध है।

छद्मस्थ और केवली का हंसना व निद्रा लेना

६ प्रश्न–छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा ?

६ उत्तर–हंता, गोयमा ! हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा।

७ प्रश्न–जहा णं भंते ! छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज, जाव–उस्सुयाएज्ज तहा णं केवली वि हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा ?

७ उत्तर–गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

८ प्रश्न–से केणट्ठेणं भंते ! जाव–णो णं तहा केवली हसेज्ज वा, जाव–उस्सुयाएज्ज वा ?

८ उत्तर–गोयमा ! जं णं जीवा चरित्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं हसंति वा, उस्सुयायंति वा; से णं केवलिस्स णत्थि, से तेणट्ठेणं जाव–णो णं तहा केवली हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा।

९ प्रश्न–जीवे णं भंते ! हसमाणे वा, उस्सुयमाणे वा कइ

कम्मपयडीओ बंधइ ?

९ उत्तर-गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, एवं जाव-वेमाणिए; पोहत्तएहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।

कठिन शब्दार्थ-हसेज्ज-हंसता है, उस्सुयाएज्ज-उत्सुक होता है, पोहत्तएहिं-पृथक्त्व अर्थात् बहुवचन सम्बन्धी ।

भावार्थ-६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य हंसता है और उत्सुक होता है अर्थात् किसी पदार्थ को लेने के लिए उतावला होता है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! हाँ, छद्मस्थ मनुष्य हंसता है और उत्सुक होता है ।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस तरह छद्मस्थ मनुष्य हंसता है और उत्सुक होता है, क्या उसी तरह केवली मनुष्य भी हंसता है और उत्सुक होता है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् केवलज्ञानी मनुष्य न तो हंसता है और न उत्सुक होता है ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! केवली मनुष्य न हंसता है और न उत्सुक होता है, इसका क्या कारण है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! जीव, चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से हंसते और उत्सुक होते हैं, किन्तु केवली भगवान् के चारित्र-मोहनीय कर्म नहीं है अर्थात् चारित्र-मोहनीय कर्म का क्षय हो चुका है । इसलिए छद्मस्थ मनुष्य की तरह केवली भगवान् हंसते नहीं हैं और न उत्सुक ही होते हैं ।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! हंसता हुआ अथवा उत्सुक होता हुआ जीव, कितने प्रकार के कर्म बांधता है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! हंसता हुआ अथवा उत्सुक होता हुआ जीव, सात प्रकार के कर्मों को बांधता है अथवा आठ प्रकार के कर्मों को बांधता है । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डकों में कहना चाहिए । जब उपरोक्त प्रश्न बहुत जीवों की अपेक्षा पूछा जाय, तब उसके उत्तर में समुच्चय जीव और

एकेंद्रिय को छोड़कर कर्म बन्ध सम्बन्धी तीन भांगे कहने चाहिए।

विवेचन–पहले के प्रकरण में छद्मस्थ और केवली के सम्बन्ध में कथन किया गया है। इस प्रकरण में उन्हीं के सम्बन्ध में कथन किया जाता है। हंसना और उत्सुक होना (किसी चीज को लेने के लिए उतावला होना) चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से होता है। छद्मस्थ मनुष्य के चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है, अतः वह हंसता है और उत्सुक होता है, किन्तु केवली मनुष्य, न तो हंसता है और न उत्सुक ही होता है, क्योंकि उसके चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय हो चुका है।

जीव की वक्तव्यता की तरह नरक से लेकर वैमानिक तक चौबीस ही दण्डकों में कहना चाहिए।

यहाँ पर यह शंका होती है कि इस सूत्र में हंसने आदि का पाठ सभी संसारी जीवों के विषय में घटाने का कहा गया है, वह कैसे घटित हो सकता है, क्योंकि पृथ्वीकाय अप्काय आदि के जीवों में हंसना आदि कैसे घटित हो सकता है?

समाधान–यद्यपि पृथ्वीकाय अप्काय आदि के जीव वर्तमान चालू स्थिति में हँस नहीं सकते, तथापि उन्होंने अपने किन्हीं पूर्वभवों में हंसना आदि क्रियाएँ अवश्य की है, उस अपेक्षा से सूत्रोक्त पाठ सब जीवों के लिए बराबर घटित होता है।

एक जीव की अपेक्षा से यह कहा गया है कि वह सात कर्मों को अथवा आठ कर्मों को बांधता है। जब बहुवचन सम्बन्धी सूत्र कहा जाय, तब उस में समुच्चय जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर बाकी १९ दण्डकों में कर्म बंध सम्बन्धी तीन भंग कहने चाहिये। क्योंकि समुच्चय जीव और पृथ्वीकाय आदि एकेंद्रिय जीव सदा बहुत हैं। इसलिये उनमें एक वचन सम्बन्धी भंग सम्भवित नहीं होता। किन्तु 'बहुत जीव, सात प्रकार के कर्मों को बांधने वाले और बहुत जीव आठ प्रकार के कर्मों को बांधने वाले'–यह एक ही भंग सम्भवित है। नारक आदि में तो तीन भंग सम्भवित हैं। यथा–पहला भंग–सभी जीव सात प्रकार के कर्मों को बांधनेवाले। दूसरा भंग–बहुत जीव सात प्रकार के कर्मों को बांधने वाले और एक जीव, आठ प्रकार के कर्मों को बांधनेवाला। तीसरा भंग–बहुत जीव सात प्रकार के कर्मों को बांधनेवाले और बहुत जीव आठ प्रकार के कर्मों को बांधनेवाले।

१० प्रश्न–छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से णिद्दाएज्ज वा, पयला-

एज्ज वा ?

१० उत्तर-हंता, णिद्दाएज्ज वा, पयलाएज्ज वा ।

-जहा हसेज्ज वा तहा, णवरं-दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं णिद्दायंति वा, पयलायंति वा; से णं केवलिस्स णत्थि । अण्णं तं चेव ।

११ प्रश्न-जीवे णं भंते ! णिद्दायमाणे वा, पयलायमाणे वा कइ कम्मप्पगडीओ बंधइ ?

११ उत्तर-गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा; एवं जाव-वेमाणिए; पोहत्तिएसु जीवेगिंदियवज्जे तियभंगो ।

कठिन शब्दार्थ-णिद्दाएज्ज-निद्रा लेता है, पयलाएज्ज-खड़े हुए नींद लेना ।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य, नींद लेता है और प्रचला नामक निद्रा लेता है, अर्थात् खड़े खड़े नींद लेता है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! हाँ, छद्मस्थ मनुष्य, नींद लेता है और खड़ा खड़ा भी नींद लेता है ।

जिस प्रकार हंसने और उत्सुकता के विषय में छद्मस्थ और केवली मनुष्य के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर बतलाये गये हैं, उसी प्रकार निद्रा और प्रचला के विषय में छद्मस्थ और केवली मनुष्य के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर जान लेने चाहिए । परन्तु इतनी विशेषता है कि छद्मस्थ मनुष्य, दर्शनावरणीय कर्म के उदय से नींद लेता है और खड़ा खड़ा नींद लेता है, परन्तु केवली के दर्शनावरणीय कर्म नहीं है, अर्थात् केवली के दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय हो चुका है । इसलिए वह निद्रा नहीं लेता है और प्रचला भी नहीं लेता है ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! नींद लेता हुआ और प्रचला लेता हुआ जीव, कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है ?

११ उत्तर-हे गौतम ! निद्रा अथवा प्रचला लेता हुआ जीव, सात कर्मों की प्रकृतियों का अथवा आठ कर्मों की प्रकृतियों का बन्ध करता है। इस तरह एक वचन की अपेक्षा वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में कहना चाहिए। जब उपरोक्त प्रश्न बहुवचन आश्री अर्थात् बहुत जीवों की अपेक्षा पूछा जाय, तब उसके उत्तर में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर कर्मबन्ध सम्बन्धी तीन भांगे कहने चाहिए।

विवेचन-जिस नींद में सोया हुआ प्राणी सुख पूर्वक जाग सके, उसे 'निद्रा' कहते हैं और खड़े खड़े प्राणी को जो नींद आवे, उसे 'प्रचला' कहते हैं। निद्रा और प्रचला ये दोनों दर्शनावरणीय कर्म के उदय से होती है। छद्मस्थ जीव के दर्शनावरणीय कर्म का सद्भाव है। इसलिये उसे प्रचला आती है। केवली भगवान् के दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय हो चुका है। इसलिये उन्हें निद्रा और प्रचला नहीं आती।

शक्रदूत हरिनैगमेषी देव

१२ प्रश्न-हरी णं भंते ! हरिणेगमेसी सक्कदूए इत्थीगब्भं संहरमाणे किं गब्भाओ गब्भं साहरइ ? गब्भाओ जोणिं साहरइ ? जोणीओ गब्भं साहरइ ? जोणीओ जोणिं साहरइ ?

१२ उत्तर-गोयमा ! णो गब्भाओ गब्भं साहरइ, णो गब्भाओ जोणिं साहरइ, णो जोणिओ जोणिं साहरइ, परामुसिय, परामुसिय अव्वाबाहेणं अव्वाबाहं जोणिओ गब्भं साहरइ।

१३ प्रश्न-पभू णं भंते ! हरिणेगमेसी सक्कस्स णं दूए इत्थी-गब्भं णहसिरंसि वा, रोमकूवंसि वा साहरित्तए वा, णीहरित्तए वा ?

१३ उत्तर-हंता पभू, णो चेव णं तस्स गब्भस्स किंचि वि आबाहं वा, विबाहं वा उप्पाएज्जा, छविच्छेदं पुण करेज्जा, ए सुहुमं च णं साहरेज्ज वा, णीहरेज्ज वा ।

कठिन शब्दार्थ-हरी-इन्द्र, साहरइ-संहरण करता है, परामुसिय-स्पर्श करके, अव्वाबाहेणं-पीड़ा हुए बिना ही, निहरित्तए-निकालता है, छविच्छेदं-छविच्छेद-अवयव का छेद ।

भावार्थ-१२ प्रश्न-हे भगवन् ! इन्द्र का सम्बन्धी शक्रदूत हरिनैगमेषी देव जब स्त्री के गर्भ का संहरण करता है, तब क्या वह एक गर्भाशय से गर्भ को उठा कर दूसरे गर्भाशय में रखता है ? या गर्भ को लेकर योनि द्वारा दूसरी स्त्री के उदर में रखता है ? या योनि से गर्भ को बाहर निकाल कर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखता है ? या योनि द्वारा गर्भ को पेट में से बाहर निकाल कर वापिस दूसरी स्त्री के पेट में उसकी योनि द्वारा रखता है ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! वह हरिनैगमेषी देव, एक स्त्री के गर्भाशय में से गर्भ को लेकर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में नहीं रखता, गर्भाशय से लेकर योनि द्वारा गर्भ को दूसरी स्त्री के पेट में नहीं रखता, योनि द्वारा गर्भ को बाहर निकाल कर वापिस योनि द्वारा गर्भ को पेट में नहीं रखता, परन्तु अपने हाथ द्वारा गर्भ को स्पर्श करके उस गर्भ को कुछ भी पीड़ा न पहुंचाते हुए, योनि द्वारा बाहर निकाल कर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखता है ।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या शक्र का दूत हरिनैगमेषी देव, स्त्री के गर्भ को नखाग्र द्वारा या रोम कूप (छिद्र) द्वारा गर्भाशय में रखने में या गर्भाशय से निकालने में समर्थ है ?

१३ उत्तर-हाँ, गौतम ! हरिनैगमेषी देव उपरोक्त कार्य करने में समर्थ है। ऐसा करते हुए वह देव, उस गर्भ को थोड़ी या बहुत कुछ भी-किञ्चित् मात्र भी पीड़ा नहीं पहुँचाता। वह उस गर्भ का छविच्छेद (छेदन भेदन) करता है और फिर बहुत सूक्ष्म करके अन्दर रखता है अथवा इसी तरह अन्दर से बाहर निकालता है।

विवेचन-पहले के प्रकरण में केवली के विषय में कथन किया गया है। इस प्रकरण में भी केवली भगवान् महावीर स्वामी के उदाहरण को लेकर बात कही जाती है। यद्यपि यहाँ मूलपाठ में महावीर स्वामी का नाम नहीं दिया है, तथापि 'हरिनैगमेषी' देव का नाम आने से यह अनुमान होना शक्य है कि यह बात भगवान् महावीर से सम्बन्धित है। क्योंकि जब भगवान् गर्भावस्था में थे, तब इसी देव ने गर्भसंहरण (गर्भ का परिवर्तन) किया था। यदि यहाँ की घटना भगवान् महावीर के साथ घटित करना न होता, तो मूलपाठ में 'हरिनैगमेषी' का नाम न देकर सामान्य रूप से 'देव' का निरूपण कर दिया जाता। किन्तु ऐसा न करके जो 'हरिनैगमेषी' का नाम दिया है, इससे पूर्वोक्त अनुमान दृढ़ होता है।

इन्द्र को 'हरि' कहते हैं, तथा इन्द्र सम्बन्धी व्यक्ति को भी 'हरि' कहते हैं। हरिनैगमेषी देव, इन्द्र सम्बन्धी व्यक्ति है। इसलिए यहाँ पर 'हरिनैगमेषी' देव को भी 'हरि' कहा गया है। 'हरिनैगमेषी' देव, शक्र की आज्ञा मानने वाला है और वह पदाति (पैदल) सेना का अधिपति है, इसलिए उसे 'शक्रदूत' कहा गया है।

'प्राणत' नामक दसवें देवलोक से चव कर महावीर स्वामी का जीव देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आया। बयासी दिन बीत जाने पर शक्रेन्द्र को अवधिज्ञान से यह बात ज्ञात हुई। तब शक्रेन्द्र ने विचार किया कि समस्त लोक में उत्तम पुरुष तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म क्षत्रीय कुल के सिवाय अन्य कुल में नहीं होता, उनका जन्म उत्तम क्षत्रिय कुल में ही होता है। ऐसा विचार कर शक्रेन्द्र ने हरिनैगमेषी देव को बुलाकर आज्ञा दी कि चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी का जीव पूर्वोपार्जित कर्म के कारण क्षत्रीयेतर-ब्राह्मण-याचक कुल में आ गया है। अतः तुम जाओ और देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से उस जीव का संहरण कर क्षत्रियकुण्ड ग्राम के स्वामी, प्रसिद्ध राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला-देवी के गर्भ में स्थापित कर दो। शक्रेन्द्र की आज्ञा स्वीकार कर हरिनैगमेषी देव ने आश्विन कृष्णा त्रयोदशी की रात्रि के दूसरे पहर में देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ का संहरण कर महा-रानी त्रिशला देवी की कुक्षी में रख दिया।

इस प्रकरण में गर्भ संहरण के चार प्रकार बतलाये हैं। यथा-(१) गर्भाशय में से गर्भ को लेकर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखना। (२) गर्भाशय में से गर्भ को लेकर योनि द्वारा दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखना। (३) योनि द्वारा गर्भ को बाहर निकाल कर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखना और (४) योनि द्वारा गर्भ को बाहर निकाल कर योनि द्वारा ही दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखना।

इन चार तरीकों में से गर्भसंहरण के लिए यहाँ तीसरा तरीका ही उपयोगी माना गया है। क्योंकि कच्चा (अधूरा) या पक्का (पूरा) कोई भी गर्भ स्वाभाविक रूप से योनि द्वारा ही बाहर आता है। यह लौकिक प्रथा सर्वविदित है। इसलिए देव ने भी इसी प्रथा का अनुसरण किया है। यद्यपि देव की शक्ति विचित्र है। वह किसी भी स्थान से गर्भ को बाहर निकाल कर अन्य स्त्री के गर्भ में रख सकता है, किन्तु देव ने सर्व साधारण में प्रचलित लौकिक प्रथा का ही अनुसरण किया है।

देव सामर्थ्य विचित्र है। इस बात को बतलाने के लिए यह बतलाया गया है कि देव गर्भ को आबाधा अर्थात् किञ्चित् पीड़ा और विबाधा अर्थात् विशेष पीड़ा पहुंचाये बिना उस गर्भ के सूक्ष्म सूक्ष्म टुकड़े करके नख के अग्रभाग द्वारा, या रोमकूपों (छिद्रों) द्वारा गर्भ को बाहर निकाल सकता है और वापिस गर्भाशय में रख सकता है। इतना सब करते हुए भी गर्भ को किञ्चित् मात्र भी पीड़ा नहीं होने देता।

श्री अतिमुक्तक कुमार श्रमण

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए। तए णं से अइमुत्ते कुमारसमणे अण्णया कयाइं महावुट्ठिकायंसि णिवयमाणंसि कक्खपडिग्गह-रयहरणमायाए बहिया संपट्ठिए विहाराए। तएणं अइमुत्ते कुमारसमणे वाहयं वहमाणं पासइ, पासित्ता

मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता 'णाविया मे णाविया मे' णाविओ विव णावमयं पडिग्गहं उदगंसि कट्टु पव्वाहमाणे पव्वाहमाणे अभिरमइ, तं च थेरा अदक्खु, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी-

कठिन शब्दार्थ-अंतेवासी-समीप रहनेवाला-शिष्य, महावुट्ठिकायंसि-महा वर्षा, णिवयमाणंसि-होने पर, कक्खपडिग्गहरयहरणमायाए-कांख-बगल में, रजोहण और पात्र लेकर, बहियासंपट्ठिए विहाराए-बाहर रही हुई विहार भूमि-स्थंडिल भूमि में, वाहयं-छोटा नाला, णाविया मे-यह मेरी नौका है, पव्वाहमाणे-बहाता हुआ, अभिरमइ-खेलता है, थेरा-स्थविर, अदक्खू-देखा, उवागच्छंत्ति-आये।

भावार्थ-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य अतिमुक्तक नाम के कुमार श्रमण थे। वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे। वे अतिमुक्तक कुमार श्रमण किसी दिन महावर्षा बरसने पर अपना रजोहरण कांख (बगल) में लेकर तथा पात्र लेकर बाहर भूमिका (बड़ी शंका के निवारण के लिये) गये। जाते हुए अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने मार्ग में बहते हुए पानी के एक छोटे नाले को देखा। उसे देखकर उन्होंने उस नाले के मिट्टी की पाल बांधी। इसके बाद जिस प्रकार नाविक अपनी नाव को पानी में छोड़ता है, उसी तरह उन्होंने भी अपने पात्र को उस पानी में छोड़ा, और 'यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है'-ऐसा कह कर पात्र को पानी में तिराते हुए क्रीड़ा करने लगे। अतिमुक्तक कुमार श्रमण को ऐसा करते हुए देखकर स्थविर मुनि उसे कुछ कहे बिना ही चले आये, और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर उन्होंने इस प्रकार पूछा;-

१४ प्रश्न-एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे भगवं, से णं भंते! अइमुत्ते कुमारसमणे कइहिं

भवग्गहणेहिं सिज्झिहिइ, जाव अंतं करेहिइ ?

१४ उत्तर-अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे ते थेरे एवं वयासी-एवं खलु अज्जो ! ममं अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए, से णं अइमुत्ते कुमारसमणे इमेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झिहिइ जाव अंतं करिहिइ; तं मा णं अज्जो ! तुब्भे अइमुत्तं कुमारसमणं हीलेह, निंदह, खिंसह, गरहह, अवमण्णह; तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अइमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हह, अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेणं पाणेणं विणएणं वेयावडियं करेह। अइमुत्ते णं कुमारसमणे अंतकरे चेव, अंतिमसरीरिए चेव; तए णं ते थेरा भगवंतो समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति, णमंसंति; अइमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हंति, जाव-वेयावडियं करेंति।

कठिन शब्दार्थ-कइहिं-कितने, अवमण्णह-अपमान करना, अगिलाए-ग्लानि रहित, उवगिण्हह-स्वीकार करो-संभाल करो।

भावार्थ-१४ प्रश्न-हे भगवन् ! आपका शिष्य अतिमुक्तक कुमार श्रमण कितने भव करने के बाद सिद्ध होगा ? यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा ?

१४ उत्तर-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उन स्थविर मुनियों को सम्बोधित करके कहने लगे-हे आर्यों ! प्रकृति से भद्र यावत् प्रकृति से विनीत मेरा अन्तेवासी (शिष्य) अतिमुक्तक कुमार, इसी भव से सिद्ध होगा। यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा। इसलिए हे आर्यों ! तुम अतिमुक्तक कुमार श्रमण की हीलना, निन्दा, खिसना, गर्हा और अपमान मत करो। किन्तु हे देवानुप्रियों !

तुम अग्लान भाव से अतिमुक्तक कुमार श्रमण को स्वीकार करो। उसकी सहायता करो और आहार पानी के द्वारा विनय पूर्वक वैयावच्च करो। क्योंकि अतिमुक्तक कुमार श्रमण अन्तिम शरीरी है और इसी भव में सब कर्मों का क्षय करने वाला है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा उपरोक्त वृतान्त सुनकर उन स्थविर मुनियों ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। फिर वे स्थविर मुनि अतिमुक्तक कुमार श्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर यावत् उसकी वैयावच्च करने लगे।

विवेचन–पहले के प्रकरण में भगवान् महावीर स्वामी के गर्भसंहरण रूप आश्चर्य का कथन किया। अब इस प्रकरण में भगवान् के शिष्य अतिमुक्तक कुमारश्रमण + की आश्चर्यकारी घटना का वर्णन किया जाता है। अतिमुक्तक कुमार ने छोटी उम्र में ही दीक्षा ली थी। कालान्तर में वर्षा हो जाने के बाद स्थविर मुनि बाहर-भूमिका पधारे। अतिमुक्तक कुमार श्रमण भी उनके साथ बाहर-भूमिका पधारे। मार्ग में बरसात के पानी का एक छोटा नाला बह रहा था। अतिमुक्तक मुनि ने उस नाले के मिट्टी की पाल बांध दी। जिससे पानी वहाँ इकट्ठा हो गया। फिर उसमें अपना पात्र छोड़कर इस प्रकार कहने लगे कि 'मेरी नाव तिर रही है, मेरी नाव तिर रही है।' बाल स्वभाव के कारण वे इस प्रकार क्रीड़ा करने लगे। जब स्थविर मुनियों ने यह देखा, तो उनके मन में शंका उत्पन्न हुई। इसलिये अतिमुक्तक कुमार श्रमण से कुछ कहे बिना ही वे भगवान् की सेवा में आये। अपनी शंका का समाधान करने के लिये उन्होंने भगवान् से पूछा कि 'हे भगवन्! आपका शिष्य अतिमुक्तक कुमार श्रमण कितने भवों में सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त होगा।'

भगवान् ने फरमाया कि 'हे आर्यो! अतिमुक्तक कुमार श्रमण अन्तकर (कर्मों का अन्त करने वाला) है और अन्तिम शरीरी है। अर्थात् वह इस शरीर के पश्चात् दूसरा शरीर धारण नहीं करेगा, अपितु इस शरीर को छोड़कर वह सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त होजायगा। इसलिये तुम उसकी हीलना (जाति आदि को प्रकट करके निन्दा) मत करो। मन से भी निन्दा मत करो। खिसना (मनुष्यों के सामने अवगुणवाद प्रकट करके चिढ़ाना) मत करो। गर्हा (उसके सामने अवर्णवाद कहना) मत करो। अवमानना (उस की उचित शुश्रूषा

+ अतिमुक्तक ने छोटी उम्र में दीक्षा ली थी, इसलिए उसे 'कुमारश्रमण' कहा गया है। टीकाकार ने तो लिखा है कि–अतिमुक्तक कुमार ने छह वर्ष की उम्र में ही दीक्षा ली थी।

नहीं करने रूप अपमान) मत करो, किन्तु मन में किसी प्रकार की ग्लानि न रखते हुए संयम में उसकी सहायता करो और उसकी वैयावृत्य करो।'

भगवान् से उपरोक्त वर्णन सुनकर उन स्थविर मुनियों के मन का सन्देह दूर होगया। उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और अग्लान भाव से अतिमुक्तक कुमार श्रमण की वैयावृत्य करने लगे।

दो देवों का भ. महावीर से मौन प्रश्न

तेणं कालेणं, तेणं समएणं महासुक्काओ कप्पाओ, महासग्गाओ महाविमाणाओ दो देवा महिड्डिया, जाव-महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूआ; तएणं ते देवा समणं भगवं महावीरं मणसा चेव वंदंति, णमंसंति; मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं पुच्छंति-

१५ प्रश्न-कइ णं भंते ! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति, जाव-अंतं करेहिंति ?

१५ उत्तर-तएणं समणे भगवं महावीरे तेहिं देवेहिं मणसा पुट्ठे तेसिं देवाणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ, एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम सत्त अंतेवासिसयाइं सिज्झिहिंति, जाव अंतं करेहिंति। तएणं ते देवा समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा पुट्ठेणं, मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा हट्ठ-तुट्ठा जाव-हयहियया, समणं भगवं महावीरं वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता,

णमंसित्ता मणसा चेव सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा जाव-पज्जुवासंति।

कठिन शब्दार्थ-महासग्गाओ-महास्वर्ग, मणसा चेव-मन से ही, एयारूवं-इस प्रकार वागरणं-व्याकरण-प्रश्न, सुस्सूसमाणा-सेवा करते हुए, अभिमुहा-संमुख होकर।

भावार्थ-उस काल उस समय में महाशुक्र नाम के देवलोक से, महासर्ग नाम के महाविमान से, महाऋद्धि वाले यावत् महाभाग्यशाली दो देव, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास प्रादुर्भूत हुए (आये)। उन देवों ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को मन से ही वन्दना नमस्कार किया और मन से ही यह प्रश्न पूछा-

१५ प्रश्न-हे भगवन्! आपके कितने सौ शिष्य सिद्ध होंगे यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेंगे?

१५ उत्तर-इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उन देवों के प्रश्न का उत्तर, मन द्वारा ही दिया कि "हे देवानुप्रियों! मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे। यावत् सभी दुःखों का अन्त करेंगे।"

इस प्रकार मन द्वारा पूछे हुए प्रश्न का उत्तर, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उन देवों को मन द्वारा ही दिया। जिससे वे देव हर्षित, संतुष्ट यावत् प्रसन्न हृदयवाले हुए। फिर उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके मन से ही उनकी शुश्रूषा और नमन करते हुए सम्मुख होकर यावत् पर्युपासना करने लगे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे जाव-अदूरसामंते उड्ढं-जाणू, जाव-विहरइ। तएणं तस्स भगवओ गोयमस्स झाणंत-

रियाए वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए, जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु दो देवा महिड्ढिया, जाव-महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया, तं णो खलु अहं ते देवे जाणामि, कयराओ कप्पाओ वा सग्गाओ वा विमाणाओ वा कस्स वा अत्थस्स अट्ठाए इहं हव्वं आगया; तं गच्छामि णं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि, जाव-पज्जुवासामि; इमाइं च णं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उट्ठाए उट्ठेइ, जाव-जेणेव समणे भगवं महावीरे, जाव-पज्जुवासइ। "गोयमाई!" समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी-"से णूणं तव गोयमा! झाणंतरियाए वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए, जाव-जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वं आगए, से णूणं गोयमा! अट्ठे समट्ठे?" "हंता, अत्थि।" "तं गच्छाहि णं गोयमा! एए चेव देवा इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेहिंति।"

कठिन शब्दार्थ-झाणंतरियाए-ध्यानान्तरिका-ध्यान की समाप्ति के वाद और दूसरा ध्यान प्रारंभ करने के पूर्व, वट्टमाणस्स-वर्तते हुए, पाउब्भूया-प्रादुर्भूत हुए-प्रकट हुए।

भावार्थ-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार यावत् उत्कुटुक आसन से बैठेहुए भगवान् की सेवा में रहते थे। वे ध्यान कर रहे थे। चालू ध्यान की समाप्ति हो जाने पर और दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने से पहले उनके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि 'भगवान् की सेवा में महाऋद्धि सम्पन्न यावत्

महाप्रभावशाली दो देव आये हैं। मैं उन देवों को नहीं जानता हूं कि वे कौन-से स्वर्ग से और कौनसे विमान से यहाँ आये हैं और किस कारण से आये हैं। इसलिये मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवामें जाकर उन्हें वन्दना नमस्कार करूं यावत् उनकी पर्युपासना करूं। तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रश्न पूछूं। इस प्रकार विचार करके गौतम स्वामी अपने स्थान से उठे और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में आकर यावत् उनकी सेवा करने लगे। इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतमादि अनगारों को सम्बोधित कर इस प्रकार कहा–

हे गौतम ! एक ध्यान को समाप्त कर दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने के पहले तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं देवों सम्बन्धी हकीकत जानने के लिये श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जाऊं', इत्यादि, यावत् इसी कारण तुम मेरे पास यहाँ शीघ्र आये हो, यह बात ठीक है ?' गौतम स्वामी ने कहा–'हाँ, भगवन् ! यह बिलकुल ठीक है।' इसके पश्चात् भगवान् महावीर स्वामी ने कहा कि 'हे गौतम ! तुम अपनी शंका के निवारण के लिये उन्हीं देवों के पास जाओ। वे देव ही तुम्हें बतावेंगे'।

तएणं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, जेणेव ते देवा तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तएणं ते देवा भगवं गोयमं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता हट्ठा, जाव–हयहियया खिप्पामेव अब्भुट्ठेंति, अब्भुट्ठित्ता खिप्पामेव पच्चु-वागच्छंति, पच्चुवागच्छित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जाव–णमंसित्ता एवं वयासी–एवं खलु भंते ! अम्हे महासुक्काओ

कप्पाओ, महासग्गाओ विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया, जाव-पाउब्भूया; तएणं अम्हे समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो, वंदित्ता णमंसित्ता, मणसा चेव इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छामो-कइ णं भंते ! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति, जाव-अंतं करिहिंति ? तएणं समणे भगवं महावीरे अम्हेहिं मणसा पुट्ठे, अम्हे मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम सत्त अंतेवासीसयाइं, जाव-अंतं करेहिंति, तएणं अम्हे समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा चेव पुट्ठेणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो वंदित्ता णमंसित्ता, जाव-पज्जुवासामो त्ति कट्टु भगवं गोयमं वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

कठिन शब्दार्थ-अब्भणुण्णाए-आज्ञा होने पर, पहारेत्थ गमणाए-मार्ग पर आते हुए, एज्जमाणं पासंति-आते हुए देखे, खिप्पामेव-शीघ्र ही, अब्भुट्ठेंति-उठ खड़े हुए, पच्चुवागच्छंति-सामने आये, अम्हे-हम ।

भावार्थ-इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा इस प्रकार की आज्ञा मिलने पर गौतम स्वामी ने भगवान् को वन्दना नमस्कार किया । फिर वे उन देवों की तरफ जाने लगे । गौतम स्वामी को अपनी ओर आते हुए देखकर वे देव हर्षित यावत् प्रसन्न हृदयवाले हुए और शीघ्र ही खड़े होकर उनके सामने गये और जहाँ गौतम स्वामी थे, वहां पहुंचे । फिर उन्हें वन्दना नमस्कार करके देवों ने इस प्रकार कहा-'हे भगवन् ! हम महाशुक्र नामक

देवलोक के महासर्ग नामक विमान से यहाँ आये हैं। और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा-'हे भगवन् ! आपके कितने सौ शिष्य सिद्ध होंगे। यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ?' इस प्रकार हमने मन से प्रश्न पूछा, तो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मन से ही हमारे प्रश्न का उत्तर दिया कि-'हे देवानुप्रियों ! मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे। इस प्रकार मन द्वारा पूछे हुए प्रश्न का उत्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तरफ से मन द्वारा प्राप्त कर हम बहुत हर्षित यावत् प्रसन्न मनवाले हुए हैं। अतएव श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर यावत् उनकी पर्युपासना कर रहे हैं'।

इस प्रकार कह कर उन देवों ने गौतम स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। फिर वे देव जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में वापिस चले गये।

विवेचन-पहले प्रकरण में अतिमुक्तक कुमार श्रमण का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार वे चरम शरीरी जीव थे, उसी प्रकार भगवान् के दूसरे बहुत से शिष्य भी चरम शरीरी थे। यह बात भगवान् ने महाशुक्र नामक सातवें देवलोक से आये हुए दो देवों के प्रश्न के उत्तर में बताई।

देवों के द्वारा अपने आगमनादि के कारण को सुनकर गौतम स्वामी ने भी यह बात जानी।

ध्यानान्तरिका-एक ध्यान को समाप्त करके जबतक दूसरा ध्यान प्रारम्भ नहीं किया जाय, उस बीच के समय को 'ध्यानान्तरिका' कहते हैं।

देव, नोसंयत

१६ प्रश्न-'भंते' ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, जाव एवं वयासी-देवा णं भंते ! संजया ति वत्तव्वं सिया ?

१६ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अब्भक्खाणमेयं ।
१७ प्रश्न-देवा णं भंते ! असंजया ति वत्तव्वं सिया ?
१७ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णिट्ठुरवयणमेयं ।
१८ प्रश्न-देवा णं भंते ! संजयाऽसंजया ति वत्तव्वं सिया ?
१८ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, असब्भूयमेयं देवाणं ।
१९ प्रश्न-से किं खाइ णं भंते ! देवा इति वत्तव्वं सिया ?
१९ उत्तर-गोयमा ! देवा णं णो संजया इ वत्तव्वं सिया ।

कठिन शब्दार्थ-संजया-संयत-संयमवान्, अब्भक्खाणं-अभ्याख्यान-असत्य, निट्ठुर-वयणं-निष्ठुर वचन, असब्भूयं-असद्भूत-अनहोना ।

भावार्थ-१६ प्रश्न-'हे भगवन् ! इस प्रकार सम्बोधित करके भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके यावत् इस प्रकार पूछा-

हे भगवन् ! क्या देवों को 'संयत' कहना चाहिये ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । देवों को संयत कहना असत्य वचन है ।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या देवों को 'असंयत' कहना चाहिये ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । क्योंकि 'देव असंयत हैं' यह वचन निष्ठुर वचन है ।

१८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या देवों को 'संयता संयत' कहना चाहिये ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । क्योंकि देवों को संयता संयत कहना असद्भूत (असत्य) वचन है ।

१९ प्रश्न-हे भगवन् ! तो फिर देवों को क्या कहना चाहिये ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! देवों को 'नोसंयत' कहना चाहिये ।

विवेचन–अगले प्रकरण में देवों का कथन किया गया था और इस प्रकरण में भी उन्हीं के सम्बन्ध में कथन किया जाता है।

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि देवों को संयत, असंयत, या संयतासंयत नहीं कहना चाहिये। उन्हें 'नोसंयत' कहना चाहिये।

शंका–'असंयत' और 'नो संयत' इन दोनों शब्दों का अर्थ तो एक सरीखा है। 'फिर देवों को 'असंयत' नहीं कहकर 'नो संयत' कहने का क्या कारण है ?

समाधान–जिस प्रकार 'मृत' अर्थात् 'मर गया' और 'स्वर्गगत' अर्थात् स्वर्गवासी हो गया, इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है, तथापि 'मर गया' यह कहना निष्ठुर (कठोर) वचन है। इसकी अपेक्षा 'स्वर्गवासी हो गया', यह कहना अनिष्ठुर वचन है। इसी तरह 'असंयत' शब्द की अपेक्षा 'नोसंयत' शब्द अनिष्ठुर है, इसलिये देवों के लिये 'असंयत' शब्द का प्रयोग न करके 'नो संयत' शब्द का प्रयोग किया गया है।

देवों की भाषा

२० प्रश्न–देवा णं भंते ! कयराए भासाए भासंति, कयरा वा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ ?

२० उत्तर–गोयमा ! देवा णं अद्धमागहाए भासाए भासंति, सा वि य णं अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ।

कठिन शब्दार्थ–अद्धमागहा–अर्धमागधी, विसिस्सइ–विशिष्ट रूप होती है।

२० प्रश्न–हे भगवन् ! देव कौनसी भाषा बोलते हैं ? अथवा देवों द्वारा बोली जाती हुई कौनसी भाषा विशिष्टरूप होती है ?

२० उत्तर–हे गौतम ! देव अर्धमागधी भाषा में बोलते हैं और बोली जाती हुई यह अर्धमागधी भाषा विशिष्टरूप होती है।

विवेचन–'देव कौनसी भाषा बोलते हैं ?' इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि 'देव अर्धमागधी भाषा में बोलते हैं' और वह विशिष्ट रूप होती है।

जो भाषा मगधदेश में बोली जाती है, उसे 'मागधी' कहते हैं। जिस भाषा में मागधी और प्राकृत आदि भाषाओं के लक्षण का मिश्रण हो गया हो, उसे 'अर्धमागधी' भाषा कहते हैं। 'अर्धमागधी' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ भी यही है। भाषा के मुख्य रूप से छह भेद हैं। यथा-प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी, और अपभ्रंश, अनेक देशों की भाषा का सम्मिश्रण हो जाने से छठी भाषा को अपभ्रंश कहा गया है।

छद्मस्थ सुनकर जानता है

२१ प्रश्न-केवली णं भंते ! अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ ?

२१ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

२२ प्रश्न-जहा णं भंते ! केवली अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ तहा णं छउमत्थे वि अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ ?

२२ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सोच्चा जाणइ पासइ; पमाणओ वा।

२३ प्रश्न-से किं तं सोच्चा ?

२३ उत्तर-सोच्चा णं केवलिस्स वा केवलिसावयस्स वा केवलिसावियाए वा केवलिउवासगस्स वा केवलिउवासियाए वा तप्पक्खियस्स वा तप्पक्खियसावयस्स वा तप्पक्खियसावियाए वा तप्पक्खियउवासगस्स वा तप्पक्खियउवासियाए वा से तं सोच्चा।

कठिन शब्दार्थ-अंतकरं-भवका अन्त करके मोक्ष पानेवाला, **पमाणओ**-प्रमाण से, तप्पक्खियाए-तत्पाक्षिक से ।

भावार्थ-२१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या केवली भगवान् अन्तकर को अथवा अन्तिम शरीरी को जानते और देखते हैं ?

२१ उत्तर-हाँ, गौतम ! जानते और देखते हैं ।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस प्रकार केवली भगवान् अन्तकर (कर्मों का अन्त करने वाले) को अथवा अन्तिम शरीरी को जानते और देखते हैं, उसी प्रकार छद्मस्थ मनुष्य भी अन्तकर को अथवा अन्तिम शरीरी को जानता और देखता है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, किन्तु छद्मस्थ मनुष्य भी किसी के पास से सुनकर अथवा प्रमाण द्वारा अन्तकर और अन्तिम शरीरी को जानता और देखता है ।

२३ प्रश्न-हे भगवन् ! वह किसके पास सुनकर यावत् जानता और देखता है ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, केवली-पाक्षिक (स्वयंबुद्ध), केवली-पाक्षिक के श्रावक, केवली-पाक्षिक की श्राविका, केवली-पाक्षिक के उपासक और केवली-पाक्षिक की उपासिका, इनमें से किसी के पास सुनकर छद्मस्थ मनुष्य यावत् जानता और देखता है ।

विवेचन-केवली और छद्मस्थ की वक्तव्यता में ही यह बात कही जाती है। जिस प्रकार केवली भगवान् जानते हैं, उस तरह तो छद्मस्थ नहीं जानता है, किन्तु कथञ्चित् जानता है। यही बात बतलाई जा रही है कि छद्मस्थ मनुष्य भी केवली आदि दस व्यक्तियों के पास से सुन कर यह जान सकता है कि-यह मनुष्य कर्मों का अन्त करने वाला और अन्तिम-शरीरी है। वे दस व्यक्ति ये हैं-

(१) केवली-केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक, सर्वज्ञ सर्वदर्शी के पास से 'यह अन्तकर है' इत्यादि वचन सुन कर जानता है। (२) केवली के श्रावक-सुनने का अभिलाषी होकर

जो जिन भगवान् के पास सुनता है, उसको 'केवली का श्रावक' कहते हैं। वह जिन भगवान् के पास अन्य अनेक वाक्य सुनता हुआ 'यह मनुष्य अन्तकर है'-इत्यादि वाक्य भी सुनता है। अतः उसके पास सुनकर छद्मस्थ मनुष्य भी यह जानता है कि यह अन्तकर है। (३) इसी तरह केवली की श्राविका के पास से सुनकर भी जानता है। (४) केवली के उपासक-सुनने की इच्छा के विना जो केवली महाराज की उपासना में तत्पर होकर उपासना करता है, उसे 'केवली का उपासक' कहते हैं। केवली भगवान् की उपासना करते हुए वह 'यह मनुष्य अन्तकर है'-इत्यादि केवली वाक्यों को सुनता है। इसलिये उसके पास से सूनकर छद्मस्थ मनुष्य भी यह जानता है कि यह अन्तकर है। (५)इसी तरह केवली की उपासिका से सुनकर भी वह जानता है। (६) केवली-पाक्षिक का अर्थ स्वयंबुद्ध' है। स्वयंबुद्ध, (७)स्वयंबुद्ध का श्रावक, (८) स्वयंबुद्ध की श्राविका, (९) स्वयंबुद्ध का उपासक और (१०) स्वयंबुद्ध की उपासिका, इनके पास से भी सुनकर भी छद्मस्थ मनुष्य यह जानता है कि यह अन्तकर है।

प्रमाण

२४ प्रश्न-से किं तं पमाणे ?

२४ उत्तर-पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-पच्चक्खे, अणुमाणे, ओवम्मे, आगमे; जहा अणुओगदारे तहा णेयव्वं पमाणं, जाव-'तेण परं णो अत्तागमे, णो अणंतरागमे, परंपरागमे'।

कठिन शब्दार्थ-पच्चक्खे-प्रत्यक्ष, ओवम्मे-उपमा, परं-आगे, अत्तागमे-आत्मागम-आत्मा से आया हुआ श्रुतज्ञान, अनन्तरागमे-गुरु से प्रधान शिष्य को सीधा प्राप्त हुआ श्रुतज्ञान, परम्परागमे-गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ श्रुतज्ञान।

भावार्थ-२४ प्रश्न-हे भगवन् ! प्रमाण कितने हैं ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है। यथा-प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य (उपमान) और आगम। प्रमाण के विषय में जिस

प्रकार अनुयोगद्वार सूत्र में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये, यावत् नोआत्मागम, नोअनन्तरागम और परम्परागम तक कहना चाहिये।

विवेचन-प्रमाण के द्वारा भी छद्मस्थ मनुष्य जानता है। प्रमाण के चार भेद हैं। यथा-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम। इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से जो ज्ञान हो, वह 'प्रत्यक्ष प्रमाण' है। यह व्याख्या निश्चय दृष्टि से है। व्यावहारिक दृष्टि से तो इन्द्रिय और मन से होने वाले ज्ञान को भी प्रत्यक्ष कहते हैं। लिंग अर्थात् हेतु के ग्रहण और सम्बन्ध अर्थात् व्याप्ति के स्मरण के पश्चात् जिससे पदार्थ का ज्ञान होता है, उसे 'अनुमान प्रमाण' कहते हैं। अर्थात् साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। जिसके द्वारा सदृशता से उपमेय पदार्थों का ज्ञान होता है, उसे 'उपमान प्रमाण' कहते हैं। जैसे गवय (रोझ) गाय के समान होता है। शास्त्र द्वारा होने वाला ज्ञान-'आगम प्रमाण' कहलाता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद हैं-इन्द्रिय प्रत्यक्ष, और नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष शब्द का शब्दार्थ इस प्रकार है-'अक्ष' शब्द का अर्थ आत्मा और इन्द्रिय है। इन्द्रियों की सहायता के बिना जीव के साथ सीधा सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान 'प्रत्यक्ष प्रमाण' है। उसके तीन भेद हैं यथा-अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान। इन्द्रियों से सीधा सम्बन्ध रखने वाला अर्थात् इन्द्रियों की सहायता द्वारा जीव के साथ सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान-'इन्द्रिय प्रत्यक्ष' कहलाता है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष, श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियों की अपेक्षा पांच प्रकार का है। नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष के अवधिज्ञानादि तीन भेद ऊपर बता दिये गये हैं। अनुमान प्रमाण के तीन भेद हैं। यथा-पूर्ववत्, शेषवत् और दृष्ट साधर्म्यवत्। जैसे अपने खोए हुए पुत्र को कालान्तर में प्राप्त कर उसकी माता आदि उसके शरीर के पूर्व चिन्ह से पहिचानती है। उसे 'पूर्ववत्' अनुमान कहते हैं। कार्य आदि के चिन्हों से परोक्ष पदार्थ का ज्ञान 'शेषवत्' अनुमान कहलाता है। जैसे-केकायित (मयूर का शब्द) सुनकर अनुमान करना कि यहाँ मयूर होना चाहिये। एक पदार्थ के स्वरूप को जानकर उस स्वरूप वाले दूसरे पदर्थों का ज्ञान करना 'दृष्टसाधर्म्यवत्' अनुमान कहलाता है। 'जैसे-एक कार्षापण (अस्सी रति का एक तोला) को देखकर दूसरे कार्षापण का ज्ञान करना। जैसी गाय होती है, वैसा ही गवय होता है।' इत्यादि ज्ञान को 'उपमान ज्ञान' कहते हैं। आगम ज्ञान के दो भेद हैं। यथा-लौकिक, और लोकोत्तर। अथवा आगम ज्ञान के तीन भेद हैं। यथा-सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ। मूलरूप आगम को 'सूत्रागम' कहते हैं। शास्त्र के अर्थरूप आगम को 'अर्थागम' कहते हैं।

सूत्र और अर्थ दोनों रूप आगम को सूत्रार्थागम (तदुभयागम) कहते हैं।

अथवा आगम ज्ञान के दूसरी तरह से भी तीन भेद हैं। यथा-आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम। अर्थ की अपेक्षा तीर्थंकरों के लिये आत्मागम हैं। गणधरों के लिये अनन्तरागम हैं। और गणधरों के शिष्य प्रशिष्य आदि के लिये परम्परागम हैं। सूत्र की अपेक्षा गणधरों के लिये आत्मागम हैं। गणधरों के शिष्यों के लिये अनन्तरागम हैं, और गणधरों के प्रशिष्यों के लिये परम्परागम हैं।

केवली का ज्ञान

२५ प्रश्न-केवली णं भंते! चरिमकम्मं वा चरिमणिज्जरं वा जाणइ पासइ ?

२५ उत्तर-हंता, गोयमा! जाणइ पासइ, जहा णं भंते! केवली चरिमकम्मं वा जहा णं अंतकरेणं वा आलावगो तहा चरिमकम्मेण वि अपरिसेसिओ णेयव्वो।

२६ प्रश्न-केवली णं भंते! पणीयं मणं वा वइं वा धारेज्ज ?

२६ उत्तर-हंता, धारेज्ज।

कठिन शब्दार्थ-चरिमकम्मं-वह अंतिम कर्म पुद्गल जो आत्मा के साथ बद्ध हो, चरिमनिज्जरं-वह कर्म पुद्गल जो अंत में आत्मा से पृथक् हुआ हो, पणीयं-प्रणीत-प्रकृष्ट।

भावार्थ-२५ प्रश्न-हे भगवन्! क्या केवली भगवान् चरम-कर्म (अंतिम कर्म) अथवा चरम-निर्जरा को जानते देखते हैं ?

२५ उत्तर-हे गौतम! हाँ, जानते और देखते हैं। जिस प्रकार 'अंतकर' का आलापक कहा, उसी तरह 'चरमकर्म' का भी पूरा आलापक कहना चाहिए।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या केवली भगवान्, प्रकृष्ट मन और प्रकृष्ट वचन धारण करते हैं ?

२६ उत्तर-हाँ, गौतम ! धारण करते हैं।

२७ प्रश्न-जहा णं भंते ! केवली पणीयं मणं वा वइं वा धारेज्ज तं णं वेमाणिया देवा जाणंति पासंति ?

२७ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइया जाणंति पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति।

२८ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-ण पासंति ?

२८ उत्तर-गोयमा ! वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-माईमिच्छादिट्ठीउववण्णगा य, अमाईसम्मदिट्ठीउववण्णगा य; तत्थ णं जे ते माईमिच्छादिट्ठीउववण्णगा ते ण याणंति ण पासंति; तत्थ णं जे ते अमाईसम्मदिट्ठीउववण्णगा ते णं जाणंति, पासंति। [से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ-अमाईसम्मदिट्ठी जाव-पासंति ? गोयमा ! अमाईसम्मदिट्ठी दुविहा पण्णत्ता,-अणंतरोववण्णगा य, परंपरोववण्णगा य; तत्थ णं अणंतरोववण्णगा ण जाणंति, परंपरोववण्णगा जाणंति। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-परंपरोववण्णगा जाव-जाणंति ? गोयमा ! परंपरोववण्णगा दुविहा पण्णता-पज्जत्तगा य, अपज्जत्तगा य; पज्जत्ता जाणंति, अप्पज्जत्ता ण जाणंति।] एवं अणंतर-परंपर-

पज्जत्ताऽपज्जत्ता य; उवउत्ता अणुवउत्ता; तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते जाणंति पासंति, से तेणट्ठेणं तं चेव ।

कठिन शब्दार्थ-अत्थेगइया-कुछ एक, अनन्तरोववण्णगा-तत्काल के उत्पन्न हुए, उवउत्ता-उपयोग युक्त, तत्थ-उनमें से ।

भावार्थ-२७ प्रश्न-हे भगवन् ! केवली भगवान् जिस प्रकृष्ट मन को और प्रकृष्ट वचन को धारण करते हैं, क्या उसको वैमानिक देव जानते और देखते हैं ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! कितनेक देव जानते देखते हैं और कितनेक देव नहीं जानते और नहीं देखते हैं ।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! कितनेक देव जानते देखते हैं और कितनेक देव नहीं जानते, नहीं देखते हैं, इसका क्या कारण है ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-मायी मिथ्यादृष्टिपने उत्पन्न हुए और अमायी सम्यग्दृष्टिपने उत्पन्न हुए । इनमें से जो मायीमिथ्यादृष्टिपने उत्पन्न हुए हैं, वे नहीं जानते, नहीं देखते हैं, किन्तु जो अमायी सम्यग्दृष्टिपने उत्पन्न हुए हैं, वे जानते और देखते हैं ।

['अमायीसम्यग्दृष्टि वैमानिक देव जानते और देखते हैं, ऐसा कहने का क्या कारण है ?

हे गौतम ! अमायी सम्यग्दृष्टि देव दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक । इनमें जो अनन्तरोपपन्नक हैं, वे नहीं जानते और नहीं देखते हैं और जो परम्परोपपन्नक हैं, वे जानते और देखते हैं ।

हे भगवन् ! 'परम्परोपपन्नक देव जानते और देखते हैं'-ऐसा कहने का क्या कारण है ?

हे गौतम ! परम्परोपपन्नक देव दो प्रकार के कहे गये हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त । जो पर्याप्त हैं, वे जानते और देखते हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे नहीं

जानते और नहीं देखते हैं ।]

इसी तरह अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक तथा अपर्याप्त और पर्याप्त एवं उपयोग युक्त और उपयोग रहित, इस प्रकार के वैमानिक देव हैं। इनमें जो उपयोग युक्त हैं, वे जानते और देखते हैं। इसलिये ऐसा कहा गया है कि कितनेक वैमानिक देव जानते और देखते हैं, तथा कितनेक नहीं जानते और नहीं देखते हैं।

अनुत्तरौपपातिक देवों का मनोद्रव्य

२९ प्रश्न-पभू णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए ?

२९ उत्तर-हंता, पभू ।

३० प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-पभू णं अणुत्तरोववाइया देवा, जाव-करेत्तए ?

३० उत्तर-गोयमा ! जं णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा कारणं वा वागरणं वा पुच्छंति, तं णं इहगए केवली अट्ठं वा, जाव-वागरणं वा वागरेइ; से तेणट्ठेणं ।

३१ प्रश्न-जं णं भंते ! इहगए चेव केवली अट्ठं वा जाव-वागरेइ तं णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा जाणंति पासंति ?

३१ उत्तर-हंता, जाणंति पासंति।

३२ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-पासंति ?

३२ उत्तर-गोयमा ! तेसि णं देवाणं अणंताओ मणोदव्व-वग्गणाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागयाओ भवंति से तेण-ट्ठेणं जं णं इहगए केवली जाव-पासंति-त्ति।

३३ प्रश्न-अणुत्तरोववाइया णं भंते ! देवा किं उदिण्णमोहा, उवसंतमोहा, खीणमोहा ?

३३ उत्तर-गोयमा ! णो उदिण्णमोहा, उवसंतमोहा, णो खीणमोहा।

कठिन शब्दार्थ-तत्थगया-वहीं रहे हुए-अपने स्थान पर रहे हुए, इहगएणं-यहाँ रहे हुए, सद्धि-साथ, आलावं-आलाप-एक वार वातचीत करना, संलावं-संलाप-वार-वार वातचीत करना, मणोदव्ववग्गणाओ-मनोद्रव्य वर्गणा से-मन से, लद्धाओ-लब्ध-प्राप्त हुई, पत्ताओ-प्राप्त हुई, उदिन्नमोहा-मोह के उदयवाले।

भावार्थ-२९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अनुत्तरौपपातिक (अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए) देव, अपने स्थान पर रहे हुए ही यहाँ रहे हुए केवली के साथ आलाप और संलाप करने में समर्थ हैं ?

२९ उत्तर-हाँ, गौतम समर्थ हैं।

३० प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३० उत्तर-हे गौतम ! अपने स्थान पर रहे हुए ही अनुत्तरौपपातिक देव जिस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण को पूछते हैं, उस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण का उत्तर यहाँ रहे हुए केवली भगवान् देते हैं। इस कारण से उपरोक्त वात कही गई है।

३१ प्रश्न-हे भगवन् ! यहाँ रहे हुए केवली भगवान् जिस अर्थ यावत्

व्याकरण का उत्तर देते हैं, क्या उस उत्तर को वहां रहे हुए अनुत्तरौपपातिक देव जानते और देखते हैं ?

३१ उत्तर-हाँ, गौतम ! वे जानते और देखते हैं ?

३२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३२ उत्तर-हे गौतम ! उन देवों को अनन्त मनोद्रव्य-वर्गणा लब्ध (मिली) है, प्राप्त है, अभिसमन्वागत है अर्थात् सम्मुख प्राप्त हुई है। इस कारण से यहाँ रहे हुए केवली महाराज द्वारा कथित अर्थ आदि को वे वहाँ रहे हुए ही जानते और देखते हैं।

३३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अनुत्तरौपपातिक देव, उदीर्ण मोहवाले हैं, उपशान्त मोह वाले हैं, या क्षीण मोह वाले हैं ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! वे उदीर्ण मोहवाले नहीं हैं और क्षीण मोहवाले भी नहीं हैं, परन्तु उपशान्त मोहवाले हैं। अर्थात् उनके वेद-मोह का उत्कट उदय नहीं है।

केवली का असीम ज्ञान

३४ प्रश्न-केवली णं भंते ! आयाणेहिं जाणइ पासइ ?

३४ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

३५ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-केवली णं आयाणेहिं ण जाणइ, ण पासइ ?

३५ उत्तर-गोयमा ! केवली णं पुरत्थिमेणं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ, जाव णिव्वुडे दंसणे केवलिस्स से तेणट्ठेणं।

कठिन शब्दार्थ-आयाणेहिं-आदान-इन्द्रियों द्वारा, णिव्वुडे-निवृत्त-निरावरण।

भावार्थ-३४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या केवली भगवान् आदानों (इन्द्रियों) द्वारा जानते और देखते हैं ?

३४ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

३५ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि केवली भगवान् इन्द्रियों द्वारा नहीं जानते और नहीं देखते हैं ?

३५ उत्तर-हे गौतम ! केवली भगवान् ! पूर्व दिशा में मित भी जानते देखते हैं और अमित भी जानते देखते हैं। यावत् केवली भगवान् का दर्शन, आवरण रहित है। इसलिये वे इन्द्रियों द्वारा नहीं जानते और नहीं देखते हैं।

विवेचन-इस के आगे के सूत्रों में केवली के सम्बन्ध में ही कथन किया गया है। शैलेशी अवस्था के समय जिन कर्मों का अनुभव होता है, उनको 'चरमकर्म' कहते हैं। और उसके अनन्तर समय में जो कर्म जीव प्रदेशों से झड़ जाते हैं। उन्हें 'निर्जरा' कहते हैं।

वैमानिक देवों के दो भेद कहे गये हैं। उनमें से मायीमिथ्यादृष्टि नहीं जानते हैं। अमायीसमग्दृष्टि के अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक इन दो भेदों में से अनन्तरोपपन्नक नहीं जानते हैं। परम्परोपपन्नक के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं। अपर्याप्त नहीं जानते हैं। पर्याप्त के दो भेद हैं।-उपयुक्त (उपयोग सहित), और अनुपयुक्त (उपयोग रहित) इस में अनुपयुक्त तो नहीं जानते, किन्तु उपयुक्त जानते हैं।

अनुत्तरौपपातिक देव, अपने स्थान पर रहे हुए ही यहाँ से केवली भगवान् द्वारा दिये हुए उत्तर को जानते और देखते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें अनन्त मनोद्रव्य वर्गणाएं लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत हैं। उनके अवधिज्ञान का विषय सम्भिन्न लोक नाड़ी (लोकनाड़ी से कुछ कम) है। जो अवधिज्ञान, लोकनाड़ी का ग्राहक (जाननेवाला) होता है, वह मनोवर्गणा का ग्राहक होता ही है। क्यों कि जिस अवधिज्ञान का विषय लोक का संख्येय भाग होता है, वह अवधिज्ञान भी मनोद्रव्य का ग्राहक होता है, तो फिर जिस अवधिज्ञान का विषय सम्भिन्न लोकनाड़ी है, वह अवधिज्ञान मनोद्रव्य का ग्राहक हो इस में कहना ही क्या ? जिस अवधिज्ञान का विषय लोक का संख्येय भाग होता है, वह मनोद्रव्य का ग्राहक होता है। यह बात इष्ट भी है। कहा भी है-

'संखेज्जमणोदव्वे भागो लोगपलियस्स बोद्धव्वो'

अर्थ-लोक के और पल्योपम के संख्येय भाग को जाननेवाला अवधिज्ञान, मनोद्रव्य

का ग्राहक (जाननेवाला) होता है ।

अनुत्तरौपपातिक देवों के विषय में अब दूसरी बात कही जाती है । अनुत्तरौपपातिक देव, उदीर्ण मोह नहीं हैं अर्थात् उनके वेद-मोहनीय का उदय उत्कट (उत्कृष्ट) नहीं है। वे क्षीण-मोह भी नहीं हैं अर्थात् उनमें क्षपक श्रेणी का अभाव है । इसलिये वे क्षीण-मोह नहीं हैं, किन्तु वे उपशान्त मोह है अर्थात् उनमें किसी प्रकार के मैथुन का सद्भाव न होने से उनके वेद-मोहनीय अनुत्कट है । इसलिये वे उपशान्त मोह हैं । किन्तु उनमें उपशम श्रेणी न होने के कारण वे सर्वथा उपशान्त मोह नहीं हैं ।

केवली के अस्थिर योग

३६ प्रश्न-केवली णं भंते ! अस्सिं समयंसि जेसु आगास-पएसेसु हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा ओगाहित्ता णं चिट्ठंति, पभू णं केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपएसेसु हत्थं वा जाव-ओगाहित्ता णं चिट्ठित्तए ?

३६ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

३७ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! जाव-ओगाहित्ता णं चिट्ठित्तए ?

३७ उत्तर-गोयमा ! केवलिस्स णं वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए चलाइं उवकरणाइं भवंति, चलोवकरणट्ठयाए य णं केवली अस्सिं समयंसि जेसु आगासपएसेसु हत्थं वा, जाव-चिट्ठइ; णो णं पभू केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव जाव-चिट्ठित्तए, से तेणट्ठेणं जाव-वुच्चइ-केवली णं अस्सिं समयंसि जेसु आगासपएसेसु जाव-चिट्ठइ

णो णं पभू केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपएसेसु हत्थं वा, जाव-चिट्ठित्तए ।

कठिन शब्दार्थ-अस्सिं समयंसि-इस समय में, ऊरुं-ऊरु-जंघा, ओगाहित्ताणं-अवगाहकर-सेयकालंसि-भविष्यत्काल में, चिट्ठित्तए-रहना, चलोवकरणट्ठयाए-उपकरण (हाथ आदि अंग) चलित (अस्थिर) होने के कारण।

भावार्थ-३६ प्रश्न-हे भगवन् ! केवली भगवान् इस समय में जिन आकाश प्रदेशों पर अपने हाथ, पैर, बाहु और उरू (जंघा) को अवगाहित करके रहते हैं, क्या भविष्यत्काल में भी उन्हीं आकाश प्रदेशों पर अपने हाथ आदि को अवगाहित करके रह सकते हैं ?

३६ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

३७ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३७ उत्तर-हे गौतम ! केवली भगवान् के वीर्यप्रधान योग वाला जीव द्रव्य होता है । इससे उनके हाथ आदि अंग चलायमान होते हैं । हाथ आदि अंगों के चलित होते रहने से वर्तमान समय में जिन आकाश प्रदेशों को अवगाहित कर रखा है, उन्हीं आकाश प्रदेशों पर भविष्यत्काल में केवली भगवान् हाथ आदि को अवगाहित नहीं कर सकते । इसलिये यह कहा गया है कि केवली भगवान् जिस समय में जिन आकाश प्रदेशों पर हाथ पांव आदि को अवगाहित कर रहते हैं, उस समय के अनन्तर आगामी समय में उन्हीं आकाश प्रदेशों को अवगाहित नहीं कर सकते ।

विवेचन--वर्तमान समय में जिन आकाश प्रदेशों पर केवली भगवान् के हाथ, पैर आदि अंग हैं । उन्हीं आकाश प्रदेशों पर भविष्यत्काल में नहीं रख सकते । इसका कारण 'वीर्यसयोगसद्द्रव्य' है । वीर्यान्तराय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाली शक्ति को 'वीर्य' कहते हैं । वह वीर्य जिन मानस आदि व्यापारों में प्रधान हो-ऐसे जीव द्रव्य को 'वीर्यसयोगसद्द्रव्य' कहते हैं । वीर्य का सद्भाव होने पर भी योगों के व्यापार के बिना चलन नहीं हो सकता । इसलिये 'सयोग' शब्द द्वारा सद्द्रव्य को विशेषित किया गया है और द्रव्य के

साथ जो 'सत्' विशेषण लगाया गया है, वह सत्ता का बोध कराने के लिये है। अथवा वीर्य प्रधान मानसादि योग युक्त आत्म द्रव्य को 'वीर्यसयोग स्वद्रव्य' कहते हैं। अथवा वीर्य प्रधान योग वाला और मन आदि वर्गणा से युक्त जो हो उसे 'वीर्य सयोग सद्रव्य' कहते हैं। वीर्य सयोग सद्रव्यता के कारण केवली भगवान् के अंग अस्थिर होते हैं। इसलिये उन्हीं आकाश प्रदेशों पर वे अपने अंगादि को भविष्यत्काल में नहीं रख सकते ।

चौदह पूर्वधर मुनि का सामर्थ्य

३८ प्रश्न-पभू णं भंते ! चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं, पडाओ पडसहस्सं, कडाओ कडसहस्सं, रहाओ रहसहस्सं, छत्ताओ छत्तसहस्सं, दंडाओ दंडसहस्सं, अभिणिव्वट्टेत्ता उवदंसेत्तए ?

३८ उत्तर-हंता, पभू ।

३९ प्रश्न-से केणट्ठेणं पभू चउद्दसपुव्वी, जाव-उवदंसेत्तए ?

३९ उत्तर-गोयमा ! चउद्दसपुव्विस्स णं अणंताइं दव्वाइं उक्करियाभेएणं भिज्जमाणाइं लद्धाइं पत्ताइं अभिसमण्णागयाइं भवंति, से तेणट्ठेणं जाव उवदंसेत्तए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति

॥ पंचमसए चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-पडाओ-पट-वस्त्र से, कडाओ-कट-सादरी-चटाई, अभिनिव्वट्टेत्ता-बनाकर, उवदंसेत्तए-दिखा सकते हैं, उक्करियाभेएणं-उत्करिका भेद से-पुद्गलों के खंड आदि भेद से ।

भावार्थ-३८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या चौदह-पूर्वधारी (श्रुत केवली)

एक घड़े में से हजार घड़े, एक कपड़े में से हजार कपड़े, एक कट (चटाई) में से हजार कट, एक रथ में से हजार रथ, एक छत्र में से हजार छत्र और एक दण्ड में से हजार दण्ड करके दिखलाने में समर्थ हैं ?

३८ उत्तर-हाँ, गौतम ! समर्थ हैं।

३९ प्रश्न-हे भगवन् ! चौदहपूर्वी, ऐसा दिखाने में कैसे समर्थ हैं ?

३९ उत्तर-हे गौतम ! चौदहपूर्वधारी श्रुतकेवली ने उत्करिका भेद द्वारा भिन्न अनन्त द्रव्यों को लब्ध किया है, प्राप्त किया है और अभिसमन्वागत किया है, इस कारण से वह उपरोक्त प्रकार से एक घड़े से हजार घड़े आदि दिखलाने में समर्थ है।

हे भगवन् ! यह इसी तरह है। हे भगवन् ! यह इसी तरह है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-केवली का प्रकरण होने से यहां श्रुतकेवली के सम्बन्ध में कहा जा रहा है। श्रुत से उत्पन्न एक प्रकार की लब्धि के द्वारा श्रुतकेवली, एक घड़े में से अर्थात् एक घड़े को सहायभूत बनाकर उसमें से हजार घड़े आदि बनाकर बतलाने में समर्थ हैं।

पुद्गलों के खण्ड आदि से पांच प्रकार के भेद होते हैं। खण्ड,-जैसे ढेले को फेंकने पर उस के टुकड़े हो जाते हैं, इस प्रकार के पुद्गलों के भेद को 'खण्ड भेद' कहते हैं। प्रतर भेद-एक तह के ऊपर, दूसरी तह का होना 'प्रतर भेद' कहलाता है। जैसे अभ्र (भोडल) आदि के अन्दर प्रतर-भेद पाया जाता है। चूर्णिका भेद-किसी वस्तु के पिस जाने पर भेद होना 'चूर्णिका भेद' कहलाता है। यथा-तिल आदि का चूर्ण।

अनुतटिका भेद-किसी वस्तु का फट जाना। यथा-तालाब आदि में पड़ी हुई दरार के समान पुद्गलों के भेद को 'अनुतटिका' भेद कहते हैं। उत्करिका भेद-एरण्ड के बीज के समान पुद्गलों के भेद को 'उत्करिका' भेद कहते हैं।

यहाँ पर उत्करिका भेद से भिन्न बने हुए द्रव्य बनाने योग्य घटादि पदार्थों के निष्पादन (बनाने) में समर्थ होते हैं। परन्तु दूसरे भेदों द्वारा भिन्न (भेदाये हुए) द्रव्य, इष्ट कार्य करने में समर्थ नहीं होते। इसलिये यहाँ उत्करिका भेद का ग्रहण किया गया है।

यहाँ 'लब्ध' शब्द का अर्थ है-लब्धि विशेष द्वारा ग्रहण करने के योग्य बनाये हुए।

'प्राप्त' शब्द का अर्थ है–लब्धि विशेष के द्वारा ग्रहण किये हुए। अभिसमन्वागत शब्द का अर्थ है–घटादि रूप से परिणमाने के लिये प्रारम्भ किये हुए। इनके द्वारा चौदह पूर्वधारी श्रुत केवली एक घट से हजार घट, एक पट से हजार पट, एक कट से हजार कट आदि बनाने में समर्थ होते हैं।

॥ इति पांचवे शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ५

केवलज्ञानी ही सिद्ध होते हैं

१ प्रश्न–छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीय-मणंतं सासयं समयं केवलेणं संजमेणं० ?

१ उत्तर–जहा पढमसए चउत्थुद्देसे आलावगा तहा णेयव्वा, जाव–अलमत्थु त्ति वत्तव्वं सिया।

कठिन शब्दार्थ–तीय-मणंतं सासयं–बीते हुए शाश्वत अनन्तकाल में, अलमत्थु–अलमस्तु–सर्वज्ञ सर्वदर्शी केवली।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य शाश्वत, अनन्त, भूतकाल में केवल संयम द्वारा सिद्ध हुवा है ?

१ उत्तर–जिस प्रकार पहले शतक के चौथे उद्देशक[×] में कहा है। वैसा ही आलापक यहाँ भी कहना चाहिये, यावत् 'अलमस्तु' तक कहना चाहिये।

× प्रथम भाग पृ. २१६ देखें।

विवेचन-चौथे उद्देशक के अन्त में चौदह पूर्वधारी की महानुभावता का वर्णन किया गया है। वह उस महानुभावता के कारण छद्मस्थ होते हुए भी क्या सिद्ध हो सकता है? इस आशंका के निवारण के लिये इस पांचवें उद्देशक के प्रारम्भ में कथन किया जाता है। इस विषय का कथन भगवती सूत्र के प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक में कर दिया गया है। वह सारा वर्णन यहां भी कहना चाहिये। यावत् उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधर अरिहन्त, जिन, केवली 'अलमस्तु' अर्थात् पूर्ण-ज्ञानी कहलाते हैं, यहाँ तक का वर्णन कहना चाहिये। यद्यपि यह वर्णन पहले आ चुका है, तथापि यहां पुनः कहने का कारण यह है कि वहाँ सामान्य रूप से कथन किया गया था और यहाँ उसी बात का कथन विशेष रूप से किया गया है। अतः किसी प्रकार का दोष नहीं है।

अन्यतीर्थियों का मत--एवंभूत वेदना

२ प्रश्न-अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, जाव परूवेंति सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता एवंभूयं वेयणं वेदेंति से कहमेयं भंते ! एवं ?

२ उत्तर-गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया एवं आइक्खंति, जाव-वेदेंति, जे ते एवं आहंसु, मिच्छा ते एवं आहंसु; अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, जाव-परूवेमि अत्थेगइया पाणा, भूया, जीवा, सत्ता एवंभूयं वेयणं वेयंति; अत्थेगइया पाणा, भूया, जीवा, सत्ता अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति।

३ प्रश्न-से केणट्ठेणं अत्थेगइया-तं चेव उच्चारेयव्वं ?

३ उत्तर-गोयमा ! जे णं पाणा, भूया, जीवा, सत्ता जहा कडा

कम्मा तहा वेयणं वेदेंति ते णं पाणा, भूया, जीवा, सत्ता एवंभूयं वेयणं वेदेंति, जे णं पाणा, भूया, जीवा, सत्ता जहा कडा कम्मा णो तहा वेयणं वेदेंति ते णं पाणा, भूया, जीवा, सत्ता अणेवंभूयं वेयणं वेयंति; से तेणट्ठेणं तहेव।

४ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं एवंभूयं वेयणं वेयंति, अणेवंभूयं वेयणं वेयंति ?

४ उत्तर-गोयमा ! णेरइया णं एवंभूयं पि वेयणं वेदेंति, अणेवंभूयं पि वेयणं वेदेंति।

५ प्रश्न-से केणट्ठेणं तं चेव ?

५ उत्तर-गोयमा ! जे णं णेरइया जहा कडा कम्मा तहा वेयणं वेयंति ते णं णेरइया एवंभूयं वेयणं वेदेंति, जे णं णेरइया जहा कडा कम्मा णो तहा वेयणं वेदेंति ते णं णेरइया अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति; से तेणट्ठेणं, एवं जाव-वेमाणिया। संसारमंडलं णेयव्वं।

कठिन शब्दार्थ-एवंभूयं-इस प्रकार की, अणेवंभूयं-जिस प्रकार कर्म बांधा है उस से भिन्न-अनेवंभूत, उच्चारेयव्वं-कहना चाहिये, कडा कम्मा-किये हुए कर्म।

भावार्थ-२ प्रश्न-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं, यावत् परूपणा करते हैं कि सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव, और सर्व सत्त्व, एवंभूत (जिस प्रकार कर्म बाधा है उसी प्रकार) वेदना वेदते हैं, तो हे भगवन् ! यह किस तरह है ?

उत्तर-हे गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'सर्वप्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं, यह उनका

कथन मिथ्या है। हे गौतम ! मैं तो इस प्रकार कहता हूं यावत् परूपणा करता हूं कि कितनेही प्राण, भूत, जीव, और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं और कितनेही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेवंभूत (जिस प्रकार कर्म बांधा है उस से भिन्न प्रकार से) वेदना वेदते हैं।

३ प्रश्न- हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, अपने किये हुए कर्मों के अनुसार अर्थात् जिस प्रकार कर्म किये हैं, उसी प्रकार वेदना वेदते हैं, वे प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं। और जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अपने किये हुए कर्मों के अनुसार वेदना नहीं वेदते हैं, अर्थात् जिस प्रकार कर्म किये हैं उस प्रकार से नहीं, किन्तु भिन्न प्रकार से वेदना वेदते हैं, वे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, अनेवंभूत वेदना वेदते हैं। इसलिए ऐसा कहा गया है कि कितनेही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं और कितनेही अनेवंभूत वेदना वेदते हैं।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक एवंभूत वेदना वेदते हैं, अथवा अनेवंभूत वेदना वेदते हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक एवंभूत वेदना भी वेदते हैं और अनेवंभूत वेदना भी वेदते हैं।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मों के अनुसार वेदना वेदते हैं, वे एवंभूत वेदना वेदते हैं और जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मों के अनुसार वेदना नहीं भोगते हैं, किन्तु भिन्न प्रकार से भोगते हैं, वे अनेवंभूत वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त सभी संसारी जीवों के विषय में कहना चाहिए।

विवेचन-स्वतीर्थिक की वक्तव्यता के बाद अब परतीर्थिकों की वक्तव्यता कही जाती है। परतीर्थिकों का कथन है कि सभी जीव, एवंभूत वेदना वेदते हैं अर्थात् जीवों ने

जिस प्रकार से कर्म बांधे हैं, वे उसी प्रकार से असाता आदि वेदना वेदते हैं, किन्तु परतीर्थिकों का यह कथन असत्य है, क्योंकि जिस तरह से बांधे हैं, उसी तरह से सभी कर्म नहीं वेदे जाते। इसमें दोष आता है। क्योंकि लम्बे काल में भोगने योग्य बांधे हुए कर्म, स्वल्प काल में भी भोग लिये जाते हैं। इसलिए यह सत्य है कि कितनेक जीव एवंभूत वेदना वेदते हैं और कितनेक जीव अनेवंभूत वेदना वेदते हैं।

दूसरी बात यह है कि आगम में कर्मों की स्थितिघात, रसघात आदि बतलाया गया है। इसलिए अनेवंभूत वेदना का सिद्धान्त भी सत्य ठहरता है। जिन जीवों के जिन कर्मों का स्थितिघात, रसघात आदि हो जाता है, वे अनेवंभूत वेदना वेदते हैं और जिन जीवों के स्थितिघात रसघात आदि नहीं होते हैं, वे जीव एवंभूत वेदना वेदते हैं।

कुलकर आदि

६ प्रश्न-जंबूद्दीवे णं भंते ! इह भारहे वासे इमीसे उस्सप्पिणीए समाए कइ कुलगरा होत्था ?

६ उत्तर-गोयमा ! सत्त। एवं चेव तित्थयरमायरो, पियरो, पढमा सिस्सिणीओ, चक्कवट्टिमायरो, इत्थिरयणं, बलदेवा, वासुदेवा, वासुदेवमायरो, पियरो; एएसिं पडिसत्तू जहा समवाए णामपरिवाडीए तहा णेयव्वा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव-विहरइ।

॥ पंचमसए पंचमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-पडिसत्तू-प्रतिशत्रु अर्थात् वासुदेव का प्रतिशत्रु प्रतिवासुदेव, णाम परिवाडिए-नाम की परिपाटी।

भावार्थ-६ प्रश्न-हे भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अव-

गी काल में कितने कुलकर हुए हैं ?

६ उत्तर–हे गौतम ! सात कुलकर हुए हैं। इसी तरह तीर्थङ्करों की ;, पिता, पहली शिष्याएं, चक्रवर्ती की माताएं, स्त्रीरत्न, बलदेव, वासुदेव, देवों के माता पिता, प्रतिवासुदेव आदि का कथन जिस प्रकार समवायांग में किया गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

विवेचन–अपने अपने समय के मनुष्यों के लिये जो व्यक्ति मर्यादा बांधते हैं, उन्हें र' कहते हैं। ये ही सात कुलकर 'सात मनु' भी कहलाते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी के आरे के अन्त में सात कुलकर हुए हैं। कहा जाता है कि उस समय दस प्रकार के क्ष काल-दोष के कारण कम हो गये। यह देखकर युगलिये अपने अपने वृक्षों पर करने लगे। यदि कोई युगलिया दूसरे के कल्पवृक्ष से फल लेलेता, तो झगड़ा खड़ा ाता। इस तरह कई जगह झगड़े खड़े होने पर युगलियों ने सोचा कि कोई पुरुष ऐसा चाहिये जो सब के कल्पवृक्षों की मर्यादा बाँध दे। वे किसी ऐसे व्यक्ति की खोज कर ; थे कि उनमें एक युगल स्त्री पुरुष को वन के एक सफेद हाथी ने अपने आप सूंड ाकर अपने ऊपर बैठा लिया। दूसरे युगलियों ने समझा कि यही व्यक्ति हम लोगों में है और न्याय करने योग्य है। अतः सभी ने उसको अपना राजा माना, [illegible] वांधी हुई मर्यादा का पालन करने लगे। ऐसी कथा प्रचलित है।

पहले कुलकर का नाम विमलवाहन है। वाकी छह कुलकर इसी के [illegible] । उनके नाम इस प्रकार हैं–पहला विमलवाहन, दूसरा चक्षुपमान, [illegible] अभिचन्द्र, पांचवां प्रसेनजित, छठा मरुदेव और सातवां नाभि। [illegible] इस प्रकार है–१ चन्द्रयशा २ चन्द्रकान्ता ३ सुरूपा ४ प्रति[illegible] ५ [illegible] न्ता ७ मरुदेवी।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में [illegible] हुए हैं। नाम इस प्रकार हैं–१ श्री ऋषभदेव स्वामी (आदिनाथ [illegible] स्वामी संभव स्वामी ४ श्री अभिनन्दन स्वामी ५ श्री सुमति[illegible] स्वामी ७ पार्श्वनाथ स्वामी ८ श्री चन्द्रप्रभ स्वामी ९ श्री सुविधि[illegible] स्वामी) श्री शीतलनाथ स्वामी ११ श्री श्रेयांसनाथ स्वामी [illegible] स्वामी १३ श्री विम- [illegible] स्वामी १४ श्री अनन्तनाथ स्वामी १५ श्री [illegible] नाथ स्वामी

१७ श्री कुंथुनाथ स्वामी १८ श्री अरनाथ स्वामी १९ श्री मल्लिनाथ स्वामी २० श्री मुनिसुव्रत स्वामी २१ श्री नमिनाथ स्वामी २२ श्री अरिष्टनेमि स्वामी (नेमिनाथ स्वामी) २३ श्री पार्श्वनाथ स्वामी और २४ श्री महावीर स्वामी।

चौवीस तीर्थंकरों के पिता के नाम-१ नाभि २ जितशत्रु ३ जितारि ४ संवर ५ मेघ ६ धर ७ प्रतिष्ठ ८ महासेन ९ सुग्रीव १० दृढरथ ११ विष्णु १२ वसुपूज्य १३ कृतवर्मा १४ सिंहसेन १५ भानु १६ विश्वसेन १७ सूर १८ सुदर्शन १९ कुंभ २० सुमित्र २१ विजय २२ समुद्रविजय २३ अश्वसेन और २४ सिद्धार्थ।

चौवीस तीर्थंकरों के नाम-१ मरुदेवी २ विजयादेवी ३ सेना ४ सिद्धार्था ५ मंगला ६ सुसीमा ७ पृथ्वी ८ लक्ष्मणा (लक्षणा) ९ रामा १० नन्दा ११ विष्णु १२ जया १३ श्यामा १४ सुयशा १५ सुव्रता १६ अचिरा १७ श्री १८ देवी १९ प्रभावती २० पद्मा २१ वप्रा २२ शिवा २३ वामा और २४ त्रिशलादेवी।

चौवीस तीर्थंकरों की प्रथम शिष्याओं के नाम-१ ब्राह्मी २ फलगु (फाल्गुनी) ३ श्यामा ४ अजिता ५ काश्यपी ६ रति ७ सोमा ८ सुमना ९ वारुणी १० सुलशा (सुयशा) ११ धारिणी १२ धरणी १३ धरणीधरा (धरा) १४ पद्मा १५ शिवा १६ श्रुति (सुभा) १७ दामिनी (ऋजुका) १८ रक्षिका (रक्षिता) १९ बन्धुमती २० पुष्पवती २१ अनिला (अमिला) २२ यक्षदत्ता (अधिका) २३ पुष्पचूला और २४ चन्दना (चन्दनबाला)।

बारह चक्रवर्तियों के नाम-१ भरत २ सगर ३ मघवान् ४ सनत्कुमार ५ शान्तिनाथ ६ कुन्थुनाथ ७ अरनाथ ८ शुभूम ९ महापद्म १० हरिषेण ११ जय १२ ब्रह्मदत्त।

चक्रवर्तियों की माता के नाम-१ सुमंगला २ यशस्वती ३ भद्रा ४ सदेवी ५ अचिरा ६ श्री ७ देवी ८ तारा ९ ज्वाला १० मेरा ११ वप्रा और १२ चुल्लणी।

चक्रवर्तियों के स्त्रीरत्नों के नाम-१ सुभद्रा २ भद्रा ३ सुनन्दा ४ जया ५ विजया ६ कृष्णश्री ७ सूर्यश्री ८ पद्मश्री ९ वसुन्धरा १० देवी ११ लक्ष्मीमती और १२ कुरुमती।

नौ बलदेवों के नाम-१ अचल २ विजय ३ भद्र ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ आनन्द ७ नन्दन ८ पद्म और ९ राम।

नव वासुदेवों के नाम-१ त्रिपृष्ठ २ द्विपृष्ठ ३ स्वयंभू ४ पुरुषोत्तम ५ पुरुषसिंह ६ पुरुष पुंडरीक ७ दत्त ८ नारायण और ९ कृष्ण।

नव वासुदेवों की माता के नाम-१ मृगावती २ उमा ३ पृथ्वी ४ सीता ५ अंबिका ६ लक्ष्मीमती ७ शेषवती ८ केकयी और ९ देवकी।

नव वासुदेवों के पिता के नाम-१ प्रजापति २ ब्रह्म ३ सोम ४ रुद्र ५ शिव ६ महाशिव ७ अग्निशिख ८ दशरथ और ६ वसुदेव।

वासुदेवों के प्रतिशत्रु (प्रतिवासुदेवों) के नाम-१ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरक ४ मधुकैटभ ५ निशुम्भ ६ बली ७ प्रभराज (प्रह्लाद) ८ रावण और ६ जरासन्ध।

इसके अतिरिक्त समवायांग सूत्र में गत अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी और भविष्यत् उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि के नाम आदि दिये गये हैं।

॥ इति पांचवें शतक का पाँचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ६

अल्पायु और दीर्घायु का कारण

१ प्रश्न-कह णं भंते ! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

१ उत्तर-गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं तंजहा-पाणे अइवाएत्ता, मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं, अणेसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता; एवं खलु जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति।

२ प्रश्न-कह णं भंते ! जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

२ उत्तर-गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं, तं जहा-णो पाणे अइवा-

इत्ता, णो मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा फासु-एस-णिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता; एवं खलु जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ।

कठिन शब्दार्थ–**अप्पाउयत्ताए**–अल्प आयुष्य रूप, **अफासुएणं**–अप्रासुक–जो प्रासुक–जीव रहित नहीं है, **अणेसणिज्जेणं**–जो कल्पनीय–निर्दोष नहीं हैं, **पडिलाभेत्ता**–पंच महाव्रत धारी मुनियों को बहरा कर–दान देकर, **दीहाउयत्ताए**–दीर्घ आयुष्य रूप से, **पाणेअइवाइत्ता**–प्राणियों को मारने से ।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! जीव, अल्पायु फल वाले कर्म कैसे बांधते हैं ?

१ उत्तर–हे गौतम ! तीन कारणों से जीव, अल्पायु फल वाले कर्म बांधते हैं । यथा–प्राणियों की हिंसा करने से, झूठ बोलने से और तथारूप (साधु के अनुरूप क्रिया और वेश आदि से युक्त दान के पात्र) श्रमण (साधु) माहण (श्रावक) को अप्रासुक, अनेषणीय (अकल्पनीय) अशन, पान, खादिम स्वादिम देने से जीव, अल्पायु फल वाले कर्म बांधते हैं ।

२ प्रश्न–हे भगवन् ! जीव दीर्घायु फल वाले कर्म किन कारणों से बांधते हैं ?

२ उत्तर–हे गौतम ! तीन कारणों से जीव, दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं । यथा–प्राणियों की हिंसा न करने से, झूठ नहीं बोलने से और तथारूप श्रमण माहण को प्रासुक एषणीय अशन पान खादिम और स्वादिम बहराने से । इन तीन कारणों से जीव दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं ।

विवेचन–पांचवे उद्देशक में कर्म वेदना का कथन किया गया है । अब इस छठे उद्देशक में कर्म बंध के कारणों का कथन किया जाता है ।

यहाँ अल्प आयुबंध के कारण बतलाये गये हैं । यह अल्प आयु, दीर्घ आयु की अपेक्षा से समझनी चाहिये । किन्तु क्षुल्लक-भव ग्रहण रूप निगोद की आयु नहीं । प्रासुक और एषणीय आहार आदि लेने वाले मुनि को अप्रासुक और अनैषणीय आहारादि देने से जो

अल्प आयु का प्राप्त होना कहा गया है, वह दीर्घ आयु की अपेक्षा से अल्प समझना चाहिये। क्यों कि जिनागम से संस्कृत बुद्धि वाले मुनि, किसी सांसारिक ऋद्धि संपत्तियुक्त भोगी पुरुष को अल्प आयु में मराहुआ देखकर कहते हैं कि इसने जन्मान्तर में प्राणी-वध आदि अशुभ-कर्म का अवश्य आचरण किया था। अथवा शुद्धाचारी मुनियों को अकल्पनीय अन्नादि दिया था, जिससे सांसारिक सुख सम्पन्न होकर भी यह अल्पायु हुआ है। इसलिये यह स्पष्ट है कि यहाँ दीर्घ आयु की अपेक्षा अल्प आयु पाना ही विवक्षित है। किन्तु निगोद की आयु पाना विवक्षित नहीं है। इसी प्रकार यहाँ प्राणातिपात और मृषावाद भी सभी प्रकार के नहीं लिये गये हैं, किन्तु मुनि को आहार देने के लिये जो आधाकर्मी आहार आदि तैयार किया जाता है, उसमें जो प्राणातिपात होता है, वह प्राणातिपात यहाँ लिया गया है और उस आधाकर्मी आहार को देने के लिये जो मिथ्या भाषण किया जाता है, वह मिथ्याभाषण यहाँ लिया गया है अर्थात् उस आहार सम्बन्धी प्राणातिपात और मिथ्याभाषण, इन्हीं दो का यहाँ ग्रहण है, किन्तु सब प्रकार के प्राणातिपात और सर्व प्रकार के मृषावाद का यहाँ ग्रहण नहीं है। इस बात का खुलासा ठाणांग सूत्र के पाठ की टीका में भी किया गया है। वह टीका इस प्रकार है:—

"तथाहि प्राणातिपात्याधाकर्मादि करणतो मृषोक्तं वा यथा अहो साधो ! स्वार्थसिद्ध-मिदं भक्तादि कल्पनीयं वो नाशंका कार्य्या", इत्यादि।

अर्थात् 'प्राणियों के विनाश के द्वारा आधाकर्मी आहार तैयार करके और झूठ बोलकर साधु को देना, यथा—हे साधो ! यह भोजन हमने अपने लिये बनाया है। यह आपके लिये कल्पनीय है। इसमें शङ्का नहीं करनी चाहिए।' इत्यादि झूठ बोलकर आधाकर्मी आहार साधु को देना, इस प्रकार जो झूठ बोला जाता है और आधाकर्मी आहार तैयार करने में जो प्राणातिपात होता है, उन्हीं प्राणातिपात और मृषावाद से शुभ अल्प आयु का बंध होना समझना चाहिये। किन्तु सब प्राणातिपात और सब मृषावाद से नहीं।

शंका—यदि कोई यह शंका करे कि यहां मूलपाठ में सामान्य रूप से प्राणातिपात और मृषावाद का फल, अल्प आयु का बन्ध होना कहा है, किन्तु आधाकर्मी आहार तैयार करने में जो प्राणातिपात (जीव हिंसा) होता है और उसे साधु को देने के लिये जो मिथ्या भाषण किया जाता है, उन्हीं से अल्प आयु का बन्ध नहीं कहा है। तथा यह भी नहीं कहा है कि दीर्घ आयु की अपेक्षा से अल्प आयु बंधती है। परन्तु क्षुल्लक-भव ग्रहण रूप अल्प आयु नहीं बंधती है। फिर यह किस प्रकार मान लिया जाय कि आधाकर्मी आहार तैयार

करने में जो प्राणातिपात होता है और मिथ्याभाषण करके जो साधु को आधाकर्मी आहार दिया जाता है, उन्हीं से अल्प आयु का बंध होता है। दूसरे प्राणातिपात और मिथ्याभाषण से नहीं ?

समाधान–यद्यपि इस सूत्र में सामान्य रूप से प्राणातिपात और मिथ्याभाषण से अल्प आयु का बंध होना कहा है, तथापि इनका विशेषण अवश्य कहना होगा। अर्थात् आधाकर्मी आहार तैयार करने में जो प्राणातिपात होता है और झूठ बोलकर जो वह आधाकर्मी आहार साधु को दिया जाता है, उन्हीं से अल्प आयु का बंध होता है, यह कहना ही होगा। क्योंकि इस सूत्र के आगे के तीसरे सूत्र में कहा है कि 'प्राणातिपात और मिथ्या भाषण से अशुभ दीर्घ आयु का बंध होता है', एक ही कारण से परस्पर विरुद्ध दो कार्य उत्पन्न होना संभव नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने से सब जगह अव्यवस्था हो जायगी। इसलिये यहां पर उन्हीं प्राणातिपात और मृषावाद का ग्रहण किया गया है–जो प्राणातिपात आधाकर्मी आहार आदि करने में होता है। तथा जो मृषावाद साधु को आधाकर्मी आहार आदि देने में लगता है।

अल्प आयु भी यहाँ पर दीर्घ आयु की अपेक्षा से कही गई है। किन्तु निगोद का क्षुल्लक-भव ग्रहण रूप नहीं।

इसके आगे के सूत्र में दीर्घ आयु बंध के कारणों का कथन किया गया है। जीव दया आदि धार्मिक कार्य करने वाले जीव की दीर्घ आयु होती है। क्योंकि यहाँ भी दीर्घ आयु वाले पुरुष को देखकर लोग कहते हैं कि इस पुरुष ने भवान्तर में जीव-दयादि रूप धर्म कार्य किये हैं। इसीसे यह दीर्घ आयुवाला हुआ है। इससे यह निश्चित् हुआ कि प्राणातिपात आदि से निवृत्त होना, देवगति का कारण होने से दीर्घ आयु का कारण है। कहा भी है–

अणुव्वय महव्वएहिं य बालतवो अकाम णिज्जराए य।
देवाउयं निबंधइ सम्मदिट्ठी य जो जीवो॥

अर्थात् जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है, वह अणुव्रतों द्वारा, महाव्रतों द्वारा, बालतप द्वारा, और अकाम निर्जरा द्वारा देव आयु बांधता है।

देवगति में अपेक्षा कृत दीर्घ आयु ही होती है।

दान की अपेक्षा इसी सूत्र में आगे कहेंगे।

समणोवासयस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएणं असण-पाण-खाइम-

साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ? गोयमा ! एगंतसो णिज्जरा कज्जइ ।

अर्थ-हे भगवन् ! तथा रूप के श्रमण, माहण को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम प्रतिलाभने से श्रमणोपासक को क्या होता है ? हे गौतम ! एकान्त निर्जरा होती है ।

महाव्रत की तरह जो निर्जरा का कारण होता है, वह विशिष्ट दीर्घ आयु का भी कारण होता है । इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है ।

३ प्रश्न-कहं णं भंते ! जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

३ उत्तर-गोयमा ! पाणे अइवाएत्ता, मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता, णिंदित्ता, खिंसित्ता, गरहित्ता, अवमण्णित्ता अण्णयरेणं अमणुण्णेणं, अपीइकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता; एवं खलु जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ।

४ प्रश्न-कहं णं भंते ! जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

४ उत्तर-गोयमा ! णो पाणे अइवाइत्ता, णो मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता णमंसित्ता, जाव-पज्जुवासित्ता; अण्णयरेणं मणुण्णेणं, पीइकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता-एवं खलु जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ।

कठिन शब्दार्थ-अवमण्णित्ता-अपमान करके, अण्णयरेणं-ऐसे अन्य, पीइकारएणं-प्रीतिकारक ।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव अशुभ दीर्घायु फल वाले कर्म किन

करने में जो प्राणातिपात होता है और मिथ्याभाषण करके जो साधु को आधाकर्मी आहार दिया जाता है, उन्हीं से अल्प आयु का बंध होता है। दूसरे प्राणातिपात और मिथ्याभाषण से नहीं ?

समाधान–यद्यपि इस सूत्र में सामान्य रूप से प्राणातिपात और मिथ्याभाषण से अल्प आयु का बंध होना कहा है, तथापि इनका विशेषण अवश्य कहना होगा। अर्थात् आधाकर्मी आहार तैयार करने में जो प्राणातिपात होता है और झूठ बोलकर जो वह आधाकर्मी आहार साधु को दिया जाता है, उन्हीं से अल्प आयु का बंध होता है, यह कहना ही होगा। क्योंकि इस सूत्र के आगे के तीसरे सूत्र में कहा है कि 'प्राणातिपात और मिथ्या भाषण से अशुभ दीर्घ आयु का बंध होता है', एक ही कारण से परस्पर विरुद्ध दो कार्य उत्पन्न होना संभव नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने से सब जगह अव्यवस्था हो जायगी। इसलिये यहां पर उन्हीं प्राणातिपात और मृषावाद का ग्रहण किया गया है–जो प्राणातिपात आधाकर्मी आहार आदि करने में होता है। तथा जो मृषावाद साधु को आधाकर्मी आहार आदि देने में लगता है।

अल्प आयु भी यहाँ पर दीर्घ आयु की अपेक्षा से कही गई है। किन्तु निगोद का क्षुल्लक-भव ग्रहण रूप नहीं।

इसके आगे के सूत्र में दीर्घ आयु बंध के कारणों का कथन किया गया है। जीव दया आदि धार्मिक कार्य करने वाले जीव की दीर्घ आयु होती है। क्योंकि यहाँ भी दीर्घ आयु वाले पुरुष को देखकर लोग कहते हैं कि इस पुरुष ने भवान्तर में जीव-दयादि रूप धर्म कार्य किये हैं। इसीसे यह दीर्घ आयुवाला हुआ है। इससे यह निश्चित् हुआ कि प्राणातिपात आदि से निवृत्त होना, देवगति का कारण होने से दीर्घ आयु का कारण है। कहा भी है–

अणुव्वय महव्वएहिं य बालतवो अकाम णिज्जराए य।
देवाउयं निबंधइ सम्मदिट्ठी य जो जीवो॥

अर्थात् जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है, वह अणुव्रतों द्वारा, महाव्रतों द्वारा, बालतप द्वारा, और अकाम निर्जरा द्वारा देव आयु बांधता है।

देवगति में अपेक्षा कृत दीर्घ आयु ही होती है।

दान की अपेक्षा इसी सूत्र में आगे कहेंगे।

समणोवासयस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएणं असण-पाण-खाइम-

साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ? गोयमा ! एगंतसो णिज्जरा कज्जइ ।

अर्थ-हे भगवन् ! तथा रूप के श्रमण, माहण को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम प्रतिलाभने से श्रमणोपासक को क्या होता है ? हे गौतम ! एकान्त निर्जरा होती है ।

महाव्रत की तरह जो निर्जरा का कारण होता है, वह विशिष्ट दीर्घ आयु का भी कारण होता है । इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है ।

३ प्रश्न-कह णं भंते ! जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

३ उत्तर-गोयमा ! पाणे अइवाएत्ता, मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता, णिंदित्ता, खिंसित्ता, गरहित्ता, अवमणित्ता अण्णयरेणं अमणुण्णेणं, अपीइकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता; एवं खलु जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ।

४ प्रश्न-कह णं भंते ! जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

४ उत्तर-गोयमा ! णो पाणे अइवाइत्ता, णो मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता णमंसित्ता, जाव-पज्जुवासित्ता; अण्णयरेणं मणुण्णेणं, पीइकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता-एवं खलु जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ।

कठिन शब्दार्थ-अवमणित्ता-अपमान करके, अण्णयरेणं-ऐसे अन्य, पीइकारएणं-प्रीतिकारक ।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव अशुभ दीर्घायु फल वाले कर्म किन

कारणों से बांधते हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! तीन कारणों से जीव, अशुभ दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं। यथा-प्राणियों की हिंसा करके, झूठ बोल कर और तथारूप श्रमण माहण की जाति प्रकाश द्वारा हीलना, मन द्वारा निन्दा, खिंसना (लोगों के समक्ष निन्दा-बुराई) और गर्हा (उनके समक्ष निन्दा) द्वारा उनका अपमान करके, अमनोज्ञ और अप्रीतिकर (खराब) अशन, पान, खादिम और स्वादिम बहराने से जीव, अशुभ दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव शुभ दीर्घायु फल वाले कर्म किन कारणों से बांधते हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! तीन कारणों से जीव, शुभ दीर्घ आयु फल वाले कर्म बांधते हैं। यथा-प्राणियों की हिंसा नहीं करने से, झूठ नहीं बोलने से, तथारूप श्रमण माहण को वन्दना नमस्कार यावत् पर्युपासना करके किसी प्रकार के मनोज्ञ और प्रीतिकारक अशन, पान, खादिम और स्वादिम बहराने से। इन तीन कारणों से जीव, शुभ दीर्घ आयु फल वाले कर्म बांधते हैं।

विवेचन-इस सूत्र में अशुभ दीर्घ आयु के कारणों का कथन किया गया है। श्रमणादि को हीलना आदि पूर्वक देना, अशुभ दीर्घ आयु बंध का कारण है। इस सूत्र में अशनादि के साथ 'प्रासुक' या 'अप्रासुक' विशेषण नहीं लगाया गया है। क्यों कि हीलना आदि करके प्रासुक आहारादि देना भी कोई विशेष फल को पैदा करने वाला नहीं होता। इसलिये इस सूत्र में मत्सरता पूर्वक हीलना आदि को ही अशुभ दीर्घ आयु का प्रधान कारण बतलाया है।

किसी किसी प्रति में 'अफासुएणं अणेसणिज्जेणं'-यह विशेषण दिये हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रासुक दान भी हीलना आदि से युक्त हो, तो अशुभ दीर्घ आयु का कारण होता है, तब जो दान अप्रासुक हो और हीलनादि से युक्त हो, वह अशुभ दीर्घ आयु का कारण हो-इस में कहना ही क्या है, अर्थात् वह तो अवश्य ही अशुभ दीर्घ आयु का कारण होता है।

यहाँ भी प्राणातिपात और मृषावाद को दान का विशेषण बना कर व्याख्या करना भी घटित होता है, क्योंकि अवहीलना एवं अवज्ञा करके दान देने में प्राणातिपात आदि क्रियाएं देखी जाती हैं। प्राणातिपात आदि क्रियाएँ नरक गति का कारण होने से

अशुभ दीर्घायु हो सकती है। कहा है कि–

"मिच्छदिट्ठी महारंभपरिग्गहो तिव्वलोभनिस्सीलो।
निरयाउयं निबंधइ, पावमई रोद्दपरिणामो ॥"

अर्थ–पापमति (पाप में बुद्धि रखने वाला) रौद्र परिणाम वाला, महारम्भ महापरिग्रह वाला, तीव्र लोभ वाला, शीलरहित (दुश्शील) और मिथ्यादृष्टि जीव, नरक का आयुष्य बांधता है। नरक गति का आयुष्य विवक्षाकृत अशुभ दीर्घायु ही होता है।

इसके आगे के सूत्र में शुभ दीर्घायुबन्ध के कारणों का कथन किया गया है। इस सूत्र में भी 'प्रासुक या अप्रासुक' कोई भी विशेषण दान के साथ नहीं लगाये गये हैं। क्योंकि यह सूत्र इसके पूर्व के सूत्र से विपरीत है। यह सूत्र और पूर्व सूत्र ये दोनों सूत्र निर्विशेषण रूप से प्रवृत्त हुए हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्रासुक दान के फल में और अप्रासुक दान के फल में कुछ भी विशेषता नहीं है। क्योंकि पहले के दो सूत्रों में उस फल विशेष को प्रतिपादित किया गया है। यहाँ यह बतलाया गया है कि प्रासुक और एषणीय दान से देवलोक की प्राप्ति होती है और उससे विपरीत दूसरे दान से अर्थात् अप्रासुक और अनेषणीय दान से अशुभ दीर्घायु अर्थात् नरक गति रूप फल होता है–ऐसा जानना चाहिए।

किसी किसी प्रति में तो 'प्रासुक' आदि विशेषण दिये हुए ही मिलते हैं।

यहाँ चार सूत्र कहे गये हैं, उनमें से पहला सूत्र अल्पायु विषयक है। दूसरा दीर्घायु विषयक है। तीसरा अशुभ दीर्घायु विषयक है और चौथा शुभ दीर्घायु विषयक है।

भाण्ड आदि से लगने वाली क्रिया

५ प्रश्न–गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स केइ भंडं अवहरेज्जा, तस्स णं भंते ! तं भंडं गवेसमाणस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया ?

५ उत्तर–गोयमा ! आरंभिया किरिया कज्जइ, परिग्गहिया,

मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया मिच्छादंसणकिरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ; अह से भंडे अभिसमण्णागए भवइ, तओ से य पच्छा सव्वाओ ताओ पयणुईभवंति ।

६ प्रश्न-गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडे साइज्जेज्जा, भंडे य से अणुवणीए सिया, गाहावइस्स णं भंते ! ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ, जाव-मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ, कइयस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ, जाव-मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ?

६ उत्तर-गोयमा ! गाहावइस्स ताओ भंडाओ आरंभिया किरिया कज्जइ, जाव-अपच्चक्खाण ०-मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ; कइयस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुई-भवंति ।

कठिन शब्दार्थ-विक्किणमाणस्स-विक्रय करते हुए, अवहरेज्जा-चुरा कर ले जाय, आरंभियाकिरिया-प्राणी हिंसा से लगने वाली क्रिया, गवेसमाणस्स-ढूंढते हुए, परिग्गहिया-परिग्रह-धन धान्यादि पौद्गलिक वस्तु पर ममत्व रखने से लगने वाली, मायावत्तिया-कषाय के सद्भाव में लगने वाली, अपच्चक्खाणकिरिया-अप्रत्याख्यान-अविरति से लगने वाली, मिच्छा दंसणवत्तिया-मिथ्यादर्शन सम्बन्धी, सिय कज्जइ-कदाचित् करते हैं, पयणुईभवंति-प्रतनु (अल्प) अणुवणीए-अनुपनीत (नहीं ले गया) साइज्जेज्जा-सत्यंकार कर स्वीकार करें अर्थात् साई (बयाना) देकर, लेन देन का सौदा पक्का करे, कइयस्स-क्रय करने वाले-खरीदने वाले ।

भावार्थ-५ प्रश्न-हे भगवन् ! भाण्ड अर्थात् बरतन आदि किराणा की वस्तुएँ बेचते हुए किसी गृहस्थ का वह किराणा कोई चुरा ले जाय । फिर वह

गृहस्थ उस किराणे की खोज करे, तो हे भगवन् ! खोज करते हुए उस गृहस्थ को क्या आरम्भिकी क्रिया लगती है, पारिग्रहिकी क्रिया लगती है, मायाप्रत्ययिकी क्रिया लगती है, अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगती है, या मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया लगती है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगती है, किन्तु मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती। भाण्ड (किराणा)की खोज करते हुए यदि चुराई गई वस्तु वापिस मिल जाय, तो वे सब क्रियाएँ प्रतनु (अल्प-हल्की) हो जाती है।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! कोई गृहस्थ अपना भाण्ड-वस्तु बेच रहा है, खरीददार ने वह वस्तु खरीद ली और अपने सौदे को पक्का करने के लिए उसने साई (बयाना) दे दिया, परन्तु वह उस माल को ले नहीं गया अर्थात् उसी विक्रेता के पास पड़ा हुआ है, ऐसी स्थिति में हे भगवन् ! उस विक्रेता को आरंभिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रियाओं में से कौनसी क्रियाएँ लगती हैं ?

६ उत्तर-हे गौतम ! ऐसी स्थिति में उस विक्रेता गृहपति को आरंभिकी पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यानिकी, ये चार क्रियाएं लगती हैं और मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती है। खरीददार को ये सब क्रियाएँ प्रतनु होती हैं।

७ प्रश्न-गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स, जाव-भंडे से उवणीए सिया, कइयस्स णं भंते ! ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ, जाव-मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ; गाहावइस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ, जाव-मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

७ उत्तर-गोयमा ! कइयस्स ताओ भंडाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारिकिरियाओ कज्जंति, मिच्छादंसणवत्तिया किरिया भयणाए; गाहावइस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुई भवंति।

८ प्रश्न-गाहावइस्स णं भंते ! भंडे जाव-धणे य से अणुवणीए सिया ?

८ उत्तर-एयं पि जहा भंडे उवणीए तहा णेयव्वं चउत्थो आलावगो, धणे य से उवणीए सिया जहा-पढमो आलावगो, भंडे य से अणुवणीए सिया तहा णेयव्वो पढम-चउत्थाणं एक्को गमो, बिईय-तईयाणं एक्को गमो।

कठिन शब्दार्थ-उवणीए-उपनीत-ले गया, एक्को गमो-एक ही प्रकार से।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! विक्रेता गृहपति के यहाँ से खरीददार वह भाण्ड अपने यहाँ ले आया। ऐसी स्थिति में हे भगवन् ! उस खरीददार को आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रियाओं में से कितनी क्रियाएँ लगती हैं, और उस विक्रेता गृहपति को कितनी क्रियाएँ लगती हैं ?

७ उत्तर-हे गौतम ! उपरोक्त स्थिति में खरीददार को आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यानिकी-ये चारों क्रियाएँ भारी प्रमाण में लगती हैं और मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया की भजना है अर्थात् यदि खरीददार मिथ्यादृष्टि हो, तो मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया लगती है और यदि वह मिथ्यादृष्टि न हो, तो नहीं लगती है। विक्रेता गृहपति को मिथ्यादर्शन क्रिया की भजना के साथ ये सब क्रियाएँ अल्प होती हैं।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! भाण्ड के विक्रेता गृहपति के पास से खरीददार ने वह भाण्ड खरीद लिया, परन्तु जबतक उस माल का मूल्य रूप धन उस

विक्रेता को मिला नहीं, तब तक हे भगवन् ! उस खरीददार को उस धन से कितनी क्रियाएँ लगती हैं ? और विक्रेता को कितनी क्रियाएँ लगती हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! उपरोक्त स्थिति में यह आलापक उपनीत भाण्ड के समान समझना चाहिए। यदि धन उपनीत हो, तो जिस प्रकार अनुपनीत भाण्ड के विषय में पहला आलापक कहा है, उस प्रकार समझना चाहिए।

पहला और चौथा आलापक समान है तथा दूसरा और तीसरा आलापक समान है।

विवेचन--पहले प्रकरण में कर्मबन्ध की क्रिया के विषय में कहा गया है अब अन्य क्रियाओं के विषय में कहा जाता है।

किसी किराणे के व्यापारी का यदि कोई पुरुष, किराणा चुरा ले जाय, तो उस किराणे की खोज करते हुए उसको आरम्भिकी आदि चार क्रियाएं लगती हैं, मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती है अर्थात् यदि वह व्यापारी मिथ्यादृष्टि है, तो उसको मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया लगती है और यदि वह मिथ्यादृष्टि नहीं है, किन्तु सम्यग्दृष्टि है, तो उसे मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया नहीं लगती है। खोज करते हुए उस व्यापारी को वह किराणा मिल जाय, तो किराणा मिल जाने के बाद वे सब क्रियाएं अल्प-हल्की हो जाती हैं, क्योंकि खोज करते समय वह व्यापारी विशेष प्रयत्न वाला होता है, इसलिए वे सब क्रियाएँ भारी होती हैं और जब वह चोरी गया हुआ किराणा मिल जाता है, तब उसकी खोज करने रूप प्रयत्न बन्द हो जाता है, इसलिए वे सब सम्भवित क्रियाएँ हल्की हो जाती हैं।

खरीददार ने उस विक्रेता व्यापारी से किराणा खरीद लिया और अपने सौदे को पक्का करने के लिए उसने साई (बयाना) भी दे दिया, किन्तु उसने वह किराणा दुकान से उठाया नहीं, इस स्थिति में खरीददार को उस किराणे सम्बन्धी क्रियाएँ हल्के रूप में लगती हैं और उस विक्रेता के यहाँ अभी किराणा पड़ा हुआ है, वह उसका होने से उसे वे क्रियाएँ भारी रूप में होती हैं।

जब किराणा खरीददार को सौंप दिया जाता है और वह उसे वहाँ से उठा लेता है एवं अपने घर ले आता है, तब उस स्थिति में उस किराणा सम्बन्धी वे सब क्रियाएँ उस खरीददार को भारी रूप में लगती हैं और उस विक्रेता को वे सब सम्भवित क्रियाएँ

प्रतनु रूप में लगती हैं।

यहाँ पर 'उपनीत' (खरीददार को सौंपा गया और खरीददार द्वारा अपने यहाँ ले आया हुआ) भाण्ड–किराणा, और 'अनुपनीत' (खरीददार को नहीं सौंपा गया एवं खरीददार द्वारा नहीं उठाया गया, किन्तु विक्रेता के पास ही पड़ा हुआ) यह दो प्रकार का भाण्ड होने से ये दो सूत्र कहे गये हैं अर्थात् 'उपनीत' और 'अनुपनीत' विषयक दो सूत्र हैं। इनमें से पहला सूत्र 'अनुपनीत' विषयक है और दूसरा सूत्र 'उपनीत' विषयक है। इसी प्रकार धन के विषय में भी दो सूत्र कहने चाहिए। वे इस प्रकार हैं–

हे भगवन् ! किराणा बेचने वाले व्यापारी के पास से खरीददार ने किराणा खरीद लिया, किन्तु उसका मूल्य रूप धन विक्रेता को नहीं दिया गया। ऐसी स्थिति में उस खरीददार को उस धन सम्बन्धी आरम्भिकी आदि कितनी क्रियाएं लगती हैं और विक्रेता को कितनी क्रियाएँ लगती हैं ?

हे गौतम ! उस खरीददार को उस धन सम्बन्धी आरम्भिकी आदि चार क्रियाएँ भारी प्रमाण में लगती हैं और मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती है। विक्रेता को ये सब सम्भवित क्रियाएँ प्रतनु परिमाण में लगती हैं। क्योंकि जबतक धन नहीं दिया गया है, तब तक वह धन खरीददार का है एवं उसी के पास हैं, इसलिए उसे आरम्भिकी आदि क्रियाएँ भारी परिमाण में लगती हैं और वह धन विक्रेता का न होने से उसे वे क्रियाएँ हल्के परिमाण में लगती हैं। इस प्रकार यह तीसरा सूत्र पूर्वोक्त दूसरे सूत्र के समान समझना चाहिए। चौथा सूत्र इस प्रकार कहना चाहिए–

हे भगवन् ! किराणा बेचने वाले किसी व्यापारी से किसी खरीददार ने किराणा खरीद लिया और उसका मूल्य रूप धन विक्रेता को दे दिया। ऐसी स्थिति में उस विक्रेता को उस धन सम्बन्धी आरम्भिकी आदि कितनी क्रियाएँ लगती हैं ? और खरीददार को कितनी क्रियाएँ लगती हैं ?

हे गौतम ! उपरोक्त स्थिति में विक्रेता को आरम्भिकी आदि चार क्रियाएँ भारी परिमाण में लगती हैं और मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती है। खरीददार को वे सब सम्भवित क्रियाएँ प्रतनु परिमाण में लगती हैं। क्योंकि ये सब क्रियाएँ धन हेतुक हैं। इसलिए मूल्य रूप धन चुका देने पर वह धन उस विक्रेता का है, इसलिए उसको वे क्रियाएँ भारी परिमाण में लगती हैं। मूल्य रूप धन चुका देने पर वह धन उस खरीददार का नहीं है, इसलिए उसको वे सब संभवित क्रियाएँ हल्के परिमाण

में लगती हैं।

इस प्रकार यह चौथा सूत्र पहले सूत्र के समान है।

अग्निकाय का अल्पकर्म महाकर्म

९ प्रश्न-अगणिकाए णं भंते ! अहुणोज्जलिए समाणे महाकम्मतराए चेव, महाकिरिय-महासव-महावेयणतराए चेव भवइ; अहे णं समए समए वोक्कसिज्जमाणे वोक्कसिज्जमाणे चरिमकालसमयंसि इंगालब्भूए, मुम्मुरब्भूए, छारियब्भूए, तओ पच्छा अप्पकम्मतराए चेव अप्पकिरिया-ऽऽसव-अप्पवेयणतराए चेव भवइ ?

९ उत्तर-हंता, गोयमा ! अगणिकाए णं अहुणोज्जलिए समाणे तं चेव।

कठिन शब्दार्थ-अहुणोज्जलिए-अभी जलाया हुआ, वोक्कसिज्जमाणे-कम होते हुए।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या तत्काल प्रज्वलित हुई अग्निकाय महाकर्मयुक्त, महाक्रिया युक्त, महाआश्रव युक्त और महावेदना युक्त होती है ? और इसके बाद समय समय कम होती हुई-बुझती हुई, अन्तिम क्षण में अंगार रूप, मुर्मुर रूप और भस्म रूप हो जाती है ? इसके बाद क्या वह अग्निकाय अल्प कर्म युक्त अल्प क्रिया युक्त, अल्प आश्रव युक्त और अल्प वेदना युक्त होती है ?

९ उत्तर-हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से वह अग्निकाय, महाकर्म युक्त यावत् अल्प वेदना युक्त होती है।

विवेचन-क्रिया का प्रकरण होने से अग्निकाय सम्बन्धी क्रिया का कथन किया जाता है।

प्रज्वलित होती हुई अग्नि, बन्ध की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि महाकर्म बंध का

हेतु होने से 'महाकर्मतर' है। अग्नि का जलना एक प्रकार की क्रिया है। इसलिये वह 'महाक्रियातर' है। वह नवीन कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत है। इसलिये वह 'महाआश्रव-तर' है। इसके पश्चात् होने वाली तथा उस कर्म से उत्पन्न होने वाली पीड़ा (वेदना) के कारण अथवा परस्पर शरीर संघात से उत्पन्न होने वाली पीड़ा के कारण वह 'महावेदनातर' है।

प्रज्वलित हुई अग्नि बुझने लगती है, तब क्रमशः अंगार आदि अवस्था को प्राप्त होती हुई वह अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्प आश्रव और अल्प वेदना वाली होती है। बुझते बुझते जब वह सर्वथा बुझकर भस्म अवस्था को प्राप्त हो जाती है, तब वह कर्म आदि रहित हो जाती है।

मूलपाठ में 'अल्प' शब्द आया है, सो अग्नि की अंगारादि अवस्था की अपेक्षा 'अल्प' का अर्थ 'स्तोक' अर्थात् थोड़ा करना चाहिये और भस्म (राख) अवस्था की अपेक्षा 'अल्प' का अर्थ 'अभाव' करना चाहिये।

धनुर्धर की क्रिया

१० प्रश्न-पुरिसे णं भंते ! धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता ठाणं ठाइ, ठित्ता आययकण्णाययं करेइ, आययकण्णाययं उसुं करेत्ता उसुं उड्ढं वेहासं उसुं उव्विहइ, तएणं से उसुं उड्ढं वेहासं उव्विहिए समाणे जाइं तत्थ पाणाइं, भूयाइं, जीवाइं, सत्ताइं अभिहणइ, वत्तेइ, लेसेइ, संघाएइ, संघट्टेइ, परितावेइ, किलामेइ, ठाणाओ ठाणं संकामेइ, जीवियाओ ववरोवेइ, तए णं भंते ! से पुरिसे कइकिरिए ?

१० उत्तर-गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे धणुं परामुसइ, परामुसित्ता जाव-उव्विहइ, तावं च णं पुरिसे काइयाए जाव-

पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिं धणुं णिव्वत्तिए ते वि य णं जीवा काइयाए, जाव-पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, एवं धणु पुट्ठे पंचहिं किरियाहिं, जीवा पंचहिं, ण्हारू पंचहिं, उसू पंचहिं, सरे, पत्तणे, फले, ण्हारू पंचहिं ।

११ प्रश्न-अहे णं से उसू अप्पणो गुरुयत्ताए, भारियत्ताए, गुरुसंभारियत्ताए, अहे वीससाए पच्चोवयमाणे जाइं तत्थ पाणाइं,जाव-जीवियाओ ववरोवेइ तावं च णं से पुरिसे कइकिरिए ?

११ उत्तर-गोयमा ! जावं च णं से उसुं अप्पणो गुरुयत्ताए, जाव-ववरोवेइ तावं च णं से पुरिसे काइयाए, जाव-चउहिं किरियाहिं पुट्ठे; जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिं धणू णिव्वत्तिए ते वि जीवा चउहिं किरियाहिं, धणु पुट्ठे चउहिं, जीवा चउहिं, ण्हारू चउहिं, उसू पंचहिं, सरे, पत्तणे, फले, ण्हारू पंचहिं, जे वि य से जीवा अहे पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति ते वि य णं जीवा काइयाए, जाव-पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा ।

कठिन शब्दार्थ-परामुसइ-स्पर्श करता है, उसु-बाण, आययकण्णाययं-कान तक खिचा हुआ, वेहासं-आकाश में, उव्विहइ-फेंके, वत्तेति-संकुचित करे [illegible], संघाएइ-परस्पर संहत करे, संघट्टेति-स्पर्श करे, ठाणाओ ठाणं संकमइ-एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान ले जाय, जीवा-डोरी, ण्हारू-स्नायु, वीससाए-स्वाभाविक, पच्चोवयमाणे-नीचे गिरता हुआ ।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! कोई पुरुष, धनुष को ग्रहण करे, धनुष को ग्रहण करके बाण को ग्रहण करे, बाण को ग्रहण करके धनुष से बाण फेंकने
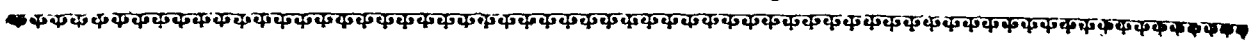
वाले आसन से बैठे, बैठ कर फेंके जाने वाले बाण को कान तक खींचे, खींच कर ऊंचे आकाश में बाण फेंके। ऊंचे आकाश में फेंका हुआ वह बाण, वहाँ जिन प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का अभिहनन करे, उनके शरीर को संकुचित करे, उन्हें श्लिष्ट करे, उन्हें परस्पर संहत करे, उनका स्पर्श करे, उनको चारों तरफ से पीड़ा पहुंचावे, उन्हें क्लान्त करे अर्थात् मारणान्तिक समुद्घात तक ले जावे, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जावे और उन्हें जीवित से रहित कर देवे, तो हे भगवन् ! उस पुरुष को कितनी क्रियाएँ लगती हैं ?

१० उत्तर-हे गौतम ! यावत् वह पुरुष धनुष को ग्रहण करता है यावत् बाण को फेंकता है तावत् वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी-इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीर से वह धनुष बना है, वे जीव भी पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। इस तरह धनुःपृष्ठ (धनुष की पीठ), पांच क्रिया से स्पृष्ट होती है, जीवा (डोरी) पांच क्रिया से स्पृष्ट होती है, ण्हारू (स्नायु) पांच क्रिया से स्पृष्ट होती है, बाण पांच क्रिया से स्पृष्ट होता है, शर, पत्र, फल और ण्हारू पांच क्रिया से स्पृष्ट ोता है।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! जब वह बाण, अपनी गुरुता, भारीपन और गुरुतासंभारता द्वारा स्वाभाविक रूप से नीचे गिरता है, तब ऊपर से नीचे गिरता हुआ वह बाण, बीच मार्ग में प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को यावत् जीवित रहित करता है, तब उस बाण फेंकने वाले पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! जब वह बाण, अपनी गुरुता आदि द्वारा नीचे गिरता हुआ यावत् जीवों को जीवन रहित करता है. तब वह पुरुष, कायिकी आदि चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है और जिन जीवों के शरीर से धनुष बना है, वे जीव भी चार क्रिया से स्पृष्ट होते हैं। धनुःपृष्ठ चार क्रिया से, डोरी चार क्रिया से, ण्हारू चार क्रिया से, बाण पांच क्रिया से, शर, पत्र, फल और ण्हारू पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। नीचे पड़ते हुए बाण के अवग्रह में जो जीव आते

हैं वे जीव भी कायिकी आदि पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

विवेचन-क्रिया का प्रकरण चल रहा है, अतः क्रिया के सम्बन्ध में ही कहा जाता है-

एक पुरुष, धनुष पर बाण चढ़ाकर तथा तद्योग्य आसन लगाकर कर्ण पर्यन्त बाण खींचकर छोड़ता है। छूटा हुआ वह बाण, आकाशस्थ प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों का हनन करता है, उनको संकुचित करता है, उनको अधिक या कम परिमाण में स्पर्श करता है, सघटित करता है, परितापित और क्लान्त करता है, एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचा देता है और प्राण रहित भी कर देता है। ऐसी स्थिति में उस पुरुष को धनुप उठाया और छोड़ा वहाँ तक प्राणातिपात आदि पाँचों क्रियाएं लगती है। जिन जीवों के शरीर से वह धनुप बना है, उन जीवों को भी पाँच क्रियाएं लगती हैं। इसी प्रकार धनुपृष्ठ, डोरी, ण्हारू, बाण और शर, पत्र, फल, ण्हारू-ये सब भी पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

शंका-बाण फेंकनेवाले पुरुष को पांच क्रियाएं कहना ठीक है, क्योंकि उसके शरीर आदि का व्यापार दिखाई देता है। परन्तु धनुप के जीवों के पांच क्रियाएं कैसे हो सकती हैं? उनका तो शरीर भी उस समय अचेतन अर्थात् जड़ है। यदि जड़ शरीर के कारण भी क्रिया का होना तथा उससे कर्म बन्ध का होना माना जायेगा, तब तो सिद्ध जीवों को भी कर्म बन्ध का प्रसंग आवेगा। क्योंकि सिद्ध जीवों के मृतक शरीर भी लोक में जीव हिंसा आदि के निमित्त हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में एक बात और भी विचारने योग्य है, वह यह है कि-चूंकि धनुष, कायिकी आदि क्रियाओं में हेतु भूत है, इसलिये उसके जीवों को पाप कर्म का बन्ध होता है। तो इस प्रकार तो जीव रक्षा के साधनभूत साधु के पात्र आदि धर्मोपकरण के जीवों के भी पुण्य कर्म का बन्ध क्यों न माना जाय?

समाधान-अविरति के परिणाम से बन्ध होता है। अविरति के परिणाम जिस प्रकार पुरुष के होते हैं, वैसे ही उन जीवों के भी हैं, जिनसे कि धनुष आदि बने हैं। सिद्धों में अविरति परिणाम नहीं है। इसलिये उनके कर्मबन्ध नहीं होता।

साधु के धर्मोपकरण पात्र आदि के जीवों के पुण्य का बन्ध नहीं होता, क्योंकि पुण्य बन्ध में हेतुभूत विवेक आदि का उनमें अभाव होता है। इस प्रकार पुण्य कर्म बन्ध के हेतु-रूप विवेक आदि शुभ अध्यवसाय, पात्रादि के जीवों के न होने से उन्हें पुण्य का बन्ध नहीं होता। किन्तु धनुष के जीवों के अशुभ कर्म के बन्ध के हेतु रूप अविरति परिणाम के होने से उन जीवों को कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं एवं तन्निमित्तक अशुभ कर्म का बन्ध होता है। दूसरी बात यह है कि सर्वज्ञ भगवान् के वचन प्रमाण होते हैं। इसलिये

उन्होंने अपने ज्ञान में जैसा देखा वैसा कहा है। अतः उस पर उसी प्रकार श्रद्धा करनी चाहिये।

अपने भारीपन आदि के कारण जब बाण नीचे गिरता है, तब जिन जीवों के शरीर से वह बाण बना है, उन जीवों को पांच क्रियाएं लगती हैं। क्योंकि बाणादि रूप जीवों के शरीर तो साक्षात् मुख्य रूप से जीव हिंसा में प्रवृत्त होते हैं और धनुष की डोरी, ण्हारू आदि साक्षात् वध क्रिया में प्रवृत्त नहीं होते हैं, अपितु वे उसमें निमित्त मात्र होते हैं। इसलिये उन्हें चार क्रियाएं लगती हैं।

अन्यतीर्थिक का मिथ्यावाद

१२ प्रश्न-अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, जाव-परूवेंति से जहा णामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा णाभी अरगाउत्ता-सिया एवामेव जाव-चत्तारि पंच जोयणसयाइं बहुसमाइण्णे मणुयलोए मणुस्सेहिं-कहमेयं भंते ! एवं ?

१२ उत्तर-गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया, जाव-मणुस्सेहिंतो-जे ते एवं आहंसु, मिच्छा। अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि एवामेव जाव-चत्तारि, पंच जोयणसयाइं बहुसमाइण्णे णिरयलोए णेरइएहिं।

१३ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए, पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए ?

१३ उत्तर-जहा जीवाभिगमे आलावगो तहा णेयव्वो, जाव-

दुरहियासे ।

कठिन शब्दार्थ–बहुसमाइण्णे–बहुत भरा हुआ, एगत्तं–एकत्व–एकपना, पुहुत्तं–पृथक्त्व–बहुतपना ।

भावार्थ–१२ प्रश्न–हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि युवती युवक के दृष्टान्त से अथवा आरायुक्त चक्र की नाभि के दृष्टान्त से यावत् चार सौ. पांच सौ योजन तक यह मनुष्य लोक, मनुष्यों से ठसाठस भरा हुआ है, हे भगवन् ! यह किस तरह है ?

१२ उत्तर–हे गौतम! अन्यतीर्थियों का उपरोक्त कथन मिथ्या है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररुपणा करता हूं–कि चार सौ, पांच सौ योजन तक नरक लोक, नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है ।

१३ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव, एकत्व (एक रूप) की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? अथवा बहुत्व (बहुत रूपों) की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ?

१३ उत्तर–इस विषय में जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र में आलापक कहा है, उसी तरह 'दुरहियास' शब्द तक आलापक कहना चाहिये ।

विवेचन–सम्यक् प्ररूपणा का प्रकरण होने से मिथ्या प्ररूपणा के खण्डन पूर्वक सम्यक् प्ररूपणा बतलाई जाती है ।

अन्यतीर्थियों का उपरोक्त कथन विभंगज्ञान पूर्वक होने से असत्य है । भगवान् के वचन केवलज्ञान पूर्वक होने से सत्य हैं ।

नैरयिकों की विकुर्वणा के सम्बन्ध में जीवाभिगम सूत्र का अतिदेश किया गया है । वह इस प्रकार है–नैरयिक जीव एकपने की विकुर्वणा करने में भी समर्थ हैं और बहुपने की विकुर्वणा करने में भी समर्थ हैं । एकपने की विकुर्वणा करते हुए वे एक बड़े मुद्गर रूप अथवा मुसुंढि रूप इत्यादि शस्त्र की विकुर्वणा करते हैं और बहुपने की विकुर्वणा करते हुए वे बहुत से मुद्गर रूप या मुसुंढि रूप इत्यादि बहुत से शस्त्रों की विकुर्वणा करते हैं । वे सब संख्येय होते हैं, किन्तु असंख्येय नहीं । इस प्रकार संबद्ध शरीरों की विकुर्वणा करते हैं । विकुर्वणा करके एक दूसरे के शरीर को अभिघात पहुंचाते हुए वे वेदना की उदीरणा करते हैं । वह वेदना उज्ज्वल (सर्वथा सुख रहित) विपुल (सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त) प्रगाढ़

(प्रकर्ष युक्त) कर्कश (कर्कश पदार्थ के समान अर्थात् अनिष्ट), कटुक, परूष, निष्ठुर, चण्ड (रौद्र-भयंकर), तीव्र (शरीर में शीघ्र व्याप्त हो जाने वाली), दुःख रूप (असुख स्वरूप) दुर्ग (दुःख पूर्वक आश्रय करने योग्य) और दुस्सह (मुश्किल से सहन करने योग्य) होती है।

आधाकर्मादि आहार का फल

-आहाकम्मं 'अणवज्जे' त्ति मणं पहारेत्ता भवइ, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ-णत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ-अत्थि तस्स आराहणा-एएणं गमेणं णेयव्वं-कीयगडं, ठवियं, रइयगं, कंतार-भत्तं, दुब्भिक्खभत्तं, वद्दलियाभत्तं, गिलाणभत्तं, सेज्जायरपिंडं, राय-पिंडं।

१४ प्रश्न-आहाकम्मं 'अणवज्जे' त्ति बहुजणस्स मज्झे भासित्ता, सयमेव परिभुंजित्ता भवइ से णं तस्स ठाणस्स जाव-अत्थि तस्स आराहणा?

१४ उत्तर-एयं पि तह चेव, जाव-रायपिंडं।

१५ प्रश्न-आहाकम्मं 'अणवज्जे' त्ति अण्णमण्णस्स अणुप्प-दावइत्ता भवइ, से णं तस्स ०?

१५ उत्तर-एयं तह चेवं जाव-रायपिंडं।

१६ प्रश्न-आहाकम्मं णं 'अणवज्जे' त्ति बहुजणमज्झे पण्ण-

वइत्ता भवइ से णं तस्स जाव-अत्थि आराहणा ?

१६ उत्तर-जाव-रायपिंडं ।

कठिन शब्दार्थ-आहाकम्मं-आधाकर्म, अणवज्जे-अनवद्य-निष्पाप, पहारेत्ता-समझता-धारण करता हुआ, अणालोइयपडिक्कंते-विना आलोचना प्रायश्चित किये, एएणं गमेणं-इसी प्रकार, कीयगडं-खरीदा हुआ, ठवियं-स्थापित, रइयं-रचाहुआ, कंतारभत्तं-जंगल में निर्वाह के लिये वनाया हुआ, दुब्भिक्खभत्तं-दुर्भिक्ष में देने के लिए बनाया हुआ भोजन, वद्दलियाभत्तं-वर्षा के समय निर्वाह के लिए दिया हुआ आहार, गिलाणभत्तं-रोगी के लिए बनाया हुआ भोजन, सेज्जायरपिंडं-शय्या-स्थानदाता के घर का आहारादि अणुप्पदावइत्ता-परस्पर दिलाता हुआ ।

भावार्थ-'आधाकर्म अनवद्य-निष्पाप है'-इस प्रकार जो साधु मन में समझता हो, वह यदि आधाकर्म-स्थान विषयक आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाय, तो उसके आराधना नहीं होती । और आधाकर्म-स्थान विषयक आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो उसके आराधना होती है । इसी तरह क्रीतकृत (साधु के लिये खरीद कर लाया हुआ), स्थापित (साधु के लिये स्थापित करके रखा हुआ) रचित (साधु के लिये विखरे हुए भूके को लड्डू रूप में बांधा हुआ) कान्तारभक्त (जंगल में भिक्षुओं-भिखारी लोगों) के निर्वाह के लिये तैयार किया हुआ आहार आदि) दुर्भिक्ष भक्त (दुष्काल के समय भिखारी लोगों के निर्वाह के लिये तैयार किया हुआ आहार आदि) बार्दलिकाभक्त (दुर्दिन अर्थात् वर्षा के समय भिखारियों के लिये तैयार किया हुआ आहार आदि) ग्लानभक्त (रोगियों के लिये तैयार किया हुआ आहारादि) शय्यातरपिण्ड (जिस मकान में उतरे हैं, उस गृहस्थ के घर से आहार आदि लेना) राजपिण्ड (राजा के लिये तैयार किया गया, जिसका विभाग दूसरों को मिलता हो वह आहार आदि लेना) इन सब प्रकार के आहार आदि के विषय में जैसा आधाकर्म के सम्बन्ध में कहा है, वैसा ही जान लेना चाहिये ।

१४ प्रश्न-"आधाकर्म आहार आदि अनवद्य-निष्पाप है"-इस प्रकार

जो बहुत से मनुष्यों के बीच में कहता है और स्वयं भी आधाकर्म आहारादि का सेवन करता है। उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना, क्या उसके आराधना होती है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! यह भी उसी प्रकार जानना चाहिए यावत् राजपिण्ड तक इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् आधाकर्म यावत् राजपिण्ड पर्यन्त दूषित आहारादि का सेवन करने वाले के उसकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना आराधना नहीं होती।

१५ प्रश्न-आधाकर्म आहारादि 'अनवद्य (निष्पाप) है'-ऐसा कह कर जो साधु परस्पर देता है। हे भगवन् ! क्या उसके आराधना है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! यह भी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए, यावत् राजपिण्ड तक इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् उसके आराधना नहीं है।

१६ प्रश्न-'आधाकर्म आहारादि अनवद्य-निष्पाप है'-इस प्रकार जो बहुत से मनुष्यों के बीच में प्ररूपणा करता है। हे भगवन् ! क्या उसकी आराधना है ?

१६ उत्तर-यावत् राजपिण्ड तक पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये।

विवेचन-जिसने ज्ञानादि की आराधना नहीं की है, उसको पूर्वोक्त प्रकार से वेदना होती है। इसलिये आराधना के अभाव को बतलाने के लिये आधाकर्म आदि सूत्र कहे गये हैं।

आधाकर्म-'आधया साधुप्रणिधानेन यत्सचेतनमचेतनं क्रियते, अचेतनं वा पच्यते, चीयते वा गृहादिकं, वयते वा वस्त्रादिकं, तदाधाकर्म।'

अर्थात्-साधु के निमित से जो सचित्त को अचित्त बनाया जाता है, अचित-दाल आदि को पकाया जाता है, मकान आदि बनाये जाते हैं, या वस्त्रादि बनाये जाते हैं, उसे 'आधाकर्म दोप' कहते हैं।

रचितक-टूटे हुए लड्डू के चूरे को साधु के लिये फिर लड्डू बांधकर देना, 'रचितक दोप' है। यह औद्देशिक का भेद रूप है।

क्रीतकृत स्थापित आदि शब्दों का अर्थ भावार्थ में कर दिया है। ये सब आहारादि के दोप हैं। इन आगमोक्त दोपों से युक्त आधाकर्म आदि आहारादि को निर्दोष मानना,

उनका स्वयं सेवन करना, दूसरे साधुओं को देना और सभा में उन आधाकर्मादि के विषय में निर्दोष रूप से प्ररूपणा करना-ये सब विपरीत श्रद्धानादिरूप होने से मिथ्यात्वादि रूप हैं। इससे ज्ञान आदि की विराधना स्पष्ट ही है।

आचार्य उपाध्याय की गति

१७ प्रश्न-आयरिय-उवज्झाए णं भंते ! सविसयंसि गणं अगिलाए संगिण्हमाणे, अगिलाए उवगिण्हमाणे कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झइ, जाव-अंतं करेइ ?

१७ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ, अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ, तच्चं पुण भवग्गहणं णाइक्कमइ।

कठिन शब्दार्थ-सविसयंसि-अपने विषय में, संगिण्हमाणे-स्वीकार करते हुए, उवगिण्हमाणे-सहायता करते हुए, णाइक्कमइ-अतिक्रमण नहीं करते।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! अपने विषय में शिष्य वर्ग को अग्लान (खेद रहित) भाव से स्वीकार करने वाले और अग्लान भाव से सहायता करने वाले आचार्य और उपाध्याय, कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, यावत् सभी दुःखों का अन्त करते हैं ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! कितने ही आचार्य, उपाध्याय उसी भव से सिद्ध होते हैं और कितनेक दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, किन्तु तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करते।

विवेचन-आधाकर्मादि पदों का अर्थ प्रायः आचार्य और उपाध्याय, सभा में प्रल्पित

करते हैं। इसलिये आचार्य, उपाध्याय के विषय में कथन किया जाता है।

आचार्य और उपाध्याय अपने शिष्य वर्ग को सूत्र और अर्थ पढ़ाते हैं। इसलिये अखेद पूर्वक उन्हें स्वीकार करते हुए अर्थात् सूत्रार्थ पढ़ाने वाले और अखेद पूर्वक उन्हें संयम पालन में सहायता देने वाले आचार्य और उपाध्यायों में से कितने ही तो उसी भव में मोक्ष चले जाते हैं और कितने ही देवलोक में जाकर दूसरा मनुष्य भव धारण करके मोक्ष में चले जाते हैं, तथा कितने ही फिर देवलोक में जाकर तीसरा मनुष्य भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। किन्तु तीसरे मनुष्य-भव से अधिक भव नहीं करते।

मृषावादी अभ्याख्यानी को बन्ध

१८ प्रश्न-जे णं भंते ! परं अलिएणं असब्भूएणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाइ तस्स णं कहप्पगारा कम्मा कज्जंति ?

१८ उत्तर-गोयमा ! जे णं परं अलिएणं असंतवयणेणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाइ तस्स णं तहप्पगारा चेव कम्मा कज्जंति, जत्थेव णं अभिसमागच्छइ तत्थेव णं पडिसंवेदेइ तओ से पच्छा वेदेइ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति

॥ पंचमसए छट्ठो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-परं-दूसरे के लिए, अलिएणं-अलिक-झूठ बोलना, असब्भूएणं-असद्भूत-झूठा कथन, अब्भक्खाणेणं-अभ्याख्यान, कहप्पगारा-किस प्रकार के, तहप्पगारा-उसी प्रकार के।

भावार्थ-१८ प्रश्न-हे भगवन् ! जो दूसरे को अलीकवचन, असद्भूत

वचन और अभ्याख्यान वचन कहता है, वह किस प्रकार के कर्म बांधता है ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! जो दूसरे को अलीक वचन, असद्भूत वचन और अभ्याख्यान वचन कहता है, वह उसी प्रकार के कर्मों को बांधता है और वह जिस योनि में जाता है, वहां उन कर्मों को वेदता है और वेदने के बाद उनकी निर्जरा करता है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

विवेचन-पूर्वोक्त प्रकरण में दूसरे पर किये गये उपकार का अनन्तर-साक्षात् फल कहा गया है । अब दूसरे के प्रति किये गये उपघात का फल कहा जाता है ।

सत्य बात का अपलाप करना 'अलीक' कहलाता है । जैसे कि-किसी साधु ने ब्रह्मचर्य का पालन किया । परन्तु उसके विषय में कहना कि 'इसने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया' इत्यादि 'अलीक' वचन कहलाता है । जो बात नहीं हुई है ऐसी अछती बात को प्रकट करना 'असद्भूत' कहलाता है । जैसे कि-किसी के प्रति चोर नहीं होते हुए भी कहना कि 'यह चोर' है । यह असद्भूत वचन है । इसमें कहने वाले का दुष्ट अभिप्राय होने से अशोभन रूप है । तथा चोर न होते हुए भी 'यह चोर है'-यह आरोप लगाना झूठा दोषारोपण रूप मिथ्यावचन है । बहुत से लोगों के सामने किसी के अविद्यमान दोषों को कहना-निर्दोष पर दोषारोपण करना 'अभ्याख्यान' कहलाता है ।

इस प्रकार अलीक वचन, असद्भूत वचन और अभ्याख्यान वचन कहने वाला, उसी प्रकार के कर्मों को बांधता है, फिर वह जिस योनि में जाता है, वहां उन कर्मों को भोगता है और वेदने के बाद उन कर्मों की निर्जरा होती है ।

॥ इति पांचवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥
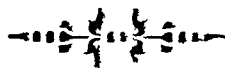
शतक ५ उद्देशक ७

परमाणु का कम्पन

१ प्रश्न-परमाणुपोग्गले णं भंते ! एयइ वेयइ, जाव-तं तं भावं परिणमइ ?

१ उत्तर-गोयमा ! सिय एयइ वेयइ, जाव-परिणमइ; सिय णो एयइ, जाव-णो परिणमइ ।

२ प्रश्न-दुप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयइ, जाव-परिणमइ ?

२ उत्तर-गोयमा ! सिय एयइ, जाव-परिणमइ, सिय णो एयइ, जाव-णो परिणमई; सिय देसे एयइ, देसे णो एयइ ।

३ प्रश्न-तिप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयइ ।

३ उत्तर-गोयमा ! सिय एयइ, सिय णो एयइ, सिय देसे एयइ -णो देसे एयइ, सिय देसे एयइ-णो देसा एयंति; सिय देसा एयंति णो देसे एयइ ।

४ प्रश्न-चउप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयइ ?

४ उत्तर-गोयमा ! सिय एयइ, सिय णो एयइ, सिय देसे एयइ-णो देसे एयइ, सिय देसे एयइ-णो देसा एयंति, सिय देसा एयंति-णो देसे एयइ; सिय देसा एयंति-णो देसा एयंति । जहा

-चउप्पएसिओ तहा पंचपएसिओ, तहा जाव-अणंतपएसिओ।

कठिन शब्दार्थ-एयइ-कम्पता है, वेयइ-विशेष कम्पता है, परिणमइ-परिणमता है, सिय-कदाचित्।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन्! क्या परमाणु पुद्गल कम्पता है? विशेष कम्पता है? यावत् उन उन भावों को परिणमता है?

१ उत्तर-हे गौतम! कदाचित् कम्पता है, विशेष कम्पता है और यावत् उन उन भावों को परिणमता है। कदाचित् नहीं कम्पता है,यावत् उन उन भावों को नहीं परिणमता है।

२ प्रश्न-हे भगवन्! क्या द्विप्रदेशी स्कंध कम्पता है,यावत् परिणमता है।

२ उत्तर-हे गौतम! कदाचित् कम्पता है, यावत् परिणमता है। कदाचित् नहीं कम्पता है, यावत् नहीं परिणमता है। कदाचित् एक देश (भाग) कम्पता है, एक देश नहीं कम्पता है।

३ प्रश्न-हे भगवन्! क्या त्रिप्रदेशी स्कन्ध कम्पता है?

३ उत्तर-हे गौतम! कदाचित् कम्पता है, कदाचित् नहीं कम्पता है। कदाचित् एक देश कम्पता है और एक देश नहीं कम्पता है। कदाचित् एकदेश कम्पता है और बहुत देश नहीं कम्पते हैं। कदाचित् बहुत देश कम्पते हैं और एक देश नहीं कम्पता है।

४ प्रश्न-हे भगवन्! क्या चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कम्पता है?

४ उत्तर-हे गौतम! १ कदाचित् कम्पता है, २ कदाचित् नहीं कम्पता, ३ कदाचित् एक देश कम्पता है और एक देश नहीं कम्पता है। ४ कदाचित् एकदेश कम्पता है, बहुत देश नहीं कम्पते हैं। ५ कदाचित् बहुत देश कम्पते हैं और एक देश नहीं कम्पता है। ६ कदाचित् बहुत देश कम्पते हैं और बहुत देश नहीं कम्पते हैं।

जिस प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार पंच प्रदेशी स्कन्ध से लेकर यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक प्रत्येक स्कन्ध के लिये कहना चाहिये।

विवेचन-छठे उद्देशक के अन्त में कर्म पुद्गलों की निर्जरा का कथन किया गया है। निर्जरा चलन रूप है। इसलिये सातवें उद्देशक में पुद्गलों की चलन क्रिया का कथन किया जाता है।

पुद्गलों में कम्पन आदि धर्म कादाचित्क है, इसलिये पुद्गल कदाचित् कम्पता है और कदाचित् नहीं कम्पता है। परमाणु पुद्गल में कम्पन विषयक दो भंग होते हैं। द्वि-प्रदेशी स्कन्ध में तीन भंग, त्रिप्रदेशी स्कन्ध में पांच भंग और चतुष्प्रदेशी स्कन्ध में छह भंग होते हैं, जो ऊपर भावार्थ में बतला दिये गये हैं। चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के समान पंच प्रदेशी स्कन्ध से लेकर यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक प्रत्येक स्कन्ध के विषय में कहना चाहिये।

परमाणु पुद्गलादि अछेद्य

५ प्रश्न-परमाणुपोग्गले णं भंते ! असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?

५ उत्तर-हंता, ओगाहेज्जा।

६ प्रश्न-से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्जा वा भिज्जेज्जा वा ?

६ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ, एवं जाव-असंखेज्जपएसिओ।

७ प्रश्न-अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्ज ?

७ उत्तर-हंता, ओगाहेज्ज।

८ प्रश्न-से णं तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?

८ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइए छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा अत्थे-

गइए णो छिज्जेज्ज वा णो भिज्जेज वा एवं अगणिकायस्स मज्झं-मज्झेणं, तहिं णवरं 'झियाएज्ज' भाणियव्वं, एवं पुक्खलसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं, तहिं 'उल्ले सिया', एवं गंगाए महाणईए पडिसोयं हव्वं आगच्छेज्जा, तहिं विणिहायं आवज्जेज्ज, उदगावत्तं वा उदगबिंदुं वा ओगाहेज्ज से णं तत्थ परियावज्जेज्ज ।

कठिन शब्दार्थ-असिधारं-तलवार की धार, खुरधारं-उस्तरे की धार, छिज्जेज्जा-छेदन होता है, भिज्जेज्जा-भेदन होता है, खलु-निश्चय ही, सत्थं कमति-शस्त्र क्रमण, झिया-एज्ज-जलता है, उल्ले-गीला होना ।

भावार्थ-५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या परमाणु पुद्गल, तलवार की धार या क्षुर-धार (उस्तरे की धार) पर रह सकता है ?

५ उत्तर-हाँ, गौतम ! रह सकता है ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! उस धार पर रहा हुआ परमाणु पुद्गल, क्या छिन्न भिन्न होता है ?

६ उत्तर- हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । परमाणु पुद्गल पर शस्त्र का आक्रमण नहीं हो सकता । इसी तरह यावत् असंख्य प्रदेशी स्कन्ध तक समझ लेना चाहिये । अर्थात् एक परमाणु यावत् असंख्य प्रदेशी स्कन्ध, शस्त्र द्वारा छिन्न भिन्न नहीं होता ।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, तलवार की धार पर या क्षुर धार पर रह सकता है ?

७ उत्तर-हाँ, गौतम ! रह सकता है ।

८ प्रश्न-क्या तलवार की धार पर या क्षुर की धार पर रहा हुआ अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, छिन्न भिन्न होता है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! कोई अनन्त प्रदेशी स्कन्ध छिन्न भिन्न होता है और कोई नहीं होता ।

जिस प्रकार छेदन भेदन के विषय में प्रश्नोत्तर किये गये हैं। उसी तरह से 'अग्निकाय के बीच में प्रवेश करता है'-इसी प्रकार के प्रश्नोत्तर एक परमाणु पुद्गल से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कहने चाहिये, किन्तु अन्तर इतना है कि जहाँ उसमें सम्भावित छेदन भेदन का कथन किया है, वहां 'जलता है' इस प्रकार कहना चाहिये। इसी तरह 'पुष्कर-सम्वर्तक नामक महामेघ के मध्य में प्रवेश करता है'-यह प्रश्नोत्तर भी कहने चाहिये। किन्तु वहाँ सम्भावित छेदन भेदन के स्थान पर 'गीला होता है-भीगता है' कहना चाहिये। इसी तरह 'गंगा महा नदी के प्रतिश्रोत-प्रवाह में वह परमाणु पुद्गल आता है और प्रतिस्खलित होता है। और 'उदकावर्त या उदकबिन्दु में प्रवेश करता है और वहाँ वह परमाणु पुद्गलादि विनष्ट होता है'। इस प्रकार प्रश्नोत्तर कहने चाहिये।

विवेचन-पुद्गल का अधिकार होने से यहाँ पुद्गल के सम्बन्ध में ही कहा जा रहा है। परमाणु पुद्गल, भेदित नहीं होता। अर्थात् उस के दो टुकड़े नहीं होते। इसी तरह वह छेद को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् वह खण्ड खण्ड या चूर्ण रूप नहीं होता, उसमें शस्त्र भी प्रवेश नहीं करता। यदि ऐसा हो जाय, तो उसका परमाणुपना ही नष्ट हो जाय।

जो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तथाविध बादर परिणाम वाला होता है, वह छेद भेद को प्राप्त होता है और जो सूक्ष्म परिणाम वाला होता है, वह छेद भेद को प्राप्त नहीं होता। शेष विषय स्पष्ट ही है।

परमाणु पुद्गलादि के विभाग

९ प्रश्न-परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सअड्ढे, समज्झे, सपएसे; उदाहु अणड्ढे, अमज्झे, अपएसे ?

९ उत्तर-गोयमा ! अणड्ढे, अमज्झे, अपएसे; णो सअड्ढे, णो समज्झे, णो सपएसे।

१० प्रश्न-दुप्पएसिए णं भंते ! खंधे किं सअड्ढे, समज्झे, सपएसे; उदाहु अणड्ढे, अमज्झे, अपएसे ?

१० उत्तर-गोयमा ! सअड्ढे, अमज्झे, सपएसे; णो अणड्ढे, णो समज्झे, णो अपएसे ।

११ प्रश्न-तिप्पएसिए णं भंते ! खंधे पुच्छा ?

११ उत्तर-गोयमा ! अणड्ढे, समज्झे, सपएसे, णो सअड्ढे, णो अमज्झे, णो अपएसे, जहा दुप्पएसिओ तहा जे समा ते भाणियव्वा, जे विसमा ते जहा तिप्पएसिओ तहा भाणियव्वा ।

१२ प्रश्न-संखेज्जपएसिए णं भंते ! किं खंधे सअड्ढे पुच्छा ?

१२ उत्तर-गोयमा ! सिय सअड्ढे, अमज्झे, सपएसे; सिय अणड्ढे, समज्झे, सपएसे; जहा संखेज्जपएसिओ तहा असंखेज्ज-पएसिओ वि, अणंतपएसिओ वि ।

कठिन शब्दार्थ-सअड्ढे-सार्ध, उदाहु-अथवा ।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या परमाणु पुद्गल, सार्ध, समध्य और सप्रदेश है ? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! परमाणु पुद्गल, अनर्द्ध है, अमध्य है और अप्रदेश है, परन्तु सार्ध नहीं, समध्य नहीं और सप्रदेश भी नहीं है ।

१० प्रश्न-भगवन् ! क्या द्विप्रदेशी स्कन्ध, सार्ध, समध्य और सप्रदेश है ? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! द्विप्रदेशी स्कन्ध, सार्ध है, सप्रदेश है और अमध्य है, किन्तु अनर्द्ध नहीं है, समध्य नहीं है और अप्रदेश भी नहीं है ।

११ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या त्रिप्रदेशी स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश है ? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है ?

११ उत्तर–हे गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध अनर्द्ध है। समध्य है और सप्रदेशी है। किन्तु सार्ध नहीं है, अमध्य नहीं है और अप्रदेश नहीं है। जिस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध के विषय में सार्ध आदि विभाग बतलाये गये हैं। उसी तरह समसंख्या (बेकी–दो की संख्या) वाले स्कन्धों के विषय में कहना चाहिये। जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध के विषय में कहा गया है, उसी तरह विषम संख्या (एकी संख्या) वाले स्कन्धों के विषय में कहना चाहिये।

१२ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या संख्यातप्रदेशी स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश है, अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है ?

१२ उत्तर–हे गौतम ! कदाचित् सार्ध होता है, अमध्य होता है और सप्रदेश होता है। कदाचित् अनर्द्ध होता है, समध्य होता है और सप्रदेश होता है। जिस प्रकार संख्यात प्रदेशी स्कन्ध के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के विषय में भी जान लेना चाहिये।

विवेचन–दो, चार, छह, आठ इत्यादि संख्यावाले प्रदेश, सम संख्या वाले प्रदेशी स्कन्ध कहलाते हैं। वे स्कन्ध, सार्ध (अर्ध सहित) होते हैं। तीन, पांच, सात इत्यादि संख्या वाले प्रदेश, विषम संख्या वाले प्रदेशी स्कन्ध कहलाते हैं। वे स्कन्ध समध्य (मध्य भाग सहित) होते हैं। संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध और अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, समप्रदेशिक (सम संख्यावाले प्रदेश युक्त) होते हैं और विषम प्रदेशिक (विषम संख्या वाले प्रदेश युक्त) भी होते हैं। जो सम प्रदेशिक होते हैं, वे सार्ध और अमध्य होते हैं। जो विषम प्रदेशी होते हैं, वे समध्य और अनर्द्ध (अर्ध भाग रहित) होते हैं।

परमाणु पुद्गलादि की स्पर्शना

१३ प्रश्न–परमाणुपोग्गले णं भंते ! परमाणुपोग्गलं फुसमाणे

किं १ देसेणं देसं फुसइ, २ देसेणं देसे फुसइ, ३ देसेणं सव्वं फुसइ, ४ देसेहिं देसं फुसइ; ५ देसेहिं देसे फुसइ, ६ देसेहिं सव्वं फुसइ, ७ सव्वेणं देसं फुसइ, ८ सव्वेणं देसे फुसइ, ९ सव्वेणं सव्वं फुसइ ?

१३ उत्तर-गोयमा ! १ णो देसेणं देसं फुसइ, २ णो देसेणं देसे फुसइ, ३ णो देसेणं सव्वं फुसइ, ४ णो देसेहिं देसं फुसइ, ५ णो देसेहिं देसे फुसइ, ६ णो देसेहिं सव्वं फुसइ, ७ णो सव्वेणं देसं फुसइ, ८ णो सव्वेणं देसे फुसइ, ९ सव्वेणं सव्वं फुसइ, एवं परमाणुपोग्गले दुप्पएसियं फुसमाणे सत्तम-णवमेहिं फुसइ, परमाणुपोग्गले तिप्पएसियं फुसमाणे णिपच्छिमएहिं तिहिं फुसइ, जहा परमाणुपोग्गले तिप्पएसियं फुसाविओ एवं फुसावेयव्वो जाव-अणंतपएसिओ ।

कठिन शब्दार्थ-फुसमाणे-स्पर्श करता हुआ ।

भावार्थ-१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या परमाणु पुद्गल, परमाणु पुद्गल को स्पर्श करता हुआ १ एक देश से एक देश को स्पर्श करता है ? अर्थात् एक भाग से एक भाग को स्पर्श करता है ? २ अथवा एक देश से बहुत देशों को स्पर्श करता है ? ३ अथवा एक देश से सब को स्पर्श करता है ? ४ अथवा बहुत देशों से एक देश को स्पर्श करता है ? ५ अथवा बहुत देशों से बहुत देशों को स्पर्श करता है ? ६ अथवा बहुत देशों से सभी को स्पर्श करता है ? ७ अथवा सर्व से एक देश को स्पर्श करता है ? ८ अथवा सर्व से बहुत देशों को स्पर्श करता है ? ९ अथवा सर्व से सर्व को स्पर्श करता है ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! १ एक देश से एक देश को स्पर्श नहीं करता, २ एक देश से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता, ३ एक देश से सर्व को स्पर्श

नहीं करता, ४ बहुत देशों से एक देश को स्पर्श नहीं करता, ५ बहुत देशों से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता, ६ बहुत देशों से सर्व को स्पर्श नहीं करता, ७ सर्व से एक देश को स्पर्श नहीं करता, ८ सर्व से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता। किन्तु ९ सर्व से सर्व को स्पर्श करता है।

द्विप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणु पुद्गल सातवें और नववें न दो विकल्पों से स्पर्श करता है। त्रिप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणु पुद्गल, उपरोक्त नव विकल्पों में से अन्तिम तीन विकल्पों (सातवें, आठवें और नवमें) से स्पर्श करता है। अर्थात् सर्व से एक देश को स्पर्श करता है। सर्व से बहुत देशों को स्पर्श करता है और सर्व से सर्व को स्पर्श करता है। जिस प्रकार एक परमाणु पुद्गल द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करने का कहा, उसी तरह चतुष्प्रदेशी स्कन्ध को, पंच प्रदेशी स्कन्ध को, यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को करने का कहना चाहिये।

१४ प्रश्न-दुप्पएसिए णं भंते ! खंधे परमाणुपोग्गलं फुसमाणे पुच्छा ?

१४ उत्तर-तईय णवमेहिं फुसइ, दुप्पएसिओ दुप्पएसियं फुसमाणो पढम-तईय-सत्तम-णवमेहिं फुसइ, दुप्पएसिओ तिप्पएसियं फुसमाणो आइल्लएहि य, पच्छिल्लएहि य तिहिं फुसइ, मज्झिमएहिं तिहिं विपडिसेहेयव्वं, दुप्पएसिओ जहा तिप्पएसियं फुसाविओ एवं फुसावेयव्वो जाव-अणंतपएसियं।

कठिन शब्दार्थ-आइल्लएहि-पहले के, पच्छिल्लएहि-पीछे के।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध परमाणु पुद्गल को स्पर्श करता हुआ किस प्रकार स्पर्श करता है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! तीसरे और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध, द्विप्रदेशी स्कन्ध को पहले, तीसरे, सातवें और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी स्कन्ध को पहले, दूसरे, तीसरे, सातवें, आठवें और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। इसमें बीच के चौथे, पांचवे और छठे विकल्प को छोड़ देना चाहिये। जिस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्ध की स्पर्शना कही गई है, उसी प्रकार-चतुष्प्रदेशी स्कन्ध, पंच प्रदेशी स्कन्ध, यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध की स्पर्शना भी कहनी चाहिये।

१५ प्रश्न-तिपएसिए णं भंते ! खंधे परमाणुपोग्गलं फुसमाणे पुच्छा ?

१५ उत्तर-तईय-छट्ठ-णवमेहिं फुसइ, तिपएसिओ दुपएसियं फुसमाणो पढमएणं, तईएणं, चउत्थ-छट्ठ-सत्तम-णवमेहिं फुसइ, तिपएसिओ तिपएसिअं फुसमाणो सव्वेसु वि ठाणेसु फुसइ। जहा तिपएसिओ तिपएसिअं फुसाविओ एवं तिप्पएसिओ जाव-अणंत-पएसिएणं संजोएयव्वो, जहा तिपएसिओ एवं जाव-अणंतपए-सिओ भाणियव्वो।

कठिन शब्दार्थ-संजोएयव्वो-संयुक्त करना चाहिये।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! परमाणु पुद्गल को स्पर्श करता हुआ त्रिप्रदेशी स्कन्ध, किस प्रकार स्पर्श करता है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! उपरोक्त तीसरे, छठे और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। त्रिप्रदेशी स्कन्ध, द्विप्रदेशी स्कन्ध को पहले, तीसरे, चौथे, छठे,

सातवें और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। त्रिप्रदेशी स्कन्ध को उपरोक्त विकल्पों से स्पर्श करता है। जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्ध की स्पर्शना कही गई है, उसी प्रकार त्रिप्रदेशी द्वारा चतुष्प्रदेशी, पंच प्रदेशी यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक की स्पर्शना कहनी चाहिये। जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्वारा स्पर्शना कही गई है, उसी तरह यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध द्वारा स्पर्शना कहनी चाहिये।

विवेचन–यहाँ परमाणु पुद्गलादि की स्पर्शना के विषय में नव विकल्प कहे गये हैं। वे इस प्रकार है–

(१) एक देश से एक देश का स्पर्श।
(२) एक देश से बहुत देशों का स्पर्श।
(३) एक देश से सर्व का स्पर्श।
(४) बहुत देशों से एक देश का स्पर्श।
(५) बहुत देशों से बहुत देशों का स्पर्श।
(६) बहुत देशों से सर्व का स्पर्श।
(७) सर्व से एक देश का स्पर्श।
(८) सर्व से बहुत देशों का स्पर्श।
(९) सर्व से सर्व का स्पर्श।

जब एक परमाणु पुद्गल, एक परमाणु पुद्गल को स्पर्श करता है, तब 'सर्व से सर्व को स्पर्श करता है', केवल यह एक नववां विकल्प ही पाया जाता है। दूसरे विकल्प इसमें घटित नहीं होते, क्योंकि परमाणु अंश रहित होता है।

शंका–'सर्व से सर्व को स्पर्श करता है,' यह विकल्प स्वीकार करने पर दो परमाणुओं की एकता हो जायेगी। ऐसा होने पर भिन्न भिन्न परमाणुओं के योग से जो घट आदि स्कन्ध बनते हैं,–वह बात कैसे घटित होगी?

समाधान–'सर्व से सर्व को स्पर्श करता है'–इस विकल्प का यह अर्थ नहीं है कि दो परमाणु परस्पर मिलकर एक हो जाते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह है कि दो परमाणु परस्पर एक दूसरे का स्पर्श–समस्त स्वात्मा द्वारा करते हैं। क्योंकि परमाणुओं में 'अर्द्ध–आधा' आदि विभाग नहीं होते। इसलिये वे परमाणु अर्द्ध आदि विभाग द्वारा स्पर्श नहीं कर सकते। घटादि पदार्थों के अभाव की आपत्ति तो तब आ सकती है–जब कि दो परमाणुओं

की एकता हो जाती हो, परन्तु यह बात नहीं है। दोनों परमाणु अपने अपने स्वरूप में भिन्न ही रहते हैं, दोनों की एकता (स्वरूप मिश्रण) नहीं होती। इसलिये घटादि पदार्थों के अभाव रूप पूर्वोक्त आपत्ति नहीं आ सकती।

जब परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता है, तब 'सर्व से देश', रूप सातवां विकल्प और 'सर्व से सर्व' रूप नववां विकल्प ये दो विकल्प–पाये जाते हैं। जब द्विप्रदेशी स्कन्ध, आकाश के दो प्रदेशों पर रहा हुआ होता है, तब परमाणु पुद्गल उस स्कन्ध के देश को अपने समस्त आत्मा द्वारा स्पर्श करता है। क्योंकि परमाणु का विषय उस स्कन्ध के देश को स्पर्श करने का ही है। अर्थात् आकाश के दो प्रदेशों पर स्थित द्विप्रदेशी स्कन्ध के देश को ही परमाणु स्पर्श कर सकता है। जब द्विप्रदेशी स्कन्ध, परिणाम की सूक्ष्मता से आकाश के एक प्रदेश पर स्थित होता है, तब परमाणु सर्वात्म द्वारा उस स्कन्ध के सर्वात्म को स्पर्श करता है।

जब परमाणु पुद्गल त्रिप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता है, तब सातवां, आठवां और नववां–ये तीन विकल्प पाये जाते हैं। जब त्रिप्रदेशी स्कन्ध, आकाश के तीन प्रदेशों पर रहा हुआ होता है, तब परमाणु अपने सर्वात्म द्वारा उसके एक देश को स्पर्श करता है। क्योंकि तीन आकाश प्रदेशों पर रहे हुए त्रिप्रदेशी स्कन्ध के एक प्रदेश को स्पर्श करने का ही परमाणु में सामर्थ्य है। यह सातवां विकल्प है। जब त्रिप्रदेशी स्कन्ध के दो प्रदेश एक आकाश प्रदेश पर रहे हुए हों और तीसरा एक प्रदेश, अन्यत्र (दूसरे आकाश प्रदेश पर) रहा हुआ हो, तब एक आकाश प्रदेश पर रहे हुए दो परमाणुओं को स्पर्श करने का सामर्थ्य, एक परमाणु में होने से 'सर्व से बहुत देशों को स्पर्श करता है'। यह आठवां विकल्प पाया जाता है।

शंका–'सर्व से बहुत देशों (दो देशों) को स्पर्श करता है'–यह आठवां विकल्प जैसे त्रिप्रदेशी स्कन्ध में घटाया गया है, उसी तरह द्विप्रदेशी स्कन्ध में भी घटाना चाहिये। क्योंकि वहां पर भी उस द्विप्रदेशी स्कन्ध के दोनों प्रदेशों को वह परमाणु सर्वात्म द्वारा स्पर्श करता है, इसलिये यह विकल्प द्विप्रदेशी स्कन्ध में क्यों नहीं बतलाया गया है।

समाधान–जिस प्रकार यह विकल्प त्रिप्रदेशी स्कन्ध में घटाया गया है, उस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध में घटित नहीं हो सकता, क्योंकि द्विप्रदेशी स्कन्ध स्वयं अवयवी है, वह किसी का अवयव नहीं है, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि 'सर्व से दो देशों को स्पर्श करता है'। त्रिप्रदेशी स्कन्ध में तो तीन प्रदेशों की अपेक्षा दो प्रदेशों का स्पर्श करते समय एक प्रदेश बाकी रहता है। अर्थात् उसके जो दो परमाणु एक आकाश प्रदेश पर रहे

हुए हैं, वे दोनों, भिन्न आकाश प्रदेश पर रहे हुए उस त्रिप्रदेशी स्कन्ध के दो अंश हैं और एक परमाणु पुद्गल उन दो अंशों को स्पर्श करता है। इसलिये 'सर्व से दो देशों को स्पर्श करता है'-इस प्रकार का व्यपदेश करना संगत है।

जब त्रिप्रदेशी स्कन्ध परिणाम की सूक्ष्मता के कारण एक आकाश प्रदेश पर स्थित होता है, तब 'सर्व से सर्व को स्पर्श करता है'-यह नववां विकल्प घटित होता है। परमाणु द्वारा चतुःप्रदेशी, पंचप्रदेशी आदि स्कन्धों की स्पर्शना भी इसी प्रकार कहनी चाहिए।

जब द्विप्रदेशी स्कन्ध, एक परमाणु पुद्गल को स्पर्श करता है, तब तीसरा और नववां ये दो विकल्प घटित होते हैं। अर्थात् जब द्विप्रदेशी स्कन्ध, आकाश के दो प्रदेशों पर स्थित होता है, तब वह अपने एक देश द्वारा समस्त परमाणुओं को स्पर्श करता है और तब 'एक भाग से सर्व भाग को स्पर्श करता है।' यह तीसरा विकल्प घटित होता है। जब द्विप्रदेशी स्कन्ध, आकाश के एक प्रदेश पर स्थित होता है, तब वह सर्वात्म द्वारा सर्व परमाणु को स्पर्श करता है। इसलिये वहां 'सर्व से सर्व को स्पर्श करता है।' यह नववाँ विकल्प घटित होता है।

जब द्विप्रदेशी स्कन्ध, द्विप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता है, तब पहला, तीसरा, सातवां और नववां-ये चार विकल्प घटित होते हैं। जब दोनों द्विप्रदेशी स्कन्ध, प्रत्येक प्रत्येक दो दो आकाश प्रदेशों पर स्थित होते हैं, तब वे परस्पर एक देश से एक देश को स्पर्श करते हैं। तब प्रथम विकल्प घटित होता है। जब एक द्विप्रदेशी स्कन्ध, एक आकाश प्रदेश पर स्थित होता है और दूसरा द्विप्रदेशी स्कन्ध, दो आकाश प्रदेशों पर स्थित होता है, तब 'एक देश से सर्व को स्पर्श करता है'-यह तीसरा विकल्प घटित होता है। क्योंकि दो आकाश प्रदेशों पर स्थित द्विप्रदेशी स्कन्ध, अपने एक देश द्वारा एक आकाश प्रदेश पर स्थित द्विप्रदेशी स्कन्ध के सर्व देशों को स्पर्श करता है। 'सर्व से देश को स्पर्श करता है'-यह सातवां विकल्प है। क्योंकि एक आकाश प्रदेश पर स्थित द्विप्रदेशी स्कन्ध, सर्वात्म द्वारा दो आकाश प्रदेशों पर स्थित द्विप्रदेशी स्कन्ध के एक देश को स्पर्श करता है। जब दोनों द्विप्रदेशी स्कन्ध, प्रत्येक प्रत्येक एक एक आकाश प्रदेश पर स्थित होते हैं, तब 'सर्व से सर्व को स्पर्श करता है'-यह नववां विकल्प घटित होता है।

इसी प्रकार उपर्युक्त रीति से आगे के यथा संभव सब विकल्प घटा लेने चाहिये।

परमाणु पुद्गलादि की संस्थिति

१६ प्रश्न-परमाणुपोग्गले णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

१६ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवं जाव-अणंतपएसिओ ।

१७ प्रश्न-एगपएसोगाढे णं भंते ! पोग्गले सेए तम्मि वा ठाणे, अण्णम्मि वा ठाणे कालओ केवच्चिरं होइ ?

१७ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं, एवं जाव-असंखेज्जपएसोगाढे ।

१८ प्रश्न-एगपएसोगाढे णं भंते ! पोग्गले णिरेए कालओ केवच्चिरं होइ ?

१८ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवं जाव-असंखेज्जपएसोगाढे ।

कठिन शब्दार्थ-केवच्चिरं-कितने काल तक, एगपएसोगाढे-एक प्रदेश में रहा हुआ, सेए-सकम्प, तम्मि वा ठाणे-उस स्थान पर, निरेए-निष्कम्प ।

भावार्थ-१६ प्रश्न-हे भगवन् ! परमाणु पुद्गल, काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! परमाणु पुद्गल, जघन्य एक समय तक रहता है और उत्कृष्ट असंख्य काल तक रहता है । इसी प्रकार यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिए ।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! एक आकाश प्रदेशावगाढ़ (एक आकाश प्रदेश

पर स्थित) पुद्गल स्वस्थान पर या दूसरे स्थान पर कितने काल तक सकम्प रहता है ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल, जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग तक सकम्प रहता है। इसी प्रकार यावत् असंख्येय प्रदेशावगाढ़ तक कहना चाहिए।

१८ प्रश्न-हे भगवन् ! एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल, कितने काल तक निष्कम्प रहता है ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्येय काल तक निष्कम्प रहता है। इसी प्रकार यावत् असंख्येय प्रदेशावगाढ़ तक कहना चाहिए।

१९ प्रश्न-एगगुणकालए णं भंते ! पोग्गले कालओ केवच्चिरं होइ ?

१९ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं; एवं जाव-अणंतगुणकालए, एवं वण्ण-गंध-रस-फास जाव-अणंतगुणलुक्खे; एवं सुहुमपरिणए पोग्गले, एवं बादरपरिणए पोग्गले।

२० प्रश्न-सद्दपरिणए णं भंते ! पोग्गले कालओ केवच्चिरं होइ ?

२० उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं; असद्दपरिणए जहा एगगुणकालए।

कठिन शब्दार्थ--सद्दपरिणए-शब्द परिणत।

भावार्थ-१९ प्रश्न-हे भगवन् ! एक गुण काला पुद्गल, कब तक रहता है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्येय काल तक रहता है। इसी प्रकार यावत् अनन्तगुण काला पुद्गल तक कहना चाहिए। इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श यावत् अनन्तगुण रूक्ष पुद्गल तक कहना चाहिए। इसी प्रकार सूक्ष्म परिणत पुद्गल और बादर परिणत पुद्गल के विषय में भी कहना चाहिए।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! शब्द परिणत पुद्गल कितने काल तक रहता है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग तक रहता है। जिस प्रकार एक गुण काला पुद्गल के विषय में कहा है, उसी तरह अशब्द परिणत पुद्गल के विषय में कहना चाहिए।

विवेचन-पुद्गल का अधिकार होने से यहां पुद्गलों के द्रव्य, क्षेत्र और भावों का विचार, काल की अपेक्षा से किया गया है। 'परमाणु पुद्गल' यह द्रव्य विषयक विचार है। वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्य काल तक रहता है। क्योंकि असंख्य काल के बाद पुद्गलों की एक रूप स्थिति नहीं रहती।

'एक प्रदेशावगाढ़' इत्यादि का कथन कर क्षेत्र सम्बन्धी विचार किया गया है।

पुद्गलों का चलन आकस्मिक होता है। इसलिये निष्कंपत्व आदि की तरह कंपन-चलन, का काल असंख्येय नहीं होता है।

कोई भी पुद्गल अनन्तप्रदेशावगाढ़ नहीं होता। इसलिये 'असंख्यात प्रदेशावगाढ़' ऐसा कहा गया है।

परमाणु पुद्गलादि का अन्तर काल

२१ प्रश्न-परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

२१ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असं-खेज्जं कालं।

२२ प्रश्न-दुप्पएसियस्स णं भंते ! खंधस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

२२ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, एवं जाव-अणंतपएसिओ ।

२३ प्रश्न-एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स सेयस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

२३ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असं-खेज्जं कालं; एवं जाव-असंखेज्जपएसोगाढे ।

२४ प्रश्न-एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स णिरेयस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

२४ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलि-याए असंखेज्जइभागं; एवं जाव-असंखेज्जपएसोगाढे, वण्ण-गंध-रस-फास-सुहुमपरिणय-बायरपरिणयाणं एएसिं जं चेव संचिट्ठणा तं चेव अंतरं वि भाणियव्वं ।

कठिन शब्दार्थ-संचिट्ठणा-स्थिति काल ।

भावार्थ-२१ प्रश्न-हे भगवन् ! परमाणु पुद्गल का अन्तर कितने काल का होता है । अर्थात् जो पुद्गल, परमाणु रूप है, वह परमाणुपन को छोड़कर

स्कन्धादि रूप में परिणत हो जाय, तो वह कितने काल बाद वापिस परमाणुपन को प्राप्त कर सकता है ?

२१ उत्तर–हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल का अन्तर होता है।

२२ प्रश्न–हे भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

२२ उत्तर–हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल का अन्तर होता है। इसी तरह यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिये।

२३ प्रश्न–हे भगवन् ! एक प्रदेशावगाढ़ सकंप पुद्गल का अन्तर कितने काल का होता है, अर्थात् एक आकाश प्रदेश में स्थित सकंप पुद्गल अपना कंपन बन्द करे, तो फिर उसे वापिस कंपन करने में कितना समय लगता है।

२३ उत्तर–हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल का अन्तर होता है। इसी तरह यावत् असंख्य प्रदेशावगाढ़ स्कन्ध तक कहना चाहिये।

२४ प्रश्न–हे भगवन् ! एक प्रदेशावगाढ़ निष्कंप पुद्गल का अन्तर कितने काल का होता है ? अर्थात् निष्कंप पुद्गल अपनी निष्कंपता छोड़कर फिर वापिस कितने काल बाद निष्कंपता प्राप्त कर सकता है ?

२४ उत्तर–हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्येय भाग का अन्तर होता है। इसी तरह यावत् असंख्य प्रदेशावगाढ़ स्कन्ध तक समझ लेना चाहिये। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, सूक्ष्मपरिणत और बादर परिणत के लिये जो उनका संचिट्ठणा काल (स्थिति काल) कहा गया है, वही उनका अन्तर काल समझना चाहिये।

२५ प्रश्न–सद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

२५ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।

२६ प्रश्न-असद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

२६ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ।

२७ प्रश्न-एयस्स णं भंते ! दव्वट्ठाणाउयस्स, खेत्तट्ठाणाउयस्स, ओगाहणट्ठाणाउयस्स, भावट्ठाणाउयस्स कयरे कयरे जाव-विसेसाहिया ?

२७ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवे खेत्तट्ठाणाउए, ओगाहणट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे, दव्वट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे, भावट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे ।

-खेत्तोगाहणादव्वे, भावट्ठाणाउयं च अप्प-बहुं,
खेत्ते सव्वत्थोवे, सेसा ठाणा असंखेज्जगुणा ।

कठिन शब्दार्थ-दव्वट्ठाणाउयस्स-द्रव्यस्थानायु ।

भावार्थ-२५ प्रश्न-हे भगवन् ! शब्द परिणत पुद्गल का अन्तर कितने काल का होता है ।

२५ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल का अन्तर होता है ।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! अशब्द परिणत पुद्गल का अन्तर कितने काल का होता है ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग का अन्तर होता है ।

२७ प्रश्न-हे भगवन् ! इन द्रव्यस्थानायु, क्षेत्रस्थानायु, अवगाहनास्थानायु और भावस्थानायु, इन सब में कौन किस से कम, ज्यादा, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! सब से थोड़ा क्षेत्रस्थानायु है, उससे अवगाहनास्थानायु असंख्य गुणा है, उससे द्रव्यस्थानायु असंख्य गुणा है और उससे भावस्थानायु असंख्य गुणा है ।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है-क्षेत्र, अवगाहना, द्रव्य और भाव स्थानायु, इनका अल्पबहुत्व कहना चाहिये । इनमें क्षेत्र स्थानायु सबसे अल्प है और बाकी तीन स्थान क्रमशः असंख्य गुणा है ।

विवेचन-एक परमाणु अपना परमाणुपन छोड़ कर वापिस दूसरी बार परमाणुपन को प्राप्त हो, इसके बीच का काल स्कन्ध सम्बन्ध काल' कहलाता है । वह जघन्य एक समय का है और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है । द्विप्रदेशी स्कन्ध अपना द्विप्रदेशी स्कन्धपन छोड़कर दूसरे स्कन्ध रूप में अथवा परमाणु रूप में परिणत होने का जो काल है, वह 'अन्तर काल' है । वह अन्तर काल अनन्त है । क्योंकि बाकी सब स्कन्ध अनन्त है और उन प्रत्येक स्कन्ध की उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात काल है ।

जो निष्कंप का काल है वह सकंप का अन्तरकाल है । इसलिये कहा गया है कि सकंप का उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात काल है । सकंप का जो काल है, वह निष्कंप का अन्तर काल है । इसलिये यह कहा गया है कि निष्कंप का उत्कृष्ट अन्तर काल, आवलिका का असंख्यातवां भाग है । एक गुण कालत्वादि का अन्तर एक गुण कालत्वादि के काल के समान है, किन्तु द्विगुण कालत्वादि की अनन्तता के कारण उनका अन्तर अनन्त काल का नहीं है । सूक्ष्मादि परिणतों का अन्तर काल, उनके अवस्थान काल के समान है । क्योंकि एक का जो अवस्थान काल है, वह दूसरे का अन्तर काल है । वह असंख्येय काल का होता है ।

पुद्गल द्रव्य का परमाणु, द्विप्रदेशी स्कन्ध आदि रूप से रहना 'द्रव्यस्थानायु' कहलाता है । एक प्रदेशादि क्षेत्र में पुद्गलों के अवस्थान को 'क्षेत्रस्थानायु' कहते हैं । इसी

तरह 'अवगाहना स्थानायु और भावस्थानायु' के विषय में भी समझ लेना चाहिये। किंतु इतनी विशेषता है कि परिमित स्थान में पुद्गलों का रहना 'अवगाहनास्थानायु' कहलाता है। और पुद्गलों का श्यामत्वादि धर्म 'भाव स्थानायु' कहलाता है।

शंका-अवगाहना और क्षेत्र में ऐसा क्या भेद है, जिससे यहाँ उनका पृथक् पृथक् कथन किया गया है।

समाधान-पुद्गलों से अवगाढ़ (व्याप्त) स्थान क्षेत्र कहलाता है। विवेक्षित क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भी पुद्गलों का परिमित क्षेत्र में रहना 'अवगाहना' कहलाती है। अर्थात् पुद्गलों का आधार स्थल रूप एक प्रकार का आकार अवगाहना कहलाती है। और पुद्गल जहां रहता है, वह 'क्षेत्र' कहलाता है।

क्षेत्र स्थानायु, अवगाहनास्थानायु, द्रव्यस्थानायु और भाव स्थानायु-इन सब में क्षेत्र-स्थानायु सब से थोड़ा है और बाकी के तीन असंख्य गुणा है। क्योंकि क्षेत्र अमूर्तिक होने से उसके साथ पुद्गलों को बंध का कारण 'स्निग्धत्व' न होने से पुद्गलों का क्षेत्रावस्थान काल सब से थोड़ा है। एक क्षेत्र में रहा हुवा पुद्गल दूसरे क्षेत्र में जाने पर भी उसकी वही अवगाहना रहती है। इसलिये क्षेत्र स्थानायु की अपेक्षा अवगाहना स्थानायु असंख्य गुणा है। अवगाहना की निवृत्ति हो जाने पर भी द्रव्य लम्बे काल तक रहता है। इसलिये अवगाहनास्थानायु की अपेक्षा द्रव्य स्थानायु असंख्य गुणा है। द्रव्य की निवृत्ति होने पर भी गुणों का अवस्थान रहता है। अर्थात् द्रव्य में गुणों का बाहुल्य होने से सब गुणों का नाश नहीं होता, तथा द्रव्य का अन्यत्व होने पर भी बहुत से गुणों की स्थिति रहती है। इसलिये द्रव्यस्थानायु की अपेक्षा भावस्थानायु असंख्य गुणा है।

नैरयिक आरंभी परिग्रही

२८ णेरइया णं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा; उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा ?

२८ उत्तर-गोयमा ! णेरइया सारंभा सपरिग्गहा, णो अणा-

रंभा, णो अपरिग्गहा।

२६ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-अपरिग्गहा ?

२६ उत्तर-गोयमा ! णेरइया णं पुढविक्कायं समारंभंति, जाव-तसकायं समारंभंति; सरीरा परिग्गहिया भवंति, कम्मा परिग्गहिया भवंति, सचित्ता-ऽचित्त-मीसियाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति-से तेणट्ठेणं तं चेव गोयमा !

कठिन शब्दार्थ-सारंभा-आरंभ सहित, सपरिग्गहा-परिग्रह सहित, उदाहु-अथवा।

भावार्थ-२८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, या अनारम्भी और अपरिग्रही हैं ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, किंतु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से वे आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, किंतु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक पृथ्वीकाया यावत् त्रसकाय का समारम्भ करते हैं। उन्होंने शरीर परिगृहीत किये हैं, कर्म परिगृहीत किये हैं, सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य परिगृहीत किये हैं। इसलिए नैरयिक आरम्भ सहित हैं, परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं।

असुरकुमार आरंभी परिग्रही

३० प्रश्न-असुरकुमारा णं भंते ! किं सारंभा पुच्छा ?

३० उत्तर-गोयमा ! असुरकुमारा सारंभा सपरिग्गहा; णो

अणारंभा, अपरिग्गहा।

३१ प्रश्न–से केणट्ठेणं ?

३१ उत्तर–गोयमा ! असुरकुमारा णं पुढविकायं समारंभंति, जाव–तसकायं समारंभंति, सरीरा परिग्गहिया भवंति, कम्मा परिग्गहिया भवंति, भवणा परिग्गहिया भवंति; देवा, देवीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ परिग्गहिया भवंति; आसण-सयण-भंडऽमत्तो-वगरणा परिग्गहिया भवंति, सच्चित्ताऽचित्त-मीसियाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति–से तेणट्ठेणं तहेव, एवं जाव–थणियकुमारा।

–एगिंदिया जहा णेरइया।

भावार्थ–३० प्रश्न–हे भगवन् ! क्या असुरकुमार, आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, या अनारम्भी और अपरिग्रही हैं ?

३० उत्तर–हे गौतम ! असुरकुमार, आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं।

३१ प्रश्न–हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३१ उत्तर–हे गौतम ! असुरकुमार, पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय का समारंभ (वध) करते हैं। उन्होंने शरीर परिगृहीत किये हैं, कर्म परिगृहित किये हैं, भवन परिगृहीत किये हैं, देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यिनी, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चिनी ये सब परिगृहीत किये हैं। आसन, शयन, भाण्ड, (मिट्टी के बर्तन) मात्रक, (कांसी के बर्तन) और उपकरण (लोहे की कड़ाही, कुड़छी आदि) परिगृहीत किये हैं। सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य परिगृहीत किये हैं। इसलिये वे आरंभ और परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारंभी और अपरिग्रही नहीं हैं। इसी प्रकार

स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये ।

जिस प्रकार नैरयिकों के लिये कहा है, उसी प्रकार एकेन्द्रियों के विषय में भी कहना चाहिये ।

बेइंद्रिय आदि का परिग्रह

३२ प्रश्न–बेइंदिया णं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा ?

३२ उत्तर–तं चेव जाव–सरीरा परिग्गहिया भवंति, बाहिरिया भंड-मत्तो-वगरणा परिग्गहिया भवंति, एवं जाव–चउरिंदिया ।

३३ प्रश्न–पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! ०

३३ उत्तर–तं चेव जाव–कम्मा परिग्गहिया भवंति, टंका, कूडा, सेला, सिहरी, पब्भारा, परिग्गहिया भवंति, जल-थल-बिल-गुह-लेणा परिग्गहिया भवंति, उज्झर-णिज्झर-चिल्लल-पल्लल-वप्पिणा परिग्गहिया भवंति, अगड-तडाग-दह-णइओ, वावि-पुक्खरिणी, दीहिया, गुंजालिया, सरा, सरपंतियाओ, सरसरपंतियाओ, बिलपंतियाओ परिग्गहियाओ भवंति; आरामु-ज्जाणा, काणणा, वणा, वणसंडा, वणराईओ परिग्गहियाओ भवंति; देवउला-ऽऽसम-पवा-थूभ खाइय-परिखाओ परिग्गहियाओ भवंति, पागार-अट्टालग-चरिय दार·गोपुरा परिग्गहिया भवंति, पासाय-घर-सरण-लेण-आवणा परिग्गहिया भवंति; सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-

महापहा परिग्गहिया भवंति, सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणियाओ परिग्गहियाओ भवंति, लोही-लोहकडाइ-कडुच्छया परिग्गहिया भवंति, भवणा परिग्गहिया भवंति, देवा, देवीओ मणुस्सा, मणुस्सीओ, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ; आसण-सयण-खंड-भंड-सचित्ताऽचित्त-मीसियाइं दव्वाइं परिग्गहिया भवंति—से तेणट्ठेणं।
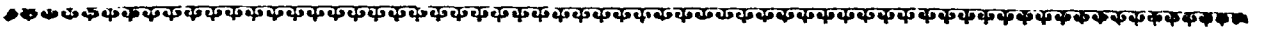
—जहा तिरिक्खजोणिया तहा मणुस्सा वि भाणियव्वा, वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा भवणवासी तहा णेयव्वा।

भावार्थ—३२ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या बेइन्द्रिय जीव, आरंभ और परिग्रह सहित है, अथवा अनारंभी और अपरिग्रही हैं ?

३२ उत्तर—हे गौतम ! बेइन्द्रिय जीव, आरंभ और परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारंभी और अपरिग्रही नहीं हैं। क्योंकि उन्होंने यावत् शरीर परिगृहीत किये हैं, और बाह्य भाण्ड (बर्तन) मात्रक, उपकरण, परिगृहीत किये हैं। इसी तरह चौइन्द्रिय तक कहना चाहिये।

३३ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीव, आरंभ और परिग्रह सहित हैं, अथवा अनारम्भी और अपरिग्रही हैं ?

३३ उत्तर—हे गौतम ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीव, आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, किंतु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने शरीर यावत् कर्म परिगृहीत किये हैं। उन्होंने टंक (पर्वत का छेदा हुआ टुकड़ा) कूट (शिखर अथवा हाथी बांधने का स्थान) शैल (मुण्ड पर्वत) शिखरी (शिखर वाले पर्वत) प्राग्भार (थोड़े झुके हुए पर्वत के हिस्से) परिगृहीत किये हैं। उन्होंने जल, स्थल, बिल, गुफा, लयन (पहाड़ में खोदकर बनाये हुए घर) परिगृहीत

किये हैं। उन्होंने उज्झर (पर्वत से गिरने वाला पानी का झरना) निर्झर (पानी का टपकना) चिल्लल (कीचड़ मिश्रित जल स्थान) पल्लल (आनन्ददायक जल स्थान) वप्रीण (क्यारा वाला जल स्थान अथवा तट वाला प्रदेश) परिगृहीत किये हैं। उन्होंने अगड़ (कूआ) तड़ाग (तालाब) द्रह (जलाशय) नदी, वापी (चतुष्कोण बावड़ी) पुष्करिणी (गोल बावड़ी अथवा कमलों युक्त बावड़ी) दीर्घिका (हौज अथवा लम्बी बावड़ी) गुञ्जालिका (टेढ़ी बावड़ी) सरोवर, सरपंक्ति (सरोवर श्रेणी) सरसरपंक्ति (एक तालाब से दूसरे तालाब में पानी जाने का नाला) बिलपंक्ति (बिलश्रेणी) परिगृहीत किये हैं। आराम (दम्पती आदि के क्रीड़ा करने का स्थान-माधवी लता मण्डप) उद्यान (सार्वजनिक बगीचा) कानन (गांव के पास का वन) वन (गांव से दूर के वन) वनखण्ड (जहां एक जाति के वृक्ष हो ऐसे वन) वनराजि (वृक्षों की पंक्ति) ये सब परिगृहीत किये हैं। देव कुल (मन्दिर) आश्रम (तापसादि का आश्रम) प्रपा (प्याऊ) स्तूभ (खम्भा) खाई (ऊपर चौड़ी और नीचे संकड़ी खोदी हुई खाई) परिखा (ऊपर और नीचे समान खोदी हुई खाई) ये सब परिगृहीत किये हैं। प्राकार (किला) अट्टालक (किले पर बनाया हुआ एक प्रकार का मकान अथवा झरोखा) चरिका (घर और किले के बीच में हाथी आदि के जाने का मार्ग) द्वार (खिड़की) और गोपुर (नगर का दरवाजा) ये सब परिगृहीत किये हैं। प्रासाद (देव-भवन या राज-भवन) घर (सामान्य घर) सरण (झोंपड़ा) लयन (गुहा गृह-पर्वत खोद कर बनाया हुआ घर) आपण (दूकान) ये सब परिगृहीत किये हैं। शृंगाटक (सिघाड़े के आकार का मार्ग-त्रिकोण मार्ग) त्रिक (जहां तीन मार्ग मिलते हैं ऐसा स्थान) चतुष्क (जहां चार मार्ग मिलते हैं ऐसा स्थान) चत्वर (जहां सब मार्ग मिलते हैं ऐसा स्थान अर्थात् चौक) चतुर्मुख (चार दरवाजे वाला मकान) महापथ (महामार्ग-राजमार्ग) ये सब परिगृहीत किये हैं। शकट (गाड़ी) रथ, यान (सवारी) युग्य (जम्पान-दो हाथ प्रमाण एक प्रकार की पालखी अथवा रिक्सागाड़ी) गिल्ली (अम्बाड़ी) थिल्ली (घोड़े का पलान) शिविका (पालखी या डोली) स्यन्दमानिका (म्याना

पालकी) ये सब परिगृहीत किये हैं। लौही (लोहे का एक बर्तन विशेष) कटाह (लोहे की कड़ाही) कडुच्छुक (कुड़छी) ये सब परिगृहीत किये हैं। न परिगृहीत किये हैं। देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यिनी (स्त्री) तिर्यञ्च योनिक, ञ्चिनी, आसन, शयन, खण्ड (टुकड़ा) भाण्ड (बर्तन) सचित्त, अचित्त और । द्रव्य परिगृहीत किये हैं। इस कारण से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीव, ंभ और परिगृह सहित हैं। किन्तु अनारंभी और अपरिगृही नहीं हैं।

जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों के विषय में कहा, उसी प्रकार ष्यों के लिये भी कहना चाहिये। जिस प्रकार भवनपति देवों के विषय में कहा, ी प्रकार बाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना हिये।

विवेचन-यहाँ चौवीस ही दण्डकों के विषय में आरंभ और परिग्रह सम्बन्धी ोत्तर किये गये हैं। प्रत्याख्यान न करने के कारण एकेंद्रिय आदि जीव भी आरम्भ ग्रह से सहित हैं।

हेतु अहेतु

१-पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा-हेउं जाणइ, हेउं पासइ, हेउं ज्झइ, हेउं अभिसमागच्छइ, हेउं छउमत्थमरणं मरइ।

२-पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा-हेउणा जाणइ, जाव-हेउणा छउ-त्थमरणं मरइ।

३-पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा-हेउं ण जाणइ जाव-अण्णाणं रणं मरइ।

४-पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा-हेउणा ण जाणइ जाव-हेउणा अण्णाणमरणं ति मरइ।

५-पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा-अहेउं जाणइ, जाव-अहेउं केवलिमरणं मरइ।

६-पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा-अहेउणा जाणइ, जाव-अहेउणा केवलिमरणं मरइ।

७-पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा-अहेउं ण जाणइ, जाव-अहेउं छउमत्थमरणं मरइ।

८-पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा-अहेउणा ण जाणइ, जाव-अहेउणा छउमत्थमरणं मरइ।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥

॥ पंचमसए सत्तमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-बुज्झइ-श्रद्धता है, अभिसमागच्छइ-अच्छी तरह से प्राप्त करता है

भावार्थ-१ पांच हेतु कहे गये हैं। यथा-हेतु को जानता है, हेतु को देखता है, हेतु को श्रद्धता है, हेतु को अच्छी तरह प्राप्त करता है और हेतु युक्त छद्मस्थ मरण मरता है।

२ पांच हेतु कहे गये हैं। यथा-हेतु से जानता है, यावत् हेतु से छद्मस्थ मरण मरता है।

३ पांच हेतु कहे गये हैं। यथा-हेतु को नहीं जानता है, यावत् हेतु युक्त अज्ञान मरण मरता है।

४ पांच हेतु कहे गये हैं। यथा-हेतु से नहीं जानता है, यावत् हेतु

सुख पालकी) ये सब परिगृहीत किये हैं। लौही (लोहे का एक बर्तन विशेष) लोहकटाह (लोहे की कड़ाही) कडुच्छुक (कुड़छी) ये सब परिगृहीत किये हैं। भवन परिगृहीत किये हैं। देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यिनी (स्त्री) तिर्यञ्च योनिक, तिर्यञ्चिनी, आसन, शयन, खण्ड (टुकड़ा) भाण्ड (बर्तन) सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य परिगृहीत किये हैं। इस कारण से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीव, आरंभ और परिगृह सहित हैं। किन्तु अनारंभी और अपरिगृही नहीं हैं।

जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों के विषय में कहा, उसी प्रकार मनुष्यों के लिये भी कहना चाहिये। जिस प्रकार भवनपति देवों के विषय में कहा, उसी प्रकार बाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना चाहिये।

विवेचन-यहाँ चौवीस ही दण्डकों के विषय में आरंभ और परिग्रह सम्बन्धी प्रश्नोत्तर किये गये हैं। प्रत्याख्यान न करने के कारण एकेंद्रिय आदि जीव भी आरम्भ परिग्रह से सहित हैं।

हेतु अहेतु

१-पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा-हेउं जाणइ, हेउं पासइ, हेउं बुज्झइ, हेउं अभिसमागच्छइ, हेउं छउमत्थमरणं मरइ।

२-पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा-हेउणा जाणइ, जाव-हेउणा छउमत्थमरणं मरइ।

३-पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा-हेउं ण जाणइ जाव-अण्णाणं मरणं मरइ।

४–पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा–हेउणा ण जाणइ जाव–हेउणा अण्णाणमरणं ति मरइ ।

५–पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा–अहेउं जाणइ, जाव–अहेउं केवलिमरणं मरइ ।

६–पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा–अहेउणा जाणइ, जाव–अहेउणा केवलिमरणं मरइ ।

७–पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा–अहेउं ण जाणइ, जाव–अहेउं छउमत्थमरणं मरइ ।

८–पंच अहेउ पण्णत्ता, तं जहा–अहेउणा ण जाणइ, जाव–अहेउणा छउमत्थमरणं मरइ ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति

॥ पंचमसए सत्तमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ–बुज्झइ–श्रद्धता है, अभिसमागच्छइ–अच्छी तरह से प्राप्त करता है ।

भावार्थ–१ पांच हेतु कहे गये हैं । यथा–हेतु को जानता है, हेतु को देखता है, हेतु को श्रद्धता है, हेतु को अच्छी तरह प्राप्त करता है और हेतु युक्त छद्मस्थ मरण मरता है ।

२ पांच हेतु कहे गये हैं । यथा–हेतु से जानता है, यावत् हेतु से छद्मस्थ मरण मरता है ।

३ पांच हेतु कहे गये हैं । यथा–हेतु को नहीं जानता है, यावत् हेतु युक्त अज्ञान मरण मरता है ।

४ पांच हेतु कहे गये हैं । यथा–हेतु से नहीं जानता है, यावत् हेतु से

अज्ञान मरण मरता है।

५ पांच अहेतु कहे गये हैं। यथा–अहेतु को जानता है, यावत् अहेतु युक्त केवलिमरण मरता है।

६ पांच अहेतु कहे गये हैं। यथा–अहेतु से जानता है। यावत् अहेतु से केवलिमरण मरता है।

७ पांच अहेतु कहे गये हैं। यथा–अहेतु को नहीं जानता है, यावत् अहेतु युक्त छद्मस्थमरण मरता है।

८ पांच अहेतु कहे गये हैं। यथा–अहेतु से नहीं जानता है, यावत् अहेतु से छद्मस्थमरण मरता है।

हे भगवन् यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।

विवेचन–हेतुओं को बतलाने के लिये आठ सूत्र कहे गये हैं। उनमें से चार सूत्र छद्मस्थ की अपेक्षा से कहे गये हैं और आगे के चार सूत्र केवली (सर्वज्ञ) की अपेक्षा कहे गये हैं। साध्य का निश्चय करने के लिये साध्याविनाभूत कारण को हेतु कहते हैं। जैसे कि–दूर से धूम को देखकर वहां अग्नि का ज्ञान करना। इस प्रकार के हेतु को देखकर छद्मस्थ पुरुष अनुमान द्वारा ज्ञान करता है। केवली प्रत्यक्ष ज्ञानी होने के कारण उनके लिये हेतु (अनुमान प्रमाण) की आवश्यकता नहीं है। पहले के चार सूत्रों में से पहला और दूसरा सूत्र सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ की अपेक्षा है, तथा तीसरा और चौथा सूत्र मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से है। सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ का मरण हेतु पूर्वक होता है, किन्तु उसका अज्ञान मरण नहीं होता। मिथ्यादृष्टि का मरण अज्ञान मरण होता है। केवली का मरण निर्हेतुक होता है।

हेतु को हेतु द्वारा, अहेतु को और अहेतु द्वारा इत्यादि रूप से आठ सूत्र कहे गये हैं। भिन्न भिन्न क्रिया की अपेक्षा से यहाँ पांच हेतु और पाँच अहेतु कहे गये हैं। इन आठों सूत्रों का गूढ़ार्थ तो बहुश्रुत महापुरुष ही जानते हैं। *

॥ इति पांचवे शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

* इन आठ सूत्रों के विषय में टीकाकार श्री अभयदेव सूरि ने लिखा है–"गमनिकामात्रमेवेदम्। अष्टानामप्येषां सूत्राणां भावार्थं तु बहुश्रुताः विदन्ति" ॥

अर्थात् यहां हेतुओं का अर्थ मात्र शब्दार्थ की दृष्टि से किया गया है। इनका वास्तविक भावार्थ तो बहुश्रुत ही जानते हैं।

शतक ५ उद्देशक ८

निर्ग्रंथी पुत्र अनगार के प्रश्न

तेणं कालेणं तेणं समएणं, जाव-परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी णारयपुत्ते णामं अणगारे पगइभद्दए, जाव-विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव-अंतेवासी णियंठिपुत्ते णामं अणगारे पगइभद्दए, जाव-विहरइ; तएणं से णियंठिपुत्ते अणगारे जेणामेव णारयपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता णारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी-

कठिन शब्दार्थ-जेणामेव-जहां, उवागच्छइ-आये।

भावार्थ-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् दर्शन के लिये गई, यावत् धर्मोपदेश श्रवण कर वापिस लौट आई। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी नारदपुत्र नाम के अनगार थे। वे प्रकृति भद्र थे, यावत् विचरते थे।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी निर्ग्रंथीपुत्र नामक अनगार थे। वे प्रकृति से भद्र थे, यावत् विचरते थे। किसी समय निर्ग्रंथीपुत्र अनगार, नारदपुत्र अनगार के पास आये और निर्ग्रंथीपुत्र ने नारदपुत्र अनगार से इस प्रकार पूछा-

१ प्रश्न-सव्वपोग्गला ते अज्जो ! किं सअड्ढा, समज्झा, सपएसा, उदाहु अणड्ढा, अमज्झा, अपएसा ?

१ उत्तर-अज्जो ! त्ति णारयपुत्ते अणगारे णियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी-सव्वपोग्गला मे अज्जो ! सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; णो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ।

२ प्रश्न-तएणं से नियंठिपुत्ते अणगारे णारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी-जइ णं ते अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; णो अणड्ढा, अमज्झा, अपएसा किं दव्वादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; णो अणड्ढा, अमज्झा, अपएसा ? खेत्तादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा तह चेव ? कालादेसेणं तं चेव ? भावादेसेणं तं चेव ?

२ उत्तर-तएणं से णारयपुत्ते अणगारे णियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी-दव्वादेसेण वि मे अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; णो अणड्ढा, अमज्झा, अपएसा; खेत्तादेसेण वि, कालादेसेग वि, भावादेसेण वि एवं चेव ।

कठिन शब्दार्थ-दव्वादेसेणं-द्रव्यादेश से अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा, खेत्तादेसेणं-क्षेत्रादेश से, कालादेसेणं-कालादेश से, भावादेसेणं-भावादेश से ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे आर्य ! क्या तुम्हारे मतानुसार सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं ? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश हैं ।

१ उत्तर-हे 'आर्य' ! इस प्रकार से सम्बोधित कर नारदपुत्र अनगार

ने निर्ग्रंथी पुत्र अनगार से इस प्रकार कहा-मेरे मतानुसार सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं।

२ प्रश्न-इसके पश्चात् निर्ग्रंथीपुत्र अनगार ने नारदपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि हे आर्य ! यदि आपके मतानुसार सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं है, तो हे आर्य ! क्या द्रव्यादेश (द्रव्य की अपेक्षा) से सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं ? तथा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं है ? हे आर्य ! क्या क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेश की अपेक्षा से भी सभी पुद्गल इसी तरह हैं ?

२ उत्तर-तब नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रंथी पुत्र अनगार से कहा कि हे आर्य ! मेरी धारणानुसार द्रव्यादेश से भी सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं है। इसी प्रकार क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेश की अपेक्षा से भी हैं।

तएणं से णियंठिपुत्ते अणगारे णारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी-जइ णं हे अज्जो ! दव्वादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; णो अणड्ढा, अमज्झा, अपएसा, एवं ते परमाणुपोग्गले वि सअड्ढे, समज्झे, सपएसे; णो अणड्ढे, अमज्झे, अपएसे; जइ णं अज्जो ! खेत्तादेसेण वि सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; एवं ते एगपएसोगाढे वि पोग्गले सअड्ढे, समज्झे, सपएसे; जइ णं अज्जो ! कालादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; एवं ते एगसमयट्ठिइए वि पोग्गले सअड्ढे, समज्झे, सपएसे-तं चेव; जइ णं अज्जो ! भावादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सप-

एसा; एवं ते एगगुणकालए वि पोग्गले सअड्ढे, समज्झे, सपएसे तं चेव; अह ते एवं ण भवइ तो जं वयसि 'दव्वादेसेण वि सव्व-पोग्गला सअड्ढा, समज्झा, सपएसा; णो अणड्ढा, अमज्झा, अप-एसा; एवं खेत्त-कालभावादेसेण वि' तं णं मिच्छा ।

कठिन शब्दार्थ-मिच्छा-मिथ्या ।

भावार्थ-तब निग्रंथीपुत्र अनगार ने नारद पुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि हे आर्य ! यदि द्रव्यादेश से सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किंतु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं, तब तो आपके मतानुसार परमाणु पुद्-गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होना चाहिए, किंतु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं होना चाहिये । हे आर्य ! यदि क्षेत्रादेश से भी सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्र-देश होना चाहिये । हे आर्य ! यदि कालादेश से भी सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो एक समय की स्थिति वाला पुद्गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होना चाहिये । हे आर्य ! यदि भावादेश से भी सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो एक गुण काला पुद्गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्र-देश होना चाहिये । यदि आपके मतानुसार ऐसा न हो, तो जो आप यह कहते हैं कि द्रव्यादेश, क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेश से भी सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं, तो आपका कथन मिथ्या ठहरेगा ?

-तएणं से णारयपुत्ते अणगारे णियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी-णो खलु देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं जाणामो, पासामो, जइ णं देवाणुप्पिया णो गिलायंति परिकहित्तए तं इच्छामि णं देवाणु-

पियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म जाणित्तए।

—तएणं से णियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी—दव्वादेसेण वि मे अज्जो! सव्वे पोग्गला सपएसा वि, अप्पएसा वि अणंता; खेत्तादेसेण वि एवं चेव, कालादेसेण वि, भावादेसेण वि एवं चेव; जे दव्वओ अपएसे से खेत्तओ णियमा अपएसे, कालओ सिय सपएसे, सिय अपएसे; भावओ सिय सपएसे, सिय अपएसे। जे खेत्तओ अपएसे से दव्वओ सिय सपएसे, सिय अपएसे, कालओ भयणाए, भावओ भयणाए; जहा खेत्तओ एवं कालओ, भावओ। जे दव्वओ सपएसे से खेत्तओ सिय सपएसे, सिय अपएसे; एवं कालओ, भावओ वि। जे खेत्तओ सपएसे से दव्वओ णियमा सपएसे, कालओ भयणाए, भावओ भयणाए; जहा दव्वओ तहा कालओ, भावओ वि।

कठिन शब्दार्थ—परिकहित्तए—कहने में।

भावार्थ—इसके बाद नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रंथीपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि—हे देवानुप्रिय! मैं इस अर्थ को नहीं जानता हूँ और नहीं देखता हूँ। हे देवानुप्रिय! यदि इस अर्थ को कहने में आपको ग्लानि (कष्ट) नहीं हो, तो मैं आप देवानुप्रिय के पास इस अर्थ को सुनकर और जानकर अवधारण करना चाहता हूँ?

इसके बाद निर्ग्रंथीपुत्र अनगार ने नारदपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि—हे आर्य! मेरी धारणानुसार द्रव्यादेश से भी सभी पुद्गल सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी हैं। वे पुद्गल अनन्त हैं। क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेश

से भी इसी प्रकार जानना चाहिए। द्रव्यादेश से जो पुद्गल अप्रदेश हैं, वे क्षेत्रादेश से नियमा (निश्चित रूप से) अप्रदेश हैं। कालादेश से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते हैं और भावादेश से भी कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते हैं। क्षेत्रादेश से जो पुद्गल अप्रदेश होते हैं, वे द्रव्यादेश से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते हैं। कालादेश से और भावादेश से भी भजना (विकल्प) से जानना चाहिए। जिस प्रकार अप्रदेशी पुद्गल के विषय में 'क्षेत्रादेश' का कथन किया है, उसी प्रकार कालादेश और भावादेश का भी कथन करना चाहिए।

जो पुद्गल द्रव्यादेश से सप्रदेश होता है, वह क्षेत्रादेश से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होता है। इसी तरह कालादेश और भावादेश से भी जान लेना चाहिए। जो पुद्गल क्षेत्रादेश से सप्रदेश होता है, वह द्रव्यादेश से नियमा सप्रदेश होता है। कालादेश से और भावादेश से भजना (विकल्प) से होता है। जिस प्रकार सप्रदेशी पुद्गल के विषय में द्रव्यादेश का कथन किया, उसी प्रकार कालादेश और भावादेश का भी कथन करना चाहिए।

३ प्रश्न-एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं दव्वादेसेणं, खेत्तादेसेणं, कालादेसेणं, भावादेसेणं सपएसाणं, अपएसाणं कयरे कयरे जाव-विसेसाहिया वा ?

३ उत्तर-णारयपुत्ता ! सव्वत्थोवा पोग्गला भावादेसेणं अपएसा, कालादेसेणं अपएसा असंखेज्जगुणा, दव्वादेसेणं अपएसा असंखेज्जगुणा, खेत्तादेसेणं अपएसा असंखेज्जगुणा, खेत्तादेसेणं चेव सपएसा असंखेज्जगुणा; दव्वादेसेणं सपएसा विसेसाहिया, कालादेसेणं

सपएसा विसेसाहिया, भावादेसेणं सपएसा विसेसाहिया।

—तएणं से णारयपुत्ते अणगारे णियंठिपुत्तं अणगारं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एयं अट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेइ, खामित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे जाव–विहरइ।

कठिन शब्दार्थ–भुज्जो भुज्जो–बारबार।

भावार्थ–३ प्रश्न–हे भगवन् ! द्रव्यादेश से, क्षेत्रादेश से, कालादेश से और भावादेश से सप्रदेश और अप्रदेश पुद्गलों में कौन किससे कम, ज्यादा, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

३ उत्तर–हे नारपुत्र ! भावादेश से अप्रदेश पुद्गल सब से थोड़े हैं। उनसे कालादेश की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल असंख्य गुणा हैं। उनसे द्रव्यादेश की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल असंख्य गुणा हैं। उनसे क्षेत्रादेश की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल असंख्यगुणा हैं। उनसे क्षेत्रादेश से सप्रदेश पुद्गल असंख्यगुणा हैं। उनसे द्रव्यादेश की अपेक्षा सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं। उनसे कालादेश की अपेक्षा सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं। और उनसे भावादेश की अपेक्षा सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं।

इसके बाद नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रंथी पुत्र अनगार को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके अपनी कही हुई मिथ्या बात के लिये उनसे विनय पूर्वक बारंबार क्षमायाचना की। क्षमायाचना करके संयम और तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए यावत् विचरने लगे।

विवेचन–सातवें उद्देशक में स्थिति की अपेक्षा से पुद्गलों का कथन किया गया है। अब इस आठवें उद्देशक में उन्हीं पुद्गलों का प्रदेश की अपेक्षा कथन किया जाता है। द्रव्य की अपेक्षा परमाणुत्व आदि का कथन करना द्रव्यादेश कहलाता है। एक प्रदेशावगाढत्व (एक प्रदेश में रहना) इत्यादि का कथन क्षेत्रादेश कहलाता है। एक समय की स्थिति इत्यादि का कथन कालादेश कहलाता है, और एक गुण काला इत्यादि कथन भावादेश कहलाता है।

निर्ग्रंथीपुत्र अनगार ने अपने कथन में सप्रदेश और अप्रदेश का निरूपण किया है। तो सप्रदेश में सार्द्ध और समध्य का ग्रहण करना चाहिये और अप्रदेश में अनर्द्ध और अमध्य का ग्रहण करना चाहिये। सप्रदेश और अप्रदेश पुद्गल अनन्त हैं।

अब द्रव्यादि की अपेक्षा पुद्गलों की अप्रदेशता और सप्रदेशता बतलाई जाती है। जो पुद्गल द्रव्य से अप्रदेश (परमाणु रूप) है, वह क्षेत्र से नियमा अप्रदेश होता है। क्योंकि वह पुद्गल क्षेत्र के एक प्रदेश में ही रहता है, दो प्रदेश आदि में नहीं। काल से वह पुद्गल यदि एक समय की स्थिति वाला है, तो अप्रदेश है और अनेक समय की स्थिति वाला है, तो सप्रदेश है। इसी तरह भाव से जो एक गुण काला आदि है, तो अप्रदेश है, और अनेक गुण काला आदि है, तो सप्रदेश है। यह द्रव्य की अपेक्षा से अप्रदेश पुद्गल का कथन किया गया है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल का कथन किया जाता है। जो पुद्गल क्षेत्र से अप्रदेश होता है, वह द्रव्य से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होता है। क्योंकि क्षेत्र के एक प्रदेश में रहने वाले द्वयणुकादि सप्रदेश हैं, किन्तु क्षेत्र से अप्रदेश हैं। तथा परमाणु एक प्रदेश में रहने वाला होने के कारण जैसे द्रव्य से अप्रदेश है, वैसे ही क्षेत्र से भी अप्रदेश है। जो पुद्गल क्षेत्र से अप्रदेश है, वह काल से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होता है। जैसे कि कोई पुद्गल एक प्रदेश में रहने वाला है और एक समय की स्थिति वाला है, तो काल की अपेक्षा भी अप्रदेश है। इसी तरह कोई दूसरा पुद्गल जो एक प्रदेश में रहने वाला है किन्तु अनेक समय की स्थिति वाला है, तो काल की अपेक्षा सप्रदेश है। जो पुद्गल क्षेत्र की अपेक्षा अप्रदेश है, यदि वह एक गुण काला आदि है, तो भाव की अपेक्षा भी अप्रदेश है और यदि अनेक गुण काला आदि है, तो क्षेत्र की अपेक्षा अप्रदेश होते हुए भी भाव की अपेक्षा सप्रदेश है।

अब काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल का कथन किया जाता है। जिस प्रकार क्षेत्र से अप्रदेश पुद्गल का कथन किया गया है, उसी प्रकार काल से और भाव से भी कहना चाहिये। यथा-जो पुद्गल काल से अप्रदेश होता है, वह द्रव्य से, क्षेत्र से और भाव से कदाचित् सप्रदेश होता है और कदाचित् अप्रदेश होता है। जो पुद्गल भाव से अप्रदेश होता है, वह द्रव्य से, क्षेत्र से और काल से कदाचित् सप्रदेश होता है और कदाचित् अप्रदेश होता है।

अब सप्रदेश पुद्गल के विषय में कथन किया जाता है। जो पुद्गल द्वयणुकादि रूप

होने से द्रव्य से सप्रदेश होता है, वह क्षेत्र से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होता है। क्योंकि यदि वह दो प्रदेशों में रहता है, तो सप्रदेश है और एक प्रदेश में रहता है, तो अप्रदेश है। इसी तरह काल से और भाव से भी कहना चाहिये।

दो प्रदेश आदि में रहने वाला पुद्गल क्षेत्र से सप्रदेश है, वह द्रव्य से भी सप्रदेश ही होता है। क्योंकि जो पुद्गल द्रव्य से अप्रदेश होता है, वह दो आदि प्रदेशों में नहीं रह सकता है। जो पुद्गल क्षेत्र से सप्रदेश होता है। वह काल से और भाव से कदाचित् सप्रदेश होता है और कदाचित् अप्रदेश होता है।

जो पुद्गल काल से सप्रदेश होता है. वह द्रव्य से, क्षेत्र से और भाव से कदाचित् सप्रदेश होता है और कदाचित् अप्रदेश होता है।

जो पुद्गल भाव से सप्रदेश होता है, वह द्रव्य से, क्षेत्र से और काल से कदाचित् सप्रदेश होता है, और कदाचित् अप्रदेश होता है।

सप्रदेश और अप्रदेश पुद्गलों का अल्प बहुत्व जो ऊपर बतलाया गया है, वह स्पष्ट है। सब से थोड़े भाव से अप्रदेश पुद्गल हैं। जैसे-एक गुण काला और एक गुण नीला आदि। उनसे काल से अप्रदशी पुद्गल असंख्यात गुणा हैं। जैसे-एक समय की स्थिति वाले पुद्गल। उनसे द्रव्य से अप्रदेशी पुद्गल असंख्यात गुणा हैं। जैसे-सभी परमाणु पुद्गल। उनसे क्षेत्र से अप्रदेशी पुद्गल असंख्यात गुणा हैं। जैसे-एक एक आकाश प्रदेश अवगाहन करने वाले पुद्गल। उनसे क्षेत्र से सप्रदेशी पुद्गल असंख्यात गुणा हैं। जैसे-द्विप्रदेशावगाढ़, त्रिप्रदेशावगाढ़ यावत् असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल। उनसे द्रव्य से सप्रदेशी पुद्गल विशेषाधिक हैं। जैसे-द्वि प्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी स्कन्ध यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध। उनसे काल से सप्रदेशी पुद्गल विशेषाधिक हैं। जैसे-दो समय की स्थिति वाले, तीन समय की स्थिति वाले यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल। उनसे भाव से सप्रदेशी पुद्गल विशेषाधिक हैं। जैसे-दो गुण काले. तीन गुण काले यावत् अनन्त गुण काले पुद्गल आदि इस अल्पबहुत्व को समझाने के लिये कहा गया है-

ठाणे ठाणे वड्ढइ भावाईणं जं अप्पएसाणं।
तं चिय भावाईणं परिभस्सइ सप्पएसाणं ॥

अर्थात् स्थान स्थान पर जो भावादिक अप्रदेशों की वृद्धि होती है, वही भावादिक सप्रदेशों की हानि होती है। जैसे कि-कल्पना से सब पुद्गलों की संख्या एक लाख मानली जाय, तो उन में भाव से अप्रदेश पुद्गल १००० हैं, काल से अप्रदेश पुद्गल २००० हैं,

द्रव्य से अप्रदेश पुद्गल ५००० हैं और क्षेत्र से अप्रदेश पुद्गल १०००० हैं, भाव से सप्रदेश पुद्गल ६६००० हैं, काल से सप्रदेश पुद्गल ६८००० हैं, द्रव्य से सप्रदेश पुद्गल ६५००० हैं और क्षेत्र से सप्रदेश पुद्गल ६०००० हैं। ऐसा होने से भाव अप्रदेशों की अपेक्षा काल अप्रदेशों में १००० बढ़ते हैं और वही १००० की संख्या भाव सप्रदेशों की अपेक्षा काल सप्रदेशों में कम हो जाती है। इसी तरह दूसरे स्थानों पर भी जान लेना चाहिये। इसकी स्थापना इस प्रकार है-

भाव से	काल से	द्रव्य से	क्षेत्र से
अप्रदेश १०००	२०००	५०००	१००००
सप्रदेश ६६०००	६८०००	६००००	६००००

पुद्गलों की यह एक लाख की संख्या, समझाने के लिये कल्पित की गई है। वास्तव में जिनेश्वर भगवान् ने तो अनन्त कही है।

जीवों की हानि और वृद्धि

४ प्रश्न-'भंते !' त्ति भगवं गोयमे जाव-एवं वयासी-जीवा णं भंते ! किं वड्ढंति, हायंति, अवट्ठिया ?

४ उत्तर-गोयमा ! जीवा णो वड्ढंति, णो हायंति, अवट्ठिया।

५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं वड्ढंति, हायंति, अवट्ठिया ?

५ उत्तर-गोयमा ! णेरइया वड्ढंति वि, हायंति वि, अवट्ठिया वि-जहा णेरइया एवं जाव-वेमाणिया।

६ प्रश्न-सिद्धा णं भंते ! पुच्छा ?

६ उत्तर-गोयमा ! सिद्धा वड्ढंति, णो हायंति, अवट्ठिया वि ?

कठिन शब्दार्थ--वड्ढंति-बढ़ते हैं, हायंति-घटते हैं, अवट्ठिया-अवस्थित।

भावार्थ-४ प्रश्न-भगवन् ! गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार पूछा-'हे भगवन् ! क्या जीव बढ़ते हैं ? घटते हैं ? या अवस्थित रहते हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! जीव बढ़ते नहीं हैं, घटते नहीं हैं, किन्तु अवस्थित रहते हैं।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव, बढ़ते हैं ? घटते हैं ? या अवस्थित रहते हैं।

५ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी रहते हैं। जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कहा है, उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक के जीवों के लिए कहना चाहिए।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान् बढ़ते हैं, घटते हैं, या अवस्थित रहते हैं ?

६ उत्तर-हे गौतम ! सिद्ध भगवान् बढ़ते हैं, घटते नहीं, अवस्थित भी रहते हैं।

७ प्रश्न-जीवा णं भंते ! केवइयं कालं अवट्ठिया ?

७ उत्तर-सव्वद्धं।

८ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढंति ?

८ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं। एवं हायंति वा।

९ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! केवइयं कालं अवट्ठिया ?

९ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउवीसं

मुहुत्ता । एवं सत्तसु वि पुढवीसु वड्ढंति, हायंति-भाणियव्वा, णवरं-अवट्ठिएसु इमं णाणत्तं, तं जहा-रयणप्पभाए पुढवीए अडयालीसं मुहुत्ता, सक्करप्पभाए चउद्दस राइंदिया णं, वालुयप्पभाए मासो, पंकप्पभाए दो मासो, धूमप्पभाए चत्तारि मासा, तमाए अट्ठ मासा, तमतमाए बारस मासा ।

असुरकुमारा वि वड्ढंति हायंति जहा णेरइया । अवट्ठिया जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता । एवं दसविहा वि ।

कठिन शब्दार्थ-सव्वद्धं-सब काल ।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव,कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ?

७ उत्तर-हे गौतम ! सर्वाद्धा अर्थात् सब काल जीव,अवस्थित रहते हैं।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक बढ़ते हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव, जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्य भाग तक बढ़ते हैं । जिस प्रकार बढ़ने का काल कहा है, उसी प्रकार घटने का काल भी कहना चाहिए ।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीव, कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ?

९ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव, जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथ्वियों में बढ़ते हैं, घटते हैं । किन्तु अवस्थितों में इस प्रकार भिन्नता है-रत्नप्रभा पृथ्वी में ४८ मुहूर्त्त, शर्कराप्रभा में चौदह अहोरात्रि, बालुकाप्रभा में एक मास, पंकप्रभा में दो मास, धूमप्रभा में चार मास, तमःप्रभा में आठ मास और तमस्तमःप्रभा

में बारह मास का अवस्थान काल है।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहा है, उसी प्रकार असुर-कुमार बढ़ते हैं, घटते हैं। जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अड़तालीस मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार दस ही प्रकार के भवनपति देवों के विषय में कहना चाहिए।

एगिंदिया वड्ढंति वि, हायंति वि, अवट्ठिया वि। एएहिं तिहि वि जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं।

बेइंदिया वड्ढंति, हायंति, तहेव, अवट्ठिया जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो अंतोमुहुत्ता। एवं जाव-चउरिंदिया। अवसेसा सव्वे वड्ढंति, हायंति, तहेव, अवट्ठियाणं णाणत्तं इमं तं जहा-समुच्छिमपंचंदियतिरिक्खजोणियाणं दो अंतोमुहुत्ता, गब्भवक्कंतियाणं चउव्वीसं मुहुत्ता, संमुच्छिममणुस्साणं अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता, गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चउवीसं मुहुत्ता, वाणमंतरजोइस-सोहम्मी-साणेसु अट्ठ चत्तालीसं मुहुत्ता, संणकुमारे अट्ठारस राइंदियाइं-चत्तालीसं य मुहुत्ता, माहिंदे चउवीसं राइंदियाइं-वीस य मुहुत्ता, बंभलोए पंचचत्तालीसं राइंदियाइं, लंतए णउइ राइंदियाइं, महासुक्के सट्ठिं राइंदियसयं, सहस्सारे दो राइंदियसयाइं, आणय-पाणयाणं संखेज्जा मासा, आरण-ऽच्चुयाणं संखेज्जाइं वासाइं, एवं

गेवेज्जदेवाणं, विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियाणं असंखेज्जाइं वास-सहस्साइं, सव्वट्ठसिद्धे, पलिओवमस्स संखेज्जइभागो; एवं भाणियव्वं वड्ढंति, हायंति जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असं-खेज्जइभागं, अवट्ठियाणं जं भाणियं ।

कठिन शब्दार्थ-गब्भवक्कंतिया-गर्भ से उत्पन्न होने वाले, संमुच्छिम-विना गर्भ के उत्पन्न होने वाले ।

भावार्थ-एकेंद्रिय जीव बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी रहते हैं । एकेंद्रिय जीवों में हानि वृद्धि और अवस्थान, इन तीनों का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्य भाग समझना चाहिए ।

बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय भी इसी प्रकार बढ़ते हैं और घटते हैं । अव-स्थान में विशेषता इस प्रकार है-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो अन्तर्मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं । इस प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक कहना चाहिए । बाकी के जीव कितने काल तक बढ़ते हैं और घटते हैं ? यह पहले की तरह कहना चाहिए । किन्तु 'अवस्थान' के विषय में अन्तर है, वह इस प्रकार है-सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों का अवस्थान काल दो अन्तर्मुहूर्त्त है । गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों का अवस्थान काल चौबीस मुहूर्त्त है । सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का अवस्थान काल अड़तालीस मुहूर्त्त है । गर्भज मनुष्यों का अवस्थान काल चौबीस मुहूर्त्त है । वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक में अवस्थान काल अड़तालीस मुहूर्त्त है । सनत्कुमार देव-लोक में अठारह रात्रिदिवस और चालीस मुहूर्त्त अवस्थान काल है । माहेन्द्र देवलोक में चौबीस रात्रिदिवस और बीस मुहूर्त्त, ब्रह्मलोक में पैंतालीस रात्रि-दिवस, लान्तक देवलोक में ९० रात्रिदिवस, महाशुक्र में एक सौ साठ रात्रिदिवस सहस्रार देवलोक में दो सौ रात्रिदिवस, आणत और प्राणत देवलोक में संख्येय मास, आरण और अच्युत देवलोक में संख्येय वर्षों का अवस्थान काल है । इसी

तरह नवग्रैवेयक के विषय में जान लेना चाहिए। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों का अवस्थान काल असंख्य हजार वर्षों का है। सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों का अवस्थान पल्योपम के संख्यातवें भाग है। तात्पर्य यह है कि जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्य भाग तक ये बढ़ते हैं और घटते हैं तथा इनका अवस्थान काल तो ऊपर बतला दिया गया है।

१० प्रश्न-सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढंति ?

१० उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया।

११ प्रश्न-केवइयं कालं अवट्ठिया ?

११ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं,उक्कोसेणं छम्मासा।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने समय तक बढ़ते हैं ?

१० उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक सिद्ध भगवान् बढ़ते हैं।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक सिद्ध भगवान् अवस्थित रहते हैं।

१२ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं सोवचया, सावचया, सोवचय-सावचया, निरुवचय-निरवचया ?

१२ उत्तर-गोयमा ! जीवा णो सोवचया, णो सावचया, णो सोवचय-सावचया, णिरुवचय-णिरवचया; एगिंदया तईयपए, सेसा जीवा चउहिं पएहिं भाणियव्वा ।

१३ प्रश्न-सिद्धा णं पुच्छा ?

१३ उत्तर-गोयमा ! सिद्धा सोवचया, णो सावचया, णो सोवचयसावचया, णिरुवचय-णिरवचया ।

कठिन शब्दार्थ-सोवचया-उपचय सहित-वृद्धि सहित, सावचया-अपचय सहित-हानि सहित ।

भावार्थ-१२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव सोपचय (उपचय सहित) हैं ? सापचय (अपचय सहित) हैं ? सोपचय सापचय (उपचय और अपचय सहित) हैं ? या निरूपचय, निरपचय (उपचय और अपचय रहित) हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! जीव सोपचय नहीं हैं, सापचय नहीं हैं, सोपचय सापचय नहीं हैं, परन्तु निरूपचय, निरपचय हैं । एकेंद्रिय जीवों में तीसरा पद (विकल्प) कहना चाहिये । अर्थात् एकेंद्रिय जीव, सोपचयसापचय हैं । बाकी सब जीवों में चारों पद कहना चाहिये ।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान् सोपचय हैं, सापचय हैं, सोपचय सापचय हैं, या निरूपचय निरपचय हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! सिद्ध भगवान् सोपचय हैं, सापचय नहीं हैं, सोपचयसापचय भी नहीं हैं । निरूपचयनिरपचय हैं ।

१४ प्रश्न-जीवा णं भंते ! केवइयं कालं णिरुवचय-णिरवचया ?

१४ उत्तर-गोयमा ! सव्वद्धं ।

१५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! केवइयं कालं सोवचया ?

१५ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ।

१६ प्रश्न-केवइयं कालं सावचया ?

१६ उत्तर-एवं चेव ।

१७ प्रश्न-केवइयं कालं सोवचय-सावचया ?

१७ उत्तर-एवं चेव ।

१८ प्रश्न-केवइयं कालं णिरुवचय-णिरवचया ?

१८ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता । एगिंदिया सव्वे सोवचयासावचया सव्वद्धं, सेसा सव्वे सोवचया वि, सावचया वि, सोवचय-सावचया वि णिरुवचयणिरवचया वि, जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं । अवट्ठिएहिं वक्कंतिकालो भाणियव्वो ।

भावार्थ-१४ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, कितने काल तक निरुपचय निरपचय रहते हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! सभी काल तक जीव, निरुपचय निरपचय रहते है ।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक, कितने काल तक सोपचय रहते हैं ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के
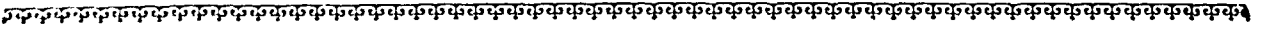
असंख्य भाग तक नैरयिक, सोपचय रहते हैं ।

१६ प्रश्न—हे भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक सापचय रहते हैं ?

१६ उत्तर—हे गौतम ! जितना सोपचय का काल कहा, उतना ही सापचय का कहना चाहिये ।

१७ प्रश्न—हे भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक सोपचय-सापचय रहते हैं?

१७ उत्तर—हे गौतम ! सोपचय का जो काल कहा गया है, उतना ही सोपचय-सापचय का कहना चाहिये ।

१८ प्रश्न—हे भगवन् ! नैरयिक जीव, कितने काल तक निरुपचय निरपचय रहते हैं ?

१८ उत्तर—हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक नैरयिक, निरुपचय निरपचय रहते हैं । सभी एकेंद्रिय जीव, सभी काल सोपचय सापचय रहते हैं । बाकी सभी जीवों में सोपचय, सापचय और सोपचय-सापचय हैं । इन सब का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्यातवां भाग है । अवस्थितों (निरुपचय निरपचय) में व्युत्क्रान्ति काल (विरहकाल) के अनुसार कहना चाहिये ।

१९ प्रश्न—सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं सोवचया ?

१९ उत्तर—गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया ।

२० प्रश्न—केवइयं कालं णिरुवचय-णिरवचया ?

२० उत्तर—जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छ मासा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति

॥ पंचमसए अट्ठमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

भावार्थ–१९ प्रश्न–हे भगवन् ! सिद्ध भगवान् ! कितने काल तक सोपचय रहते हैं ?

१९ उत्तर–हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक सिद्ध भगवान् सोपचय रहते हैं ।

२० प्रश्न–हे भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने काल तक निरूपचय निरपचय रहते हैं ?

२० उत्तर–हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक सिद्ध भगवान् निरूपचय निरपचय रहते हैं ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

विवेचन–पहले पुद्गलों का कथन किया गया है । पुद्गल जीवों के उपग्राहक (उपकारक) होते हैं, इसलिये अब जीवों के विषय में कथन किया जाता है । नैरयिक जीवों में जो चौवीस मुहूर्त का अवस्थान काल कहा गया है । वह इस प्रकार समझना चाहिये, सातों ही पृथ्वियों (नरकों) में बारह मुहूर्त तक वहां न तो कोई जीव उत्पन्न होता है और न कोई जीव मरता (उद्वर्तता) है । इस प्रकार का उत्कृष्ट विरह काल होने से इतने समय तक नैरयिक जीव अवस्थित रहते हैं । तथा दूसरे बारह मुहूर्त तक जितने जीव नरकों में उत्पन्न होते हैं, उतने ही जीव वहां से मरते हैं । यह भी नैरयिकों का अवस्थान काल है । इसलिये चौवीस मुहूर्त तक नैरयिक जीवों की एक परिमाणता होने से उनका अवस्थान काल (हानि और वृद्धि रहित) चौवीस मुहूर्त का कहा गया है । इस प्रकार रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में जहाँ–व्युत्क्रान्ति पद में उत्पाद उद्वर्तना और विरहकाल चौवीस मुहूर्त का कहा गया है, वहाँ रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में नैरयिकों में उतना ही काल अर्थात् चौवीस मुहूर्त जितना समय उत्पाद और उद्वर्तना काल, पूर्वोक्त चौवीस मुहूर्त की संख्या के साथ मिलाने से दुगुना हो जाता है । अर्थात् अड़तालीस मुहूर्त का अवस्थित काल हो जाता है । यह बात सूत्र में ही बतलादी गई है । विरहकाल सभी जगह अवस्थान काल से आधा होता है । यह सर्वत्र समझना चाहिये ।

एकेन्द्रिय जीव बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी रहते हैं । यद्यपि उनमें विरह नहीं है, तथापि जब वे बहुत उत्पन्न होते हैं और थोड़े मरते हैं, तब 'वे बढ़ते हैं' ऐसा व्यपदेश किया जाता है । जब वे बहुत मरते हैं और थोड़े उत्पन्न होते हैं तब 'वे घटते

हैं' ऐसा कहा जाता है। जब उत्पत्ति और मरण समान संख्या में होता है अर्थात् जितने जीव उत्पन्न होते हैं उतने ही मरते हैं, तब 'वे अवस्थित हैं'--ऐसा कहा जाता है। एकेंद्रिय जीवों की वृद्धि में, हानि में और अवस्थिति में आवलिका का असंख्येय भाग काल होता है, क्योंकि उसके बाद यथायोग्य वृद्धि आदि नहीं होती।

बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय जीवों का अवस्थान काल उत्कृष्ट दो अन्तर्मुहूर्त है। एक अन्तर्मुहूर्त तो उनका विरह काल है और दूसरे अन्तर्मुहुर्त में वे समान संख्या में उत्पन्न होते और मरते हैं। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त होते हैं।

आणत और प्राणत देवलोकों में संख्यात मास तथा आरण और अच्युत देवलोकों में संख्यात वर्ष का अवस्थान काल है। इसका अभिप्राय यह है कि संख्यात मास और संख्यात वर्ष रूप विरह काल को दुगुना करने पर भी उसमें संख्यातपना ही रहता है। इसलिये संख्यातमास और संख्यात वर्ष का उत्कृष्ट अवस्थान काल कहा गया है।

नवग्रैवेयकों में से नीचे की त्रिक में संख्यात सैकड़ों वर्ष, मध्यम त्रिक में संख्यात हजारों वर्ष और ऊपर की त्रिक में संख्यात लाखों वर्ष का विरह काल है। उसको दुगुना करने पर भी उसमें संख्यात वर्ष पन का विरोध नहीं आता। इसी प्रकार विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित में असंख्यात काल का विरह है। उसको दुगुना करने पर भी उसमें असंख्यातपना ही रहता है। सर्वार्थसिद्ध में पल्योपम का संख्येय भाग विरह काल है। उसको दुगुना करने पर भी संख्येय भागपना ही रहता है। इसलिये कहा गया है कि नवग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित का उत्कृष्ट अवस्थान काल असंख्य हजारों वर्षों का है और सर्वार्थसिद्ध का उत्कृष्ट अवस्थान काल पल्योपम का संख्येय भाग है।

अब दूसरे प्रकार से जीवों का कथन किया जाता है। सोपचय का अर्थ है 'वृद्धि सहित।' अर्थात् पहले के जितने जीव हैं, उनमें नये जीवों की उत्पत्ति होने से सख्या की वृद्धि होती है। इसलिये उसे 'सोपचय' कहते हैं। पहले के जीवों में से कितनेक जीवों के मरजाने से संख्या घट जाती है, उसे 'सापचय' (हानि सहित) कहते हैं। उत्पाद और उद्वर्तन (मरण) द्वारा एक साथ वृद्धि और हानि होने से उसे 'सोपचयसापचय' (वृद्धि हानि सहित) कहते हैं। उत्पाद और उद्वर्तन (मरण) के अभाव से वृद्धि और हानि न होना--'निरुपचयनिरपचय' कहलाता है।

शंका-मूल में शास्त्रकार ने पहले वृद्धि, हानि और अवस्थिति के सूत्र कहे हैं। उसके बाद उपचय, अपचय, उपचयापचय और निरुपचयनिरपचय के सूत्र कहे हैं। इस

प्रकार दो प्रकार के सूत्र कहने की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि उपचय का अर्थ है-'वृद्धि'। अपचय का अर्थ है-'हानि'। एक साथ उपचय और अपचय तथा निरुपचय और निरपचय का अर्थ है अवस्थिति। इस प्रकार उपचय आदि शब्दों का वृद्धि आदि शब्दों के साथ समानार्थ है। केवल शब्द भेद के सिवाय इन दो प्रकार के सूत्रों में क्या भेद हैं ?

समाधान-पहले वृद्धि आदि के सूत्रों में जीवों के परिमाण का कथन इष्ट है। और इन उपचय आदि सूत्रों में तो परिमाण की अपेक्षा बिना मात्र उत्पाद और उद्वर्तन विवक्षित है। इसलिये यहां 'सोपचय, सापचय' इस तीसरे भंग में पहले कहे हुए वृद्धि, हांनि और अवस्थिति, इन तीनों भंगों का समावेश हो जाता है। जैसे कि थोड़े जीवों का मरण और बहुतों का उत्पात हुआ, तो वृद्धि। बहुतों का मरण और थोड़े जीवों का उत्पात हुआ, तो हानि। और समान उत्पाद तथा उद्वर्तन हुआ तो अवस्थित पना होता है इस प्रकार पूर्व कथित वृद्धि, हानि और अवस्थिति के सूत्रों में तथा इन सोपचय आदि के सूत्रों में भेद है।

एकेंद्रिय जीवों में 'सोपचयसापचय'-यह तीसरा पद पाया जाता है। अर्थात् उनमें एक साथ उत्पाद और उद्वर्तन होने से वृद्धि और हानि होती है। इस पद (विकल्प) के सिवाय एकेंद्रियों में दूसरे पद सम्भावित नहीं हैं। क्योंकि उनमें प्रत्येक का उत्पाद और उद्वर्तन के विरह का अभाव है।

निरुपचय निरपचय अर्थात् अवस्थिति में व्युत्क्रान्ति काल (विरह काल) के अनुसार कहना चाहिये। जिसका वर्णन पहले कर दिया गया है।

॥ इति पांचवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ६

राजगृह का अर्थ

१ प्रश्न–तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव–एवं वयासी–किं इयं भंते ! णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ, किं पुढवी णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ, आउ णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ, जाव–वणस्सई, जहा–एयणुद्देसए पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वत्तव्वया तहा भाणियव्वा, जाव–सचित्ता-ऽचित्त-मीसियाइं दव्वाइं णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

१ उत्तर–गोयमा ! पुढवी वि णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ, जाव–सचित्ता-ऽचित्त-मीसियाइं दव्वाइं णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ।

२ प्रश्न–से केणट्ठेणं ?

२ उत्तर–गोयमा ! पुढवी जीवा इ य, अजीवा इ य णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ, जाव–सचित्ता-ऽचित्त-मीसियाइं दव्वाइं, जीवा इ य, अजीवा इ य, णयरं रायगिहं ति पवुच्चइ, से तेणट्ठेणं तं चेव।

कठिन शब्दार्थ–एयणुद्देसए–एजन उद्देशक। सचित्ताचित्त मीसियाइं दव्वाइं–सचित्त अचित्त और मिश्र द्रव्य।

भावार्थ–१ प्रश्न–उस काल उस समय में यावत् गौतम स्वामी ने श्रमण

भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार पूछा कि–हे भगवन् ! यह राजगृह नगर क्या कहलाता है ? क्या यह राजगृह नगर पृथ्वी कहलाता है ? जल कहलाता है ? यावत् वनस्पति कहलाता है ? जिस प्रकार एजनोद्देशक में पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में परिग्रह की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहां भी कहनी चाहिए। अर्थात् क्या राजगृह नगर कूट कहलाता है, शैल कहलाता है ? यावत् सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य, राजगृह नगर कहलाता है ?

१ उत्तर–हे गौतम ! पृथ्वी भी राजगृह नगर कहलाती है, यावत् सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य भी राजगृह नगर कहलाता है।

२ प्रश्न–हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२ उत्तर–हे गौतम ! पृथ्वी जीव है और अजीव भी है, इसलिए वह राजगृह नगर कहलाती है, यावत् सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य भी जीव हैं और अजीव हैं, इसलिए वे द्रव्य राजगृह नगर कहलाते हैं। इसलिए पृथ्वी आदि को राजगृह नगर कहते हैं।

विवेचन–प्रायः बहुत से प्रश्न गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से राजगृह नगर में पूछे थे, क्योंकि भगवान् महावीर स्वामी के बहुत से विहार राजगृह नगर में हुए थे। इसलिए 'राजगृह नगर' के स्वरूप के निर्णय के लिए इस नौवें उद्देशक में कथन किया जाता है। राजगृह नगर क्या पृथ्वी है ? यावत् वनस्पति है ? इस प्रश्न के उत्तर में पांचवें शतक के 'एजन' नामक सातवें उद्देशक की भलामण दी गई है। उसमें की पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों में परिग्रह विषयक टंक, कूट, शैल, शिखर आदि वक्तव्यता यहां कहनी चाहिए। पृथ्वी आदि का जो समुदाय है, वह राजगृह नगर है, क्योंकि पृथ्वी आदि के समुदाय के बिना 'राजगृह' शब्द की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। राजगृह नगर जीवाजीव रूप है। इसलिए विवक्षित भूमि सचित्त और अचित्त होने के कारण जीव और अजीव रूप है। अतएव राजगृह नगर जीवाजीव रूप है।

प्रकाश और अन्धकार

३ प्रश्न–से णूणं भंते ! दिया उज्जोए, राइं अंधयारे ?

३ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-अंधयारे ।

४ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

४ उत्तर-गोयमा ! दिया सुभा पोग्गला, सुभे पोग्गलपरिणामे, राइं असुभा पोग्गला, असुभे पोग्गलपरिणामे से तेणट्ठेणं ।

कठिन शब्दार्थ-उज्जोए-उद्योत-प्रकाश, अंधयारे-अन्धकार ।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार होता है ?

३ उत्तर-हाँ, गौतम ! दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार होता है ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! दिन में शुभ पुद्गल होते हैं, शुभ पुद्गल परिणाम होते हैं । रात्रि में अशुभ पुद्गल होते हैं और अशुभ पुद्गल परिणाम होते हैं । इस कारण से दिन में उद्योत होता है और रात्रि में अन्धकार होता है ।

५ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! किं उज्जोए, अंधयारे ?

५ उत्तर-गोयमा ! णेरइयाणं णो उज्जोए, अंधयारे ।

६ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

६ उत्तर-गोयमा ! णेरइयाणं असुभा पोग्गला, असुभे पोग्गलपरिणामे से तेणट्ठेणं ।

भावार्थ-५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों के प्रकाश होता है, या अन्धकार होता है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीवों के उद्योत नहीं होता है, किन्तु

अन्धकार होता है।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीवों के अशुभ पुद्गल और अशुभपुद्गल परिणाम होते हैं। इसलिए उनमें उद्योत नहीं, किन्तु अन्धकार होता है।

७ प्रश्न-असुरकुमाराणं भंते ! किं उज्जोए, अंधयारे ?

७ उत्तर-गोयमा ! असुरकुमाराणं उज्जोए, णो अंधयारे।

८ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

८ उत्तर-गोयमा ! असुरकुमाराणं सुभा पोग्गला, सुभे पोग्गलपरिणामे से तेणट्ठेणं जाव-एवं वुच्चइ, जाव-थणियाणं।

-पुढविक्काइया जाव-तेइंदिया जहा णेरइया।

९ प्रश्न-चउरिंदियाणं भंते ! किं उज्जोए, अंधयारे ?

९ उत्तर-गोयमा ! उज्जोए वि, अंधयारे वि।

१० प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

१० उत्तर-गोयमा ! चउरिंदियाणं सुभा-ऽसुभा य पोग्गला, सुभा-ऽसुभे य पोग्गलपरिणामे से तेणट्ठेणं एवं जाव-मणुस्साणं।

-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देवों के उद्योत होता है, या अन्धकार होता है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार देवों के उद्योत है, किन्तु अन्धकार नहीं है।

८ प्रश्न–हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

८ उत्तर–हे गौतम ! असुरकुमार देवों के शुभ पुद्गल है और शुभ पुद्गल परिणाम है, इसलिये उनके उद्योत है, अन्धकार नहीं। इसी प्रकार स्तनित कुमारों तक कहना चाहिये।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों का कथन किया, उसी प्रकार पृथ्वीकाय से लेकर तेइन्द्रिय जीवों तक का कथन करना चाहिये।

९ प्रश्न–हे भगवन् ! चौरीन्द्रिय जीवों के उद्योत है, या अन्धकार है ?

९ उत्तर–हे गौतम ! चौरीन्द्रिय जीवों के उद्योत भी है और अन्धकार भी है।

१० प्रश्न–हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१० उत्तर–हे गौतम ! चौरीन्द्रिय जीवों के शुभ और अशुभ पुद्गल होते हैं तथा शुभ और अशुभ परिणाम होते हैं, इसलिये ऐसा कहा जाता है कि उनमें उद्योत भी है और अन्धकार भी है। इस प्रकार यावत् मनुष्यों तक कहना चाहिये। जिस प्रकार असुरकुमारों का कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना चाहिये।

विवेचन–पुद्गलों का अधिकार होने से यहाँ भी पुद्गलों का कथन किया जाता है। दिन में शुभ पुद्गल होते हैं। इसलिये सूर्य की किरणों के सम्बन्ध से दिन में शुभ पुद्गलों का परिणाम होता है और रात्रि में अशुभ पुद्गल होते हैं, अतएव अशुभ पुद्गल परिणाम होता है। नरक में पुद्गलों की शुभता के निमित्तभूत सूर्य की किरणों का प्रकाश नहीं है, इसलिये नरकों में अन्धकार है। असुरकुमार देवों के रहने के स्थानादि की भास्वरता के कारण वहाँ शुभ पुद्गल हैं। अतएव उद्योत हैं। पाँच स्थावर, बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय जीव, यद्यपि इस क्षेत्र में हैं और यहां सूर्य की किरणों आदि का सम्पर्क भी है, तथापि उनमें जो अन्धकार का कथन किया गया है, इसका कारण यह है कि उनमें चक्षुरिन्द्रिय नहीं होती, इसलिये वे देखने योग्य पदार्थों को नहीं देख सकते। इसलिये उनकी तरह शुभ पुद्गलों का कार्य न होने से अशुभ पुद्गल कहे गये हैं। अतएव अन्धकार होता है। चौरीन्द्रिय जीवों में चक्षुरिन्द्रिय होने से रवि किरणादि का जब सद्भाव हो, तब दृश्य

पदार्थों के ज्ञान में निमित्त होने से शुभ पुद्गल कहे गये हैं। जब रवि किरणादि का सम्पर्क नहीं होता, तब पदार्थ ज्ञान का अजनक होने से अशुभ पुद्गल कहे गये हैं।

नैरयिकादि का समय ज्ञान

११ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! णेरइयाणं तत्थगयाणं एवं पण्णायए, तं जहा-समया इ वा, आवलिया इ वा, जाव उस्सप्पिणी इ वा, ओसप्पिणी इ वा ?

११ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे।

१२ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-समया इ वा, आवलिया इ वा, उस्सप्पिणी इ वा, ओसप्पिणी इ वा ?

१२ उत्तर-गोयमा ! इहं तेसिं माणं, इहं तेसिं पमाणं, इहं तेसिं एवं पण्णायए, तं जहा-समया इ वा, जाव-ओसप्पिणी इ वा, से तेणट्ठेणं जाव-णो एवं पण्णायए, तं जहा-समया इ वा, जाव-उस्सप्पिणी इ वा, एवं जाव-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं।

कठिन शब्दार्थ-तत्थगयाणं-वहां गये हुए-वहां रहे हुए, पण्णायए-ज्ञान।

भावार्थ-११ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नरक में रहे हुए नैरयिक जीवों को समय, आवलिका, यावत् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का ज्ञान है ?

११ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् वहां रहे हुए नैरयिक जीव, समय आदि को नहीं जानते हैं।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? नरक में रहे हुए नैर-

विगच्छिस्संति वा; परित्ता राइंदिया उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा ? विगच्छिंसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ?

१५ उत्तर-हंता, अज्जो ! असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया, तं चेव ।

१६ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-विगच्छिस्संति वा ?

१६ उत्तर-से णूणं भे अज्जो ! पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं, सासए लोए बुइए, अणाइए, अणवदग्गे, परित्ते परिवुडे; हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले; अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए; तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणाइयंसि, अणवदग्गंसि, परित्तंसि, परिवुडंसि, हेट्ठा विच्छिण्णंसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पिं विसालंसि; अहे पलियंकसंठियंसि, मज्झे वरवइरविग्गहियंसि, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता उप्पज्जित्ता णिलीयंति, परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता, उप्पज्जित्ता णिलीयंति-से णूणं भूए, उप्पण्णे, विगए, परिणए; अजीवेहिं लोक्कइ पलोक्कइ 'जे लोक्कइ से लोए ?' हंता, भगवं ! । से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ-असंखेज्जे, तं चेव, तप्पभिइं च णं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं 'सव्वण्णू सव्वदरिसी' पच्चभिजाणंति ।

पदार्थों के ज्ञान में निमित्त होने से शुभ पुद्गल कहे गये हैं। जब रवि किरणादि का सम्पर्क नहीं होता, तब पदार्थ ज्ञान का अजनक होने से अशुभ पुद्गल कहे गये हैं।

नैरयिकादि का समय ज्ञान

११ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! णेरइयाणं तत्थगयाणं एवं पण्णायए, तं जहा-समया इ वा, आवलिया इ वा, जाव उस्सप्पिणी इ वा, ओसप्पिणी इ वा ?

११ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे।

१२ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-समया इ वा, आवलिया इ वा, उस्सप्पिणी इ वा, ओसप्पिणी इ वा ?

१२ उत्तर-गोयमा ! इहं तेसिं माणं, इहं तेसिं पमाणं, इहं तेसिं एवं पण्णायए, तं जहा-समया इ वा, जाव-ओसप्पिणी इ वा, से तेणट्ठेणं जाव-णो एवं पण्णायए, तं जहा-समया इ वा, जाव-उस्सप्पिणी इ वा, एवं जाव-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं।

कठिन शब्दार्थ-तत्थगयाणं-वहां गये हुए-वहां रहे हुए, पण्णायए-ज्ञान।

भावार्थ-११ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नरक में रहे हुए नैरयिक जीवों को समय, आवलिका, यावत् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का ज्ञान है ?

११ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् वहां रहे हुए नैरयिक जीव, समय आदि को नहीं जानते हैं।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? नरक में रहे हुए नैर-

यिक समय, आवलिका, यावत् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी को क्यों नहीं जानते हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! यहां समय आदि का मान और प्रमाण है और यहाँ समय यावत् अवसर्पिणी का ज्ञान किया जाता है, किन्तु नरक में नहीं है, इस कारण से नरक में रहे हुए नैरयिकों को समय, आवलिका यावत् उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी का ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच योनि तक कहना चाहिये।

१३ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! मणुस्साणं इहगयाणं एवं पण्णायइ तं जहा-समया इ वा, जाव-उस्सप्पिणी इ वा ?

१३ उत्तर-हंता, अत्थि।

१४ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

१४ उत्तर-गोयमा ! इहं तेसिं माणं, इहं तेसिं पमाणं, एवं पण्णायइ, तं जहा-समया इ वा, जाव-ओसप्पिणी इ वा, से तेणट्ठेणं ०।

-वाणमंतर-जोइस-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं।

भावार्थ-१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या यहाँ मनुष्य लोक में रहे हुए मनुष्यों को समय यावत् अवसर्पिणी का ज्ञान है ?

१३ उत्तर-हाँ गौतम ! है।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! यहां समय आदि का मान और प्रमाण है, इसलिये समय यावत् अवसर्पिणी का ज्ञान है। इस कारण से ऐसा कहा गया है कि मनुष्य लोक में रहे हुए मनुष्यों को समय आदि का ज्ञान है।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों के लिये भी कहना चाहिये।

विवेचन-पुद्गल द्रव्य है। इसलिये उनका विचार करने पर उनसे सम्बन्धित काल द्रव्य का विचार किया जाता है। समय, आवलिका आदि काल के विभाग हैं। इसमें अपेक्षा कृत सूक्ष्म-काल 'मान' कहलाता है और अपेक्षा कृत प्रकृष्ट काल 'प्रमाण' कहलाता है। जैसे कि-मुहूर्त 'मान' है। मुहूर्त की अपेक्षा सूक्ष्म होने से लव 'प्रमाण' है और लव की अपेक्षा स्तोक 'प्रमाण' है। और स्तोक की अपेक्षा लव 'मान' है। इस तरह समय तक जान लेना चाहिये। समयादि की अभिव्यक्ति सूर्य की गति से होती है और सूर्य की गति मनुष्य लोक में ही है, नरकादि में नहीं है। इसलिये वहां समयादि का ज्ञान नहीं होता है।

मनुष्य लोक में रहे हुए ही मनुष्यों को समयादि का ज्ञान होता है, किंतु मनुष्य लोक से बाहर रहे हुए जीवों को समय आदि का ज्ञान नहीं होता। क्योंकि मनुष्य लोक से बाहर समय आदि काल न होने से वहाँ उसका व्यवहार नहीं होता है। यद्यपि कितनेक पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच, भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी, मनुष्य लोक में हैं, तथापि वे स्वल्प हैं और वे काल के अव्यवहारी हैं। और मनुष्य लोक से बाहर वे बहुत हैं। उन बहुतों की अपेक्षा से यह कहा गया है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देव समय आदि काल को नहीं जानते हैं।

पार्श्वापत्य स्थविर और श्री महावीर

१५ प्रश्न-तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा, एवं वयासी-से णूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा; विगच्छिंसु वा, विगच्छंति वा,

विगच्छिस्संति वा; परित्ता राइंदिया उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा ? विगच्छिंसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ?

१५ उत्तर-हंता, अज्जो ! असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया, तं चेव ।

१६ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-विगच्छिस्संति वा ?

१६ उत्तर-से णूणं भे अज्जो ! पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं, सासए लोए बुइए, अणाइए, अणवदग्गे, परित्ते परिवुडे; हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले; अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए; तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणाइयंसि, अणवदग्गंसि, परित्तंसि, परिवुडंसि, हेट्ठा विच्छिण्णंसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पिं विसालंसि; अहे पलियंकसंठियंसि, मज्झे वरवइरविग्गहियंसि, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता उप्पज्जित्ता णिलीयंति, परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता, उप्पज्जित्ता णिलीयंति-से णूणं भूए, उप्पण्णे, विगए, परिणए; अजीवेहिं लोक्कइ पलोक्कइ 'जे लोक्कइ से लोए ?' हंता, भगवं ! । से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ-असंखेज्जे, तं चेव, तप्पभिइं च णं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं 'सव्वण्णू सव्वदरिसी' पच्चभिजाणंति ।

कठिन शब्दार्थ—पासावच्चिज्जा—पार्श्वापत्य अर्थात् पार्श्वनाथ भगवान् के शिष्य प्रशिष्य, थेरा—स्थविर, अदूरसामंते—न तो निकट न दूर, विगच्छिसु—नष्ट होते हैं, परित्ता—परिमित, वुइए—कहा, निलीयंति—नष्ट होते हैं, विगए—विगत, लोक्कति—देखा जाता है—जाना जाता है, सव्वण्णू—सर्वज्ञ, सव्वदरिसी—सर्वदर्शी, पच्चभिजाणंति—जानते हैं।

भावार्थ—१५ प्रश्न—उस काल उस समय में पार्श्वापत्य अर्थात् पार्श्वनाथ भगवान् के सन्तानिये स्थविर भगवन्त, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे, वहाँ आये। आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से अदूर सामन्त अर्थात् न बहुत दूर और न बहुत नजदीक, किन्तु यथायोग्य स्थान पर खड़े रह कर वे इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! क्या असंख्य लोक में अनन्त रात्रि दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ? नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे ? अथवा परिमित रात्रि दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ? अथवा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे ?

१५ उत्तर—हाँ, आर्यों ! असंख्य लोक में अनन्त रात्रि दिवस उत्पन्न होते हैं, यावत् उपर्युक्त रूप से कहना चाहिये।

१६ प्रश्न—हे भगवन् ! इसका क्या कारण है।

१६ उत्तर—हे आर्यों ! आपके गुरु स्वरूप तेवीसवें तीर्थंकर पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत कहा है। इसी प्रकार अनादि, अनवदग्र (अनन्त) परिमित, अलोक द्वारा परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, बीच में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यङ्काकार, बीच में उत्तम वज्राकार, ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकार, लोक कहा है। उस प्रकार के शाश्वत, अनादि, अनन्त, परित्त, परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यङ्काकार स्थित, बीच में उत्तम वज्राकार, और ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकारसंस्थित लोक में अनन्त जीवघन उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं, और परित (नियत) असंख्य जीवघन भी उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं। यह लोक भूत है, उत्पन्न है, विगत है, परिणत है। क्योंकि वह जीवों द्वारा लोकित (निश्चित) होता है, विशेष रूप से लोकित होता है। जो लोकित (ज्ञात) हो, क्या वह लोक कहलाता है ? हां, भगवन् ! वह लोक

विगच्छिस्संति वा; परित्ता राइंदिया उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा ? विगच्छिसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ?

१५ उत्तर-हंता, अज्जो ! असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया, तं चेव ।

१६ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-विगच्छिस्संति वा ?

१६ उत्तर-से णूणं भे अज्जो ! पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं, सासए लोए बुइए, अणाइए, अणवदग्गे, परित्ते परिवुडे; हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले; अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए; तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणाइयंसि, अणवदग्गंसि, परित्तंसि, परिवुडंसि, हेट्ठा विच्छिण्णंसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पिं विसालंसि; अहे पलियंकसंठियंसि, मज्झे वरवइरविग्गहियंसि, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता उप्पज्जित्ता णिलीयंति, परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता, उप्पज्जित्ता णिलीयंति-से णूणं भूए, उप्पण्णे, विगए, परिणए; अजीवेहिं लोक्कइ पलोक्कइ 'जे लोक्कइ से लोए ?' हंता, भगवं ! । से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ-असंखेज्जे, तं चेव, तप्पभिइं च णं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं 'सव्वण्णू सव्वदरिसी' पच्चभिजाणंति ।

कठिन शब्दार्थ–पासावच्चिज्जा–पार्श्वापत्य अर्थात् पार्श्वनाथ भगवान् के शिष्य
शिष्य, थेरा–स्थविर, अदूरसामंते–न तो निकट न दूर, विगच्छिसु–नष्ट होते हैं, परित्ता–
रमित, बुइए–कहा, निलीयंति–नष्ट होते हैं, विगए–विगत, लोक्कति–देखा जाता है–
ना जाता है, सव्वण्णू–सर्वज्ञ, सव्वदरिसी–सर्वदर्शी, पच्चभिजाणंति–जानते हैं।

भावार्थ–१५ प्रश्न–उस काल उस समय में पार्श्वापत्य अर्थात् पार्श्वनाथ
गवान् के सन्तानिये स्थविर भगवन्त, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे,
हाँ आये। आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से अदूर सामन्त अर्थात् न
हुत दूर और न बहुत नजदीक, किन्तु यथायोग्य स्थान पर खड़े रह कर वे इस
कार बोले–हे भगवन् ! क्या असंख्य लोक में अनन्त रात्रि दिवस उत्पन्न हुए
उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ? नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे ?
थवा परिमित रात्रि दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ?
थवा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे ?

१५ उत्तर–हाँ, आर्यो ! असंख्य लोक में अनन्त रात्रि दिवस उत्पन्न
ते हैं, यावत् उपर्युक्त रूप से कहना चाहिये।

१६ प्रश्न–हे भगवन् ! इसका क्या कारण है।

१६ उत्तर–हे आर्यो ! आपके गुरु स्वरूप तेवीसवें तीर्थंकर पुरुषादानीय
गवान् पार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत कहा है। इसी प्रकार अनादि, अनवदग्र
अनन्त) परिमित, अलोक द्वारा परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, बीच में संक्षिप्त, ऊपर
शाल, नीचे पल्यङ्काकार, बीच में उत्तम वज्राकार, ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकार,
क कहा है। उस प्रकार के शाश्वत, अनादि, अनन्त, परित्त, परिवृत, नीचे
स्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यङ्काकार स्थित, बीच में
तम वज्राकार, और ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकारसंस्थित लोक में अनन्त जीवघन
पन्न हो होकर नष्ट होते हैं, और परित (नियत) असंख्य जीवघन भी उत्पन्न
होकर नष्ट होते हैं। यह लोक भूत ह, उत्पन्न है, विगत है, परिणत है। क्योंकि
ह जीवों द्वारा लोकित (निश्चित) होता है, विशेष रूप से लोकित होता है।
लोकित (ज्ञात) हो, क्या वह लोक कहलाता है ? हाँ, भगवन् ! वह लोक

कहलाता है, तो इस कारण हे आर्यों ! इस प्रकार कहा जाता है, यावत् असंख्य लोक में इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिये।

तब से पार्श्वापत्य स्थविर भगवंत श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जानने लगे।

तएणं ते थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंच महव्वयाइं, सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए; अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं; तएणं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाव-चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं सिद्धा, जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा; अत्थेगइया देवलोएसु उववण्णा।

भावार्थ-इसके पश्चात् उन स्थविर भगवंतों ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! हम आपके पास चतुर्याम धर्म से सप्रतिक्रमण, पंच महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार कर विचरना चाहते हैं। भगवान् ने फरमाया-हे देवानुप्रियों ! जिस प्रकार आपको सुख हो वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध मत करो।

इसके बाद वे पार्श्वापत्य स्थविर भगवन्त, यावत् सर्व दुःखों से प्रहीण (मुक्त) हुए और कितने ही देवलोकों में उत्पन्न हुए।

विवेचन-यहां काल निरूपण का अधिकार होने से रात्रि दिवस रूप काल के विषय में कथन किया जाता है। असंख्यात प्रदेश रूप होने से असंख्यात लोक में अर्थात् चौदह रज्वात्मक आधारभूत क्षेत्र-लोक में अनन्त परिमाण वाले रात्रि दिवस उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और उत्पन्न होंगे। स्थविर भगवंतों का यह प्रश्न पूछने का आशय यह है कि जो लोक, असंख्यात है, उसमें अनन्त रात्रि दिवस किस प्रकार हो सकते हैं ? अथवा किस तरह रह सकते हैं ? क्योंकि लोक रूप आधार असंख्यात होने से अल्प है और रात्रि दिवस रूप

आधेय अनन्त होने से बड़ा है। इसलिये छोटे आधार में बड़ा आधेय किस प्रकार रह सकता है ?

दूसरा प्रश्न यह है कि जब रात्रि दिवस अनन्त हैं, तो 'परित्त' कैसे हो सकते हैं ? यह परस्पर विरोध है।

समाधान-उपरोक्त दोनों शंकाओं का समाधान यह है कि जैसे-एक मकान में हजारों दीपकों की प्रभा समा सकती है, उसी तरह तथाविध स्वरूप होने से असंख्य प्रदेश रूप लोक में भी अनन्त जीव रहते हैं। वे जीव, एक ही जगह, एक ही समय आदि काल में, अनन्त उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। वह समयादि काल साधारण शरीर में रहने वाले अनन्त जीवों में से प्रत्येक जीव में वर्तता है और इसी तरह प्रत्येक शरीर में रहने वाले परित्त (नियत परिमित) जीवों में से प्रत्येक जीव में वर्तता है। क्योंकि वह समयादि काल जीवों की स्थिति रूप पर्याय रूप है। इस प्रकार काल अनन्त भी होता है और परित्त भी होता है। इस प्रकार असंख्येय लोक में भी रात्रि दिवस अनन्त हैं और परित्त भी हैं। इसी प्रकार तीनों काल में हो सकता है। यही बात स्थविरों द्वारा सम्मत भगवान् पार्श्वनाथ के मत द्वारा बतलाई गई है।

सूत्र में भगवान् पार्श्वनाथ के लिये 'पुरुषादानीय' विशेषण दिया गया है। जिस का अर्थ है-पुरुषों में आदेय-माननीय-ग्राह्य।

लोक का कथन करते हुए मूलपाठ में जो विशेषण दिये गये हैं, उनका अर्थ इस प्रकार है-लोक शाश्वत है, अनादि है, अर्थात् उसकी कभी भी उत्पति नहीं हुई, वह स्थिर है। अनादि होते हुए भी लोक अनन्त है, उसका कभी अन्त नहीं होता। प्रदेशों की अपेक्षा लोक 'परित्त' (असंख्येय) है। वह अलोक से परिवृत्त है। अर्थात् उसके चारों तरफ अलोक है। अतः वह अलोक से घिरा हुआ है। नीचे विस्तीर्ण है, क्योंकि नीचे उसका विस्तार, सात रज्जु परिमाण है। मध्य में वह संक्षिप्त है। अर्थात् एक रज्जु परिमाण विस्तीर्ण है। ऊपर विशाल है। अर्थात् ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक के पास, पांच रज्जु विस्तीर्ण है। इसी बात को उपमा द्वारा कहा गया है। ऊपरी संकीर्ण और नीचे विस्तृत होने से नीचे पल्यङ्क के आकार है। बीच में पतला होने से मध्य में लोक का आकार वज्र के समान है। ऊपर ऊर्ध्व मृदंग के आकार है। अर्थात् दो शराव (सकोरा) के सम्पुट सरीखा है।

ऐसे लोक में अनन्त जीवघन उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं और परित जीवघन भी उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं। इसका आशय यह है कि परिमाण से अनन्त, अथवा जीव सन्तति की अपेक्षा अनन्त। क्योंकि जीव सन्तति का कभी अन्त नहीं होता। इसलिये सूक्ष्मादि साधारण

शरीरों की अपेक्षा तथा सन्तति की अपेक्षा जीव अनन्त हैं। वे अनन्त पर्याय का समूह रूप होने से तथा असंख्येय प्रदेशों का पिण्ड रूप होने से 'घन' कहलाते हैं। इस प्रकार के जीव 'जीवघन' कहलाते हैं. और प्रत्येक शरीर वाले भूत भविष्यत्काल की सन्तति की अपेक्षा रहित होने से पूर्वोक्त रूप से 'परित्त जीवघन' कहलाते हैं। उपर्युक्त प्रश्न में जो अनन्त रात्रि दिवस का कथन किया गया है, उस का उत्तर इस कथन द्वारा दिया गया है। क्योंकि अनन्त और परित्त जीवों के सम्बन्ध से काल विशेष भी अनन्त और परित्त कहलाता है। इसलिये अनन्त जीवों के सम्बन्ध से काल अनन्त है और परित्त जीवों के सम्बन्ध से काल परित्त है। इन दोनों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

अब स्वरूप से फिर लोक का ही कथन किया जाता है। जहाँ जीवघन उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं, वह 'लोक' कहलाता है। वह लोक, भवन (सत्ता) धर्म के सम्बन्ध से 'सद्भूत' लोक कहलाता है।

शङ्का–जिस प्रकार नैयायिकों के मत में आकाश, अनुत्पत्तिक (उत्पत्ति रहित) है, तो क्या यह लोक भी अनुत्पत्तिक है?

समाधान–लोक 'उत्पन्न' है। जिस प्रकार विवक्षित घटाभाव (घट प्रध्वंसाभाव) उत्पन्न है और अनश्वर है, उसी प्रकार उत्पन्न पदार्थ भी अनश्वर होता है। इसलिये कहा गया है कि लोक 'विगत' (नाशशील) है। नाशशील पदार्थ ऐसा भी होता है कि उसका निरन्वय नाश हो जाता है, इसलिये कहा गया है कि लोक 'परिणामी' है। अर्थात् अन्य अनेक पर्यायों को प्राप्त है। परन्तु उसका निरन्वय नाश (समूल नाश–सम्बन्ध रहित नाश) नहीं हुआ है यह लोक, अजीवों के द्वारा निश्चित होता है। अर्थात् सत्ता को धारण करने वाले नाश को प्राप्त होने वाले और परिणाम को प्राप्त होने वाले तथा जो लोक से–अनन्यभूत (अभिन्न) है ऐसे जीव, पुद्गल आदि पदार्थों से निश्चित होता है। यह लोक 'भूतादि धर्म वाला है,' इस प्रकार प्रकर्ष रूप से निश्चित होता है। इसीलिये उस का 'लोक' यह नाम यथार्थ है। क्योंकि जो प्रमाण द्वारा विलोकित किया जाय वह–'लोक' शब्द का वाच्य हो सकता है। इस प्रकार लोक का स्वरूप कहने वाले पार्श्वनाथ भगवान् के वचन का स्मरण कराकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने वचन का समर्थन किया है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के उपर्युक्त वचनों को सुनकर उन स्थविर भगवंतों को यह निश्चय हो गया कि ये सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। तब उन्होंने भगवान् के पास चतुर्याम धर्म से सप्रतिक्रमण पंच महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार किया। फिर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उनमें से कितने ही स्थविर, सभी कर्मों

का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त हुए और कितने ही स्थविर, अल्प कर्मरज के शेष रह जाने से देवलोकों में उत्पन्न हुए।

भरत क्षेत्र और एरवर्त क्षेत्र के चौवीस तीर्थंकरों में से प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के सिवाय बीच के बाईस तीर्थङ्करों के शासन में और महाविदेह क्षेत्र में चतुर्याम धर्म होता है। अर्थात् सर्वथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान और बहिद्धादान का त्याग किया जाता है। बहिद्धादान में मैथुन और परिग्रह दोनों का समावेश हो जाता है। प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के समय पंच महाव्रत रूप धर्म होता है अर्थात् सर्वथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्ता-दान, मैथुन और परिग्रह का त्याग रूप पांच महाव्रत होते हैं। चतुर्याम धर्म और पंच महाव्रत रूप धर्म में केवल शाब्दिक भेद है। अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है। क्योंकि बहिद्धादान में मैथुन और परिग्रह दोनों का समावेश है। और पांच महाव्रतों में इन दोनों का अलग अलग कथन कर दिया है। इससे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि तेवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्व-नाथ के शासन में प्रचलित चतुर्याम धर्म में चौवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी ने परिवर्तन करके पंच महाव्रत रूप धर्म स्थापित किया था।

प्रतिक्रमण के विषय में टीकाकार ने एक गाथा दी है। वह इस प्रकार है-

सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
मज्झिमगाणं जिणाणं, कारणजाए पडिक्कमणं ॥

अर्थ-प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर का धर्म सप्रतिक्रमण (प्रतिक्रमण सहित) है। और बीच के बाईस तीर्थंकरों के शासन में और महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के शासन में कारण होने पर प्रतिक्रमण है।

इसका आशय यह है कि प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासनवर्ती साधुओं को तो नियमित रूप से प्रतिदिन सुबह और शाम को प्रतिक्रमण करना ही चाहिये। यह उनके लिये आवश्यक कल्प है। शेष तीर्थंकरों के शासनवर्ती साधुओं को कारण होने पर (किसी प्रकार का दोष लगने पर) प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये। अन्य समय में उनके लिये यह आवश्यक कल्प नहीं है। अर्थात् विहित कल्प भी नहीं है और निषिद्ध कल्प भी नहीं है।

देवलोक

१७ प्रश्न-कइविहा णं भंते ! देवलोगा पण्णत्ता ?

१७ उत्तर-गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, तं जहा-भवणवासी-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियभेएणं । भवणवासी दस-विहा, वाणमंतरा अट्ठविहा, जोइसिया पंचविहा, वेमाणिया दुविहा ।

गाहा—किमियं रायगिहं ति य, उज्जोए अंधयार-समए य,
पासंतिवासिपुच्छा, राइंदिय देवलोगा य ।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥

॥ पंचमसए नवमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-पसंतिवासिपुच्छा-भगवान् पार्श्वनाथ के अन्तेवासी अर्थात् शिष्यों द्वारा प्रश्न ।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! कितने प्रकार के देवलोक कहे गये हैं ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! चार प्रकार के देवलोक कहे गये हैं । यथा-भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक । इनमें भवनवासी दस प्रकार के हैं । वाणव्यन्तर आठ प्रकार के हैं । ज्योतिषी पांच प्रकार के हैं और वैमानिक दो प्रकार के हैं ।

इस उद्देशक की संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है-राजगृह नगर क्या है ? दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार होने का क्या कारण है ? समय आदि काल का ज्ञान किन जीवों को होता है और किन जीवों को नहीं होता । रात्रि दिवस के परिमाण के विषय में श्री पार्श्वापत्य स्थविर भगवंतों का प्रश्न । देवलोक विषयक प्रश्न । इतने विषय इस नौवें उद्देशक में कहे गये हैं ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

विवेचन-पहले के प्रकरण में देवलोक में जाने सम्बन्धी कथन किया गया था । अतः यहां भी देवलोकों से सम्बन्धित कथन किया जाता है ।

देव चार प्रकार के हैं। उनमें से भवनवासी देवों के दस भेद इस प्रकार हैं—१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुवर्णकुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार, ९ पवनकुमार और १० स्तनितकुमार। वाणव्यन्तर देवों के आठ भेद इस प्रकार हैं—१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किम्पुरुष, ७ महोरग और ८ गन्धर्व। ज्योतिषी देवों के पांच भेद इस प्रकार हैं—१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र और ५ तारा। वैमानिक देवों के दो भेद हैं—१ कल्पोपपन्न और २ कल्पातीत। जिन देवों में छोटे बड़े का भेद होता है, वे 'कल्पोपपन्न' देव कहलाते हैं। बारहवें देवलोक तक के देव कल्पोपपन्न हैं। जिन देवों में छोटे बड़े का भेद नहीं हैं, किन्तु सभी 'अहमिन्द्र' हैं, वे 'कल्पातीत' कहलाते हैं। जैसे—नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान वासी देव।

॥ इति पांचवें शतक का नवमा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक १०

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी, जहा पढमिल्लो उद्देसओ तहा णेयव्वो एसो वि, णवरं चंदिमा भाणियव्वा।

॥ पंचमसए दशमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

॥ पंचमं सयं समत्तं ॥

कठिन शब्दार्थ—चंदिमा—चन्द्रमा।

भावार्थ—उस काल उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। जैसे प्रथम उद्देशक कहा है, उसी प्रकार यह उद्देशक भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ 'चन्द्रमा' कहना चाहिए।

विवेचन—नववें उद्देशक के अन्त में देवों का कथन किया गया है। 'चन्द्रमा' ज्योतिषी देव विशेष है। इसलिए इस दसवें उद्देशक में चन्द्रमा सम्बन्धी वक्तव्यता कही जाती है।

जिस प्रकार पांचवें शतक का पहला उद्देशक 'रवि' प्रश्नोत्तर विषयक कहा गया है,

उसी प्रकार यह दसवां उद्देशक कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ 'चन्द्र' के अभिलाप से कथन करना चाहिए।

॥ इति पांचवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ पांचवां शतक सम्पूर्ण ॥

शतक ६

उद्देशक १

—वेयण-आहार-महस्सवे य सपएस तमुयाए भविए,
साली पुढवी कम्म-अण्णउत्थि दस छट्ठगम्मि सए।

कठिन शब्दार्थ—महस्सवे—महा आश्रव, तमुयाए—तमस्काय।

भावार्थ—१ वेदना, २ आहार, ३ महाआश्रव, ४ सप्रदेश, ५ तमस्काय, ६ भव्य, ७ शाली, ८ पृथ्वी, ९ कर्म और १० अन्ययूथिक वक्तव्यता। छठे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

विवेचन—विचित्र अर्थ वाले पांचवें शतक की व्याख्या सम्पूर्ण हुई। अब अवसर प्राप्त उसी प्रकार के विचित्र अर्थ वाले छठे शतक का विवेचन प्रारंभ होता है। इस शतक में दस उद्देशक हैं। उनमें क्रमशः वेदना आदि दस विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

वेदना और निर्जरा में वस्त्र का दृष्टांत

१ प्रश्न–से णूणं भंते ! जे महावेयणे से महाणिज्जरे, जे महाणिज्जरे से महावेयणे; महावेयणस्स य, अप्पवेयणस्स य से सेए जे पसत्थणिज्जराए ?

१ उत्तर–हंता, गोयमा ! जे महावेयणे एवं चेव ।

२ प्रश्न–छट्ठि-सत्तमासु णं भंते ! पुढवीसु णेरइया महावेयणा ?

२ उत्तर–हंता, महावेयणा ।

३ प्रश्न–ते णं भंते ! समणेहिंतो णिग्गंथेहिंतो महाणिज्जरतरा ?

३ उत्तर–गोयमा ! णो इणट्ठे ।

४ प्रश्न–से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–जे महावेयणे, जाव–पसत्थणिज्जराए ?

४ उत्तर–गोयमा ! से जहा णामए दुवे वत्था सिया, एगे वत्थे कद्दमरागरत्ते, एगे वत्थे खंजणरागरत्ते; एएसि णं गोयमा ! दोण्हं वत्थाणं कयरे वत्थे दुद्धोयतराए चेव, दुवामतराए चेव, दुपरिकम्मतराए चेव; कयरे वा वत्थे सुद्धोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव; जे वा से वत्थे कद्दमरागरत्ते, जे वा से वत्थे खंजणरागरत्ते ?

भगवं ! तत्थ णं जे से वत्थे कद्दमरागरत्ते, से णं वत्थे दुद्धोय-तराए चेव, दुवामतराए चेव, दुप्परिकम्मतराए चेव। एवामेव गोयमा ! णेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, चिक्कणीकयाइं, सिलिट्ठीकयाइं, खिलीभूयाइं भवंति। संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणा णो महाणिज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवंति।

कठिन शब्दार्थ–पसत्थणिज्जराए–प्रशस्त निर्जरा, दुवे–दो, कद्दमरागरत्ते–कर्दम-राग-रक्त–कीचड़ के रंग से रंगा हुआ, खंजणरागरत्ते–खंजन-राग-रक्त–गाड़ी के पहिये की काजली के रंग से रंगा, दुद्धोयतराए–कठिनता से धोया जाने योग्य, दुवामतराए–जिसके धब्बे मुश्किल से छुड़ाये जायँ, दुप्परिकम्मतराए–जिसकी साज सजावट एवं चित्रादि मुश्किल से बनाये जायँ, गाढीकयाइं–दृढ़ किये हुए, सिलिट्ठीकयाइं–श्लिष्ठ किये हुए, खिलीभूयाइं–दृढ़तम–निकाचित किये हुए।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है ? और जो महानिर्जरा वाला है, वह महावेदना वाला है ? तथा महावेदना वाला और अल्प वेदनवाला इन दोनों में वह जीव उत्तम है, जो कि प्रशस्त निर्जरा वाला है ?

१ उत्तर–हाँ, गौतम ! जैसा ऊपर कहा है वैसा ही है।

२ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या छठी और सातवीं पृथ्वी के नैरयिक महा-वेदना वाले हैं ?

२ उत्तर–हाँ, गौतम ! वे महावेदना वाले हैं।

३ प्रश्न–हे भगवन् ! वे छठी और सातवीं पृथ्वी में रहने वाले नैरयिक, क्या श्रमण निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महानिर्जरा वाले हैं ?

३ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् छठी और सातवीं नरक में रहने वाले नैरयिक, श्रमण निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महानिर्जरा वाले नहीं हैं।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! तो यह बात किस प्रकार कही जाती है कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है, यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! जैसे दो वस्त्र हैं। उनमें से एक कर्दम (कीचड़) के रंग से रंगा हुआ है और दूसरा वस्त्र खञ्जन अथवा गाड़ी के पहिये के कीट के रंग से रंगा हुआ है। हे गौतम ! उन दोनों वस्त्रों में से कौनसा वस्त्र दुर्धौततर (मुश्किल से धोने योग्य) दुर्वाम्यतर (जिसके काले धब्बे मुश्किल से उतारे जा सकें) और दुष्प्रतिकर्मतर (जिस पर मुश्किल से चमक आ सके तथा चित्रादि बनाये जा सकें) है, और कौनसा वस्त्र सुधौततर, सुवाम्यतर और सुप्रतिकर्मतर है ?

(गौतम स्वामी ने उत्तर दिया) हे भगवन् ! उन दोनों वस्त्रों में से जो कर्दम के रंग से रंगा हुआ है, वह दुर्धौततर, दुर्वाम्यतर और दुष्प्रतिकर्मतर है।

भगवान् ने फरमाया-हे गौतम ! इसी तरह नैरयिकों के कर्म, गाढ़ीकृत अर्थात् गाढ़ बन्धे हुए, चिक्कणीकृत (चिकने किये हुए) श्लिष्ट किये हुए (निधत्त किये हुए) और खिलीभूत (निकाचित किये हुए) हैं। इसलिये वे संप्रगाढ़ वेदना को वेदते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं हैं और महापर्यवसान वाले भी नहीं हैं।

से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणिं आउडेमाणे महया महया सद्देणं, महया महया घोसेणं, महया महया परंपराघाएणं णो संचाएइ तीसे अहिगरणीए केई अहाबायरे पोग्गले परिसाडित्तए। एवामेव गोयमा ! णेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, जाव-णो महापज्जवसाणाइं भवंति। भगवं ! तत्थ जे से वत्थे खंजणरागरत्ते से णं वत्थे सुद्धोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए

चेव, एवामेव गोयमा ! समणाणं णिग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं सिढिलीकयाइं, णिट्ठियाइं कडाइं, विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति । जावइयं तावइयं पि ते वेयणं वेएमाणा महा-णिज्जरा, महापज्जवसाणा भवंति । से जहा णामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा, से णूणं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ? हंता, मसमसाविज्जइ । एवामेव गोयमा ! समणाणं णिग्गंथाणं अहा-बायराइं कम्माइं, जाव-महापज्जवसाणा भवंति । से जहा णामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदगबिंदु, जाव-हंता, विद्धंसं आगच्छइ, एवामेव गोयमा ! समणाणं णिग्गंथाणं, जाव महा-पज्जवसाणा भवंति, से तेणट्ठेणं जे महावेयणे से महाणिज्जरे, जाव-णिज्जराए ।

कठिन शब्दार्थ-आउडेमाणे-कूटता हुआ, अहिगरणि आउडेमाणे-एरण पर चोट करता हुआ, परिसाडिए-नष्ट करने में, निट्ठियाइं-निःसत्व-सत्ता रहित, विद्धत्थाइं-विध्वंश करते हैं, तणहत्थयं-घास का पूला, जायतेयंसि-अग्नि में, मसमसाविज्जइ-जल जाता है, अयकवल्लंसि-लोहे के गोले पर ।

भावार्थ-जैसे कोई पुरुष, जोरदार शब्दों के साथ महाघोष के साथ निरन्तर चोट मारता हुआ, एरण को कूटता हुआ भी उस एरण के स्थूल पुद्गलों को परिशटित (नष्ट) करने में समर्थ नहीं होता है, हे गौतम ! इसी प्रकार नैरयिक जीवों के पाप-कर्म गाढ़ किये हुए हैं, यावत् इसलिए वे महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले नहीं हैं ।
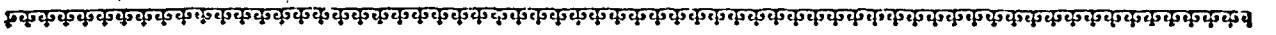
(गौतम स्वामी ने पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर दिया) 'हे भगवन् ! उन दो वस्त्रों में से जो वस्त्र खञ्जन के रंग से रंगा हुआ वस्त्र है, वह सुधौततर, सुवाम्यतर और सुप्रतिकर्मतर है।'

(भगवान् ने फरमाया) 'हे गौतम ! इसी प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थों के यथा-बादर (स्थूलतर स्कन्ध रूप) कर्म, शिथिलीकृत (मन्द विपाक वाले) निष्ठित-कृत (सत्ता रहित किये हुए) विपरिणामित (विपरिणाम वाले) होते हैं। इस-लिये वे शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। जिस किसी वेदना को वेदते हुए श्रमण निर्ग्रन्थ, महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष, सूखे घास के पूले को, धधकती हुई अग्नि में डाले, तो क्या वह शीघ्र ही जल जाता है ?

(गौतम स्वामी ने उत्तर दिया) 'हाँ, भगवन् ! वह तत्क्षण जल जाता है।'

(भगवान् ने फरमाया) हे गौतम ! इसी तरह श्रमण निर्ग्रन्थों के यथा-बादर (स्थूलतर स्कन्ध रूप) कर्म शीघ्र विध्वस्त हो जाते हैं। इसलिये श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

अथवा जैसे कोई पुरुष अत्यन्त तपे हुए लोहे के गोले पर पानी की बिन्दु डाले, तो वह यावत् तत्क्षण विनष्ट हो जाती है। इसी प्रकार हे गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थों के कर्म शीघ्र विध्वस्त हो जाते हैं। इसलिये ऐसा कहा गया है—'जो महा-वेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा वाला होता है। यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला होता है।'

विवेचन—उपसर्ग आदि द्वारा जो विशेष पीड़ा पैदा होती है, वह 'महावेदना' कह-लाती है और जिसमें कर्मों का विशेष रूप से क्षय हो, वह महानिर्जरा कहलाती है। इन दोनों का परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध बतलाने के लिये पहला प्रश्न किया गया है। अर्थात् 'क्या जहां महावेदना होती है, वहां महानिर्जरा होती है' और 'जहां महानिर्जरा होती है वहां महावेदना होती है ?' दूसरा प्रश्न यह किया गया है कि 'महावेदना वाला और अल्प वेदना वाला; क्या इन दोनों में प्रशस्त निर्जरा वाले उत्तम हैं' ? प्रथम प्रश्न के उत्तर में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को जिस समय महाकष्ट पड़े थे, उस समय के भगवान्

ीर यहाँ उदाहरण रूप हैं। अर्थात् उस समय भगवान् महावेदना और महानिर्जरा थे। दूसरे प्रश्न के उत्तर में भी वे ही भगवान् उपसर्ग अवस्था और अनुपसर्ग अवस्था दाहरण रूप हैं। अर्थात् महावेदना के समय और अल्प वेदना के समय भी भगवान् प्रशस्त निर्जरा वाले थे।

जो महावेदना वाले होते हैं, वे सभी महानिर्जरा वाले नहीं होते हैं। जैसे कि-छठी सातवीं पृथ्वी के नैरयिक। इस बात को वस्त्र का उदाहरण देकर बतलाया गया है। कर्दम रंग से रंगा हुआ वस्त्र, मुश्किल से धोया जाता है। उस पर लगे हुए धब्बे ल से छुड़ाये जाते हैं और उसे साफ कर उस पर चित्रादि मुश्किल से बनाये जा हैं, उसी प्रकार जिन जीवों के कर्म, डोरी से मजबूत बांधे हुए सूइयों के समूह के , आत्मा के प्रदेशों के साथ गाढ़ बंधे हुए हैं, मिट्टी के चिकने बर्तन के समान सूक्ष्म स्कन्धों के रस के साथ परस्पर गाढ़ सम्बन्ध वाले होने से जिनके कर्म दुर्भेद्य हैं, ् जो चिकने कर्म वाले हैं, रस्सी द्वारा मजबूत बांधकर आग में तपाई हुई सूइयां प्रकार परस्पर चिपक जाती हैं और वे किसी प्रकार से भी अलग नहीं हो सकती हैं, प्रकार जो कर्म, परस्पर एकमेक हो गये हैं, ऐसे श्लिष्ट (निधत्त) कर्म, और जो कर्म बिना दूसरे किसी भी उपाय से क्षय नहीं किये जा सकते हैं,ऐसे खिलीभूत (निकाचित) उस मलीन से मलीन वस्त्र की तरह दुर्विशोध्य है। ऐसे गाढ़ बंध चिक्कणीकृत निधत्त निकाचित कर्म, उन नैरयिक जीवों के महावेदना के कारण होते हैं। किन्तु उस महा- से उनको महानिर्जरा और महापर्यवसान नहीं होता।

शंका-यहां वेदना और निर्जरा का वर्णन चल रहा है। बीच में 'महापर्यवसान' का ्तुत कथन किस प्रकार किया गया है?

समाधान-यहां महापर्यवसान का कथन अप्रस्तुत नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार वेदना निर्जरा का परस्पर कार्य कारण भाव है, उसी प्रकार निर्जरा और पर्यवसान का भी र कार्य कारण भाव है। इसीलिये मूलपाठ में भी यह कहा गया है कि जो महानिर्जरा नहीं होता, वह महापर्यवसान वाला भी नहीं होता। अतः यहां महापर्यवसान का अप्रस्तुत नहीं समझना चाहिये।

मूलपाठ में जो यह कहा गया है कि-जो 'महावेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा होता है', यह कथन किसी एक विशिष्ट जीव की अपेक्षा से समझना चाहिये, किन्तु क आदि क्लिष्ट कर्म वाले जीवों की अपेक्षा नहीं।

मूलपाठ में जो यह कहा गया है कि 'जो महानिर्जरा वाला होता है, वह महावेदना

वाला होता है'। यह कथन भी प्रायिक समझना चाहिये। क्योंकि अयोगी केवली महानिर्जरा वाले तो होते हैं, परन्तु वे नियमा महावेदना वाले नहीं होते। अतएव इसमें भजना है। अर्थात् वे महावेदना वाले भी हो सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं।

दूसरा दृष्टान्त एरण का दिया गया है। जिस प्रकार लोह के घन से महाशब्द और महाघोष के साथ निरन्तर एरण को कूटने पर भी उसके स्थूल पुद्गल नष्ट नहीं हो सकते, उसी प्रकार नैरयिक जीवों के भी गाढ़कृत आदि पाप कर्म दुष्परिशाटनीय होते हैं। खंजन रंग से रंगे हुए वस्त्र का दृष्टान्त देकर यह बतलाया गया है कि जिस प्रकार वह वस्त्र सुविशोध्य (सरलता से साफ हो सकने वाला) होता है, उसी प्रकार स्थूल तर स्कन्ध रूप (असार पुद्गल) श्लथ (मन्द) विपाक वाले सत्ता रहित और विपरिणामित (स्थितिघात और रस-घात के द्वारा विपरिणाम वाले) कर्म भी शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। अर्थात् ये कर्म सुविशोध्य होते हैं। जिनके कर्म ऐसे सुविशोध्य होते हैं, वे महानुभाव कैसी भी वेदना को भोगते हुए महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

जीव और करण

५ प्रश्न-काइविहे णं भंते करणे पण्णत्ते?

५ उत्तर-गोयमा! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा-मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे।

६ प्रश्न-णेरइयाणं भंते! कइविहे करणेपण्णत्ते?

६ उत्तर-गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे; पंचिंदियाणं सव्वेसिं चउव्विहे करणे पण्णत्ते। एगिंदियाणं दुविहे-कायकरणे य, कम्मकरणे य। विगलेंदियाणं तिविहे-वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे।

७ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं करणओ असायं वेयणं वेयंति, अकरणओ असायं वेयणं वेयंति ?

७ उत्तर-गोयमा ! णेरइया णं करणओ असायं वेयणं वेयंति, णो अकरणओ असायं वेयणं वेयंति ।

८ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

८ उत्तर-गोयमा ! णेरइयाणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा-मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे, इच्चेएणं चउव्विहेणं असुभेणं करणेणं णेरइया करणओ असायं वेयणं वेयंति, णो अकरणओ; से तेणट्ठेणं ।

९ प्रश्न-असुरकुमारा णं किं करणओ, अकरणओ ?

९ उत्तर-गोयमा ! करणओ, णो अकरणओ ।

१० प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

१० उत्तर-गोयमा ! असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा-मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे, इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमारा णं करणओ सायं वेयणं वेयंति, णो अकरणओ; एवं जाव-थणियकुमाराणं ।

११ प्रश्न-पुढवीकाइयाणं एवामेव पुच्छा ?

११ उत्तर-णवरं-इच्चेएणं सुभाऽसुभेणं करणेणं पुढविक्काइया करणओ वेमायाए वेयणं वेयंति, णो अकरणओ ।

—ओरालियसरीरा सव्वे सुभाऽसुभेणं वेमायाए, देवा सुभेणं सायं।

कठिन शब्दार्थ—करणे—करण—जिन से क्रिया की जाय, एवामेव—इसी तरह, वेमायाए—विमात्रा से—विविध प्रकार से, ओरालियसरीरा—औदारिक शरीर वाले।

भावार्थ—५ प्रश्न—हे भगवन् ! करण कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

५ उत्तर—हे गौतम ! करण चार प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! नैरयिक जीवों के कितने प्रकार के करण कहे गये हैं ?

६ उत्तर—हे गौतम ! नैरयिक जीवों के चार प्रकार के करण कहे गये हैं। यथा—मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण। सभी पञ्चेन्द्रिय जीवों के ये चार प्रकार के करण होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार के करण होते हैं। यथा—कायकरण और कर्मकरण। विकलेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार के करण होते हैं। यथा—वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण।

७ प्रश्न—हे भगवन् ! नैरयिक जीव, करण से असातावेदना वेदते हैं, या अकरण से ?

७ उत्तर—हे गौतम ! नैरयिक जीव, करण से असातावेदना वेदते हैं, परन्तु अकरण से नहीं वेदते हैं।

८ प्रश्न—हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

८ उत्तर—हे गौतम ! नैरयिक जीवों के चार प्रकार के करण कहे गये हैं। यथा—मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण। ये चार प्रकार के अशुभ करण होने से नैरयिक जीव, करण द्वारा असाता वेदना वेदते हैं, परन्तु अकरण द्वारा असाता वेदना नहीं वेदते हैं।

९ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव, करण से साता वेदना वेदते हैं, या अकरण से ?

९ उत्तर-हे गौतम ! वे करण से सातावेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं।

१० प्रश्न-हे भगवन् इसका क्या कारण है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमारों के चार प्रकार के करण होते हैं। यथा-मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण। इनके शुभ करण होने से असुरकुमार देव, करण द्वारा साता वेदना वेदते हैं, परन्तु अकरण द्वारा नहीं वेदते हैं। इस प्रकार स्तनितकुमारों तक समझ लेना चाहिये।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव, करण द्वारा वेदना वेदते हैं, या अकरण द्वारा ?

११ उत्तर-हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, करण द्वारा वेदना वेदते हैं, अकरण द्वारा नहीं। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके शुभाशुभ करण होने से ये करण द्वारा विमात्रा से (विविध प्रकार से) वेदना वेदते हैं। अर्थात् कदाचित् सुखरूप और कदाचित् दुःखरूप वेदना वेदते हैं, अकरण द्वारा नहीं।

औदारिक शरीर वाले सभी जीव, अर्थात् पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य ये सब शुभाशुभ करण द्वारा विमात्रा से वेदना वेदते हैं। अर्थात् कदाचित् सुखरूप और कदाचित् दुःखरूप वेदना वेदते हैं। देव शुभकरण द्वारा साता वेदना वेदते हैं।

विवेचन-पहले वेदना के विषय में विचार किया गया है। वह वेदना करण से होती है। इसलिये इस प्रकरण में करण सम्बन्धी विचार किया जाता है। करण चार प्रकार के कहे गये हैं। मन सम्बन्धी करण, वचन सम्बन्धी करण, काय सम्बन्धी करण और कर्म विषयक करण। कर्म के बन्धन, संक्रमण आदि में निमित्तभूत जीव के वीर्य को 'कर्म करण' कहते हैं। विमात्रा का अर्थ-किसी समय साता वेदना और किसी समय असाता वेदना।

वेदना और निर्जरा की सहचरता

१२ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महाणिज्जरा महा-

वेयणा अप्पणिज्जरा, अप्पवेयणा महाणिज्जरा, अप्पवेयणा अप्पणिज्जरा?

१२ उत्तर-गोयमा! अत्थेगइया जीवा महावेयणा महाणिज्जरा, अत्थेगइया जीवा महावेयणा अप्पणिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा महाणिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पणिज्जरा।

१३ प्रश्न-से केणट्ठेणं?

१३ उत्तर-गोयमा! पडिमापडिवण्णए अणगारे महावेयणे महाणिज्जरे, छट्ठि-सत्तमासु-पुढवीसु णेरइया महावेयणा अप्पणिज्जरा, सेलेसिं पडिवण्णए अणगारे अप्पवेयणे महाणिज्जरे, अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेयणा अप्पणिज्जरा।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति

—महावेयणे य वत्थे कद्दम-खंजणकए य अहिगरणी,
तणहत्थे य कवल्ले करण-महावेयणा जीवा।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति

॥ छट्ठसए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-अत्थेगइया-कितनेक, पडिमापडिवण्णए-प्रतिमा (प्रतिज्ञा) प्राप्त किया हुआ, सेलेसिं पडिवण्णए-शैलेशी-पर्वत की तरह स्थिरता प्राप्त।

भावार्थ-प्रश्न-१२ हे भगवन्! जीव, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, महावेदना और अल्प निर्जरा वाले हैं, अल्पवेदना वाले और महानिर्जरा वाले हैं अथवा अल्प वेदना वाले और अल्प निर्जरा वाले हैं?

१२ उत्तर-हे गौतम ! कितने ही जीव, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, कितने ही जीव, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं, कितने ही जीव, अल्प वेदना और महानिर्जरा वाले हैं और कितने ही जीव, अल्पवेदना और अल्प-निर्जरा वाले हैं।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! प्रतिमा प्रतिपन्न (प्रतिमा को धारण किया हुआ) साधु, महावेदना वाला और महानिर्जरा वाला है। छठी और सातवीं पृथ्वी में रहे हुए नैरयिक जीव, महावेदना वाले और अल्प निर्जरा वाले है। शैलेशी अव-स्था को प्राप्त अनगार, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं और अनुत्तरौपपातिक देव, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है :-

महावेदना, कर्दम और खञ्जन के रंग से रंगे हुए वस्त्र, अधिकरणी (एरण) घास का पूला, लोह का गोला, करण और महावेदना वाले जीव। इतने विषयों का वर्णन इस प्रथम उद्देशक में किया गया है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-इस प्रकरण में आये हुए दोनों प्रश्नोत्तरों का अर्थ स्पष्ट है।

॥ इति छठे शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक २

—रायगिहं णयरं जाव-एवं वयासी-आहारुद्देसओ जो पण्णवणाए सो सव्वो णेयव्वो।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥

॥ छट्ठसए बीओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-आहारुद्देसओ-प्रज्ञापना सूत्र के २८ वें आहार पद का पहला उद्देशक।

भावार्थ-राजगृह नगर में यावत् भगवान् ने इस प्रकार फरमाया। यहां प्रज्ञापना सूत्र के २८ वें आहार पद का सम्पूर्ण प्रथम उद्देशक कहना चाहिये।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन-पहले उद्देशक के अन्त में वेदना वाले जीवों का कथन किया गया है। वे जीव, आहार करने वाले भी होते हैं। इसलिये इस दूसरे उद्देशक में आहार का वर्णन किया जाता है। जीवों के आहार सम्बन्धी वर्णन के लिये प्रज्ञापना सूत्र के २८ वें आहार पद के प्रथम उद्देशक की भलामण दी गई है। उसका सर्व प्रथम प्रश्नोत्तर इस प्रकार है-

हे भगवन् ! नैरयिक जीव, क्या सचित्ताहारी हैं, अचित्ताहारी हैं, या मिश्र आहारी हैं।

उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव, सचित्ताहारी नहीं हैं, मिश्र आहारी नहीं हैं, वे अचित्ताहारी हैं।

इत्यादि रूप से विविध प्रश्नोत्तरों द्वारा जीवों के आहार के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को इस विषयक वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के २८ वें पद के प्रथम उद्देशक में देखना चाहिये।

॥ इति छठे शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ३

बहुकम्म वत्थे पोग्गल पओगसा वीससा य साइए ।
कम्मट्टिइ-त्थि-संजय-सम्मदिट्ठी य सण्णी य ॥१॥
भविए दंसण-पज्जत्त भासय-परित्ते णाण-जोगे य ।
उवओगा-ऽऽहारग-सुहुम-चरिम-बंधे य अप्प बहुं ॥२॥

कठिन शब्दार्थ-पयोगसा-जीवके प्रयत्नसे वीससा-स्वाभाविक ।

भावार्थ-बहुकर्म, वस्त्र में प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से पुद्गल, सादि (आदिसहित) कर्मस्थिति, स्त्री, संयत, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी, भव्य, दर्शन, पर्याप्त, भाषक, परित्त, ज्ञान, योग, उपयोग, आहारक, सूक्ष्म, चरम, बंध, और अल्पबहुत्व, इतने विषयों का कथन इस उद्देशक में किया जायेगा ।

विवेचन-दूसरे उद्देशक में आहार की अपेक्षा से पुद्गलों का विचार किया गया था, अब इस तीसरे उद्देशक में बन्धादि की अपेक्षा से पुद्गलों का विचार किया जाता है । इस उद्देशक में जिन विषयों का वर्णन किया गया है, उनका नाम निर्देश उपर्युक्त दो संग्रह गाथाओं में किया गया है ।

महाकर्म और अल्पकर्म

१ प्रश्न-से णूणं भंते ! महाकम्मस्स, महाकिरियस्स, महासवस्स, महावेयणस्स, सव्वओ पोग्गला बज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति, सव्वओ पोग्गला उवचिज्जंति; सया समियं पोग्गला
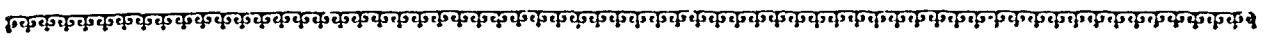
बज्झंति, सया समियं पोग्गला चिज्जंति, सया समियं पोग्गला उवचिज्जंति; सया समियं च णं तस्स आया दूरूवत्ताए, दुवण्णत्ताए, दुगंधत्ताए, दूरसत्ताए, दुफासत्ताए; अणिट्ठत्ताए, अकंत-अप्पिय-असुभ-अमणुण्ण-अमणामत्ताए, अणिच्छियत्ताए, अभिज्झियत्ताए, अहत्ताए-णो उड्ढत्ताए, दुक्खत्ताए-णो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?

१ उत्तर-हंता, गोयमा ! महाकम्मस्स तं चेव ।

२ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२ उत्तर-गोयमा ! से जहा णामए वत्थस्स अहयस्स वा, धोयस्स वा, तंतुग्गयस्स वा आणुपुव्वीए परिभुज्जमाणस्स सव्वओ पोग्गला बज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति, जाव-परिणमंति; से तेणट्ठेणं ।

३ प्रश्न- से णूणं भंते ! अप्पाऽऽसवस्स, अप्पकम्मस्स, अप्पकिरियस्स, अप्पवेयणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति, सव्वओ पोग्गला छिज्जंति, सव्वओ पोग्गला विद्धंसंति, सव्वओ पोग्गला परिविद्धंसंति; सया समियं पोग्गला भिज्जंति, सव्वओ पोग्गला छिज्जंति, विद्धस्संति, परिविद्धस्संति, सया समियं च णं तस्स आया सुरूवत्ताए पसत्थं णेयव्वं, जाव-सुहत्ताए-णो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?

३ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-परिणमंति ।

४ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

४ उत्तर-गोयमा ! से जहा णामए वत्थस्स जल्लियस्स वा पंकियस्स वा मइल्लियस्स वा रइल्लियस्स वा आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स सुद्धेणं वारिणा धोव्वेमाणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति, जाव-परिणमंति, से तेणट्ठेणं ।

कठिन शब्दार्थ-बज्झंति-बँधते हैं, चिज्जंति-चय-संग्रह होता है, अणिट्ठत्ताए-अनिष्ट रूप में, अकंत-अप्पिय-असुभ-अमणुन्न-अमणामत्ताए-अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनामपने, अणिच्छियत्ताए-अनिच्छनीयपने, अभिज्झियत्ताए-जिसे प्राप्त करने की रुचि नहीं हो, अहत्ताए-नीचत्व प्राप्त, उड्ढत्ताए-ऊर्ध्वत्व, अहयस्स-अक्षत, तंतुग्गयस्स-सांचे पर से उतरा हुआ, आणुपुव्विए-क्रमशः, परिभुज्जमाणस्स-भोगते हुए, अप्पाऽसवस्स-अल्प आश्रव वाला भिज्जंति-भेदित होते हैं, सया-सदा, समियं-निरन्तर, भुज्जोभुज्जो-बारम्बार, जल्लियस्स-मलीन, पंकियस्स-पंकयुक्त, मइलियस्स-मेलयुक्त, रइल्लियस्स-रज सहित, परिकम्मिज्जमाणस्स-जिसे शुद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआश्रव वाले और महावेदना वाले जीव के सर्वतः अर्थात् सभी ओर से और सभी प्रकार से पुद्गलों का बन्ध होता है ? सर्वतः पुद्गलों का चय होता है ? सर्वतः पुद्गलों का उपचय होता है ? सदा निरन्तर पुद्गलों का बन्ध होता है ? सदा निरन्तर पुद्गलों का चय होता है ? सदा निरन्तर पुद्गलों का उपचय होता है ? क्या सदा निरन्तर उसकी आत्मा दुरूपपने, दुर्वर्णपने, दुर्गंधपने, दुःरसपने, दुःस्पर्शपने, अनिष्टपने, अकान्तपने, अप्रियपने, अशुभपने, अमनोज्ञपने, अमनामपने (मन से भी जिसका स्मरण न किया जा सके) अनीप्सितपने (अनिच्छितपने) अभिध्यितपने (जिस को प्राप्त करने के लिये लोभ भी न हो) जघन्यपने, अनूर्ध्वपने, दुःखपने, और असुखपने बारंबार परिणत होती है ?

१ उत्तर-हाँ, गौतम ! उपर्युक्त रूप से यावत् परिणमती है ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! जैसे कोई अहत (अपरिभुक्त) जो नहीं पहना गया है) धौत (पहन करके भी धोया हुआ,) तन्तुगत (मशीन पर से तुरन्त उतरा हुआ) वस्त्र, अनुक्रम से काम में लिया जाने पर, उसके पुद्गल सर्वतः बन्धते हैं, सर्वतः चय होते हैं, यावत् कालान्तर म वह वस्त्र मसोता जैसा मैला और दुर्गन्ध युक्त हो जाता है। इसी प्रकार महाकर्म वाला जीव, उपर्युक्त रूप से यावत् असुखपने बारंबार परिणमता है।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अल्पाश्रव वाले, अल्प कर्म वाले, अल्प क्रिया वाले और अल्प वेदना वाले जीव के सर्वतः पुद्गल भेदाते हैं ? सर्वतः पुद्गल छेदाते हैं ? सर्वतः पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं ? सर्वतः पुद्गल समस्त रूप से विध्वंस को प्राप्त होते हैं ? क्या सदा निरन्तर पुद्गल भेदाते हैं ? सर्वतः पुद्गल छेदाते हैं ? विध्वंस को प्राप्त होते हैं ? समस्त रूप से विध्वंस को प्राप्त होते हैं ? क्या उसकी आत्मा सदा निरन्तर सुरूपपने यावत् सुखपने और अदुःखपने बारंबार परिणमती है ? (पूर्व सूत्र में अप्रशस्त का कथन किया है, किंतु यहाँ सब प्रशस्त पदों का कथन करना चाहिये)

३ उत्तर-हाँ, गौतम ! उपर्युक्त रूप से यावत् परिणमती है ?

४ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! जैसे कोई मलीन, पंकसहित (मैल सहित) और रज सहित वस्त्र हो, वह वस्त्र क्रम से शुद्ध किया जाने पर और शुद्ध पानी से धोया जाने पर उस पर लगे हुए पुद्गल सर्वतः भेदाते हैं, छेदाते हैं, यावत् परिणाम को प्राप्त होते हैं। इसी तरह अल्पक्रिया वाले जीव के विषय में भी पूर्वोक्त रूप से कथन करना चाहिये।

विवेचन-उपरोक्त द्वारों में से प्रथम बहुकर्मद्वार का कथन किया जाता है। जिसके कर्मों की स्थिति आदि लम्बी हो, उसे 'महाकर्म वाला' कहा गया है। जिसके कायिकी आदि क्रियाएं महान् हों उसको यहां 'महाक्रियावाला' कहा गया है। कर्म बंध के हेतुभूत मिथ्यात्व आदि जिसके महान् हों उसको 'महाआश्रव वाला' कहा गया है। और महापीड़ा

वाले को 'महावेदना वाला' कहा गया है। 'सव्वओ' का अर्थ सर्वतः अर्थात् सभी दिशाओं से अथवा सर्व प्रदेशों से कर्म के परमाणु संकलन रूप से बंधते हैं। बन्धन रूप से चय को प्राप्त होते हैं। 'निषेक'-कर्म पुद्गलों की रचना रूप से उपचय को प्राप्त होते हैं। अथवा बन्धन रूप से बन्धते हैं। निधत्त रूप से चय होते है और निकाचन रूप से उपचय होते हैं।

वस्त्र का दृष्टान्त देकर यह बतलाया गया है कि-जिस प्रकार नवीन और साफ वस्त्र भी काम में लेने से और पुद्गलों के संयोग से मसोते सरीखा मलीन हो जाता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गलों के संयोग से आत्मा भी दूरूप आदि से परिणत हो जाती है। जैसे मलीन वस्त्र भी पानी से धोकर शुद्ध किया जाने पर साफ हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी कर्म पुद्गलों के विध्वंस होने से सुखादि रूप से प्रशस्त बन जाती है।

वस्त्र और जीव के पुदगलोपचय

५ प्रश्न-वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पओगसा वीससा ?

५ उत्तर-गोयमा ! पओगसा वि, वीससा वि।

६ प्रश्न-जहा णं भंते ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए पओगसा वि, वीससा वि तहा णं जीवाणं कम्मोवचए किं पओगसा, वीससा ?

६ उत्तर-गोयमा ! पओगसा, णो वीससा।

७ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

७ उत्तर-गोयमा ! जीवाणं तिविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा-मणप्पओगे, वइप्पओगे, कायप्पओगे; इच्चेएणं तिविहेणं पओगेणं जीवाणं कम्मोवचये पओगसा, णो वीससा; एवं सव्वेसिं पंचिंदि-

याणं तिविहे पओगे भाणियव्वे। पुढवीकाइयाणं एगविहेणं पओगेणं, एवं जाव-वणस्सइकाइयाणं। विगलेंदियाणं दुविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा-वइपओगे, कायपओगे य; इच्चेएणं दुविहेणं पओगेणं कम्मोवचए पओगसा, णो वीससा, से तेणट्ठेणं जाव-णो वीससा, एवं जस्स जो पओगो, जाव-वेमाणियाणं।

८ प्रश्न-वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं साइए सपज्जवसिए, साइए अपज्जवसिए, अणाइए सपज्जवसिए, अणाइए अपज्जवसिए ?

८ उत्तर-गोयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए साइए सपज्जवसिए, णो साइए अपज्जवसिए णो अणाइए सपज्जवसिए, णो अणाइए अपज्जवसिए।

९ जहा णं भंते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए साइए सपज्जवसिए, णो साइए अपज्जवसिए, णो अणाइए सपज्जवसिए, णो अणाइए अपज्जवसिए; तहा णं जीवाणं कम्मोवचए पुच्छा ?

९ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचए साइए सपज्जवसिए, अत्थेगइयाणं अणाइए सपज्जवसिए, अत्थेगइयाणं अणाइए अपज्जवसिए, णो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए साइए अपज्जवसिए।

१० प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

१० उत्तर-गोयमा ! इरियावहियबंधयस्स कम्मोवचए साइए सपज्जवसिए, भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाइए सपज्जवसिए, अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाइए अपज्जवसिए; से तेणट्ठेणं गोयमा !

कठिन शब्दार्थ-पोग्गलोवचए-पुद्‌गलों का उपचय-संग्रह, पओगसा-प्रयोग से, वीससा-स्वाभाविक रूप से, साइए सपज्जवसिए-आदि और अंत सहित, साइए अपज्जवसिए-आदि युक्त अंत रहित, अणाइए सपज्जवसिए-अनादि सपर्यवसित, अणाइए अपज्जवसिए-अनादि अपर्यवसित, इरियावहियबंधस्स-ईर्यापथिक (गमनागमन) बंध की अपेक्षा, अभवसिद्धियस्स-जो मुक्त नहीं हो सकता हो उसके ।

भावार्थ-५ प्रश्न-हे भगवन् ! वस्त्र में पुद्‌गलों का उपचय होता है, वह प्रयोग से (पुरुष के प्रयत्न से) होता है अथवा स्वाभाविक ?

५ उत्तर-हे गौतम ! प्रयोग से भी होता है और स्वाभाविक रूप से भी होता है ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस प्रकार प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से वस्त्र के पुद्‌गलों का उपचय होता है, तो क्या उसी प्रकार जीवों के भी प्रयोग से और स्वभाव से कर्म पुद्‌गलों का उपचय होता है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! जीवों के जो कर्म पुद्‌गलों का उपचय होता है, वह प्रयोग से होता है, किन्तु स्वाभाविक रूप से नहीं होता है ।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! जीवों के तीन प्रकार के प्रयोग कहे गये हैं । यथा-मनप्रयोग, वचनप्रयोग और कायप्रयोग । इन तीन प्रकार के प्रयोगों से जीवों के कर्मों का उपचय होता है । इसलिये जीवों के कर्मों का उपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक रूप से नहीं । इस प्रकार सभी पञ्चेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार का प्रयोग होता है । पृथ्वीकायिकादि पांच स्थावर जीवों के एक काय प्रयोग से होता

हैं। तीन विकलेन्द्रिय जीवों के वचन प्रयोग और काय प्रयोग, इन दो प्रयोगों से होते हैं। इस प्रकार सर्व जीवों के प्रयोग द्वारा कर्मों का उपचय होता है, किन्तु स्वाभाविक रूप से नहीं होता। इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी जीवों के विषय में कहना चाहिये।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! वस्त्र के जो पुद्गलों का उपचय होता है, क्या वह सादि सान्त है, सादि अनन्त है, अनादि सान्त है, या अनादि अनन्त है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! वस्त्र के पुद्गलों का जो उपचय होता है, वह सादि सान्त है, परन्तु सादि अनन्त, अनादि सान्त और अनादि अनन्त नहीं है।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस प्रकार वस्त्र के पुद्गलोपचय सादि सान्त है, किन्तु सादि अनन्त, अनादि सान्त और अनादि अनन्त नहीं है, उसी प्रकार जीवों के कर्मोपचय भी सादि सान्त है, सादि अनन्त है, अनादि सान्त है, या अनादि अनन्त है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! कितने ही जीवों के कर्मोपचय सादि सान्त हैं, कितने ही जीवों के कर्मोपचय अनादि सान्त है, और कितने ही जीवों के कर्मोपचय अनादि अनन्त है, परन्तु जीवों के कर्मोपचय सादि अनन्त नहीं हैं।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! ईर्यापथिक बंध की अपेक्षा कर्मोपचय सादि सान्त है। भवसिद्धिक जीवों के कर्मोपचय अनादि सान्त है। अभवसिद्धिक जीवों के कर्मोपचय अनादि अनन्त है। इसलिये हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कथन किया गया है।

विवेचन-'वस्त्र' द्वार-कपड़े के पुद्गलोपचय प्रयोग से (जीव के प्रयत्न से) और स्वाभाविक रूप से, इन दोनों प्रकार से होता है, किन्तु जीवों के कर्मोपचय प्रयोग से ही होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो अयोगी अवस्था में भी जीवों को कर्म बन्ध का प्रसंग होगा। अतः जीवों के कर्मोपचय प्रयोग से ही होता है। यह कथन सयुक्तिक है।

सादि द्वार-गमन मार्ग को 'ईर्यापथ' कहते हैं। ईर्यापथ से बंधने वाले कर्म को

'ऐर्यापथिक' कर्म कहते हैं अर्थात् जिसमें केवल शरीरादि योग ही हेतु है, ऐसा कर्म 'ऐर्यापथिक' कहलाता है और इस कर्म का बन्धक 'ऐर्यापथिक बन्धक' कहलाता है। उपशान्त मोह, क्षीणमोह और सयोगी केवली को ऐर्यापथिक कर्म का बन्ध होता है। यह कर्म इस अवस्था से पहले नहीं बंधता है, इसलिए इस अवस्था की अपेक्षा से इसका 'सादिपना' है। अयोगी अवस्था में अथवा उपशमश्रेणी से गिरने पर इस कर्म का बन्ध नहीं होता है, इसलिए इसका 'सान्तपना' है। तात्पर्य यह है कि-ईर्या का अर्थ है-गति और 'पथ' का अर्थ है 'मार्ग'। इस प्रकार ईर्यापथ' का अर्थ है-गमनमार्ग। जो कर्म केवल हलन चलन आदि प्रवृत्ति से बंधता है, जिसके बन्ध में दूसरा कारण (कषाय) नहीं होता है, उसे 'ऐर्यापथ' कर्म कहते हैं। कर्मबन्ध के मुख्य दो कारण हैं-एक तो क्रोधादि कषाय और दूसरा शारीरिक वाचिक आदि प्रवृत्ति। जिन जीवों के कषाय सर्वथा उपशान्त या सर्वथा क्षीण नहीं हुआ है, उनके जो भी कर्म बन्ध होता है, वह सब काषायिक (कषाय जन्य) कहलाता है। यद्यपि सब कषाय वाले जीवों के कषाय सदा निरन्तर प्रकट नहीं रहता है, तथापि उनका कषाय सर्वथा उपशान्त या क्षीण न होने से, उनकी हलन चलन आदि सारी प्रवृत्तियाँ (जिनमें प्रकट रूप से कारण रूप कोई कषाय मालूम नहीं होता है तथापि उनकी वे सब प्रवृत्तियाँ) 'काषायिक' ही कहलाती हैं। जिन जीवों के कषाय सर्वथा उपशान्त या क्षीण होगया है, उनकी हलन चलन आदि सारी प्रवृत्तियाँ 'काषायिक' नहीं कहलाती हैं, किन्तु शारीरिक (कायिक) या वाचिक आदि योगवाली कहलाती हैं।

यहाँ जो 'ऐर्यापथिक' क्रिया बतलाई गई है, वह उपशान्त मोह गुणस्थान में रहने वाले या क्षीणमोह गुणस्थान में रहने वाले तथा सयोगी केवली के ही हो सकती है, क्योंकि उन जीवों के ही इस प्रकार का कर्म बन्ध हो सकता है।

वस्त्र और जीव की सादि सान्तता

११ प्रश्न-वत्थे णं भंते ! किं साइए सपज्जवसिए चउभंगो ?

११ उत्तर-गोयमा ! वत्थे साइए सपज्जवसिए, अवसेसा तिण्णि वि पडिसेहेयव्वा।

१२ प्रश्न–जहा णं भंते ! वत्थे साइए सपज्जवसिए, णो साइए अपज्जवसिए, णो अणाइए सपज्जवसिए, णो अणाइए अपज्जवसिए तहा णं जीवा णं किं साइया सपज्जवसिया चउभंगो–पुच्छा ?

१२ उत्तर–गोयमा ! अत्थेगइया साइया सपज्जवसिया, चत्तारि वि भाणियव्वा ।

१३ प्रश्न–से केणट्ठेणं ?

१३ उत्तर–गोयमा ! णेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवा गइरागइं पडुच्च साइया सपज्जवसिया, सिद्धा (सिद्ध) गइं पडुच्च साइया अपज्जवसिया, भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणाइया सपज्जवसिया, अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणाइया अपज्जवसिया; से तेणट्ठेणं ।

कठिन शब्दार्थ–गतिरागति–जाना आना, पडुच्च–अपेक्षा, लद्धिं–लब्धि–प्राप्ति ।

भावार्थ–११ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या वस्त्र सादि सान्त है ? इत्यादि पूर्वोक्त रूप से चार भंग करके प्रश्न करना चाहिए ?

११ उत्तर–हे गौतम ! वस्त्र सादि सान्त है । बाकी तीन भंगों का वस्त्र में निषेध करना चाहिए ।

१२ प्रश्न–हे भगवन् ! जैसे वस्त्र सादि सान्त है, किन्तु सादि अनन्त नहीं है, अनादि सान्त नहीं है और अनादि अनन्त नहीं है, उसी प्रकार जीवों के लिए भी प्रश्न करना चाहिए;–

हे भगवन् ! क्या जीव, सादि सान्त हैं, सादि अनन्त हैं, अनादि सान्त हैं, या अनादि अनन्त हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! कितने ही जीव सादि सान्त हैं, कितने ही जीव सादि अनन्त हैं, कितने ही जीव अनादि सान्त हैं और कितने ही जीव अनादि अनन्त हैं।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव, गति आगति की अपेक्षा सादि सान्त हैं। सिद्ध गति की अपेक्षा सिद्ध जीव, सादि अनन्त हैं। लब्धि की अपेक्षा भवसिद्धिक जीव, अनादि सान्त हैं। संसार की अपेक्षा अभवसिद्धिक जीव, अनादि अनन्त हैं।

विवेचन-नरकादि गति में गमन की अपेक्षा उसका सादिपन है और वहाँ से निकलने रूप आगमन की अपेक्षा उसकी सान्तता है। सिद्ध गति की अपेक्षा सिद्ध जीव, सादि अनन्त हैं।

शंका-सिद्धों को सादि अनन्त कहा है, परन्तु भूतकाल में ऐसा कोई समय नहीं था जब कि सिद्ध-गति सिद्ध-जीवों से रहित रही हो। फिर उनमें सादिता कैसे घटित हो सकती है ?

समाधान-सभी सिद्ध सादि हैं। प्रत्येक सिद्ध ने किसी एक समय में भवभ्रमण का अंत करके सिद्धत्व प्राप्त किया है। अनन्त सिद्धों में से ऐसा एक भी सिद्ध नहीं-जो अनादि सिद्ध हो। इतना होते हुए भी सिद्ध अनादि हैं। सिद्धों का सद्भाव सदा से है। भूतकाल में ऐसा कोई समय नहीं था कि जब एक भी सिद्ध नहीं हो और सिद्धस्थान, सिद्धों से सर्वथा शून्य रहा हो तथा फिर कोई एक जीव सबसे पहिले सिद्ध हुआ हो। अतएव समूहापेक्षा सिद्धों का अनादिपन है। यही बात इसी सूत्र के प्रथम शतक उद्देशक ६ में + रोह अनगार के प्रश्न के उत्तर में बताई गई है। वहां सिद्धगति और सिद्धों को अनादि बतलाया है।

जिस प्रकार काल अनादि है। काल, किसी भी समय शरीरों तथा दिनों और रात्रियों से रहित नहीं रहा। कौनसा शरीर और कौनसा दिन रात सर्व प्रथम उत्पन्न हुआ-यह जाना नहीं जा सकता, क्योंकि शरीरों और दिन-रात्रियों की आदि नहीं है। इसी प्रकार सिद्धों की भी आदि नहीं है। ऐसा कोई समय नहीं कि जब सिद्ध स्थान में कोई सिद्ध नहीं रहा हो। अनंतसिद्धों का सद्भाव वहां सदा से है।

+ देखो प्रथम भाग पृ. २७० उत्तर २१७।

'सिद्धों की आदि नहीं है'-यह बात समूह की अपेक्षा से है, किंतु प्रत्येक सिद्ध की आदि होती है। सभी का अपना अपना उत्पत्तिकाल है। सिद्ध का प्रत्येक जीव पहिले संसारी था। भव का अन्त करने के बाद ही वह सिद्ध हुआ है। कहा भी है;-

"साई अपज्जवसिया सिद्धा, न य नाम तिकालम्मि।
आसि कयाइ वि सुण्णा, सिद्धि सिद्धेहिं सिद्धंते ॥१॥
सव्वं साइ सरीरं, न य नामऽऽदिमयं देह सब्भावो।
कालाऽणाइत्तणओ, जहा व राइंदियाईणं ॥२॥
सव्वो साई सिद्धो, न यादिमो विज्जइ तहा तं च।
सिद्धी सिद्धा य सया, निद्दिट्ठा रोह पुच्छाए ॥३॥

अर्थात्-सिद्धांत में कहा है कि-सिद्ध, सादि अनन्त हैं। भूतकाल में ऐसा कोई भी समय नहीं रहा कि जब सिद्ध स्थान में एक भी सिद्ध नहीं रहा हो ॥१॥

('जब सिद्ध स्थान, कभी सिद्धों से शून्य रहा ही नहीं, तब सिद्धों की आदि कैसे हो सकती है?' इसके समाधान में दूसरी गाथा में कहा है कि)

काल अनादि है, शरीर भी अनादि है और दिन-रात भी अनादिकाल से होते आये हैं। ऐसा कोई भी काल नहीं कि जिसमें न तो कोई शरीर रहा हो और न दिन-रात हुए हो, तथापि प्रत्येक शरीर सादि है (एक के विनाश के बाद दूसरे की उत्पत्ति होती है) और प्रत्येक रात और दिन भी सादि है। इसी प्रकार सभी सिद्ध सादि हैं। वे अमुक समय में ही सिद्ध हुए हैं, उसके पूर्व वे संसारी ही थे। कोई भी सिद्ध ऐसा नहीं है कि जिस के सिद्ध होने की आदि ही नहीं हो और कोई भी सिद्ध ऐसा नहीं है कि जो सर्व प्रथम सिद्ध हुआ हो और उसके पूर्व वहां कोई सिद्ध नहीं रहा हो। उत्पत्ति की अपेक्षा प्रत्येक सिद्ध, 'सादि अपर्यवसित' है।

'पढम समय सिद्ध' 'अनन्तरसिद्ध' और तीर्थसिद्ध, आदि भेद भी सिद्ध होने की आदि बतलाते हैं। अनादि और सादि में मात्र अपेक्षा भेद है। समूहापेक्षा सिद्ध 'अनादि अपर्यवसित' हैं, और व्यक्ति की अपेक्षा 'सादि अपर्यवसित' हैं। अतएव शंका नहीं रहनी चाहिए।

भवसिद्धिक जीवों के 'भव्यत्व लब्धि' होती है। यह लब्धि सिद्धत्व प्राप्ति तक रहती है। इसके बाद हट जाती है। इसलिए भवसिद्धिक जीव, 'अनादि सान्त' कहे हैं।

कर्म और उनकी स्थिति

१४ प्रश्न—कइ णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

१४ उत्तर—गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णाणावरणिज्जं दरिसणावरणिज्जं, जाव—अंतराइयं ।

१५ प्रश्न—णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं बंधट्ठिइ पण्णत्ता ?

१५ उत्तर—गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिइ-कम्मणिसेओ, एवं दरिसणावरणिज्जं पि, वेयणिज्जं जहण्णेणं दो समया उक्कोसेणं जहा णाणावरणिज्जं, मोहणिज्जं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साणि (अबाहा) अबाहूणिया कम्मट्ठिइ-कम्मणिसेओ, आउगं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागमब्भहियाणि, कम्मट्ठिइ-कम्मणिसेओ, णाम-गोयाणं जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, दोण्णि य वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिइ-कम्मणिसेओ, अंतराइयं जहा णाणावरणिज्जं ।

कठिन शब्दार्थ-जहण्णेणं-जघन्य-कम से कम, अबाहा-अबाधाकाल, अबाहूणिया-अबाधा काल कम करके, कम्मनिसेओ-कर्मनिषेक।

भावार्थ-१४ प्रश्न-हे भगवन् ! कर्म प्रकृतियां कितनी हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! कर्म प्रकृतियां आठ हैं। यथा-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, यावत् अन्तराय।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म की बंध स्थिति कितने काल की कही गई है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म की बंध स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की है। तीन हजार वर्ष का अबाधा काल है। अबाधा काल जितनी स्थिति को कम करने पर शेष कर्म स्थिति-कर्म-निषेक है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के विषय में भी जानना चाहिये। वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति दो समय की है और उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरणीय कर्म के समान जाननी चाहिये। मोहनीय कर्म की बंध स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सित्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की है। सात हजार वर्ष का अबाधा काल है। अबाधा काल की स्थिति को कम करने से शेष कर्म स्थिति-कर्म-निषेक काल जानना चाहिये। आयुष्य कर्म की बंध स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि के तीसरे भाग अधिक तेतीस सागरोपम की है। इसका कर्म-निषेक काल तेतीस सागरोपम का है। शेष अबाधा काल है। नामकर्म और गौत्रकर्म की बंध स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त और उत्कृष्ट बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम है। दो हजार वर्ष का अबाधा काल है। उस अबाधा काल की स्थिति को कम करने से शेष कर्म स्थिति-कर्म-निषेक होता है। अन्तराय कर्म का कथन ज्ञानावरणीय कर्म के समान जानना चाहिये।

विवेचन-कर्म स्थिति द्वार-इसमें कर्मों की स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही-उनका अबाधा काल भी बताया गया है। 'बाधृ लोडने' अर्थात् लोडन अर्थ वाली बाधृ-धातु से बाधा शब्द बना है। बाधा का अर्थ है कर्म का उदय। कर्म का उदय नहीं होना 'अबाधा' कहलाता है। अर्थात् जिस समय कर्म का बंध हुआ, उस समय से लेकर

जबतक कर्म का उदय होता है, तबतक के काल को अर्थात् कर्म का बंध और कर्म का उदय इन दोनों के बीच के अन्तर काल को 'अबाधा-काल' कहते हैं। पूर्वोक्त स्वरूप वाले अबाधा काल से कम 'कर्म स्थिति' (कर्म का अवस्थान काल) कहलाती है। अर्थात जिस कर्म का बंध स्थिति-काल तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम बतलाया गया है, उस में से तीन हजार वर्ष अबाधा काल कम करदेने पर शेष कर्म स्थिति-काल (कर्म का अवस्थान-काल–कर्म निषेक-काल) कहलाता है। कर्म भोगने के लिये कर्म दलिकों की एक प्रकार की रचना को 'कर्म निषेक' कहते हैं। प्रथम समय में बहुत अधिक कर्म निषेक होता है। दूसरे समय में विशेष हीन और तीसरे समय में विशेष हीन, इस प्रकार जितनी उत्कृष्ट स्थिति वाले कर्म दलिक होते हैं, उतना ही विशेष हीन कर्म निषेक होता जाता है। इस का तात्पर्य यह है कि जैसे बांधा हुआ भी ज्ञानावरणीय कर्म तीन हजार वर्ष तक अवेदय (नहीं वेदा जानने वाला) रहता है। इसलिये तीन हजार वर्ष कम उस का अनुभव-काल होता है। अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभव काल तीन हजार वर्ष कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है।

इस विषय में किन्हीं आचार्यों का ऐसा कथन है कि ज्ञानावरणीय कर्म का तीन हजार वर्ष का अबाधा-काल है और तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का 'बाधा-काल' है। ये दोनों काल मिलकर कर्म स्थिति-काल कहलाता है। इसमें से अबाधा-काल को निकाल देने पर बाकी जितना काल बचता है, वह 'कर्म निषेक काल' कहलाता है। इसी प्रकार दूसरे कर्मों के विषय में भी अबाधा-काल का कथन करना चाहिये। विशेषता यह है कि आयुष्य कर्म में तेतीस–सागरोपम का निषेक काल है और पूर्व कोटिका त्रिभाग काल 'अबाधा काल' है। वेदनीय कर्म का जघन्य काल दो समय का है। अर्थात् जिस वेदनीय कर्म के बंध में कषाय कारण नहीं होता, किन्तु शरीरादि योग ही निमित्त होते हैं, उस वेदनीय कर्म के बंध की अपेक्षा वेदनीय कर्म दो समय की स्थिति वाला है। प्रथम समय में बंधता है और दूसरे समय में वेदा जाता है। वेदनीय कर्म की जो जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त तथा नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त बतलाई गई है, वह सकषाय बंध की स्थिति की अपेक्षा समझनी चाहिये।

कर्मों के बंधक

१६ प्रश्न-णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, णपुंसओ बंधइ; णोइत्थी-णोपुरिस-णोणपुंसओ बंधइ ?

१६ उत्तर-गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, णपुंसओ वि बंधइ; णोइत्थी-णोपुरिस-णोणपुंसओ सिय बंधइ, सिय णो बंधइ; एवं आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ ।

१७ प्रश्न-आउयं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, णपुंसओ बंधइ, पुच्छा ?

१७ उत्तर-गोयमा ! इत्थी सिय बंधइ, सिय णो बंधइ, एवं तिण्णि वि भाणियव्वा; णोइत्थी-णोपुरिस-णोणपुंसओ ण बंधइ ।

१८ प्रश्न-णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं संजए बंधए, अस्संजए संजयाऽसंजए बंधए; णोसंजय-णोअसंजय-णोसंजयासंजए बंधइ ?

१८ उत्तर-गोयमा ! संजए सिय बंधइ, सिय णो बंधइ; अस्संजए बंधइ; संजयासंजए वि बंधइ; णोसंजय-णोअस्संजय-णोसंजयासंजये ण बंधइ; एवं आउयवज्जाओ सत्त वि, आउए हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ ।

कठिन शब्दार्थ–आउयवज्जाओ–आयु छोड़कर, हेट्ठिल्ला–नीचे की, उवरिल्ला–ऊपर के, भयणाए–भजना से अर्थात् विकल्प से।

भावार्थ–१६ प्रश्न–हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, नपुंसक बांधता है, या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ?

१६ उत्तर–हे गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को स्त्री भी बांधती है, पुरुष भी बांधता है और नपुंसक भी बांधता है, परन्तु जो नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक होता है, वह कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सातों कर्म प्रकृतियों के विषय में समझना चाहिये।

१७ प्रश्न–हे भगवन् ! आयुष्य कर्म को क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, नपुंसक बांधता है, या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ?

१७ उत्तर–हे गौतम ! आयुष्य कर्म को स्त्री कदाचित् बांधती है और कदाचित् नहीं बांधती है, इसी प्रकार पुरुष और नपुंसक के विषय में भी कहना चाहिये। नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक आयुष्य कर्म को नहीं बांधता।

१८ प्रश्न–हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को संयत बांधता है, असंयत बांधता है, संयतासंयत बांधता है, या नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत बांधता है ?

१८ उत्तर–हे गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को संयत कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है, किंतु असंयत बांधता है और संयतासंयत भी बांधता है, परन्तु जो नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत होता है, वह नहीं बांधता है। इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। आयुष्य कर्म के सम्बन्ध में संयत, असंयत और संयतासंयत के लिये भजना समझनी चाहिये। अर्थात् कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत आयुष्य कर्म को नहीं बांधते।

विवेचन–यहां प्रत्येक विषय में भिन्न भिन्न द्वार कहे जाते हैं।

१ स्त्रीद्वार–स्त्री, पुरुष और नपुंसक, ये तीनों ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हैं। जिस जीव के स्त्रीत्व, पुरुषत्व और नपुंसकत्व से सम्बन्धित वेद (विकार) का उदय नहीं

होता, किन्तु केवल स्त्री, पुरुष, या नपुंसक का शरीर है, उसे 'नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक' कहते हैं। वह अनिवृत्तिबादरसंपरायादि गुणस्थानवर्ती होता है। इनमें से अनिवृत्तिबादरसंपराय और सूक्ष्म-संपराय गुणस्थानवर्ती जीव, ज्ञानावरणीय कर्म का बन्धक होता है, क्योंकि वह सप्तविध कर्म का बन्धक, या षड्विध कर्म का बन्धक होता है। उपशान्तमोहादि गुणस्थानवर्ती (नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक) जीव, ज्ञानावरणीय का अबन्धक होता है, क्योंकि वह तो एकविध (वेदनीय) कर्म का बन्धक होता है। इसीलिए कहा है कि नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बांधता है अर्थात् कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है (आयुष्य कर्म को स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीव, कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब आयुष्य का बन्धकाल होता है, तब बान्धता है और जब आयुष्य का बन्ध-काल नहीं होता है, तब नहीं बान्धता है, क्योंकि एक भव में आयुष्य एक ही बार बन्धता है। नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक जीव (स्त्री आदि वेद रहित जीव) तो आयुष्य को बांधता ही नहीं है, क्योंकि निवृत्तिबादर संपराय आदि गुणस्थानों में आयुबन्ध का व्यवच्छेद होजाता है।

२ संयतद्वार-प्रथम के चार संयम में अर्थात् सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय, इन चार संयम में रहने वाला संयत जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है। यथाख्यात संयम में रहने वाला संयत जीव तो उपशान्त मोहादि वाला होता है, इसलिये वह ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधता है। अतएव कहा गया है कि संयत जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। असंयत अर्थात् मिथ्यादृष्टि आदि जीव और संयतासंयत अर्थात् पञ्चम गुणस्थानवर्ती देशविरत जीव, ये दोनों ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत अर्थात् सिद्ध जीव, ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधता है, क्योंकि उनके कर्म बंध का कोई कारण नहीं है। संयत, असंयत और संयतासंयत, ये तीनों आयुष्य बंध काल में आयुष्य को बांधते हैं, दूसरे समय में (आयुष्य बंध काल के सिवाय अन्य समय में) आयुष्य नहीं बांधते हैं। इसलिये इन तीनों के आयुष्य का बंध भजना से कहा गया है, अर्थात् कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत अर्थात् सिद्ध जीव, आयुष्य नहीं बांधते हैं।

१६ प्रश्न-णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सम्मदिट्ठी बंधइ

मिच्छदिट्ठी वंधइ, सम्मामिच्छदिट्ठी बंधइ ?

१९ उत्तर–गोयमा ! सम्मदिट्ठी सिय वंधइ, सिय णो वंधइ; मिच्छदिट्ठी वंधइ, सम्मामिच्छदिट्ठी वंधइ; एवं आउयवज्जाओ सत्त वि, आउए हेट्ठिला दो भयणाए, सम्मामिच्छदिट्ठी ण वंधइ ।

२० प्रश्न–णाणावरणिज्जं किं सण्णी वंधइ, असण्णी वंधइ; णोसण्णी णोअसण्णी बंधइ ?

२० उत्तर–गोयमा ! सण्णी सिय वंधइ, सिय णो वंधइ; असण्णी बंधइ; णोसण्णी-णोअसण्णी ण वंधइ, एवं वेयणिज्जा-ऽऽउयवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ, वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला दो वंधंति, उवरिल्ले भयणाए, आउयं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ ।

२१ प्रश्न–णाणावरणिज्जं कम्मं किं भवसिद्धिए वंधइ, अभव-सिद्धिए वंधइ, णोभवसिद्धिय-णोअभवसिद्धिए वंधइ ?

२१ उत्तर–गोयमा ! भवसिद्धिए भयणाए, अभवसिद्धिए वंधइ; णोभवसिद्धिय-णोअभवसिद्धिए ण वंधइ, एवं आउयवज्जाओ सत्त वि, आउयं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले ण वंधइ ।

२२ प्रश्न–णाणावरणिज्जं कम्मं किं चक्खुदंसणी, अचक्खु-दंसणी, ओहिदंसणी, केवलदंसणी ?

२२ उत्तर–गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण

बंधइ, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि, वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला तिण्णि बंधंति, केवलदंसणी भयणाए ।

कठिन शब्दार्थ-सण्णी-मनवाले जीव, असण्णी-जिनके मन नहीं, णोसण्णी णोअसण्णी-केवलज्ञानी और सिद्ध भगवान्, अचक्खुदंसणी-जो आँखों के सिवाय-कान, नाक, मुंह, शरीर और मन से देखते हैं।

भावार्थ-१९ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या सम्यग्दृष्टि बांधता है, मिथ्यादृष्टि बांधता है, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि बांधता है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! सम्यग्दृष्टि कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता, मिथ्यादृष्टि तो बांधता है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी बांधता है। इस प्रकार आयुष्य कर्म के सिवाय शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में समझना चाहिये। आयुष्य कर्म को सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि (सम्यग्मिथ्यादृष्टि अवस्था में) नहीं बांधते हैं।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या संज्ञी जीव बांधता है, असंज्ञीजीव बांधता है, या नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव बांधता है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को संज्ञी जीव, कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। असंज्ञी जीव बांधता है। नोसंज्ञी नो असंज्ञी जीव नहीं बांधता है। इस प्रकार वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर शेष छह कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। वेदनीय कर्म को संज्ञी भी बांधता है और असंज्ञी भी बांधता है, किंतु नोसंज्ञीनोअसंज्ञी कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बाधता है। आयुष्य कर्म को संज्ञी जीव और असंज्ञी जीव भजना से बांधते हैं, अर्थात् कदाचित् बांधते है और कदाचित् नहीं बांधते हैं। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव, आयुष्य कर्म को नहीं बांधते हैं।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या भवसिद्धिक बांधता है, अभवसिद्धिक बांधता है, या नोभवसिद्धिकनोअभवसिद्धिक बांधता है ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! भवसिद्धिक जीव, कदाचित् बांधता है और कदाचित्नहीं बांधता है। अभवसिद्धिक बांधता है। नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक नहीं बांधता है। इस प्रकार आयुष्य कर्म के सिवाय शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। आयुष्य कर्म को भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) नहीं बांधता है।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या चक्षुदर्शनी बांधता है, अचक्षुदर्शनी बांधता है, अवधिदर्शनी बांधता है, या केवलदर्शनी बांधता है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। केवलदर्शनी नहीं बांधता है। वेदनीय कर्म के सिवाय शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में इसी तरह कहना चाहिये। वेदनीय कर्म को चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी बांधते हैं। केवलदर्शनी कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं।

विवेचन-३ सम्यग्दृष्टि द्वार-सम्यग्दृष्टि के दो भेद हैं-सराग सम्यग्दृष्टि और वीतराग सम्यग्दृष्टि। इनमें से वीतराग सम्यग्दृष्टि तो ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं, क्योंकि वे तो एकविध (वेदनीय) कर्म के बंधक हैं। सराग सम्यग्दृष्टि तो ज्ञानावरणीय कर्म बाँधते हैं इसीलिये कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) ये दोनों तो ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते ही हैं। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् आयुष्य कर्म को बाँधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। जैसे कि-अपूर्वकरणादि सम्यग्दृष्टि, आयुष्य को नहीं बांधते हैं। इससे भिन्न सम्यग्दृष्टि जीव आयुष्य के बन्ध काल में आयुष्य को बांधते हैं, दूसरे समय में (आयुष्य बन्ध काल के सिवाय दूसरे समय में) नहीं बांधते हैं। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव भी आयुष्य बन्ध काल में आयुष्य को बांधते हैं, दूसरे समय में नहीं बांधते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) जीव, (मिश्रदृष्टि अवस्था में) आयुष्य बांधते ही नहीं हैं, क्योंकि मिश्रदृष्टि जीवों को आयुष्यबन्ध के अध्यवसाय स्थानों का अभाव है।

४ संज्ञी द्वार-मनःपर्याप्ति वाले जीवों को 'संज्ञी' कहते हैं। वीतराग संज्ञी जीव तो
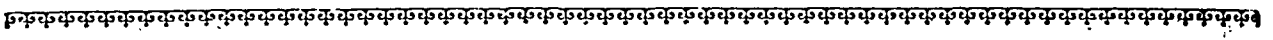
ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं। इनसे भिन्न सराग संज्ञी जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हैं। इसीलिए कहा है कि-संज्ञी जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बांधते हैं अर्थात् कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। मनःपर्याप्ति से रहित जीव, असंज्ञी कहलाते हैं। वे तो ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते ही हैं। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव, केवली या सिद्ध होते हैं, वे ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं, क्योंकि उनके ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धन के कारण (हेतु) नहीं हैं। संज्ञी जीव और असंज्ञी जीव-ये दोनों वेदनीय कर्म को बांधते ही हैं, क्योंकि अयोगी केवली और सिद्ध भगवान् के सिवाय शेष सभी जीव वेदनीय कर्म के बन्धक होते हैं। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीवों के तीन भेद होते हैं-सयोगी केवली, अयोगी केवली और सिद्ध भगवान्। इनमें से सयोगी केवली तो वेदनीय कर्म को बांधते हैं, किंतु अयोगी केवली और सिद्ध भगवान् नहीं बांधते हैं। इसलिए कहा गया है कि 'नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव, वेदनीय कर्म को भजना से बांधते हैं अर्थात् कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। संज्ञी और असंज्ञी, ये दोनों आयुष्य कर्म को भजना से बांधते हैं अर्थात् आयुष्य-बन्ध काल में आयुष्य को बांधते हैं और दूसरे समय में नहीं बांधते हैं। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी अर्थात् केवली और सिद्ध जीव, आयुष्य को नहीं बांधते हैं।

५ भवसिद्धिक द्वार-जो भवसिद्धिक वीतराग होते हैं, वे ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं। जो भवसिद्धिक सराग होते हैं, वे ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं। इसलिए कहा है कि 'भवसिद्धिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बांधते हैं। अभवसिद्धिक तो ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते ही हैं। नोभवसिद्धिकनोअभवसिद्धिक अर्थात् सिद्ध जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं। भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य), ये दोनों प्रकार के जीव, आयुष्य बन्ध काल में आयुष्य को बांधते हैं। इससे भिन्न समय में नहीं बांधते हैं। इसलिए कहा गया है कि-भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीव, आयुष्य कर्म को भजना से बांधते हैं। नोभवसिद्धिकनोअभवसिद्धिक अर्थात् सिद्ध जीव, आयुष्य को नहीं बांधते हैं।

६ दर्शन द्वार-चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी-ये तीनों यदि छद्मस्थ वीतरागी हों, तो ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं, क्योंकि वे तो केवल एक वेदनीय कर्म के ही वन्धक होते हैं। यदि ये तीनों सरागी छद्मस्थ हों, तो बांधते हैं। इसलिए यह कहा गया है कि ये तीनों ज्ञानावरणीय कर्म, भजना से बांधते हैं। भवस्थ केवलदर्शनी और सिद्ध केवलदर्शनी, ये दोनों ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधते हैं, क्योंकि उनके इस कर्मबन्ध का

हेतु नहीं है। प्रथम के तीन दर्शन वाले (चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी) छद्मस्थ वीतरागी और सरागी, ये वेदनीय कर्म को बांधते ही हैं। केवलदर्शनी, सयोगी-केवली वेदनीय कर्म बांधते हैं, किंतु केवलदर्शनी अयोगी-केवली और सिद्ध जीव,नहीं बांधते हैं। इसलिए कहा गया है कि केवलदर्शनी वेदनीय कर्म भजना से बांधते हैं अर्थात् कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं।

२३ प्रश्न–णाणावरणिज्जं कम्मं किं पज्जत्तओ बंधइ, अपज्जत्तओ बंधइ, णोपज्जतय-णोअपज्जत्तए बंधइ ?

२३ उत्तर–गोयमा ! पज्जत्तए भयणाए; अपज्जत्तए बंधइ, णोपज्जत्तय-णोअपज्जत्तए ण बंधइ; एवं आउयवज्जाओ, आउयं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ।

२४ प्रश्न–णाणावरणिज्जं किं भासए बंधइ, अभासए ० ?

२४ उत्तर–गोयमा ! दो वि भयणाए, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि। वेयणिज्जं भासए बंधइ, अभासए भयणाए।

२५ प्रश्न–णाणावरणिज्जं किं परित्ते बंधइ, अपरित्ते बंधइ, णोपरित्त-णोअपरित्ते बंधइ ?

२५ उत्तर–गोयमा ! परित्ते भयणाए, अपरित्ते बंधइ, णोपरित्त णोअपरित्ते ण बंधइ; एवं आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ, आउयं परित्तो वि, अपरित्तो वि भयणाए, णोपरित्त-णोअपरित्तो ण बंधइ।

२६ प्रश्न–णाणावरणिज्जं कम्मं किं आभिणिबोहियणाणी

बंधइ, सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी, केवलणाणी ० ?

२६ उत्तर-गोयमा ! हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए, केवलणाणी ण बंधइ, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि, वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला चत्तारि बंधंति, केवलणाणी भयणाए।

२७ प्रश्न-णाणावरणिज्जं किं मइअण्णाणी बंधइ, सुयअण्णाणी बंधइ, विभंगअण्णाणी बंधइ ?

२७ उत्तर-गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्त वि बंधंति, आउयं भयणाए।

कठिन शब्दार्थ-पज्जत्तओ-जिस जीव ने उत्पन्न होने के बाद अपने योग्य आहार, शरीर आदि पर्याप्ति पूर्ण करली हो, अपज्जत्तए-जिसने उत्पन्न होकर भी अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण नहीं की हो, भासए-भाषक-बोलने वाला, परित्ते-प्रत्येक शरीर २ अल्प संसारी, णोपरित्त णोअपरित्त-सिद्ध जीव, आभिणिबोहियणाणी-मति ज्ञानी।

भावार्थ २३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्म को पर्याप्तक जीव बांधता है, अपर्याप्तक जीव बांधता है, या नोपर्याप्तक नोअपर्याप्तक जीव बांधता है ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को पर्याप्तक जीव, कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। अपर्याप्तक जीव बांधता है। नोपर्याप्तक नोअपर्याप्तक जीव नहीं बांधता है। इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। आयुष्य कर्म को पर्याप्तक जीव और अपर्याप्तक जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। नोपर्याप्तक नोअपर्याप्तक जीव नहीं बांधता है।

२४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्म को भाषक जीव, बांधता है, या अभाषक जीव बांधता है ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को भाषक और अभाषक ये दोनों प्रकार के जीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। इसी प्रकार वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। भाषक जीव, वेदनीय कर्म को बांधता है। अभाषक जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है।

२५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या परित्त (एक शरीर वाला एक जीव) जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है, अपरित्त जीव बांधता है, या नोपरित्त नोअपरित्त जीव बांधता है ?

२५ उत्तर-हे गौतम ! परित्त जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। अपरित्त जीव बांधता है। नोपरित्त-नोअपरित्त जीव नहीं बांधता है। इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। परित्त और अपरित्त ये दोनों प्रकार के जीव आयुष्य कर्म को कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। नोपरित्त नोअपरित्त जीव आयुष्य कर्म नहीं बांधते हैं।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या आभिनिवोधिक (मति) ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी, ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! आभिनिवोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी-ये चार कदाचित् ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। केवलज्ञानी नहीं बांधते हैं। इसी प्रकार वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। आभिनिवोधिक आदि चारों वेदनीय कर्म को बांधते हैं। केवलज्ञानी कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं।

२७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी, ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हैं ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृ-

तियों को बांधते हैं। आयुष्य कर्म को कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बाधते हैं।

विवेचन-७ पर्याप्तक द्वार-वीतराग और सराग, ये दोनों पर्याप्तक होते हैं। इनमें से वीतराग पर्याप्तक तो ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं, किंतु सराग पर्याप्तक बांधते हैं। इसलिए यह कहा गया है कि-पर्याप्तक जीव, ज्ञानावरणीय कर्म भजना से बांधते हैं। नोपर्याप्तक नोअपर्याप्तक अर्थात् सिद्ध जीव, नहीं बांधते हैं। पर्याप्तक और अपर्याप्तक--ये दोनों आयुष्य के बन्ध काल में आयुष्य बांधते हैं और दूसरे समय में नहीं बांधते हैं। इसलिए आयुष्य बन्ध के विषय में इनके लिए भजना कही गई है। नोपर्याप्तक नोअपर्याप्तक अर्थात् सिद्ध जीव, आयुष्य नहीं बांधते हैं।

८ भाषक द्वार-भाषा-लब्धि वाले को 'भाषक' कहते हैं और भाषा-लब्धि से रहित को 'अभाषक' कहते हैं। इनमें से वीतराग भाषक, ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधते हैं और सराग भाषक बांधते हैं। इसलिए कहा गया है कि भाषक जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बांधते हैं। अभाषक में जो अयोगी-केवली और सिद्ध भगवान् हैं, वे तो ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधते हैं। विग्रह गति में रहे हुए जीव तथा पृथ्वीकायिकादि अभाषक जीव, ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं। इसलिए यह कहा गया है कि 'अभाषक जीव, ज्ञानावरणीय कर्म भजना से बांधते हैं'। भाषक जीव, वेदनीय कर्म को बांधते ही हैं, क्योंकि सयोगी-केवली गुणस्थान के अन्तिम समय तक का भाषक भी साता-वेदनीय कर्म बांधता है। अयोगी-केवली और सिद्ध जीव-ये दोनों अभाषक होते हैं। ये दोनों वेदनीय कर्म नहीं बांधते हैं। विग्रह गति समापन्न तथा पृथ्वीकायिक आदि अभाषक जीव, वेदनीय कर्म बांधते हैं, इसलिए यह कहा गया है कि-'अभाषक जीव, वेदनीय कर्म भजना से बाँधते हैं।

९ परित्त द्वार-एक शरीर में एक जीव हो उसे 'परित्त' कहते हैं अथवा अल्प संसार वाले जीव को 'परित्त' कहते हैं। ऐसा जीव वीतरागी भी होता है। ऐसा परित्त वीतरागी, ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधता और परित्त सरागी बांधता है। इसलिए कहा गया है कि 'परित्त जीव', ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बांधता है। जो जीव,अनन्त जीवों के साथ एक शरीर में रहता है, ऐसे साधारण काय वाले जीव को'अपरित्त'कहते हैं, अथवा अनन्त संसारी जीव को 'अपरित्त' कहते हैं। ये दोनों प्रकार के अपरित्त जीव, ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं। नोपरित्त नोअपरित्त अर्थात् सिद्ध जीव, ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधते हैं। परित्त जीव

(प्रत्येक शरीरादि जीव) आयुष्य के वन्धकाल में आयुष्य वांधते हैं, किन्तु दूसरे समय में नहीं वांधते। इसलिए इस विषय में 'भजना' कही गई है। नोपरित्त नोअपरित्त अर्थात् सिद्ध जीव तो आयुष्य वांधते ही नहीं हैं।

१० ज्ञानद्वार—आभिनिवोधिक ज्ञानी (मति ज्ञानी) श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी, ये चारों वीतराग अवस्था में ज्ञानावरणीय कर्म नहीं वांधते हैं और सराग अवस्था में वांधते हैं। इसलिए ज्ञानावरणीय कर्म वन्ध के विषय में इनकी भजना कही गई है। केवलज्ञानी, ज्ञानावरणीय कर्म नहीं वांधते हैं। आभिनिवोधिकज्ञानी आदि चार ज्ञानी, वेदनीय कर्म को वांधते ही हैं, क्योंकि छद्मस्थ वीतराग भी वेदनीय के वन्धक होते हैं। केवलज्ञानी, वेदनीय कर्म को भजना से वांधते है, क्योंकि सयोगी-केवली वेदनीय के वन्धक होते हैं और अयोगी-केवली तथा सिद्ध, वेदनीय के अवन्धक होते हैं। इसलिए वेदनीय के वन्ध के विषय में, केवलज्ञानी के लिए 'भजना' कही गई है।

२८ प्रश्न—णाणावरणिज्जं किं मणजोगी वंधइ, वयजोगी वंधइ, कायजोगी वंधइ, अजोगी वंधइ ?

२८ उत्तर—गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, अजोगी ण वंधइ; एवं वेयणिज्जवज्जाओ, वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला वंधंति, अजोगी ण वंधइ।

२९ प्रश्न—णाणावरणिज्जं किं सागारोवउत्ते वंधइ, अणागारोवउत्ते वंधइ ?

२९ उत्तर—गोयमा ! अट्ठसु वि भयणाए।

३० प्रश्न—णाणावरणिज्जं किं आहारए वंधइ, अणाहारए वंधइ ?

३० उत्तर—गोयमा ! दो वि भयणाए, एवं वेयणिज्जा-उय-

वज्जाणं छण्हं, वेयणिज्जं आहारए, बंधइ, अणाहारए भयणाए। आउए आहारए भयणाए, अणाहारए ण बंधइ।

३१ प्रश्न–णाणावरणिज्जं किं सुहुमे बंधइ, बायरे बंधइ, णोसुहुम-णोबायरे बंधइ ?

३१ उत्तर–गोयमा ! सुहुमे बंधइ, बायरे भयणाए; णोसुहुम-णोबायरे ण बंधइ; एवं आउयवज्जाओ सत्त वि, आउए सुहुमे, बायरे भयणाए त्ति; णोसुहुम-णोबायरे ण बंधइ।

३२ प्रश्न–णाणावरणिज्जं किं चरिमे, अचरिमे बंधइ ?

३२ उत्तर–गोयमा ! अट्ठ वि भयणाए।

कठिन शब्दार्थ–सागारोवउत्ते–साकार (ज्ञान के) उपयोग वाला, अणागारोवउत्ते–अनाकार–निराकार (दर्शन) उपयोग वाला, णोसुहुमेणोबायरे–जो न तो सूक्ष्म है न बादर (बडे) हैं–ऐसे सिद्ध जीव, चरिम–अंतिम भव वाला।

भावार्थ–२८ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी–ये ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ?

२८ उत्तर–हे गौतम ! मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी ये तीनों ज्ञानावरणीय कर्म, कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। अयोगी नहीं बांधते हैं। इसी प्रकार वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। वेदनीय कर्म को मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी बांधते हैं। अयोगी नहीं बांधते हैं।

२९ प्रश्न–हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म, क्या साकार उपयोग वाले बांधते हैं, या अनाकार उपयोग वाले बांधते हैं ?

२९ उत्तर–हे गौतम ! साकार उपयोग और अनाकार उपयोग–इन

दोनों उपयोग वाले जीव, आठों कर्म प्रकृतियों को कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं।

३० प्रश्न—हे भगवन् ! क्या आहारक जीव, ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ? या अनाहारक जीव बांधते हैं ?

३० उत्तर—हे गौतम ! आहारक और अनाहारक ये दोनों प्रकार के जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। इस प्रकार वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर शेष छह कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। वेदनीय कर्म को आहारक जीव बांधते हैं तथा अनाहारक जीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। आयुष्य कर्म को आहारक जीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। तथा अनाहारक जीव नहीं बांधते हैं।

३१ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या सूक्ष्म जीव, बादर जीव और नोसूक्ष्म-नोबादर जीव, ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ?

३१ उत्तर—गौतम ! सूक्ष्मजीव, ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं। बादरजीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। नोसूक्ष्मनोबादर जीव नहीं बांधते हैं। इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों का कथन करना चाहिये। सूक्ष्म जीव और बादर जीव, आयुष्य कर्म को कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। नोसूक्ष्म-नोबादर जीव नहीं बांधते हैं।

३२ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या चरम जीव, और अचरम जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ?

३२ उत्तर—हे गौतम ! चरम और अचरम ये दोनों प्रकार के जीव, आठों कर्म प्रकृतियों को कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं।

विवेचन—११ योग द्वार—मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी, ये तीनों जब उपशान्त मोह गुणस्थान वाले, क्षीणमोह गुणस्थान वाले और सयोगी गुणस्थान वाले होते हैं, तब ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं। इसके सिवाय दूसरे सभी सयोगी जीव, ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं, इसलिए 'भजना' कही गई है। अयोगी-केवली और सिद्ध, ज्ञानावरणीय कर्म

नहीं बांधते हैं। मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी, ये तीनों वेदनीय कर्म बांधते हैं, क्योंकि सभी सयोगी जीव, वेदनीय के बन्धक होते है। अयोगी, वेदनीय कर्म नहीं बांधते हैं, क्योंकि सभी अयोगी (अयोगी केवली और सिद्ध) वेदनीय के तथा सभी कर्मों के अबन्धक होते हैं।

१२ **उपयोगद्वार**–सयोगी जीव और अयोगी जीव, इन दोनों को साकार उपयोग और अनाकार उपयोग–ये दोनों उपयोग होते हैं। इन दोनों उपयोगों में वर्तमान सयोगी जीव, ज्ञानावरणीयादि आठों कर्म की प्रकृतियों को यथायोग्य बांधता है और अयोगी जीव नहीं बांधता है, क्योंकि अयोगी जीव, सभी कर्म प्रकृतियों का अबन्धक होता है। इसलिए इनमें 'भजना' कही गई है।

१३ **आहारक द्वार**–वीतरागी भी आहारक होते हैं और सरागी भी आहारक होते हैं। इनमें से वीतरागी आहारक, ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधते हैं। और सरागी आहारक बांधते हैं। इस प्रकार आहारक, ज्ञानावरणीय कर्म भजना से बांधते हैं। केवली और विग्रह-गति समापन्न जीव, ये दोनों अनाहारक होते हैं। इन में से केवली तो ज्ञानावरणीय कर्म को नहीं बांधते हैं और विग्रह गति समापन्न जीव, बांधते हैं। इस प्रकार अनाहारक भी ज्ञानावरणीय कर्म भजना से बांधते हैं। आहारक जीव, वेदनीय कर्म बांधते हैं। क्योंकि अयोगी केवली के सिवाय सभी जीव वेदनीय के बंधक हैं। विग्रहगति समापन्न जीव, समुद्घात प्राप्त केवली, अयोगी केवली और सिद्ध, ये सब अनाहारक होते हैं। इन में से विग्रहगति समापन्न जीव और समुद्घात प्राप्त केवली, ये दोनों वेदनीय कर्म को बांधते हैं। अयोगी केवली और सिद्ध जीव नहीं बांधते हैं। इस प्रकार अनाहारक जीव, वेदनीय कर्म भजना से बांधते, हैं। आहारक जीव, आयुष्य के बंध काल में आयुष्य बांधते हैं और दूसरे समय में नहीं बांधते हैं। इस प्रकार आयुष्य कर्म के बन्ध में भजना है। अनाहारक, आयुष्य कर्म नहीं बांधते हैं। क्योंकि विग्रह गति समापन्न जीव भी आयुष्य का अबंधक है।

१४ **सूक्ष्म द्वार**–सूक्ष्म जीव, ज्ञानावरणीय का बंधक है। वीतराग बादर जीव, ज्ञानावरणीय के अबंधक है। और सराग बादर जीव, बंधक है। इसलिये इनकी भजना कही गई है। नोसूक्ष्म नोबादर अर्थात् सिद्ध, ज्ञानावरणीय कर्म के अबंधक हैं। सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार के जीव, आयुष्य बंधकाल में आयुष्य कर्म बांधते हैं और दूसरे समय में नहीं बांधते हैं। इसलिये आयुष्य के विषय में भजना कही गई है।

१५ **चरम द्वार**–जिसका चरम अर्थात् अन्तिम भव है, या होने वाला है, उसको यहाँ 'चरम' कहा गया है अर्थात् यहाँ भव्य को चरम कहा गया है और जिसका अन्तिम-

भव नहीं होने वाला है तथा जिन्होंने भवों का अन्त कर दिया है, उनको यहाँ 'अचरम' कहा गया है अर्थात् अभवी और सिद्ध को अचरम कहा गया है। इनमें से चरम जीव यथायोग्य आठ कर्म प्रकृतियों को भी बांधता है और चरम जीव की अयोगी अवस्था हो उस समय वह नहीं बांधता है। इसलिये यह कहा गया है कि चरम जीव, आठों कर्म प्रकृतियों को भजना से बांधता है। अचरम शब्द का अर्थ जब यह लिया जाय कि जिसका कभी चरम भव नहीं होगा—ऐसा अभव्य जीव, आठों कर्म प्रकृतियों को बांधता है और जब अचरम का अर्थ 'सिद्ध' लिया जाय, तो वह किसी भी कर्म प्रकृति को नहीं बांधता है। इसलिये यह कहा गया है कि 'अचरम जीव आठों कर्म प्रकृतियों को भजना से बांधता है'।

वेदक का अल्पबहुत्व

३३ प्रश्न—एएसि णं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयगाणं, पुरिसवेयगाणं, णपुंसगवेयगाणं, अवेयगाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ४ ?

३३ उत्तर—गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा, इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा, अवेयगा अणंतगुणा, णपुंसगवेयगा अणंतगुणा।

—एएसिं सव्वेसिं पयाणं अप्प-बहुगाइं उच्चारेयव्वाइं, जाव—सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति

॥ छट्ठसए तइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-अवेयगा-अवेदक-जिन जीवों में काम विकार उत्पन्न नहीं होता, अप्पबहुगाइं-अल्प बहुत्व, उच्चारेयव्वाइं-उच्चारण करना चाहिये।

भावार्थ-३३ प्रश्न-हे भगवन् ! स्त्री-वेदक, पुरुष-वेदक, नपुंसक-वेदक और अवेदक, इन जीवों में से कौन किससे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं और विशेषाधिक हैं ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! सब से थोड़े पुरुष-वेदक हैं। उनसे संख्येय गुणा स्त्री-वेदक हैं। उनसे अनन्त गुणा अवेदक हैं। और उनसे अनन्त गुणा नपुंसक-वेदक हैं।

पहले कहे हुए सब पदों का अल्प बहुत्व कहना चाहिये। यावत् सब से थोड़े अचरम जीव हैं और उनसे अनन्त गुणा चरम जीव हैं।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन-वेदकों का अल्प बहुत्व बताते हुए यह बतलाया गया है कि पुरुषवेदक जीवों से स्त्रीवेदक जीव संख्यातगुणा अधिक हैं। इसका कारण यह है कि देवों की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुणी और बत्तीस अधिक हैं। मनुष्य पुरुषों की अपेक्षा मनुष्यणी (स्त्री) सत्ताईस गुणी और सत्ताईस अधिक हैं। तिर्यंचों की अपेक्षा तिर्यंचणियाँ तीन गुणी और तीन अधिक हैं। स्त्रीवेद वालों की अपेक्षा अवेदक अनन्त गुणा हैं। इसका कारण यह है कि अनिवृत्ति बादर संपरायादि गुणास्थानक वाले जीव और सिद्ध भगवान् अवेदक हैं। ये सब अनन्त हैं। इसलिये ये स्त्री वेदकों की अपेक्षा अनन्त गुणा हैं। अवेदकों से नपुंसक वेदक अनन्त गुणा हैं। इसका कारण यह है कि सिद्ध भगवान् की अपेक्षा अनन्त-कायिक जीव जो कि सब नपुंसक हैं, अनन्त गुणा हैं।

जिस प्रकार वेदकों का अल्प बहुत्व द्वार कहा गया है, उसी तरह संयत द्वार से लेकर चरम द्वार तक चौदह ही द्वारों का अल्प बहुत्व कहना चाहिये। इसका विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के तीसरे अल्प बहुत्व पद में हैं। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिये।

यहाँ पर जो यह कहा गया है कि अचरम की अपेक्षा चरम अनन्तगुणा है। इसका कारण यह है कि यहाँ अचरम का अर्थ अभव्य और सिद्ध लिया गया है। क्योंकि वे कभी भी चरम-अन्त को प्राप्त नहीं करेंगे। वे थोड़े हैं और उनसे चरम (भव्य) अनन्त गुणा हैं।

॥ इति छठे शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ४

जीव-प्रदेश निरूपण

१ प्रश्न-जीवे णं भंते ! कालादेसेणं किं सपएसे, अपएसे ?

१ उत्तर-गोयमा ! णियमा सपएसे ।

२ प्रश्न-णेरइए णं भंते ! कालादेसेणं किं सपएसे अपएसे ?

२ उत्तर-गोयमा ! सिय सपएसे, सिय अपएसे; एवं जाव-सिद्धे ।

३ प्रश्न-जीवा णं भंते ! कालादेसेणं किं सपएसा, अपएसा ?

३ उत्तर-गोयमा ! णियमा सपएसा ।

४ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! कालादेसेणं किं सपएसा, अपएसा ?

४ उत्तर-गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सपएसा, अहवा सपएसा य-अपएसे य, अहवा सपएसा य-अपएसा य; एवं जाव-थणियकुमारा ।

५ प्रश्न-पुढविकाइया णं भंते ! किं सपएसा, अपएसा ?

५ उत्तर-गोयमा ! सपएसा वि, अपएसा वि; एवं जाव-वणस्सइकाइया ।

कठिन शब्दार्थ-कालादेसेणं-कालादेश से अर्थात् काल की अपेक्षा, सिय-कदाचित् ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा क्या जीव, सप्रदेश है, या अप्रदेश है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! जीव, नियमा (निश्चित रूप से) सप्रदेश है ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा नैरयिक जीव, सप्रदेश है अथवा अप्रदेश है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! एक नैरयिक जीव कदाचित् सप्रदेश है और कदाचित् अप्रदेश है । इस प्रकार यावत् सिद्ध जीव पर्यन्त कहना चाहिये ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा क्या जीव (बहुत जीव) सप्रदेश हैं, या अप्रदेश हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! जीव नियमा सप्रदेश हैं ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा क्या नैरयिक जीव (बहुत नैरयिक जीव) सप्रदेश हैं, या अप्रदेश हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! इस विषय में नैरयिक जीवों के तीन भंग हैं । यथा-१ सभी सप्रदेश, २ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, ३ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश । इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश हैं, या अप्रदेश हैं ?

५ उत्तर-हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिये ।

-सेसा जहा णेरइया तहा, जाव-सिद्धा । आहारगाणं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो । अणाहारगाणं जीवाणं एगिंदियवज्जा छब्भंगा एवं भाणियव्वा-१ सपएसा वा, २ अपएसा वा, ३ अहवा सपएसे य अपएसे य, ४ अहवा सपएसे य अपएसा य, ५ अहवा सपएसा य अपएसे य, ६ अहवा सपएसा य अपएसा य । सिद्धेहिं

तियभंगो। भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया जहा ओहिया। णोभव-सिद्धिय-णोअभवसिद्धिय-जीवसिद्धेहिं तियभंगो। सण्णीहिं जीवाइओ तियभंगो। असण्णीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो। णेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगो। णोसण्णि-णोअसण्णि-जीवमणुयसिद्धेहिं तियभंगो। सलेसा जहा ओहिया। कण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा जहा आहारओ, णवरं–जस्स अत्थि एयाओ। तेउलेस्साए जीवाइओ तियभंगो, णवरं–पुढविक्काइएसु, आउवणस्सईसु छब्भंगा। पम्हलेस्स सुक्कलेस्साए जीवाइओ तियभंगो। अलेसेहिं जीव–सिद्धेहिं तियभंगो। मणुएसु छब्भंगा। सम्मदिट्ठीहिं जीवाइओ तियभंगो। विगलिंदिएसु छब्भंगा। मिच्छदिट्ठीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो। सम्मामिच्छदिट्ठीहिं छब्भंगा। संजएहिं जीवाइओ तियभंगो। असंजएहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो त्ति। संजयासंजएहिं तियभंगो जीवाइओ। णोसंजय-णोअसंजय-णोसंजयासंजयजीव-सिद्धेहिं तियभंगो। सकसाईहिं जीवाइओ तियभंगो। एगिंदिएसु अभंगयं। कोहकसाइहिं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो। देवेहिं छब्भंगा। माण-कसाई-मायाकसाई जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो। णेरइय-देवेहिं छब्भंगा। लोभकसाईहिं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो। णेरइएसु छब्भंगा। अकसाई-जीव-मणुएहिं, सिद्धेहिं तियभंगो। ओहियणाणे, आभिणिबोहियणाणे, सुयणाणे

जीवाइओ तियभंगो । विगलिंदिएहिं छब्भंगा । ओहिणाणे मण-केवलणाणे जीवाइओ तियभंगो । ओहिए अण्णाणे, मइअण्णाणे, सुयअण्णाणे, एगिंदियवज्जो तियभंगो । विभंगणाणे जीवाइओ तियभंगो । सजोगी जहा ओहिओ, मणजोगी, वयजोगी, काय-जोगी, जीवाइओ तियभंगो, णवरं–कायजोगी एगिंदिया, तेसु अभंगयं । अजोगी जहा अलेस्सा । सागारोवउत्त-अणागारोव-उत्तेहिं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो । सवेयगा य जहा सकसाई । इत्थिवेयग-पुरिसवेयग-णपुंसगवेयगेसु जीवाइओ तियभंगो, णवरं–णपुंसगवेदे एगिंदिएसु अभंगयं । अवेयगा जहा अकसाई, ससरीरी जहा ओहिओ । ओरालिय-वेउव्वियसरीराणं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो, आहारगसरीरे जीव-मणुएसु छब्भंगा, तेयग-कम्मगाणं जहा ओहिया । असरीरेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभंगो । आहारपज्जत्तीए, सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए, आणपाणपज्जत्तीए जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो, भासा-मणपज्जत्तीए जहा सण्णी, आहार-अपज्जत्तीए जहा अणाहारगा, सरीर-अपज्जत्तीए, इंदिय अपज्जत्तीए, आण-पाण-अपज्जत्तीए जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो, णेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा, भासामणअपज्जत्तीए जीवाइओ तियभंगो, णेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा ।

संगहगाहा–

सपएसा आहारग-भविय-सण्णिलेसा-दिट्ठी-संजय कसाए ।

णाणे जोगु-वओगे, वेए य सरीर पज्जत्ती ।।

कठिन शब्दार्थ-ओहिया-औधिक-सामान्य ।

भावार्थ-जिस प्रकार नैरयिक जीवों का कथन किया गया है। उसी प्रकार सिद्ध पर्यन्त सभी जीवों का कथन करना चाहिये।

आहार द्वार-जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर बाकी सभी आहारक जीवों के लिये तीन भंग कहने चाहिये। यथा-१ सभी सप्रदेश, २ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, ३ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश। अनाहारक जीवों के लिये एकेंद्रिय को छोड़कर छह भंग कहने चाहिये। यथा-१ सभी सप्रदेश, २ सभी अप्रदेश, ३ एक सप्रदेश और एक अप्रदेश, ४ एक सप्रदेश और बहुत अप्रदेश, ५ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, ६ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश। सिद्धों के लिये तीन भंग कहने चाहिये। भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवों के लिये औधिक जीवों की तरह कथन करना चाहिये। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिये। संज्ञी जीवों में जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये। असंज्ञी जीवों में एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिये। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिये। सलेश्य (लेश्या वाले) जीवों का कथन, औधिक जीवों की तरह करना चाहिये। कृष्णलेश्या वाले, नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले जीवों का कथन आहारक जीव की तरह करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसके जो लेश्या हो उसके वह लेश्या कहनी चाहिये। तेजो लेश्या में जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पति कायिक जीवों में छह भंग कहने चाहिये। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये। अलेश्य (लेश्या रहित) जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिये और अलेश्य मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिये। सम्यग्दृष्टि जीवों में, जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये। विकलेन्द्रियों में

छह भंग कहने चाहिये । मिथ्यादृष्टि जीवों में एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में छह भंग कहने चाहिये । संयत जीवों में जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये । असंयत जीवों में एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । संयतासंयत जीवों में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिये । सकषायी (कषाय वाले) जीवों में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । एकेंद्रियों में अभंगक कहना चाहिये । क्रोध कषायी जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । देवों में छह भंग कहने चाहिये । मान कषायी और माया कषायी जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । नैरयिक और देवों में छह भंग कहने चाहिये । लोभ कषायी जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । नैरयिक जीवों में छह भंग कहने चाहिये । अकषायी जीवों में जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिये । औधिक ज्ञान, (समुच्चय ज्ञान) आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान में जीवादिक में तीन भंग कहने चाहिये । विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहिये । अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । औधिक अज्ञान (समुच्चय अज्ञान) मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान में एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । विभंगज्ञान में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये ।

जिस प्रकार औधिक जीवों का कथन किया उसी प्रकार सयोगी जीवों का कथन करना चाहिये । मन-योगी, वचन-योगी और काय-योगी में, जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेंद्रिय जीव केवल काय-योग वाले ही होते हैं । उनमें अभंग कहना चाहिये । अयोगी जीवों का कथन अलेशी जीवों के समान कहना चाहिये ।

साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये ।

सवेदक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान करना चाहिये। स्त्री-वेदक, पुरुष-वेदक और नपुंसक-वेदक जीवों में, जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसक-वेद में एकेंद्रियों के विषय में अभंग कहना चाहिये। अवेदक जीवों का कथन अकषायी जीवों के समान कहना चाहिये।

सशरीरी जीवों का कथन औधिक जीवों के समान कहना चाहिये। औदारिक शरीर वाले और वैक्रिय शरीर वाले जीवों के लिये, जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये। आहारक शरीर वाले जीवों में जीव और मनुष्य में छह भंग कहने चाहिये। तेजस और कार्मण शरीर वाले जीवों का कथन औधिक जीवों के समान कहना चाहिये। अशरीरी जीव और सिद्धों के लिये तीन भंग कहने चाहिये।

आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये। भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति वाले जीवों का कथन, संज्ञी जीवों के समान कहना चाहिये। आहार अपर्याप्ति वाले जीवों का कथन, अनाहारक जीवों के समान कहना चाहिये। शरीर अपर्याप्ति, इन्द्रिय अपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास अपर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिये। भाषा अपर्याप्ति और मन अपर्याप्ति वाले जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिये।

संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है—सप्रदेश, आहारक, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति, इन चौदह द्वारों का कथन ऊपर किया गया है।

विवेचन—तीसरे उद्देशक में जीवों का निरूपण किया गया है। अब इस चौथे उद्देशक में दूसरे प्रकार से चौदह द्वारों में जीवों का निरूपण किया जाता है;—

१ सप्रदेश द्वार—कालादेश का अर्थ है—काल की अपेक्षा से। विभाग सहित को सप्र-

छह भंग कहने चाहिये । मिथ्यादृष्टि जीवों में एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में छह भंग कहने चाहिये । संयत जीवों में जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये । असंयत जीवों में एकेंद्रिय को छोड़-कर तीन भंग कहने चाहिये । संयतासंयत जीवों में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिये । सकषायी (कषाय वाले) जीवों में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । एकेंद्रियों में अभंगक कहना चाहिये । क्रोध कषायी जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । देवों में छह भंग कहने चाहिये । मान कषायी और माया कषायी जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । नैरयिक और देवों में छह भंग कहने चाहिये । लोभ कषायी जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । नैरयिक जीवों में छह भंग कहने चाहिये । अकषायी जीवों में जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिये। औधिक ज्ञान, (समुच्चय ज्ञान) आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान में जीवादिक में तीन भंग कहने चाहिये । विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहिये । अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । औधिक अज्ञान (समुच्चय अज्ञान) मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान में एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये । विभंगज्ञान में जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये ।

जिस प्रकार औधिक जीवों का कथन किया उसी प्रकार सयोगी जीवों का कथन करना चाहिये । मन-योगी, वचन-योगी और काय-योगी में, जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेंद्रिय जीव केवल काय-योग वाले ही होते हैं । उनमें अभंग कहना चाहिये । अयोगी जीवों का कथन अलेशी जीवों के समान कहना चाहिये ।

साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये ।

सवेदक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान करना चाहिये। स्त्री-वेदक, पुरुष-वेदक और नपुंसक-वेदक जीवों में, जीवादि में तीन भंग कहने चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसक-वेद में एकेंद्रियों के विषय में अभंग कहना चाहिये। अवेदक जीवों का कथन अकषायी जीवों के समान कहना चाहिये।

सशरीरी जीवों का कथन औधिक जीवों के समान कहना चाहिये। औदारिक शरीर वाले और वैक्रिय शरीर वाले जीवों के लिये, जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये। आहारक शरीर वाले जीवों में जीव और मनुष्य में छह भंग कहने चाहिये। तेजस और कार्मण शरीर वाले जीवों का कथन औधिक जीवों के समान कहना चाहिये। अशरीरी जीव और सिद्धों के लिये तीन भंग कहने चाहिये।

आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये। भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति वाले जीवों का कथन, संज्ञी जीवों के समान कहना चाहिये। आहार अपर्याप्ति वाले जीवों का कथन, अनाहारक जीवों के समान कहना चाहिये। शरीर अपर्याप्ति, इन्द्रिय अपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास अपर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिये। भाषा अपर्याप्ति और मन अपर्याप्ति वाले जीव आदि में तीन भंग कहने चाहिये। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिये।

संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है-सप्रदेश, आहारक, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति, इन चौदह द्वारों का कथन ऊपर किया गया है।

विवेचन-तीसरे उद्देशक में जीवों का निरूपण किया गया है। अब इस चौथे उद्देशक में दूसरे प्रकार से चौदह द्वारों में जीवों का निरूपण किया जाता है;-

१ सप्रदेश द्वार-कालादेश का अर्थ है-काल की अपेक्षा से। विभाग सहित को सप्र-

देश कहते हैं और विभाग रहित को अप्रदेश कहते हैं। जीव अनादि है, इसलिए उसकी स्थिति अनन्त समय की है, इसीलिए वह सप्रदेश है। जो एक समय की स्थिति वाला होता है, वह काल की अपेक्षा अप्रदेश है और जो एक समय से अधिक दो तीन चार आदि समय की स्थिति वाला होता है, वह काल की अपेक्षा सप्रदेश होता है। यही बात गाथा द्वारा इस प्रकार कही गई है;—

जो जस्स पढमसमए वट्टइ भावस्स सो उ अपएसो।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो ॥

अर्थ—जो जीव प्रथम समय में जिस भाव में वर्तता है, वह जीव 'अप्रदेश' कहलाता है। जो जीव प्रथम समय के बाद दूसरे, तीसरे, चौथे आदि समयों में वर्तता है, वह कालादेश की अपेक्षा 'सप्रदेश' कहलाता है।

जिस नैरयिक जीव को उत्पन्न हुए एक ही समय हुआ है, वह कालादेश की अपेक्षा 'अप्रदेश' कहलाता है और प्रथम समय के बाद दूसरे तीसरे आदि समय में वर्तता हुआ नैरयिक जीव, कालादेश की अपेक्षा 'सप्रदेश' कहलाता है। इसीलिये कहा गया है कि नैरयिक जीव, कोई सप्रदेश और कोई अप्रदेश होता है। इस प्रकार जीव से लेकर सिद्ध पर्यन्त २६ दण्डक (औघिक जीव का एक दण्डक, सिद्ध का एक दण्डक और नैरयिक आदि जीवों के २४ दण्डक, इस प्रकार अपेक्षा विशेष से यहाँ पर २६ दण्डक कहे गये हैं) में एक वचन को लेकर कालादेश की अपेक्षा सप्रदेशत्वादि का विचार किया गया है। इस के बाद इन्ही २६ दण्डकों में बहुवचन को लेकर विचार किया गया है। उपपात विरह काल में पूर्वोत्पन्न जीवों की संख्या असंख्यात होने से सभी सप्रदेश होते हैं। तथा पूर्वोत्पन्न नैरयिकों में जब एक भी दूसरा नैरयिक उत्पन्न होता है, तब उसकी प्रथम समय की उत्पत्ति की अपेक्षा उसका अप्रदेशत्व होने से वह 'अप्रदेश' कहलाता है। उसके सिवाय बाकी नैरयिक जिनकी उत्पत्ति को दो तीन चार आदि समय हो गये हैं, वे 'सप्रदेश' कहे गये हैं इसलिये मूल में यह कहा गया है कि 'बहुत सप्रदेश होते हैं और एक अप्रदेश होता है। इसी तरह जब बहुत जीव, उत्पद्यमान (उत्पन्न होते हुए) होते हैं तब 'बहुत जीव सप्रदेश और बहुत जीव अप्रदेश'—ऐसा कहा जाता है। एक समय में एकादि नैरयिक उत्पन्न भी होते हैं। जैसा कि कहा है—

एगो व दो व तिण्णि व संख मसंखा च एगसमएणं।
उववज्जंते वइया उव्वट्टंता वि एमेव ॥

अर्थ—एक, दो, तीन, संख्याता और असंख्याता जीव एक समय में उत्पन्न होते हैं।

और इसी प्रमाण में उद्वर्तते (मरते) हैं।

पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान एकेंद्रिय जीव, बहुत होने से 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—ऐसा कहा जाता है। अतः इनमें भंग नहीं बनता है। जिस प्रकार नैरयिक जीवों में तीन भंग कहे गये हैं, उसी प्रकार बेइन्द्रिय आदि से लेकर सिद्ध पर्यन्त जीवों में कथन करना चाहिये। क्योंकि इन सब में विरह का सम्भव होने से इनकी उत्पत्ति एक, दो, तीन, चार आदि रूप से होती है।

२ आहारक द्वार—आहारक और अनाहारक शब्द से विशेषित जीवों का एक वचन आश्री एक दण्डक, और बहुवचन आश्री एक दण्डक, इस प्रकार दो दण्डक कहने चाहिये। जो जीव विग्रह गति में अथवा केवली समुद्घात में अनाहारक होकर फिर आहारकपने को प्राप्त करता है, तब आहारकत्व के प्रथम समय में वर्तता हुआ वह जीव 'अप्रदेश' कहलाता है और प्रथम समय के सिवाय दूसरे, तीसरे आदि समयों में वर्तता हुआ वह जीव, 'सप्रदेश' कहलाता है। इसलिये मूल में कहा गया है कि कदाचित् कोई सप्रदेश और कदाचित् कोई अप्रदेश होता है। इस प्रकार सभी आदि वाले (शुरू होने वाले) भावों में एक वचन में जान लेना चाहिये, और अनादि वाले भावों में तो नियमा सप्रदेश होते हैं। बहुवचन वाले दण्डक में तो इस प्रकार कहना चाहिये कि वे सप्रदेश भी होते हैं और अप्रदेश भी होते हैं। क्योंकि आहारकपने में रहे हुए बहुत जीव होने से उनका सप्रदेशत्व है। तथा बहुत से जीवों को विग्रह गति के बाद तुरन्त ही प्रथम समय में आहारकपना संभव होने से उनका अप्रदेशत्व भी है। इस प्रकार आहारक जीवों में सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्रकार पृथ्वीकायिक आदि जीवों के लिये भी कहना चाहिये। नैरयिकादि जीवों में तीन भंग कहने चाहिये। यथा—१ सभी सप्रदेश, अथवा २ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, अथवा ३ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश। जीव और एकेन्द्रियों को छोड़कर उपर्युक्त तीन भंग कहने चाहिये। यहाँ (आहारक पद के विषय में) सिद्ध पद तो नहीं कहना चाहिये। क्योंकि सिद्ध तो अनाहारक ही होते हैं। जिस प्रकार आहारक पद के दो दण्डक कहे हैं, उसी प्रकार अनाहारक जीवों के विषय में भी एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा दो दण्डक कहने चाहिये। इनमें विग्रह गति समापन्न जीव, समुद्घात गत केवली, अयोगी केवली और सिद्ध, ये सब अनाहारक होते हैं। इसलिये ये सब जब अनाहारकत्व के प्रथम समय में वर्तते हैं, तो 'अप्रदेश' कहलाते हैं और जब दूसरे, तीसरे आदि समय में वर्तते हैं, तब 'सप्रदेश' कहलाते हैं। बहुवचन की अपेक्षा दण्डक में यह विशेषता है कि जीव और एकेन्द्रिय को नहीं लेना चाहिये। क्योंकि जीव पद में और एकेन्द्रिय पद में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भंग पाया जाता है।

देश कहते हैं और विभाग रहित को अप्रदेश कहते हैं। जीव अनादि है, इसलिए उसकी स्थिति अनन्त समय की है, इसीलिए वह सप्रदेश है। जो एक समय की स्थिति वाला होता है, वह काल की अपेक्षा अप्रदेश है और जो एक समय से अधिक दो तीन चार आदि समय की स्थिति वाला होता है, वह काल की अपेक्षा सप्रदेश होता है। यही बात गाथा द्वारा इस प्रकार कही गई है;–

जो जस्स पढमसमए वट्टइ भावस्स सो उ अपएसो।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो ॥

अर्थ–जो जीव प्रथम समय में जिस भाव में वर्तता है, वह जीव 'अप्रदेश' कहलाता है। जो जीव प्रथम समय के बाद दूसरे, तीसरे, चौथे आदि समयों में वर्तता है, वह कालादेश की अपेक्षा 'सप्रदेश' कहलाता है।

जिस नैरयिक जीव को उत्पन्न हुए एक ही समय हुआ है, वह कालादेश की अपेक्षा 'अप्रदेश' कहलाता है और प्रथम समय के बाद दूसरे तीसरे आदि समय में वर्तता हुआ नैरयिक जीव, कालादेश की अपेक्षा 'सप्रदेश' कहलाता है। इसीलिये कहा गया है कि नैरयिक जीव, कोई सप्रदेश और कोई अप्रदेश होता है। इस प्रकार जीव से लेकर सिद्ध पर्यन्त २६ दण्डक (औघिक जीव का एक दण्डक, सिद्ध का एक दण्डक और नैरयिक आदि जीवों के २४ दण्डक, इस प्रकार अपेक्षा विशेष से यहाँ पर २६ दण्डक कहे गये हैं) में एक वचन को लेकर कालादेश की अपेक्षा सप्रदेशत्वादि का विचार किया गया है। इस के बाद इन्ही २६ दण्डकों में बहुवचन को लेकर विचार किया गया है। उपपात विरह काल में पूर्वोत्पन्न जीवों की संख्या असंख्यात होने से सभी सप्रदेश होते हैं। तथा पूर्वोत्पन्न नैरयिकों में जब एक भी दूसरा नैरयिक उत्पन्न होता है, तब उसकी प्रथम समय की उत्पत्ति की अपेक्षा उसका अप्रदेशत्व होने से वह 'अप्रदेश' कहलाता है। उसके सिवाय बाकी नैरयिक जिनकी उत्पत्ति को दो तीन चार आदि समय हो गये हैं, वे 'सप्रदेश' कहे गये हैं इसलिये मूल में यह कहा गया है कि 'बहुत सप्रदेश होते हैं और एक अप्रदेश होता है। इसी तरह जब बहुत जीव, उत्पद्यमान (उत्पन्न होते हुए) होते हैं तब 'बहुत जीव सप्रदेश और बहुत जीव अप्रदेश'–ऐसा कहा जाता है। एक समय में एकादि नैरयिक उत्पन्न भी होते हैं। जैसा कि कहा है–

एगो व दो व तिण्णि व संख मसंखा च एगसमएणं।
उववज्जंते वइया उव्वट्टंता वि एमेव ॥

अर्थ–एक, दो, तीन, संख्याता और असंख्याता जीव एक समय में उत्पन्न होते हैं।

और इसी प्रमाण में उद्वर्तते (मरते) हैं।

पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान एकेंद्रिय जीव, बहुत होने से 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—ऐसा कहा जाता है। अतः इनमें भंग नहीं बनता है। जिस प्रकार नैरयिक जीवों में तीन भंग कहे गये हैं, उसी प्रकार बेइन्द्रिय आदि से लेकर सिद्ध पर्यन्त जीवों में कथन करना चाहिये। क्योंकि इन सब में विरह का सम्भव होने से इनकी उत्पत्ति एक, दो, तीन, चार आदि रूप से होती है।

२ आहारक द्वार—आहारक और अनाहारक शब्द से विशेषित जीवों का एक वचन आश्री एक दण्डक, और बहुवचन आश्री एक दण्डक, इस प्रकार दो दण्डक कहने चाहिये। जो जीव विग्रह गति में अथवा केवली समुद्घात में अनाहारक होकर फिर आहारकपने को प्राप्त करता है, तब आहारकत्व के प्रथम समय में वर्तता हुआ वह जीव 'अप्रदेश' कहलाता है और प्रथम समय के सिवाय दूसरे, तीसरे आदि समयों में वर्तता हुआ वह जीव, 'सप्रदेश' कहलाता है। इसलिये मूल में कहा गया है कि कदाचित् कोई सप्रदेश और कदाचित् कोई अप्रदेश होता है। इस प्रकार सभी आदि वाले (शुरू होने वाले) भावों में एक वचन में जान लेना चाहिये, और अनादि वाले भावों में तो नियमा सप्रदेश होते हैं। बहुवचन वाले दण्डक में तो इस प्रकार कहना चाहिये कि वे सप्रदेश भी होते हैं और अप्रदेश भी होते हैं। क्योंकि आहारकपने में रहे हुए बहुत जीव होने से उनका सप्रदेशत्व है। तथा बहुत से जीवों को विग्रह गति के बाद तुरन्त ही प्रथम समय में आहारकपना संभव होने से उनका अप्रदेशत्व भी है। इस प्रकार आहारक जीवों में सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्रकार पृथ्वीकायिक आदि जीवों के लिये भी कहना चाहिये। नैरयिकादि जीवों में तीन भंग कहने चाहिये। यथा—१ सभी सप्रदेश, अथवा २ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, अथवा ३ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश। जीव और एकेन्द्रियों को छोड़कर उपर्युक्त तीन भंग कहने चाहिये। यहाँ (आहारक पद के विषय में) सिद्ध पद तो नहीं कहना चाहिये। क्योंकि सिद्ध तो अनाहारक ही होते हैं। जिस प्रकार आहारक पद के दो दण्डक कहे हैं, उसी प्रकार अनाहारक जीवों के विषय में भी एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा दो दण्डक कहने चाहिये। इनमें विग्रह गति समापन्न जीव, समुद्घात गत केवली, अयोगी केवली और सिद्ध, ये सब अनाहारक होते हैं। इसलिये ये सब जब अनाहारकत्व के प्रथम समय में वर्तते हैं, तो 'अप्रदेश' कहलाते हैं और जब दूसरे, तीसरे आदि समय में वर्तते हैं, तब 'सप्रदेश' कहलाते हैं। बहुवचन की अपेक्षा दण्डक में यह विशेषता है कि जीव और एकेन्द्रिय को नहीं लेना चाहिये। क्योंकि जीव पद में और एकेन्द्रिय पद में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भंग पाया जाता है।

क्योंकि इन दोनों पदों में विग्रहगति समापन्न अनेक जीव सप्रदेश और अनेक जीव अप्रदेश मिलते हैं। नैरयिकादि तथा बेइन्द्रिय आदि जीवों में थोड़े जीवों की उत्पत्ति होती है। इसलिये उनमें एक दो आदि अनाहारक होने से छह भंग सम्भवित होते हैं। वे छह भंग मूल में कह दिये गये हैं। इनमें से असंयोगी दो भंग बहुवचनान्त हैं और शेष चार भंग एक वचन और बहुवचन के संयोग से बने हैं। यहाँ पर एक वचन की अपेक्षा दो भंग नहीं होते हैं, क्योंकि यहाँ बहुवचन का अधिकार चलता है। सिद्धों में तीन भंग होते हैं। क्योंकि उनमें सप्रदेश पद बहुवचनान्त ही सम्भवित है।

३ भव्य द्वार-भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, इन दोनों के प्रत्येक के दो दो दण्डक हैं। वे औधिक (सामान्य) जीव-दण्डक की तरह जान लेने चाहिये। इनमें भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीव, नियमा सप्रदेश होता है। नैरयिक आदि जीव तो सप्रदेश तथा अप्रदेश होता है। बहुत जीव तो सप्रदेश ही होते हैं। नैरयिक आदि जीवों में तीन भंग होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक भंग ही होता है। यहाँ भव्य और अभव्य के प्रकरण में सिद्ध पद नहीं कहना चाहिये, क्योंकि सिद्धों में भव्य और अभव्य इन दोनों विशेषणों की उपपति नहीं होती। अर्थात् सिद्ध जीव न तो भव्य कहलाते हैं और न अभव्य कहलाते हैं। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवों में दो दण्डक कहने चाहिये। अर्थात् एकवचन और बहुवचन से दो दण्डक कहने चाहिये। इसमें जीवपद और सिद्धपद ये दो पद ही कहने चाहिये। क्योंकि नैरयिक आदि जीवों के साथ 'नो भवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक' यह विशेषण नहीं लग सकता। इसके बहुवचन की अपेक्षा दण्डक में तीन भंग कहने चाहिये।

४ संज्ञी द्वार-संज्ञी जीवों के एकवचन और बहुवचन से दो दण्डक कहने चाहिये। बहुवचन से दण्डक में जीवादि पदों में तीन भंग कहने चाहिये। जिन संज्ञी जीवों को उत्पन्न हुए बहुत समय हो गया है, उनमें कालादेश से सप्रदेशत्व है। उत्पाद विरह के बाद जब एक जीव की उत्पत्ति होती है, तब उसके प्रथम समय की अपेक्षा 'बहुत जीव सप्रदेश और एक जीव अप्रदेश' इस प्रकार कहा जाता है। जब बहुत जीवों की उत्पत्ति प्रथम समय में होती है, तब 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'-ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार ये तीन भंग होते हैं। इस प्रकार सभी पदों में जान लेना चाहिये। किन्तु इन दो दण्डकों में एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्ध पद नहीं कहना चाहिये। क्योंकि इनमें 'संज्ञी' यह विशेषण नहीं लग सकता। असंज्ञी जीवों में एकेन्द्रिय पदों को छोड़कर दूसरे दण्डक में ये ही तीन भंग कहने

चाहिये और पृथ्वी आदि पदों में तो 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भंग कहना चाहिये। क्योंकि पृथ्वीकायिकादि जीवों में सदा बहुत जीवों की उत्पत्ति होती है। इसलिये उनके अप्रदेशपन बहुत्व ही सम्भवित है। नैरयिकों से लेकर व्यन्तर देवों तक असंज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं। वे जब तक संज्ञी न हों, तब तक उनका असंज्ञीपना जानना चाहिये। नैरयिकादि में असंज्ञीपना कादाचित्क होने से एकत्व और बहुत्व का सम्भव है। इसलिये उनमें छह भंग पाये जाते हैं-जो कि मूल पाठ में बतला दिये गये हैं। इस असंज्ञी प्रकरण में ज्योतिषी वैमानिक और सिद्ध का कथन नहीं करना चाहिये। क्योंकि इनमें असंज्ञीपना संभव नहीं है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी विशेषण वाले जीवों के दो दण्डक कहने चाहिये। उसमें बहुवचन की अपेक्षा दूसरे दण्डक में जीव, मनुष्य और सिद्ध में उपर्युक्त तीन भंग कहने चाहिये, क्योंकि उनमें बहुत से अवस्थित मिलते हैं और उत्पद्यमान एकादि का भी उनमें सम्भव है। इन दो दण्डकों में जीव, मनुष्य और सिद्ध ये तीन पद ही कहने चाहिये, क्योंकि नैरयिकादि जीवों के साथ 'नोसंज्ञी नोअसंज्ञी' यह विशेषण घटित नहीं हो सकता।

५ लेश्या द्वार-सलेश्य (लेश्यावाले) जीवों के दो दण्डक में जीव और नैरयिकों का कथन, औधिक दण्डक के समान करना चाहिये। क्योंकि जीवत्व की तरह सलेश्यत्व भी अनादि है। इसलिये इन दोनों में किसी प्रकार की विशेषता नहीं है। किन्तु इतना अन्तर है कि सलेश्य अधिकार में सिद्ध पद नहीं कहना चाहिये। क्योंकि सिद्ध जीव, अलेश्य है। कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले जीव और नैरयिकों के प्रत्येक के दो दो दण्डक, आहारक जीव की तरह कहने चाहिये। जिन नैरयिकादि में जो लेश्या होती है, वह लेश्या कहनी चाहिये। कृष्णादि तीन लेश्या, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में नहीं होती और सिद्ध जीवों में तो कोई भी लेश्या नहीं होती। तेजोलेश्या के एक वचन और बहु-वचन से दो दण्डक कहने चाहिये। उनमें से बहुवचन से दूसरे दण्डक में जीवादि पदों में तीन भंग कहने चाहिये। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में छह भंग कहने चाहिये। क्योंकि पृथ्वीकायिकादि जीवों में तेजोलेश्या वाले एकादि देव जो पूर्वोत्पन्न होते हैं और उत्पद्यमान होते हैं, वे पाये जाते हैं। इसलिये सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व के एकत्व और बहुत्व का सम्भव है। इस तेजोलेश्या के प्रकरण में नैरयिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, विकलेन्द्रिय और सिद्ध, इतने पद नहीं कहने चाहिये। क्योंकि इनमें तेजोलेश्या नहीं होती है। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के प्रत्येक के दो दो दण्डक कहने चाहिये। दूसरे दण्डक

में जीवादि पदों में तीन भंग कहने चाहिये। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के प्रकरण में पञ्चेंद्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य और वैमानिक देव ही कहने चाहिये। क्योंकि इनके सिवाय दूसरे जीवों में ये दो लेश्याएँ नहीं होतीं। अलेश्य (लेश्या रहित) जीव के एक वचन और बहुवचन से दो दण्डकों में जीव, मनुष्य और सिद्ध पद का ही कथन करना चाहिये। क्योंकि दूसरे जीवों में अलेश्यत्व सम्भवित नहीं है। इनमें जीव और सिद्ध में तीन भंग कहने चाहिये। मनुष्य में छह भंग कहने चाहिये। क्योंकि अलेश्यत्व प्रतिपन्न (प्राप्त किये हुए) और प्रतिपद्यमान (प्राप्त करते हुए) एकादि मनुष्यों का सम्भव होने से सप्रदेशत्व में और अप्रदेशत्व में एक वचन और बहुवचन का सम्भव है।

६ **दृष्टि द्वार**—सम्यग्दृष्टि के दो दण्डकों में, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के प्रथम समय में अप्रदेश पना है और पीछे के दूसरे तीसरे आदि समयों में सप्रदेशपना है। इनमें दूसरे दण्डक में जीवादि पदों में पूर्वोक्त तीन भंग जानने चाहिये। विकलेन्द्रियों में छह भंग जानने चाहिये। क्योंकि विकलेन्द्रियों में पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान एकादि सास्वादन सम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं। इसलिये सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व में एकत्व और बहुत्व का सम्भव है। इस सम्यग्दृष्टि द्वार में एकेंद्रिय पदों का कथन नहीं करना चाहिये। क्योंकि उनमें सम्यग्-दर्शन नहीं होता है। मिथ्यादृष्टि के एकवचन और बहुवचन से दो दण्डक कहने चाहिये। उनमें से दूसरे दण्डक में जीवादि पदों में तीन भंग कहने चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्व प्रतिपन्न (प्राप्त) जीव बहुत हैं और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होने के बाद मिथ्यात्व को प्रतिपद्यमान एकादि जीव सम्भवित हैं। इसलिये तीन भंग होते हैं। यहाँ मिथ्यादृष्टि के प्रकरण में एकेंद्रिय जीवों में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—यह एक ही भंग पाया जाता है। क्योंकि एकेंद्रिय जीवों में अवस्थित और उत्पद्यमान बहुत होते हैं। इस प्रकरण में सिद्धों का कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनमें मिथ्यात्व नहीं होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) जीवों के एकवचन और बहुवचन, ये दो दण्डक कहने चाहिये। उनमें से बहुवचन के दण्डक में छह भंग होते है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टिपन को प्राप्त और प्रतिपद्यमान एकादि जीव भी पाये जाते हैं। इस सम्यग्मिथ्या द्वार में एकेंद्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्ध जीवों का कथन नहीं करना चाहिये। क्योंकि उनमें सम्यग्मिथ्यादृष्टिपन असम्भव है।

७ **संयत द्वार**—संयतों में अर्थात् संयत शब्द से विशेषित जीवों में तीन भंग कहने चाहिये। क्योंकि संयम को प्राप्त बहुत जीव होते हैं और संयम को प्रतिपद्यमान एकादि जीव होते हैं। इसलिये तीन भंग घटित होते हैं। इस संयत द्वार में जीव पद और मनुष्य पद

ये दो ही कहने चाहिये। क्योंकि दूसरे जीवों में संयतपने का अभाव है। असंयत जीवों के एक वचन और बहुवचन से दो दण्डक कहने चाहिये। उनमें से बहुवचन से दूसरे दण्डक में तीन भंग कहने चाहिए, क्योंकि असंयतपने को प्राप्त बहुत जीव होते हैं और संयतपने से गिर कर असंयतपने को प्राप्त करते हुए एकादि जीव होते हैं। इसलिए उनमें तीन भंग घटित हो जाते हैं। एकेंद्रिय जीवों में पूर्वोक्त युक्ति अनुसार 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'-यह एक भंग पाया जाता है। इस असंयत प्रकरण में 'सिद्ध पद' नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सिद्धों में असंयतत्व नहीं होता। संयतासंयत पद में भी एकवचन और बहुवचन से दो दण्डक कहने चाहिए। उनमें से बहुवचन की अपेक्षा दूसरे दण्डक में पूर्वोक्त तीन भंग कहने चाहिए, क्योंकि संयतासंयतत्व अर्थात् देशविरतपने को प्राप्त बहुत जीव होते हैं और संयम से गिर कर तथा असंयम का त्याग कर सयतासंयतपने को प्राप्त होते हुए एकादि जीव होते हैं। अतः तीन भंग घटित होते हैं। इस संयतासंयत द्वार में जीव, पञ्चेंद्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य, ये तीन पद ही कहने चाहिए, क्योंकि इन तीन पदों के सिवाय दूसरे जीवों में संयतासंयतपन नहीं पाया जाता। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत द्वार में जीव और सिद्ध, ये दो पद ही कहने चाहिए। इनमें पूर्वोक्त तीन भंग पाये जाते हैं।

८ कषाय द्वार-सकषायी जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं, क्योंकि सकषायी जीव, सदा अवस्थित होने से वे 'सप्रदेश' होते हैं। यह एक भंग हुआ। उपशमश्रेणी से गिर कर सकषाय अवस्था को प्राप्त होते हुए एकादि जीव पाये जाते हैं। इसलिए 'बहुत सप्रदेश और एकादि अप्रदेश' तथा 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'-ये दो भंग और पाये जाते हैं। नैरयिकादि में तीन भंग पाये जाते हैं। एकेंद्रिय जीवों में अभंग है अर्थात् अनेक भंग नहीं पाये जाते हैं, किन्तु 'बहुत सप्रदेश और वहुत अप्रदेश'-यह एक ही भंग पाया जाता है, क्योंकि एकेंद्रिय जीवों में बहुत जीव अवस्थित और बहुत जीव उत्पद्यमान पाये जाते हैं। जहाँ यह एक ही भंग पाया जाता है, उसको शास्त्रीय परिभाषा में 'अभंगक' कहते हैं। इस सकषायी द्वार में 'सिद्ध' पद नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सिद्ध, कषाय रहित होते हैं। इसी तरह क्रोधादि कषायों में भी कहना चाहिए। क्रोधकषाय के एक वचन और बहुवचन, ये दो दण्डक कहने चाहिए। उनमें से बहुवचन से दूसरे दण्डक में जीव पद में और पृथ्वीकायिक आदि पदों में 'वहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'-यह एक भंग ही कहना चाहिए। शेष में तीन भंग कहने चाहिये।

शंका-जिस प्रकार सकषायी जीव पद में तीन भंग कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां

क्रोधकषायी में भी तीन ही भंग क्यों नहीं कहे गये ? एक ही भंग क्यों कहा गया ?

समाधान-सकषायी जीव पद में तो उपशम श्रेणी से गिरते हुए एकादि जीव पाये जाते हैं, किन्तु यहां क्रोध-कषायी के अधिकार में इस प्रकार सम्भवित नहीं है। यहाँ तो मान, माया और लोभ से निवृत्त होकर क्रोधकषाय को प्राप्त होते हुए जीव बहुत ही पाये जाते हैं, और उन सब की राशि अनन्त है। इस प्रकार यहां एकादि का सम्भव न होने से सकषायी जीव की तरह तीन भंग नहीं हो सकते।

देव पद में देवों सम्बन्धी तेरह ही दण्डकों में छह भंग कहने चाहिये, क्योंकि उनमें क्रोधकषाय के उदयवाले जीव अल्प होने से एकत्व और बहुत्व का सम्भव है। अतएव सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व का भी सम्भव है। मान कषाय और माया कषाय वाले जीवों के भी एकवचन और बहुवचन ये दो दण्डक, क्रोध कषाय की तरह कहने चाहिये। उनमें से दूसरे दण्डक में नैरयिकों में और देवों में छह भंग कहने चाहिये, क्योंकि इन दोनों में मान और माया के उदय वाले जीव थोड़े ही पाये जाते हैं। लोभ कषाय का कथन, क्रोधकषाय की तरह करना चाहिये। लोभकषाय के उदयवाले नैरयिक अल्प होने से उनमें छह भंग पाये जाते हैं। कहा गया है कि-

कोहे माणे माया बोधव्वा सुरगणेहिं छब्भंगा।
माणे माया लोभे नेरइएहिं पि छब्भंगा ॥

अर्थ-क्रोध, मान और माया में देवों के छह भंग कहने चाहिये और मान, माया तथा लोभ में नैरयिकों के छह भंग कहने चाहिये। क्योंकि देवों में लोभ बहुत होता है और नैरयिकों में क्रोध बहुत होता है। अकषायी द्वार के भी एकवचन और बहुबचन ये दो दण्डक कहने चाहिये। उनमें से दूसरे दण्डक में जीव, मनुष्य और सिद्ध पद में तीन भंग कहने चाहिये। इनके सिवाय अन्य दण्डकों का कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि दूसरे जीव, अकषायी नहीं हो सकते।

६ ज्ञान द्वार-मत्यादि भेद से अविशेषित ज्ञान को औघिक-ज्ञान कहते हैं। उस औघिक-ज्ञान में, मतिज्ञान में और श्रुतज्ञान में एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा दो दण्डक कहने चाहिये। उनमें से दूसरे दण्डक में जीवादि पदों में तीन भंग कहने चाहिये। इनमें औघिकज्ञानी, मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी सदा अवस्थित होने से वे सप्रदेश हैं, इसलिये 'सभी सप्रदेश' यह एक भंग हुआ। मिथ्याज्ञान से निवृत्त होकर मात्र मत्यादि ज्ञान को प्राप्त होने वाले तथा मतिअज्ञान से निवृत्त होकर मतिज्ञान को प्राप्त होने वाले तथा श्रुतअज्ञान से

निवृत्त होकर श्रुतज्ञान को प्राप्त होने वाले एकादि जीव पाये जाते हैं। इसलिये 'बहुत सप्रदेश और एकादि अप्रदेश' तथा 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' ये दो भंग होते हैं। इस प्रकार ये तीन भंग पाये जाते हैं। विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहिये। क्योंकि उनमें सास्वादन समकित होने से मत्यादि ज्ञानवाले एकादि जीव पाये जाते हैं। इसलिये छह भंग घटित हो जाते हैं। यहाँ पृथ्वीकायिकादि जीव तथा सिद्ध नहीं कहने चाहिए, क्योंकि उन में मत्यादिज्ञान नहीं पाया जाता है। इसी प्रकार अवधि आदिमें भी तीन भंग घटित कर लेने चाहिए। इसमें इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञान के एक वचन और बहुवचन, इन दोनों दण्डकों में एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्धों का कथन नहीं करना चाहिये। मनःपर्यय ज्ञान के दोनों दण्डकों में तो जीव और मनुष्य का ही कथन करना चाहिये, क्योंकि इन के सिवाय दूसरों को मनःपर्ययज्ञान नहीं होता। केवलज्ञान के एकवचन और बहुवचन इन दोनों दण्डकों में जीव, मनुष्य और सिद्ध का ही कथन करना चाहिये।

मति आदि अज्ञान से अविशेषित सामान्य अज्ञान (औघिक अज्ञान) मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान इन में जीवादि पदों में तीन भंग कहने चाहिये, क्योंकि ये सदा अवस्थित होने से 'सभी सप्रदेश' यह प्रथम भंग घटित होता है। अवस्थित के सिवाय जब दूसरे जीव, ज्ञान को छोड़कर मति अज्ञानादि को प्राप्त होते हैं, तब उनमें एकादि का सम्भव होने से दूसरे दो भंग भी घटित हो जाते हैं। इस प्रकार इनमें तीन भंग होते हैं। एकेन्द्रियों में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भंग पाया जाता है। इन तीनों अज्ञानों में सिद्ध का कथन नहीं करना चाहिये। विभंगज्ञान में जीवादि पदों में तीन भंग कहने चाहिये। जिनकी घटना मति अज्ञानादि की तरह करनी चाहिये। यहाँ एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्धों का कथन नहीं करना चाहिये।

१० **योग द्वार**–सयोगी जीवों के दोनों दण्डक औघिक जीवादिक की तरह कहने चाहिये। यथा–सयोगी जीव, नियमा सप्रदेशी होते हैं। नैयरिकादि तो सप्रदेश भी होते हैं और अप्रदेश भी होते हैं। बहुत जीव, सप्रदेश ही होते हैं। नैरयिकादि जीवों में तीन भंग होते हैं। एकेन्द्रियादि जीवों में तो केवल तीसरा भंग पाया जाता है। यहाँ सिद्ध का कथन नहीं करना चाहिये। मनयोगी अर्थात् तीनों योगों वाले संज्ञी जीव, वचनयोगी अर्थात् एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष सभी जीव, काययोगी अर्थात् एकेंद्रियादि सभी जीव। इनमें जीवादि में तीन भंग होते हैं। मनयोगी आदि जीव, जब अवस्थित होते हैं, तब उनमें 'सभी सप्रदेश' यह प्रथन भंग पाया जाता है और जब अमनयोगीपन आदि को छोड़कर मन-योगीपन आदि

में उत्पत्ति होती है, तब प्रथम समयवर्ती अप्रदेशत्व की अपेक्षा दूसरे दो भंग पाये जाते हैं, किन्तु इतनी विशेषता है कि काययोगी में एकेंद्रियों में अभंगक है। अर्थात् उनमें अनेक भंग नहीं पाये जाते, किन्तु 'बहुतसप्रदेश और बहुत अप्रदेश,' यह एक ही भंग पाया जाता है। तीनों योगों के दण्डकों में यथा सम्भव जीवादि पद कहने चाहिये, किन्तु सिद्ध पद नहीं कहना चाहिये। अयोगी द्वार का कथन अलेश्य द्वार के समान कहना चाहिये। इससे दूसरे दण्डक में, अयोगी जीवों में, जीव और सिद्ध पद में, तीन भंग कहने चाहिये और अयोगी मनुष्य में छह भंग कहने चाहिये।

११ उपयोग द्वार–साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले नैरयिक आदि में तीन भंग कहने चाहिये। जीव पद और पृथ्वीकायिकादि पदों में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भंग कहना चाहिये। इनमें (दोनों उपयोगों में से) किसी एक उपयोग में से दूसरे उपयोग में जाते हुए प्रथम समय और इतर समयों में सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व की घटना स्वयं कर लेनी चाहिये। सिद्धों में तो एक समयोपयोगीपन है, तो भी साकार उपयोग और अनाकार उपयोग की बारंबार प्राप्ति होने से सप्रदेशपन होता है और एक बार प्राप्ति होने से अप्रदेशपन होता है, ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार साकार उपयोग को बारंबार प्राप्त ऐसे बहुत सिद्धों की अपेक्षा 'सभी सप्रदेश' यह एक भंग जानना चाहिये। और उन्हीं सिद्धों की अपेक्षा तथा एक बार साकार उपयोग को प्राप्त एक सिद्ध की अपेक्षा 'बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश'–यह दूसरा भंग जानना चाहिये। बारंबार साकार उपयोग को प्राप्त बहुत सिद्धों की अपेक्षा तथा एक बार साकारउपयोग को प्राप्त बहुत सिद्धों की अपेक्षा 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह तीसरा भंग जानना चाहिये। अनाकार उपयोग में तो वारंबार अनाकार उपयोग को प्राप्त ऐसे बहुत सिद्ध जीवों की अपेक्षा प्रथम भंग जानना चाहिये। उन्हीं सिद्ध जीवों की अपेक्षा तथा एक बार अनाकार उपयोग को प्राप्त एक सिद्ध जीव की अपेक्षा, दूसरा भंग समझना चाहिये। बारंबार अनाकार उपयोग को प्राप्त वहुत सिद्ध जीवों की अपेक्षा एवं एकबार अनाकार उपयोग को प्राप्त बहुत सिद्ध जीवों की अपेक्षा तीसरा भंग जानना चाहिये।

१२ वेद द्वार–सवेदक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान करना चाहिये। सवेदी जीवों में भी जीवादि पद में तीन भंग होते हैं, क्योंकि वेद को प्राप्त बहुत जीव और उपशम श्रेणी से गिरने के वाद वेद को प्राप्त होने वाले एकादि जीवों की अपेक्षा तीन भंग घटित होते हैं। एकेंद्रियों में एक ही भंग पाया जाता है। स्त्रीवेदक आदि में तीन भंग पाये

जाते हैं। जब एक वेद से दूसरे वेद में संक्रमण होता है, तब प्रथम समय में अप्रदेशत्व और दूसरे समयों में सप्रदेशत्व होता है। इस प्रकार तीन भंग घटित कर लेने चाहिये। नपुंसक वेद के एकवचन और बहुवचन से दोनों दण्डकों में, एकेन्द्रियों में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—यह एक भंग पाया जाता है। स्त्री वेद और पुरुष वेद के दण्डकों में देव, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य ही कहने चाहिये। नपुंसक वेद के दण्डक में देवों को छोड़कर शेष जीवादि पद कहने चाहिये, सिद्ध पद तो तीनों वेदों में नहीं कहना चाहिये। अवेदक का कथन, अकषायी की तरह कहना चाहिये। इसमें जीव, मनुष्य और सिद्ध, ये तीन पद ही कहने चाहिये। इनमें तीन भंग पाये जाते हैं।

१३ **शरीर द्वार**—सशरीरी के दोनों दण्डकों में औधिक दण्डक की तरह जीव पद में सप्रदेशत्व ही कहना चाहिये, क्योंकि सशरीरीपन अनादि है। नैरयिकादि में शरीरत्व का बहुत्व होने के कारण तीन भंग कहने चाहिये। एकेंद्रियों में तो केवल तीसरा भंग ही कहना चाहिये। औदारिक शरीर वाले और वैक्रिय शरीर वाले जीवों में जीवपद और एकेंद्रिय पदों में बहुत्व के कारण एक तीसरा भंग ही पाया जाता है, क्योंकि जीवपद और एकेंद्रिय पदों में प्रतिक्षण प्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान बहुत पाये जाते हैं। शेष जीवों में तीन भंग कहने चाहिये, क्योंकि बाकी जीवों में प्रतिपन्न बहुत पाये जाते हैं। तथा औदारिक और वैक्रिय शरीर को छोड़कर दूसरे औदारिक और वैक्रिय शरीर को प्राप्त होने वाले एकादि जीव पाये जाते हैं। यहाँ औदारिक शरीर के दोनों दण्डकों में नैरयिक और देवों का कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि इनके औदारिक शरीर नहीं होता। वैक्रिय शरीर के दोनों दण्डकों में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय जीवों का कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि इनके वैक्रिय शरीर नहीं होता। वैक्रिय दण्डक में एकेन्द्रिय पद में जो 'बहुत सप्रदेश और वहुत अप्रदेश'—यह तीसरा भंग कहा है, यह असंख्यात वायुकायिक जीवों में प्रतिक्षण होने वाली वैक्रिय क्रिया की अपेक्षा से कहा गया है। यद्यपि वैक्रिय लब्धि वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य थोड़े होते हैं, तथापि उनमें जो तीन भंग कहे गये हैं, उसकी अपेक्षा तो वैक्रिय-लब्धि वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य वहुत संख्या में होने चाहिये—ऐसा सम्भवित है। उन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों में एकादि जीवों को वैक्रिय शरीर की प्रतिपद्यमानता जाननी चाहिये। इसीसे तीन भंगों की घटना होगी। आहारक शरीर की अपेक्षा जीव और मनुष्यों में पूर्वोक्त छह भंग जानने चाहिये। क्योंकि आहारक शरीर वाले थोड़े हैं। जीव और मनुष्य पदों के सिवाय दूसरे जीवों में आहारक शरीर नहीं

होता। तैजस शरीर और कार्मण शरीर का कथन औधिक जीवों की तरह करना चाहिये, उनमें औधिक जीव सप्रदेश ही होते हैं, क्योंकि तैजस और कार्मण शरीर का संयोग अनादि है। नैरयिकादि में तीन भंग कहने चाहिये। एकेंद्रियों में केवल तीसरा ही भंग कहना चाहिये। इन सशरीरादि दण्डकों में सिद्ध पद नहीं कहना चाहिये। सप्रदेशत्वादि से कहने योग्य अशरीर, जीवादि में जीवपद और सिद्ध पद ही कहना चाहिये, क्योंकि इनके सिवाय दूसरे जीवों में अशरीरपना नहीं पाया जाता। इनमें (अशरीर पद में) तीन भंग कहने चाहिये।

१४ **पर्याप्ति द्वार**-जीव पद में और एकेंद्रिय पदों में आहारपर्याप्ति आदि को प्राप्त बहुत जीव हैं और आहारादि की अपर्याप्ति को छोड़कर आहारादि पर्याप्ति द्वारा पर्याप्त भाव को प्राप्त होने वाले जीव भी बहुत ही पाये जाते हैं। इसलिये 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'-यह एक ही भंग पाया जाता है। शेष जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं। भाषा की और मन की पर्याप्ति को यहां 'भाषा मन पर्याप्ति' कहा गया है। यद्यपि भाषापर्याप्ति और मनपर्याप्ति ये दो पर्याप्तियां भिन्न भिन्न हैं, तथापि बहुश्रुत महापुरुषों द्वारा सम्मत किसी कारण विशेष की अपेक्षा यहाँ दोनों पर्याप्तियों को एक ही विवक्षित की है। अर्थात् उन दोनों पर्याप्तियों को यहाँ एक रूप गिना गया है। भाषा मन पर्याप्ति द्वारा पर्याप्त जीवों का कथन संज्ञी जीवों की तरह करना चाहिये। इन सब पदों में तीन भंग कहने चाहिये। यहाँ केवल पञ्चेन्द्रिय पद ही लेना चाहिये। आहार अपर्याप्त दण्डक में, जीव पद और पृथ्वीकायिक आदि पदों में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'-यह एक ही भंग कहना चाहिये, क्योंकि आहारपर्याप्ति से रहित विग्रहगति समापन्न बहुत जीव निरन्तर पाये जाते हैं। शेष जीवों में पूर्वोक्त छह भंग कहने चाहिये क्योंकि शेष जीवों में आहारपर्याप्ति रहित जीव थोड़े पाये जाते हैं। शरीर अपर्याप्ति द्वार में जीवों और एकेंद्रियों में एक ही भंग कहना चाहिये। शेष जीवों में तीन भंग कहने चाहिये, क्योंकि शरीरादि से अपर्याप्त जीव, काला-देश की अपेक्षा सदा सप्रदेश ही पाये जाते हैं और अप्रदेश तो कदाचित् एकादि पाये जाते हैं। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिये। भाषा और मन की पर्याप्ति से अपर्याप्त वे जीव कहलाते हैं, जिन को जन्म से भाषा और मन की योग्यता तो हो, किन्तु उसकी सिद्धि न हो। ऐसे जीव पञ्चेन्द्रिय ही होते हैं। यदि जिनको भाषा पर्याप्ति और मनपर्याप्ति का मात्र अभाव हो, वे भाषा और मन की अपर्याप्ति से अपर्याप्त कहलाते हों, तो इनमें एकेंद्रिय भी होने चाहिये। यदि ऐसा हो, तो जीवादि पद में केवल एक तीसरा

ही भंग पाया जाना चाहिये, परन्तु यह बात नहीं है, क्योंकि मूलपाठ में यहाँ जीवादि में तीन भंग कहे गये हैं। तात्पर्य यह है कि जिन जीवों को जन्म से भाषा और मन की योग्यता तो हो, परन्तु उसकी सिद्धि न हुई हो, वे ही जीव यहाँ भाषा मन अपर्याप्ति से अपर्याप्त कहे गये हैं। इन जीवों में और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में भाषा मन अपर्याप्ति को प्राप्त बहुत जीव पाये जाते हैं और इसकी अपर्याप्ति को प्राप्त होते हुए एकादि जीव ही पाये जाते हैं। इसलिये उनमें पूर्वोक्त तीन भंग ही पाये जाते हैं। नैरयिकादि में भाषा मन अपर्याप्तकों की अल्पतरता होने से वे एकादि सप्रदेश और अप्रदेश पाये जाते हैं। उनमें पूर्वोक्त छह भंग पाये जाते हैं। इन पर्याप्ति और अपर्याप्ति के दण्डकों में सिद्ध पद नहीं कहना चाहिये। क्योंकि उनमें पर्याप्ति अपर्याप्ति नहीं होती।

ऊपर चौदह द्वारों को लेकर सप्रदेश और अप्रदेश का विचार किया गया है। इन चौदह द्वारों को संगृहीत करने वाली संग्रह गाथा और उसका अर्थ ऊपर भावार्थ में दिया गया है।

जीव और प्रत्याख्यान

६ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

६ उत्तर-गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि।

७ प्रश्न-सव्वजीवाणं एवं पुच्छा ?

७ उत्तर-गोयमा ! णेरइया अपच्चक्खाणी जाव-चउरिंदिया, सेसा दो पडिसेहेयव्वा; पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि; मणुस्सा तिण्णि

वि, सेसा जहा-णेरइया ।

८ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं जाणंति, अपच्च-क्खाणं जाणंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं जाणंति ?

८ उत्तर-गोयमा ! जे पंचिंदिया ते तिण्णि वि जाणंति, अव-सेसा पच्चक्खाणं ण जाणंति ।

९ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं अपच्चक्खाणं कुव्वंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं कुव्वंति ?

९ उत्तर-जहा-ओहियो तहा कुव्वणा ।

कठिन शब्दार्थ-**पच्चक्खाणी**-प्रत्याख्यान-पाप का त्याग किये हुए, **पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणं**-प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान, **ओहियो**-औधिक-सामान्य, **कुव्वणा**-करना ।

भावार्थ-६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं, या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं ?

६ उत्तर-हे गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं ।

७ प्रश्न-इसी तरह सभी जीवों के विषय में प्रश्न करना चाहिये ?

७ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव, अप्रत्याख्यानी हैं, इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक अप्रत्याख्यानी हैं । इन जीवों के लिये शेष दो भंगों (प्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी) का निषेध करना चाहिये । पञ्चेंद्रिय तिर्यञ्च प्रत्याख्यानी नहीं है, किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं । मनुष्यों में तीनों भंग पाये जाते हैं । शेष जीवों का कथन नैरयिक जीवों की तरह कहना चाहिये ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, प्रत्याख्यान को जानते हैं, अप्रत्याख्यान को जानते हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को जानते हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! जो जीव, पञ्चेन्द्रिय हैं, वे तीनों को जानते हैं। शेष जीव प्रत्याख्यान को नहीं जानते हैं। (अप्रत्याख्यान को नहीं जानते हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को भी नहीं जानते हैं।)

९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान करते हैं ? अप्रत्याख्यान करते हैं ? प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान करते हैं ?

९ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार औधिक दण्डक कहा है, उसी प्रकार प्रत्याख्यान करने के विषय में कहना चाहिये।

विवेचन-पहले प्रकरण में जीवों का कथन किया गया है। अब इस प्रकरण में भी जीवों का ही कथन किया जाता है।

प्रत्याख्यानी का अर्थ है-प्रत्याख्यान वाले अर्थात् सर्व-विरत। अप्रत्याख्यानी अर्थात् अविरत। प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी अर्थात् देश-विरत (किसी अंश में पाप से निवृत्त और किसी अंश में अनिवृत्त)। नैरयिकादि जीव अविरत होते हैं, इसलिए वे अप्रत्याख्यानी हैं। वे प्रत्याख्यानी या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी नहीं होते।

प्रत्याख्यान तभी हो सकता हैं जब कि उसका ज्ञान हो। इसलिए प्रत्याख्यान के बाद प्रत्याख्यान ज्ञान का सूत्र कहा गया है। नैरयिकादि तथा दण्डकोक्त पञ्चेन्द्रिय जीव समनस्क (संज्ञी) होने से सम्यग्दृष्टि हों, तो ज्ञपरिज्ञा से प्रत्याख्यानादि तीनों को जानते हैं। शेष जीव अर्थात् एकेंद्रिय और विकलेन्द्रिय जीव अमनस्क (असंज्ञी) होने से प्रत्याख्यानादि तीनों को नहीं जानते।

प्रत्याख्यान तभी होता है जब कि वह किया जाता है-स्वीकार किया जाता है। इसलिए आगे प्रत्याख्यान करण सूत्र कहा गया है।

प्रत्याख्यान निबद्ध आयु

१० प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया, अपच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया, पच्चक्खाणापच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया ?

१० उत्तर-गोयमा ! जीवा य, वेमाणिया य पच्चक्खाण-णिव्वत्तियाउया तिण्णि वि; अवसेसा अपच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया।

पच्चक्खाणं जाणइ, कुव्वइ, तिण्णेव आउणिव्वत्ती ।
सपएसुद्देसम्मि य एमेए दंडगा चउरो ।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । ॥

॥ छट्ठसए चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-पच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया-प्रत्याख्यान से आयुष्य बाँधे हुए ।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ? अर्थात् क्या जीवों का आयुष्य प्रत्याख्यान से बंधता है, अप्रत्याख्यान से बंधता है और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से बंधता है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! जीव और वैमानिक देव, प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं । शेष सभी जीव, अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ।

संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है-प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान को जानना, तीनों के द्वारा आयुष्य की निर्वृत्ति, सप्रदेश उद्देशक में ये चार दण्डक कहे गये हैं ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

विवेचन-प्रत्याख्यान, आयुष्य बन्ध में कारण भी होता है, इसलिये प्रत्याख्यान करण सूत्र के बाद आयुष्य बन्ध सूत्र कहा गया है । जीव पद में जीव प्रत्याख्यानादि तीनों द्वारा निबद्ध आयुष्य वाले होते हैं और वैमानिक पद में वैमानिक भी इसी प्रकार कहने चाहिये । क्योंकि प्रत्याख्यानादि तीनों वाले जीवों की उत्पत्ति वैमानिकों में होती है । नैर-

यिकादि अप्रत्याख्यान से निबद्ध आयुष्य वाले हैं, क्योंकि नैरयिकादि में वास्तव में अविरत जीव ही पैदा होते हैं।

इसके बाद संग्रह गाथा कही गई है। उसमें प्रत्याख्यान सम्बन्धी एक दण्डक और शेष तीन दण्डक, इस प्रकार कुल चार दण्डक (जो कि इस सप्रदेश नामक चौथे उद्देशक में कहे गये हैं) का कथन किया गया है।

॥ इति छठे शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ५

तमस्काय

१ प्रश्न-किमियं भंते ! 'तमुक्काए' त्ति पव्वुच्चइ, किं पुढवी तमुक्काए त्ति पव्वुच्चइ, आउ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चइ ?

१ उत्तर-गोयमा ! णो पुढवि तमुक्काए त्ति पव्वुच्चइ, आउ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चइ।

२ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२ उत्तर-गोयमा ! पुढविकाए णं अत्थेगइए सुभे देसं पगासेइ, अत्थेगइए देसं णो पगासेइ-से तेणट्ठेणं।

३ प्रश्न-तमुक्काए णं भंते ! कहिं समुट्ठिए, कहिं सण्णिट्ठिए ?

३ उत्तर-गोयमा ! जंबूदीवस्स दीवस्स बहिया तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीईवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साणि ओगाहित्ता उवरिल्लाओ जलंताओ एगपएसियाए सेढीए-एत्थ णं तमुक्काए समुट्ठिए । सत्तरस-एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता तओ पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे, पवित्थरमाणे सोहम्मी-साण-सणंकुमार-माहिंदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ता णं उड्ढं पि य णं बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते-एत्थ णं तमुक्काए णं सण्णिविट्ठिए ।

कठिन शब्दार्थ-किमियं-क्या है ?, तमुक्काए-तमस्काय-अन्धकार का समूह, पवुच्चइ-कहा जाता है, अत्थेगइए-कितने ही-कुछ, पगासेइ-प्रकाशित होते हैं, समुट्ठिए-समुत्थित-उत्पन्न हुई, सण्णिट्ठिए-सन्निष्ठित-समाप्त हुई, वीईवइत्ता-उल्लंघन करके, वेइयंताओ-वेदिका के अंत में, उड्ढं उप्पइत्ता-ऊंचा उठता है, पवित्थरमाणे-विस्तृत होता हुआ, आवरित्ता-आच्छादित करके ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! तमस्काय, क्या कहलाती है । क्या पृथ्वी तमस्काय कहलाती है, या पानी तमस्काय कहलाता है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती है, किन्तु पानी तमस्काय कहलाता है ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! कुछ पृथ्वीकाय ऐसी शुभ है जो देश को (कुछ भाग को) प्रकाशित करती है और कुछ पृथ्वीकाय ऐसी है जो देश (भाग) को प्रकाशित नहीं करती । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती, किन्तु पानी तमस्काय कहलाता है ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! तमस्काय कहाँ से प्रारम्भ होती है और कहाँ

समाप्त होती है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! जम्बूद्वीप के बाहर तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को उल्लंघन करने के बाद, अरुणवर नाम का द्वीप आता है। उस द्वीप की बाहर की वेदिका के अन्त से अरुणोदय समुद्र में ४२ हजार योजन जाने पर वहाँ के उपरितन जलान्त से एक प्रदेश की श्रेणी रूप तमस्काय उठती है। वहाँ से १७२१ योजन ऊंची जाने के बाद फिर तिरछी विस्तृत होती हुई सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र-इन चार देवलोकों को आच्छादित करके ऊंची पांचवे ब्रह्मदेवलोक के रिष्ट विमान नामक पाथड़े तक पहुंची है और वहीं तमस्काय का अन्त होता है।

विवेचन-चौथे उद्देशक में सप्रदेश जीव का कथन किया गया है। इस सम्बन्ध के अनुसार इस पांचवें उद्देशक में सप्रदेशात्मक तमस्काय का वर्णन किया जाता है। तमस्काय का अर्थ है-अन्धकार वाले पुद्गलों का समूह। यहाँ तमस्काय का कोई नियत स्कन्ध विवक्षित है। वह स्कन्ध पृथ्वीरज स्कन्ध या उदकरज स्कन्ध हो सकता है। इसलिये तमस्काय पृथ्वी रूप है, या पानी रूप है-यह प्रश्न किया गया है। जिसके उत्तर में कहा गया है कि तमस्काय पृथ्वी रूप नहीं है, किन्तु पानी रूप है। इसका कारण यह है कि कोई एक पृथ्वी पिण्ड शुभ अर्थात् भास्वर (दीप्तिवाला) होता है। वह भास्वर रूप होने से मणि आदि की तरह अमुक क्षेत्र विभाग को प्रकाशित करता है और कोई पृथ्वी-पिण्ड, अभास्वर होने से अन्ध पत्थर की तरह दूसरे पृथ्वीपिण्ड को भी प्रकाशित नहीं कर सकता। सब प्रकार का पानी अप्रकाशक ही होता है और तमस्काय भी अप्रकाशक है। इसलिये अप्काय और तमस्काय का एक सरीखा स्वभाव होने से तमस्काय का परिणामी कारण अप्काय ही हो सकता है। अर्थात् तमस्काय, अप्काय का परिणाम ही है। यह तमस्काय एक प्रदेश श्रेणी रूप है। यहाँ 'एक प्रदेशी श्रेणी' का अर्थ-एक प्रदेशवाली श्रेणी ऐसा नहीं करना चाहिये, किन्तु 'समभित्ति रूप श्रेणी है अर्थात् नीचे से लेकर ऊपर तक एक समान भींत (दिवाल) रूप श्रेणी है। अतः यहाँ 'एक प्रदेश वाली श्रेणी'-ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है, क्योंकि तमस्काय स्तिबुकाकार जल जीव रूप है। उन जीवों के रहने के लिये असंख्यात आकाश प्रदेशों की आवश्यकता है। एक प्रदेश वाली श्रेणी का विस्तार बहुत थोड़ा होता है। उसमें वे जलजीव कैसे रह सकते हैं। इसलिये यहां 'एक प्रदेश वाली श्रेणी'-ऐसा अर्थ घटित नहीं होता। किन्तु 'समभित्ति' 'रूप श्रेणी' यह अर्थ ही घटित होता है।

४ प्रश्न–तमुक्काए णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

४ उत्तर–गोयमा ! अहे मल्लगमूलसंठिए, उप्पिं कुक्कुडपंजरग-संठिए पण्णत्ते ।

५ प्रश्न–तमुक्काए णं भंते ! केवइयं विक्खंभेणं, केवइयं परिक्खे-वेणं पण्णत्ते ?

५ उत्तर–गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–संखेज्जवित्थडे य, असंखेज्जवित्थडे य; तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खे-वेणं पण्णत्ते, तत्थ णं जे से असंखिज्जवित्थडे से णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खे-वेणं पण्णत्ते ।

६ प्रश्न–तमुक्काए णं भंते ! केमहालए पण्णत्ते ?

६ उत्तर–गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए, जाव–परिक्खेवेणं पण्णत्ते । देवे णं महिड्ढीए, जाव–महाणुभावे इणामेव, इणामेव त्ति कट्टु केवलकप्पं जंबूदीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वं आगच्छिज्जा; से णं देवे ताए उक्किट्ठाए, तुरियाए, जाव–देवगईए वीइवयमाणे वीइवयमाणे जाव–एकाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा; उक्कोसेणं छम्मासे वीईवइज्जा, अत्थेगइयं तमुकायं वीईवइज्जा,

अत्थेगइयं णो तमुक्कायं वीइवएज्जा एमहालए णं गोयमा ! तमुक्काए पण्णत्ते ।

कठिन शब्दार्थ—मल्लगमूलसंठिए—मल्लकमूल संस्थित—शराव के मूल के आकार, कुक्कुडपंजरगसंठिए—कुर्कुट पिञ्जरक संस्थित—कूकड़े के पिञ्जरे के आकार, वित्थडे—विस्तृत, परिक्खेवे—परिक्षेप, विक्खंभेणं—विस्तार, इणामेव—अभी, केवलकप्पं—सम्पूर्ण, तिहिं अच्छरानिवाएहिं—तीन चुटकी बजावे जितने, तिसत्तखुत्तो—इक्कीस बार, अणुपरियट्टित्ता—फिरकर—परिक्रमा करके, उक्किट्ठाए—उत्कृष्ट, तुरियाए—त्वरित, वीईवयमाणे—व्यतीत करता हुआ, महालए—महान्—मोटा ।

भावार्थ—४ प्रश्न—हे भगवन् ! तमस्काय का आकार कैसा है ?

४ उत्तर—हे गौतम ! तमस्काय, नीचे तो मल्लकमूलसंस्थित है अर्थात् शराव के मूल के आकार है । और ऊपर कुर्कुट पञ्जरक संस्थित—अर्थात् कूकड़े के पिञ्जरे के आकार वाली है ।

५ प्रश्न—हे भगवन् ! तमस्काय का विष्कम्भ और परिक्षेप कितना कहा गया है ?

५ उत्तर—हे गौतम ! तमस्काय दो प्रकार की कही गई है । एक तो संख्येय विस्तृत और दूसरी असंख्येय विस्तृत । इनमें जो संख्येय विस्तृत है, उस का विष्कम्भ संख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन है । जो तमस्काय असंख्येय विस्तृत है, उसका विष्कम्भ असंख्येय हजार योजन है और परिक्षेप भी असंख्येय हजार योजन है ।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! तमस्काय कितनी बड़ी है ?

६ उत्तर—हे गौतम ! सभी द्वीप और समुद्रों के सर्वाभ्यन्तर अर्थात् बीचोबीच यह जम्बूद्वीप है । यह एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है । कोई महाऋद्धि यावत् महानुभाववाला देव—'यह चला यह चला'—ऐसा करके तीन चुटकी बजावे उतने

समय में सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके शीघ्र आवे, इस प्रकार की उत्कृष्ट और त्वरा वाली देवगति से चलता हुआ देव, यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दिन चले यावत् उत्कृष्ट छह महीने तक चले, तो कुछ तमस्काय का उल्लंघन करता है और कुछ तमस्काय को उल्लंघन नहीं कर सकता है। हे गौतम ! तमस्काय इतनी बड़ी है ।

विवेचन–नीचे तमस्काय का संस्थान शराव (मिट्टी के दीप के मूल के) के आकार है और ऊपर कूकड़े के पिञ्जरे के समान है। सम जलान्त के ऊपर १७२१ योजन तक तमस्काय, वलय संस्थानाकार है। तमस्काय के दो भेद हैं। संख्येय विस्तृत और असंख्येय विस्तृत। जलान्त से शुरू होकर संख्येय योजन तक जो तमस्काय है, वह संख्येय योजन विस्तृत है। और उस के बाद जो तमस्काय है,वह असंख्येय योजन विस्तृत है। जो तमस्काय संख्येय योजन विस्तृत है, उसने भी असंख्यात द्वीपों को घेर लिया है। इसलिए उसका परिक्षेप (परिधि) असंख्येय हजार योजन कहा गया है। बाह्य और आभ्यन्तर परिक्षेप का विभाग तो यहाँ नहीं कहा है, क्योंकि असंख्यातता की अपेक्षा दोनों परिक्षेपों की तुल्यता है। तमस्काय की महत्ता बतलाने के लिए देव का दृष्टान्त दिया गया है। गमन सामर्थ्य की प्रकर्षता बतलाने के लिए देव के लिए महर्द्धिक आदि विशेषण दिये गये हैं। ऐसा शक्तिशाली शीघ्रगति वाला देव, तीन चुटकी बजावे उतने समय में इस केवलकल्प अर्थात् सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके शीघ्र आवे, इस प्रकार की उत्कृष्ट और त्वरा वाली देवगति से चलता हुआ देव, एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् उत्कृष्ट छह महीने तक चले तो संख्येय योजन विस्तृत तमस्काय तक पहुंचता है, किन्तु असंख्येय योजन विस्तृत तमस्काय तक नहीं पहुंच सकता है।

७ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?

७ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे ।

८ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गामा इ वा, जाव–सण्णिवेसा इ वा ?

८ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।

९ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! तमुक्काए उराला बलाहया संसेयंति, सम्मुच्छंति, वासं वासंति ?

९ उत्तर-हंता, अत्थि ।

१० प्रश्न-तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ णागो पकरेइ ?

१० उत्तर-गोयमा ! देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, णागो वि पकरेइ ।

११ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! तमक्काए बायरे थणियसद्दे, बायरे विज्जुए ?

११ उत्तर-हंता । अत्थि ।

१२ प्रश्न-तं भंते ! किं देवो पकरेइ० ?

१२ उत्तर-तिण्णि वि पकरेंति ।

कठिन शब्दार्थ-गेहा-घर, गेहावणा-गृहापण-घर समूह, उराला-उदार-प्रधान, बलाहया-वलाहक-मेघ, संसेयंति-संस्वेदित होते, समुच्छंति-सम्मुच्छित होते, वासं वासंति-वर्षा वरसती है, थणियसद्दे-स्तनित-गर्जन शब्द, विज्जुए-विद्युत्-विजली ।

भावार्थ-७ प्रश्न-भगवन् ! तमस्काय में गृह (घर) हैं ? या गृहापण हैं ?

७ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या तमस्काय में गांव हैं ? यावत् सन्निवेश हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या तमस्काय में उदार (बड़े) मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूच्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

९ उत्तर-हाँ, गौतम ! ऐसा है ।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या उसको देव करता है, असुर करता है, या नाग करता है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता ह ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या तमस्काय में बादर स्तनित शब्द (मेघ-गर्जना) है ? और क्या बादर विद्युत् (बिजली) है ?

११ उत्तर-हाँ, गौतम ! है ।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या उसको देव करता है, असुर करता है, या नाग करता है ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! उसे देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है ।

विवेचन-तमस्काय में घर, दुकान, ग्राम, नगर, सन्निवेश आदि नहीं हैं, किन्तु उसमें महामेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं अर्थात् तज्जनक पुद्गलों के स्नेह की सम्पत्ति से सम्मूच्छित होते हैं, क्योंकि मेघ के पुद्गल मिलने से ही उनकी तदाकार रूप से उत्पत्ति होती है और फिर वर्षा होती है। यह वर्षा देव, असुरकुमार और नागकुमार करते हैं।

जो यह कहा गया है कि तमस्काय में बादर स्तनित (मेघ गर्जना) शब्द और 'बादर विद्युत्' होती है, सो 'बादर विद्युत' शब्द से 'बादर तेजस्कायिक' नहीं समझना चाहिए, क्योंकि इसी पाठ में आगे के सूत्र में उसका निषेध किया गया है। इसलिए यहां पर 'बादर विद्युत्' शब्द से देव के प्रभाव से उत्पन्न भास्वर (दीप्ति वाले) पुद्गलों का ग्रहण किया गया है, ऐसा समझना चाहिए ।

१३ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बायरे पुढविकाए, बायरे अगणिकाए ?

१३ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे–णण्णत्थ विग्गहगइसमावण्णएणं।

१४ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा ?

१४ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे–पलियस्सओ पुण अत्थि।

१५ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदाभा इ वा, सूराभा इ वा ?

१५ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे–कादूसणिया पुण सा।

१६ प्रश्न–तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वण्णएणं पण्णत्ते ?

१६ उत्तर–गोयमा ! काले कालावभासे, गंभीर-लोमहरिस-जणणे, भीमे, उत्तासणए, परमकिण्हे वण्णे पण्णत्ते। देवे णं अत्थे-गइए जे णं तप्पढमयाए पासित्ता णं खुभाएज्जा। अहे णं अभि-समागच्छेज्जा, तओ पच्छा सीहं सीहं, तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीइ-वएज्जा।

कठिन शब्दार्थ–विग्गहगतिसमावण्णएणं–विग्रहगति समापन्न–मरने के बाद दूसरी गति में जाते हुए मोड़ लेने वाली गति को प्राप्त, पलियस्थ–पास में–पड़ोस में, चंदाभा–चन्द्र की प्रभा, कादूसणिया–अपनी आत्मा को दूषित करने वाली, केरिसए–किसके समान–कैसा, लोमहरिसे–रोंगटे खड़े करने वाला–लोमहर्षक, उत्तासणए–उत्कम्प करने वाला–त्रास दायक, खुभाएज्जा–क्षुभित होते हैं, अभिसमागच्छेज्जा–प्रवेश करते हैं, सीहं–शीघ्रता से।

भावार्थ–१३ हे भगवन् ! क्या तमस्काय में बादर पृथ्वीकाय है और बादर अग्निकाय है ?

१३ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु वहां विग्रहगति

समापन्न बादर पृथ्वी और बादर अग्नि हो सकती है।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या तमस्काय में चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु चन्द्र सूर्यादि तमस्काय के पास हैं।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या तमस्काय में चन्द्र की प्रभा या सूर्य की प्रभा है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु तमस्काय में कादूषणिका (अपनी आत्मा को दूषित करने वाली) प्रभा है।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! तमस्काय का वर्ण कैसा कहा गया है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! तमस्काय का वर्ण काला, काली कान्तिवाला, गम्भीर, रोंगटे खड़े करने वाला, भीम (भयंकर) उत्त्रासनक (त्रास पैदा करने वाला) और परम कृष्ण है। उस तमस्काय को देखने के साथ ही कोई देव भी क्षोभ को प्राप्त हो जाता है। कदाचित् कोई देव, उस तमस्काय में प्रवेश करता है, तो शीघ्र और त्वरित गति से उसे पार कर जाता है।

विवेचन-तमस्काय में बादर पृथ्वी और बादर अग्नि नहीं होती, क्योंकि बादर पृथ्वी तो रत्नप्रभा आदि आठ पृथ्वियों में, पर्वतों में और विमान आदि में ही होती है, तथा बादर अग्नि मनुष्य क्षेत्र में ही होती है। इसलिए तमस्काय वाले प्रदेश में बादर पृथ्वी और बादर अग्नि नहीं होती। किन्तु जो बादर पृथ्वीकायिक जीव और बादर अग्निकायिक जीव, विग्रह गति में होते हैं, वे ही वहां तमस्काय वाले प्रदेश में पाये जा सकते हैं।

तमस्काय में चन्द्र सूर्यादि नहीं हैं, किन्तु तमस्काय के पास तो हैं। अतएव वहाँ उनकी प्रभा भी है और वह प्रभा तमस्काय में पड़ती भी है, किन्तु वह तमस्काय के परिणाम से परिणत हो जाने के कारण कादूषणिका है अर्थात् नहीं सरीखी है। तमस्काय काली है। उसका अवभास भी काला है। अतएव वह काली कान्ति वाली है तथा गम्भीर और भयानक होने से रोमहर्षक है। अर्थात् रोंगटे खड़े कर देने वाली है, भीष्म होने से त्रास पैदा करने

वाली है। वह परमकृष्ण (महाकाली) है। उसे देखते ही देव भी क्षोभ को प्राप्त होता है, इसलिए उसमें प्रवेश करने का साहस नहीं करता। यदि कदाचित् कोई देव, उसमें प्रवेश करता है, तो भय के मारे वह काय-गति के अतिवेग से और मनोगति के अतिवेग से उसके बाहर निकल जाता है।

१७ प्रश्न-तमुक्कायस्स णं भंते ! कइ णामधेज्जा पण्णत्ता ?

१७ उत्तर-गोयमा ! तेरस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा-तमे इ वा, तमुक्काए इ वा, अंधकारे इ वा, महांधकारे इ वा, लोगंधकारे इ वा, लोगतमिसे इ वा, देवंधयारे इ वा, देवतमिसे इ वा, देवरण्णे इ वा, देववूहे इ वा, देवफलिहे इ वा, देवपडिक्खोभे इ वा, अरुणोदए इ वा समुद्दे।

१८ प्रश्न-तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे, आउपरिणामे, जीवपरिणामे, पोग्गलपरिणामे ?

१८ उत्तर-गोयमा ! णो पुढविपरिणामे, आउपरिणामे वि, जीवपरिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि।

१९ प्रश्न-तमुक्काए णं भंते ! सव्वे पाणा, भूया, जीवा, सत्ता पुढवीकाइयत्ताए, जाव-तसकाइयत्ताए उववण्णपुव्वा ?

१९ उत्तर-हंता, गोयमा ! असइं, अदुवा अणंतक्खुत्तो, णो चेव णं बायरपुढविकाइयत्ताए, बायरअगणिकाइयत्ताए वा।

कठिन शब्दार्थ-उववण्णपुव्वा-पहिले उत्पन्न हो चुके, असइं अदुवा अणंतक्खुत्तो-अनेकवार अथवा अनन्तवार।

१७ प्रश्न–हे भगवन् ! तमस्काय के कितनें नाम कहे गये हैं ?

१७ उत्तर–हे गौतम ! तमस्काय के तेरह नाम कहे गये हैं। यथा–१ तम, २ तमस्काय, ३ अन्धकार, ४ महान्धकार, ५ लोकान्धकार, ६ लोकतमिस्र, ७ देवान्धकार, ८ देवतमिस्र, ९ देवारण्य, १० देवव्यूह, ११ देवपरिघ, १२ देवप्रतिक्षोभ, १३ अरुणोदक समुद्र ।

१८ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या तमस्काय, पृथ्वी का परिणाम है, पानी का परिणाम है, जीव का परिणाम है, या पुद्गल का परिणाम है ?

१८ उत्तर–हे गौतम ! तमस्काय, पृथ्वी का परिणाम नहीं है, पानी का परिणाम भी है, जीव का परिणाम भी है और पुद्गल का परिणाम भी है।

१९ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, पृथ्वीकायरूप से यावत् त्रसकायरूप से तमस्काय में पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

१९ उत्तर–हां, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, तमस्काय में पृथ्वीकाय रूप से यावत् त्रसकाय रूप से अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं। किन्तु बादर पृथ्वीकाय रूप से और बादर अग्निकाय रूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं।

विवेचन–तमस्काय के तेरह नाम कहे गये हैं, वे सब सार्थक हैं। उनकी सार्थकता इस प्रकार है–१ तमः–अन्धकार रूप होने से इसे 'तमः' कहते हैं। २ अन्धकार का समूह रूप होने से इसे 'तमस्काय' कहते हैं। ३ तमः अर्थात् अन्धकार रूप होने से इसे 'अन्धकार' कहते हैं। ४ महातमः रूप होने से इसे 'महा अन्धकार' कहते हैं। ५–६ लोक में इस प्रकार का दूसरा अन्धकार न होने से इसे 'लोकान्धकार' और 'लोक तमिस्र' कहते हैं। ७–८ तमस्काय में किसी प्रकार का उद्योत न होने से वह देवों के लिए भी अन्धकार रूप हैं, इस लिए इसे 'देव अन्धकार' और 'देवतमिस्र' कहते हैं। ९ वलवान् देवता के भय से भागते हुए देवता के लिए यह एक प्रकार अरण्य (जंगल) रूप होने से यह शरणभूत है, इस लिए इसको 'देवारण्य' कहते हैं। १० जिस प्रकार चक्रव्यूह का भेदन करना कठिन होता है, उसी प्रकार यह तमस्काय देवों के लिए भी दुर्भेद्य है, उसका पार करना कठिन हैं, इसलिए इसको 'देवव्यह' कहते हैं। ११ तमस्काय को देख कर देवता भी भयभीत हो जाते हैं, इसलिए वह उनके

गमन में बाधक है, अतः इसको 'देवपरिघ' कहते हैं। १२ तमस्काय देवों के लिए भी क्षोभ का कारण है, इसलिए इसको 'देव प्रतिक्षोभ' कहते हैं। १३ तमस्काय अरुणोदक समुद्र के पानी का विकार है, इसलिए इसको 'अरुणोदक समुद्र' कहते हैं।

तमस्काय पानी, जीव और पुद्गलों का परिणाम है। उसमें बादर वायु, बादर वनस्पति और त्रस जीव उत्पन्न होते हैं। क्योंकि वायु और वनस्पति की उत्पत्ति अप्काय में संभवित है। इसके अतिरिक्त दूसरे जीवों की उत्पत्ति तमस्काय में संभवित नहीं है, क्योंकि दूसरे जीवों का वह स्वस्थान नहीं है।

कृष्णराजि

२० प्रश्न–कइ णं भंते ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?

२० उत्तर–गोयमा ! अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ।

२१ प्रश्न–कहि णं भंते ! एयाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?

२१ उत्तर–गोयमा ! उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं, हिट्ठिं बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे–एत्थ णं अक्खाडगसमचउरंस-संठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पुरत्थिमेणं दो, पच्चत्थिमेणं दो, दाहिणेणं दो, उत्तरेणं दो; पुरत्थिमऽब्भंतरा कण्हराई दाहिण-बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा, दाहिणऽब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिम-बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा, पच्चत्थिमऽब्भंतरा कण्हराई उत्तर-बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा; उत्तरिमऽब्भंतरा कण्हराई पुरत्थिमबाहिरं

कण्हराइं पुट्ठा; दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हराइओ छलंसाओ, दो उत्तर-दाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ, दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ अब्भिंतराओ कण्हराइओ चउरंसाओ, दो उत्तर-दाहिणाओ अब्भिंतराओ कण्हराइओ चउरंसाओ।

–पुव्वाऽवरा छलंसा तंसा पुण दाहिणुत्तरा बज्झा,
अब्भिंतर चउरंस सव्वा वि य कण्हराइओ।

कठिन शब्दार्थ–कण्हराईओ–कृष्ण राजियाँ, अक्खाडग–अखाड़ा, छलंसाओ–षडंश–छह कोण, तंसाओ–त्र्यस्र–त्रिकोण, चउरंसाओ–चतुरस्र–चतुष्कोण।

भावार्थ–२० प्रश्न–हे भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई हैं ?

२० उत्तर–हे गौतम ! कृष्णराजियाँ आठ कही गई हैं।

२१ प्रश्न–हे भगवन् ये आठ कृष्णराजियाँ कहाँ कही गई हैं ?

२१ उत्तर–हे गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे चौथे देवलोक से ऊपर और ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक के अरिष्ट नामक विमान के तीसरे प्रस्तट (पाथड़े) के नीचे अखाड़ा के आकार समचतुरस्र संस्थान संस्थित आठ कृष्णराजियाँ हैं। यथा–पूर्व में दो, पश्चिम में दो, उत्तर में दो और दक्षिण में दो, इस तरह चार दिशाओं में आठ कृष्णराजियाँ हैं। पूर्वाभ्यन्तर अर्थात् पूर्व दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने दक्षिण दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्शा है। दक्षिण दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने पश्चिम दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया है। पश्चिम दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने उत्तर दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया है और उत्तर दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने पूर्व दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया है। पूर्व और पश्चिम दिशा की बाह्य दो कृष्णराजियाँ षडंश (षट्कोण) हैं। उत्तर और दक्षिण दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्र्यंश (तीन कोणों वाली) हैं। पूर्व और पश्चिम

दिशा की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुरंश (चतुष्कोण) हैं। इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण दिशा की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ भी चतुष्कोण है।

कृष्णराजियों के आकार को बतलाने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है–पूर्व और पश्चिम की कृष्णराजि षट्कोण है। दक्षिण और उत्तर की बाह्य कृष्णराजि त्रिकोण है। शेष सब आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं।

२२ प्रश्न–कण्हराईओ णं भंते ! केवइयं आयामेणं, केवइयं विक्खंभेणं. केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ ?

२२ उत्तर–गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामेणं, संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ।

२३ प्रश्न–कण्हराईओ णं भंते ! केमहालियाओ पण्णत्ताओ ?

२३ उत्तर–गोयमा ! अयं णं जंबूद्दीवे दीवे, जाव–अद्धमासं वीइवएज्जा, अत्थेगइयं कण्हराइं वीइवइज्जा, अत्थेगइयं कण्हराइं णो वीइवएज्जा; एमहालियाओ णं गोयमा ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ।

२४ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?

२४ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे।

२५ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! कण्हराइसु गामा इ वा ?

२५ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे।

२६ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! कण्हराईणं उराला बलाहया संसेयंति, सम्मुच्छंति, वासं वासंति ?

२६ उत्तर–हंता, अत्थि।

२७ प्रश्न–तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ णागो पकरेइ ?

२७ उत्तर–गोयमा ! देवो पकरेइ, णो असुरो, णो णागो पकरेइ।

२८ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु बायरे थणियसद्दे ?

२८ उत्तर–जहा उराला तहा।

२९ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु बायरे आउकाए, बायरे अगणिकाए, बायरे वणस्सइकाए ?

२९ उत्तर–णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ विग्गहगइसमावण्णएणं।

भावार्थ–२२ प्रश्न–हे भगवन् ! कृष्णराजियों का आयाम (लम्बाई), विष्कम्भ (विस्तार–चौड़ाई) और परिक्षेप (परिधि) कितना है ?

२२ उत्तर–हे गौतम ! कृष्णराजियों का आयाम असंख्य हजार योजन है, विष्कम्भ, संख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन है।

२३ प्रश्न–हे भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी मोटी कही गई हैं।

२३ उत्तर–हे गौतम ! तीन चुटकी बजावे उतने समय में इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा कर आवे–ऐसी शीघ्र गति से कोई देव, एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् अर्द्ध मास तक निरन्तर चले, तो वह देव,

किसी कृष्णराजि तक पहुंचता है और किसी कृष्णराजि तक नहीं पहुंचता है। हे गौतम ! कृष्णराजियाँ इतनी बड़ी हैं।

२४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में गृह और गृहापण (दुकान) हैं ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं अर्थात् कृष्णराजियों में घर और दुकानें नहीं हैं।

२५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में ग्रामादि हैं ?

२५ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् कृष्णराजियों में ग्रामादि नहीं हैं।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में महा मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

२६ उत्तर-हाँ, गौतम ! ऐसा होता है।

२७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या इनको देव करता है, असुरकुमार करता है, या नागकुमार करता है ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! देव करता है, किन्तु असुरकुमार या नागकुमार नहीं करता है।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में बादर स्तनित शब्द है ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! महामेघों के समान इनका भी कथन करना चाहिए अर्थात् कृष्णराजियों में बादर स्तनित शब्द है और उसे देव करता है, किन्तु असुरकुमार या नागकुमार नहीं करता है।

२९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय है ?

२९ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह निषेध विग्रहगति समापन्न जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए है।

३० प्रश्न-अत्थि णं चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्ततारारूवा ?

३० उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।

३१ प्रश्न-अत्थि णं कण्हराईणं चंदाभा इ वा, सूराभा इ वा ?

३१ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।

३२ प्रश्न-प्रश्न-कण्हराईओ णं भंते ! केरिसियाओ वण्णेणं पण्णत्ताओ ?

३२ उत्तर-गोयमा ! कालाओ, जाव-खिप्पामेव वीइवएज्जा ।

३३ प्रश्न-कण्हराइओ णं भंते ! कइ णामधेज्जा पण्णत्ता ?

३३ उत्तर-गोयमा ! अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा-कण्हराई वा, मेहराई वा, मघा इ वा, माघवई वा, वायफलिहा इ वा, वायपलिक्खोभा इ वा, देवफलिहा इ वा, देवपलिक्खोभा इ वा ।

३४ प्रश्न-कण्हराइओ णं भंते ! किं पुढवीपरिणामाओ, आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ, पोग्गलपरिमाणाओ ?

३४ उत्तर-गोयमा ! पुढविपरिणामाओ, णो आउपरिणामाओ वि, जीवपरिणामाओ वि, पुग्गलपरिणामाओ वि ।

३५ प्रश्न-कण्हराईसु णं भंते ! सव्वे पाणा, भूया, जीवा, सत्ता उववण्णपुव्वा ?

३५ उत्तर-हंता, गोयमा ! असइं, अदुवा अणंतक्खुत्तो, णो चेव णं बायरआउकाइयत्ताए, बायरअगणिकाइयत्ताए वा, बायर-

वणस्सईकाइयत्ताए वा ।

भावार्थ-३० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में चन्द्र, सूर्य, ग्रह-गण, नक्षत्र और तारा रूप हैं ?

३० उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वहाँ ये नहीं हैं।

३१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में चन्द्रप्रभा (चन्द्रमा की कान्ति) और सूर्यप्रभा (सूर्य की कान्ति) है ?

३१ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वहाँ ये नहीं हैं।

३२ प्रश्न-हे भगवन् ! कृष्णराजियों का वर्ण कैसा है ?

३२ उत्तर-हे गौतम ! कृष्णराजियों का वर्ण कृष्ण यावत् परम कृष्ण है। तमस्काय की तरह भयंकर होने से देव भी क्षोभ को प्राप्त हो जाते हैं, यावत् इसको शीघ्र पार कर जाते हैं ।

३३ प्रश्न-हे भगवन् ! कृष्णराजियों के कितने नाम कहे गये हैं ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! कृष्णराजियों के आठ नाम कहे गये हैं । यथा-१ कृष्णराजि, २ मेघराजि, ३ मघा, ४ माघवती, ५ वातपरिघा, ६ वात-परिक्षोभा ७ देवपरिघा और ८ देवपरिक्षोभा ।

३४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियाँ पृथ्वी का परिणाम हैं, जल का परिणाम है, जीव का परिणाम है, या पुद्गल का परिणाम है ?

३४ उत्तर-हे गौतम ! कृष्णराजियाँ पृथ्वी का परिणाम है, किन्तु जल का परिणाम नहीं है, तथा जीव का भी परिणाम है और पुद्गल का भी परिणाम है ।

३५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

३५ उत्तर-हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु बादर अप्कायपने, बादर अग्निकायपने और बादर वनस्पतिकायपने उत्पन्न नहीं हुए हैं ।

विवेचन–अगले प्रकरण में तमस्काय का वर्णन किया गया था। तमस्काय और कृष्णराजि का सादृश्य होने से अब कृष्णराजि का वर्णन किया जाता है। काले पुद्गलों की रेखा को 'कृष्णराजि' कहते हैं। कृष्णराजि के आकार आदि का वर्णन ऊपर किया गया है। इसके आठ नाम कहे गये हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार है–१ कृष्णराजि–काले वर्ण की पृथ्वी और पुद्गलों के परिणाम रूप होने से एवं काले पुद्गलों की राजि अर्थात् रेखा रूप होने से इसका नाम 'कृष्णराजि' है, २ मेघराजि–काले मेघ की रेखा के सदृश होने से इसे 'मेघ-राजि' कहते हैं। ३ मघा–छठी नरक का नाम 'मघा' है। छठी नरक के समान अन्धकार वाली होने से इसको 'मघा' कहते हैं। ४ माघवती–सातवीं नरक का नाम 'माघवती' है। सातवीं नरक के समान गाढ़ अन्धकार वाली होने से इसे 'माघवती' कहते हैं। ५ वात-परिघा–आँधी के समान सघन अन्धकार वाली और दुर्लंघ्य होने से इसे 'वातपरिघा' कहते हैं। ६ वातपरिक्षोभा–आँधी के समान सघन अन्धकार वाली और क्षोभ का कारण होने से इसे 'वातपरिक्षोभा' कहते हैं। ७ देवपरिघा–देवों के लिए भी दुर्लंघ्य होने से यह उनके लिए 'परिघ' अर्थात् आगल (भोगल) के समान है, इसलिए इसे 'देवपरिघा' कहते हैं। ८ देव-परिक्षोभा–देवों को भी क्षोभ (भय) उत्पन्न करने वाली होने के कारण इसे 'देव परिक्षोभा' कहते हैं।

ये कृष्णराजियाँ सचित्त और अचित्त पृथ्वी का परिणाम रूप हैं और इसीलिए ये जीव और पुद्गल दोनों का परिणाम (विकार) रूप हैं।

ये कृष्णराजियाँ असंख्यात हजार योजन लम्बी और संख्यात हजार योजन चौड़ी हैं। इनका परिक्षेप (परिधि–घेरा) असंख्यात हजार योजन है।

लोकान्तिक देव

–एएसि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठसु उवासंतरेसु अट्ठ लोगं-तियविमाणा पण्णत्ता, तं जहा–अच्ची, अच्चिमाली, वइरोयणे पभंकरे, चंदाभे, सूराभे, सुक्काभे, सुपइट्ठाभे, मज्झे रिट्ठाभे।

३६ प्रश्न–कहि णं भंते ! अच्चि-विमाणे पण्णत्ते ?

३६ उत्तर–गोयमा ! उत्तर पुरत्थिमेणं ।

३७ प्रश्न–कहि णं भंते ! अच्चिमाली विमाणे पण्णत्ते ?

३७ उत्तर–गोयमा ! पुरत्थिमेणं, एवं परिवाडीए णेयव्वं ।

३८ प्रश्न–जाव–कहि णं भंते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते ?

३८ उत्तर–गोयमा ! बहुमज्झदेसभाए, एएसु णं अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगंतिया देवा परिवसंति, तं जहा–

सारस्सयमाइच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य,
तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ।

३९ प्रश्न–कहि णं भंते ! सारस्सया देवा परिवसंति ?

३९ उत्तर–गोयमा ! अच्चिम्मि विमाणे परिवसंति ।

४० प्रश्न–कहि णं भंते ! आइच्चा देवा परिवसंति ?

४० उत्तर–गोयमा ! अच्चिमालिम्मि विमाणे, एवं णेयव्वं जहाणुपुव्वीए ।

४१ प्रश्न–जाव कहि णं भंते ! रिट्ठा देवा परिवसंति ?

४१ उत्तर–गोयमा ! रिट्ठम्मि विमाणे ।

४२ प्रश्न–सारस्सयमाइच्चाणं भंते ! देवाणं कइ देवा, कइ देवसया पण्णत्ता ?

४२ उत्तर–गोयमा ! सत्त देवा, सत्त देवसया परिवारो पण्णत्तो,

वण्ही-वरुणाणं देवाणं चउद्दस देवा, चउद्दस देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो; गद्दतोय-तुसियाणं देवाणं सत्त देवा, सत्त देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो; अवसेसाणं णव देवा, णव देवसया परिवारो पण्णत्तो ।

पढम-जुगलम्मि सत्तओ सयाणि बीयम्मि चउद्दससहस्सा,
तइए सत्तसहस्सा णव चेव सयाणि सेसेसु ।

कठिन शब्दार्थ-उवासंतरेसु-अवकाशान्तर में, जहाणुपुव्वीए-यथानुपूर्वीक-क्रमानुसार परिवाडीए-परिपाटी से-क्रम से ।

भावार्थ-इन उपरोक्त आठ कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरों में आठ लोकान्तिक विमान हैं । यथा-१ अर्चि, २ अर्चिमाली, ३ वैरोचन, ४ प्रभंकर, ५ चन्द्राभ, ६ सूर्याभ, ७ शुक्राभ और ८ सुप्रतिष्टाभ । इन सब के बीच में रिष्टाभ विमान है ।

३६ प्रश्न-हे भगवन् ! अर्चि विमान कहाँ है ?

३६ उत्तर-हे गौतम ! अर्चिविमान उत्तर और पूर्व के बीच में है ।

३७ प्रश्न-हे भगवन् ! अर्चिमाली विमान कहाँ है ?

३७ उत्तर-हे गौतम ! अर्चिमाली विमान पूर्व में है । इसी क्रम से सब विमानों के लिए कहना चाहिए ।

३८ प्रश्न-हे भगवन् ! रिष्ट विमान कहाँ है ?

३८ उत्तर-हे गौतम ! बहुमध्य भाग में अर्थात् सब के मध्य में रिष्ट विमान है । इन आठ लोकान्तिक विमानों में आठ जाति के लोकान्तिक देव रहते हैं । यथा-१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध और ८ आग्नेय । सब के बीच में रिष्ट देव है ।

३९ प्रश्न-हे भगवन् ! सारस्वत देव कहाँ रहते हैं ?

३९ उत्तर-हे गौतम ! सारस्वत जाति के देव, अर्चि विमान में रहते हैं ।

४० प्रश्न—हे भगवन् ! आदित्य देव कहाँ रहते हैं ?

४० उत्तर—हे गौतम ! आदित्य देव अर्चिमाली विमान में रहते हैं। इस प्रकार यथानुपूर्वी से यावत् रिष्ट विमान तक जान लेना चाहिए।

४१ प्रश्न—हे भगवन् ! रिष्ट देव कहाँ रहते हैं ?

४१ उत्तर—हे गौतम ! रिष्ट देव रिष्ट विमान में रहते हैं।

४२ प्रश्न—हे भगवन् ! सारस्वत और आदित्य इन दो देवों के कितने देव और कितने सौ देवों का परिवार है ?

४२ उत्तर—हे गौतम ! सारस्वत और आदित्य—इन दो देवों के ७ देव स्वामी और ७०० देवों का परिवार है। वह्नि और वरुण देव, इन दो देवों के १४ देवस्वामी और १४००० देवों का परिवार है। गर्दतोय और तुषित—इन दो देवों के ७ देवस्वामी और ७००० देवों का परिवार है। अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट, इन तीन देवों के ९ देव स्वामी और ९०० देवों का परिवार है।

इन देवों के परिवार की संख्या को सूचित करने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है—प्रथम युगल में ७०० देवों का परिवार, दूसरे युगल में १४००० देवों का परिवार, तीसरे युगल में ७००० देवों का परिवार और शेष तीन देवों के ९०० देवों का परिवार है।

४३ प्रश्न—लोगंतियविमाणा णं भंते ! किंपइट्ठिया पण्णत्ता ?

४३ उत्तर—गोयमा ! वाउपइट्ठिया पण्णत्ता, एवं णेयव्वं विमाणाणं पइट्ठाणं, बाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं; बंभलोयवत्तव्वया णेयव्वा, जहा जीवाभिगमे देवुद्देसए, जाव—हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतक्खुत्तो; णो चेव णं देवत्ताए लोगंतियविमाणेसु।

४४ प्रश्न—लोगंतियविमाणेसु णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

४४ उत्तर-गोयमा ! अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

४५ प्रश्न-लोगंतियविमाणेहिंतो णं भंते ! केवइयं अबाहाए लोगंते पण्णत्ते ?

४५ उत्तर-गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए लोगंते पण्णत्ते ।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । ॥

॥ छट्ठसए पंचमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-पइट्ठिया-प्रतिष्ठित, अबाहाए-अन्तर से ।

४३ प्रश्न-हे भगवन् ! लोकान्तिक विमान किसके आधार पर रहे हुए हैं ?

४३ उत्तर-हे गौतम ! लोकान्तिक विमान, वायुप्रतिष्ठित हैं अर्थात् वायु के आधार पर रहे हुए हैं। इस तरह जिस प्रकार विमानों का प्रतिष्ठान, विमानों का बाहुल्य, विमानों की ऊंचाई और विमानों का संस्थान आदि का वर्णन जीवाभिगम सूत्र के देवोद्देशक में ब्रह्मलोक की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ भी कहनी चाहिए । यावत् हाँ, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु लोकान्तिक विमानों में देव रूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं ।

४४ प्रश्न-हे भगवन् ! लोकान्तिक विमानों में कितने काल की स्थिति कही गई है ?

४४ उत्तर-हे गौतम ! लोकान्तिक विमानों में आठ सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

४५ प्रश्न-हे भगवन् ! लोकान्तिक विमानों से लोकान्त कितना दूर है ?

४५ उत्तर-हे गौतम ! लोकान्तिक विमानों से असंख्य हजार योजन की दूरी पर लोकान्त है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-लोकान्तिक देवों के अर्चि आदि नौ विमान हैं। पूर्व और उत्तर के बीच में अर्चि विमान है। पूर्व में अर्चिमाली विमान है। इसी क्रम से शेष विमान भी हैं। नववाँ रिष्टाभ विमान कृष्णराजियों के बीच में है। इन देवों का परिवार ऊपर बताया गया है। सारस्वत और आदित्य आदि दो दो युगलों का परिवार शामिल है और अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट, इन तीन देवों का परिवार शामिल है।

ये देव ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक के पास रहते हैं, इसलिए इन्हें लोकान्तिक कहते हैं। अथवा ये उदयभाव रूप लोक के अन्त में रहे हुए हैं, क्योंकि ये सब स्वामी देव एक भवावतारी (एक भव के बाद मोक्ष जाने वाले) होते हैं, इसलिए इन्हें लोकान्तिक कहते हैं। इनके विमान वायु पर प्रतिष्ठित हैं। इनका वाहल्य २५०० योजन है। इनकी ऊंचाई ७०० योजन है। जो विमान आवलिका प्रविष्ट होते हैं, वे वृत्त (गोल), त्र्यस्त्र (त्रिकोण) या चतुरस्त्र (चतुष्कोण) होते हैं, किन्तु ये विमान आवलिकाप्रविष्ट नहीं हैं, इसलिए इनका आकार नाना प्रकार का है। इनका वर्ण लाल, पीला और सफेद है। ये प्रकाश युक्त हैं। ये इष्ट गन्ध और इष्ट स्पर्श वाले हैं। ये सर्वरत्नमय हैं। इन विमानों में रहने वाले देव, समचतुरस्त्र संस्थान वाले और पद्म लेश्या वाले हैं। जीवाभिगम सूत्र के दूसरे वैमानिक उद्देशक में ब्रह्मलोक विमानवासी देवों के सम्बन्ध में जो कथन किया है, वह वक्तव्यता यहाँ कहनी चाहिए। सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, लोकान्तिक विमानों में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय रूप से अनेक बार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु देव रूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं, क्योंकि लोकान्तिक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होने वाले जीव भव्य होते हैं। इसलिए जीव, वहाँ देव रूप से अनेक बार अथवा अनन्तवार उत्पन्न नहीं हुए हैं।

लोकान्तिक विमानों से असंख्यात हजार योजन की दूरी पर लोक का अन्त है।

॥ इति छठे शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ६

पृथ्वियाँ और अनुत्तर विमान

१ प्रश्न-कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

१ उत्तर-गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-रयणप्पभा, जाव-तमतमा; रयणप्पभाईणं आवासा भाणियव्वा, जाव-अहे सत्तमाए, एवं जे जत्तिया आवासा ते भाणियव्वा।

२ प्रश्न-जाव कइ णं भंते ! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता ?

२ उत्तर-गोयमा ! पंच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता; तं जहा-विजए, जाव-सव्वट्ठसिद्धे।

कठिन शब्दार्थ-आवासा-आवास, जत्तिया-जितने।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! कितनी पृथ्वियाँ कही गई हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! सात पृथ्वियाँ कही गई हैं। यथा-रत्नप्रभा यावत् तमस्तमःप्रभा। रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर यावत् अधःसप्तम (तमस्तमःप्रभा) तक जिस पृथ्वी के जितने आवास हों, यावत् उतने कहने चाहिए।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! कितने अनुत्तर विमान कहे गये हैं।

२ उत्तर-हे गौतम ! पांच अनुत्तर विमान कहे गये हैं। यथा-विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमान।

विवेचन-पांचवें उद्देशक में विमानों की वक्तव्यता कही गई है। अब इस छठे उद्देशक में भी इसी तरह की वक्तव्यता कही जाती है। यहाँ पर 'पृथ्वी' शब्द से रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों का ही ग्रहण किया गया है। यहाँ आठवीं ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी का ग्रहण नहीं

किया, क्योंकि यहाँ उसकी चर्चा का अधिकार नहीं है। यद्यपि इन सात पृथ्वियों का कथन पहले आ चुका है, तथापि समुद्घात–जिसका कि वर्णन आगे किया जा रहा है, उस वर्णन के साथ इन पृथ्वियों के वर्णन का अधिक सम्बन्ध होने से फिर इनका यहाँ कथन किया गया है। इसलिए इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं है।

मारणान्तिक समुद्घात

३ प्रश्न–जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए णिरयावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि णिरयावासंसि णेरइयत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्ज वा ?

३ उत्तर–गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्ज वा; अत्थेगइए तओ पडिणियत्तइ, तओ पडिणियत्तित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता दोच्चं पि मारणंतियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए णिरयावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि णिरयावासंसि णेरइयत्ताए उववज्जित्तए, तओ पच्छा आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्जा, एवं जाव–अहे सत्तमा पुढवी।

४ प्रश्न–जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए जे भविए चउसट्ठीए असुरकुमारावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि असुर-

कुमारावासंसि असुरकुमारत्ताए उववज्जित्तए ?

४ उत्तर-जहा णेरइया तहा भाणियव्वा, जाव-थणियकुमारा।

कठिन शब्दार्थ-मारणंतियसमुग्घाएणं-मारणान्तिक समुद्घात-मृत्यु के समय होने वाली आत्मा की विशिष्ट-उग्र क्रिया, तत्थगए-वहां जाकर, समोहए-समवहत, आहारेज्ज-आहार करता है, परिणामेज्ज-परिणमाता है, बंधेज्ज-बांधता है, पडिनियत्तति-पिछा फिरे।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत हुआ है और समवहत होकर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य हैं क्या वह वहाँ जाकर आहार करता है ? आहार को परिणमाता है ? और शरीर बांधता है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! कोई जीव वहाँ जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है, तथा शरीर बांधता है और कोई एक जीव वहाँ जाकर वापिस लौटता है, वापिस लौट कर यहाँ आता है, यहाँ आकर फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत होता है। समवहत होकर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होता है। इसके बाद आहार ग्रहण करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है। इस प्रकार यावत् अधःसप्तम (तमस्तमः प्रभा) पृथ्वी तक कहना चाहिये।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर असुरकुमारों के चौसठ लाख आवासों में से किसी एक आवास में उत्पन्न होने के योग्य है, क्या वह जीव वहाँ जाकर ही आहार करता है ? उस आहार को परिणमाता है और शरीर बांधता है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकों के विषयों में कहा, उसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी कहना चाहिये। यावत् स्तनितकुमारों तक इसी प्रकार कहना चाहिये।

५ प्रश्न-जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए, समोहणित्ता जे भविए असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु, अण्णयरंसि वा पुढविक्काइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं केवइयं गच्छेज्जा, केवइयं पाउणिज्जा ?

५ उत्तर-गोयमा ! लोयंतं गच्छेज्जा, लोयंतं पाउणिज्जा।

६ प्रश्न-से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा ?

६ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा; अत्थेगइए तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता इहं हव्वं आगच्छइ, आगच्छित्ता दोच्चं पि मारणं-तियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थि-मेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तं वा, संखेज्जइभागमेत्तं वा, वालग्गं वा, वालग्गपुहुत्तं वा; एवं लिक्खं, जूयं जव-अंगुलं जाव-जोयणकोडिं वा, जोयणकोडाकोडिं वा, संखेज्जेसु वा, असंखेज्जेसु वा, जोयणसहस्सेसु, लोगंते वा, एगपएसियं सेढिं मोत्तूण असंखे-ज्जेसु पुढविक्काइयावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि पुढविक्काइया-वासंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जेज्जा, तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा; जहा पुरत्थिमेणं मंदरस्स

पव्वयस्स आलावओ भणिओ, एवं दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं, उड्ढे, अहे। जहा पुढविक्काइया तहा एगिंदियाणं सव्वेसिं एक्केक्कस्स छ आलावगा भाणियव्वा।

कठिन शब्दार्थ-लोयंते-लोक के अन्त में, पाउणिज्जा-प्राप्त करता है।

भावार्थ-५ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर पृथ्वीकाय के असंख्यात लाख आवासों में से किसी एक आवास में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य है, वह जीव मेरुपर्वत से पूर्व में कितनी दूर जाता है और कितनी दूरी को प्राप्त करता है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! वह लोकान्त तक जाता है और लोकान्त को प्राप्त करता है।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीव, वहाँ जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है, और शरीर बांधता है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! कोई जीव, वहाँ जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है और कोई जीव वहाँ जाकर वापिस लौटता है, वापिस लौट कर यहाँ आता है, यहाँ आकर फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होता है, समवहत होकर मेरुपर्वत के पूर्व में अंगुल के असंख्येय भाग मात्र, संख्येय भाग मात्र, बालाग्र, बालाग्र-पृथक्त्व (दो से नव तक बालाग्र) इसी तरह लिक्षा (लीख) यूका (जूं) यव (जौ धान्य) अंगुल यावत् करोड़ योजन, कोटाकोटि योजन, संख्येय हजार योजन और असंख्येय हजार योजन में अथवा एक प्रदेश श्रेणी को छोड़कर लोकान्त में पृथ्वीकाय के असंख्य लाख आवासों में से किसी आवास में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होता है और पीछे आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है। जिस प्रकार मेरुपर्वत की पूर्व दिशा के विषय में कथन किया गया, उसी प्रकार से दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधोदिशा के विषय में कहना चाहिये। जिस प्रकार पृथ्वी-

कायिक जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार से सभी एकेन्द्रियों के विषय में कहना चाहिये। एक एक के छह छह आलापक कहने चाहिये।

७ प्रश्न-जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता जे भविए असंखेज्जेसु बेइंदियावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि बेइंदियावासंसि बेइंदियत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! तत्थ गए चेव ?

७ उत्तर-जहा णेरइया, एवं जाव-अणुत्तरोववाइया।

८ प्रश्न-जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए, समोहणित्ता जे भविए पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु अण्णयरंसि अणुत्तरविमाणंसि अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए से णं भंते ! तत्थगए चेव ?

८ उत्तर-तं चेव जाव-आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्ज वा।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥

॥ छट्ठसए छट्ठो उद्देसो सम्मत्तो ॥

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर बेइन्द्रिय जीवों के असंख्य लाख आवासों में से किसी एक आवास में उत्पन्न होने के योग्य है, क्या वह जीव, वहाँ जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकों के लिये कहा गया, उसी प्रकार बेइन्द्रियों से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक सब जीवों के लिये कथन करना चाहिये।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर महान् से महान् महाविमान रूप पांच अनुत्तर विमानों में से किसी एक अनुत्तर विमान में अनुत्तरौपपातिक देव रूप से उत्पन्न होने के योग्य है, क्या वह जीव वहाँ जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहा उसी प्रकार कहना चाहिये। यावत् आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं।

विवेचन-जो जीव, मारणान्तिक समुद्घात करके नरकावासादि उत्पत्ति स्थान पर जाता है, उनमें से कोई एक जीव अर्थात् जो समुद्घात में ही मरण को प्राप्त हो जाता है, वह जीव वहाँ जाकर वहाँ से अथवा समुद्घात से निवृत्त होकर वापिस अपने शरीर में आता है और दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात करके पुनः उत्पत्ति स्थान पर जाता है, फिर आहार योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है। उसके बाद ग्रहण किये हुए उन पुद्गलों को पचा कर उनका खल रूप और रस रूप विभाग करता है। फिर उन पुद्गलों द्वारा शरीर की रचना करता है। वह जीव अपने उत्पत्ति स्थान के अनुसार अंगुल के असंख्येय भाग आदि रूप से उत्पन्न होता है।

जीव असंख्य प्रदेशावगाहन स्वभाव वाला है। इसलिए वह एक प्रदेशश्रेणी से नहीं जाता है, किन्तु असंख्य प्रदेशावगाहन द्वारा ही उसकी गति होती है, क्योंकि जीव का ऐसा ही स्वभाव है।

॥ इति छठे शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ७

धान्य की स्थिति

१ प्रश्न—अह भंते ! सालीणं, वीहीणं, गोधूमाणं, जवाणं, जवजवाणं—एएसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं, पल्लाउत्ताणं, मंचा-उत्ताणं, मालाउत्ताणं, उल्लित्ताणं, लित्ताणं, पिहियाणं, मुद्दियाणं, लंछियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ ?

१ उत्तर—गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि संवच्छराइं, तेण परं जोणी पमिलायइ, तेण परं जोणी पविद्धंसइ, तेण परं बीये अबीये भवइ, तेण परं जोणीवोच्छेए पण्णत्ते समणा-उसो !

२ प्रश्न—अह भंते ! कलाय-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सतीण-पलिमंथगमाईणं—एएसि णं धण्णाणं ?

२ उत्तर—जहा सालीणं तहा एयाणं पि, णवरं—पंच संवच्छ-राइं, सेसं तं चेव ।

३ प्रश्न—अह भंते ! अयसि-कुसुंभग-कोद्दव-कंगु-वरग-रालग-कोदूसग-सण-सरिसव-मूलगबीयमाईणं—एएसि णं धण्णाणं ?

३ उत्तर—एयाण वि तहेव, णवरं—सत्त संवच्छराइं, सेसं तं चेव ।

कठिन शब्दार्थ–कोट्ठाउत्ताणं–कोठे में रखे हुए, पल्लाउत्ताणं–पल्य अर्थात् बांस के छबड़े में रखे हुए, मंचाउत्ताणं–मंच पर रखे, मालाउत्ताणं–माल–मंजिल पर रखे हुए, उल्लित्ताणं–उल्लिप्त–लीपे हुए, लित्ताणं–लिप्त, पिहियाणं–ढके हुए, मुद्दियाणं–मुद्रित–छापकर बंद किये, लंछियाणं–लांछित किये, तेण परं–उसके बाद, पमिलायइ–म्लान हो जाती है, जोणीवुच्छेदे–योनि व्युच्छेद–नष्ट-योनि, नवरं–विशेष में।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! शाली (कलमादि जाति सम्पन्न चावल), व्रीहि (सामान्य चावल), गोधूम (गेहूँ), यव (जौ) और यवयव (विशिष्ट प्रकार का जौ) इत्यादि धान्य कोठे में,बांस के छबड़े में,मंच में या माल में डाल कर उनके मुख गोबर आदि से उल्लिप्त हों, लिप्त हों, ढके हुए हों, मिट्टी आदि से मुख पर छांदण दिये हुए हों, लांछित–चिन्हित किये हुए हों, इस प्रकार सुरक्षित रखे हुए उपरोक्त धान्यों की योनि (अंकुरोत्पत्ति की हेतुभूत शक्ति) कितने समय तक रहती है ?

१ उत्तर–हे गौतम ! उनकी योनि जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक कायम रहती है। उसके बाद उनकी योनि म्लान हो जाती है, विध्वंस को प्राप्त हो जाती है। इसके बाद वह बीज, अबीज हो जाता है। इसके बाद हे श्रमणायुष्मन् ! उस योनि का विच्छेद हो जाता है।

२ प्रश्न–हे भगवन् ! कलाय, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, बाल, कुलथ, आलिसंदक (एक प्रकार का चंवला), सतीण (तुअर), पलिमंथक (गोल चना अथवा काला चना) इत्यादि धान्य पूर्वोक्त रूप से कोठा आदि में रखे हुए हों, तो इन धान्यों की योनि कितने काल तक कायम रहती है ?

२ उत्तर–हे गौतम ! जिस प्रकार शाली के लिये कहा, उसी प्रकार इन धान्यों के लिए भी कहना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ उत्कृष्ट पांच वर्ष कहना चाहिए। शेष सारा वर्णन उसी तरह कहना चाहिए।

३ प्रश्न–हे भगवन् ! अलसी, कुसुंभ, कोद्रव, कांगणी, बरटी, राल, सण, सरसों, मूलक बीज, (एक जाति के शाक के बीज) आदि धान्यों की योनि कितने काल तक कायम रहती है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार शाली धान्य के लिये कहा, उसी प्रकार इनके लिये भी कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी योनि उत्कृष्ट सात वर्ष तक कायम रहती है। शेष वर्णन पहले की तरह कहना चाहिये।

विवेचन-छठे उद्देशक में जीव की वक्तव्यता कही गई है। इस सातवें उद्देशक में जीव योनि से सम्बन्धित वक्तव्यता कही जाती है। उपर्युक्त तीन प्रश्नों में शाली आदि धान्यों की योनि के विषय में प्रश्न किया गया, जिसका उत्तर दिया गया कि इन सब धान्यों की योनि जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट शाली आदि की तीन वर्ष, कलाय (मटर) आदि की पांच वर्ष और अलसी आदि की सात वर्ष तक योनि कायम रहती है। इसके बाद योनि विध्वस्त हो जाती है। वह बीज अबीज हो जाता है।

गणनीय काल

४ प्रश्न-एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया ऊसासद्धा वियाहिया ?

४ उत्तर-गोयमा ! असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं-सा एगा 'आवलिय' त्ति पवुच्चइ, संखेज्जा आवलिया ऊसासो, संखेज्जा आवलिया णिस्सासो-

'हट्ठस्स अणवगल्लस्स, णिरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
एगे ऊसास-णीसासे, एस पाणु त्ति वुच्चइ ॥१॥
सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाइं से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए ॥२॥
तिण्णि सहस्सा सत्त सयाइं, तेवत्तरिं च ऊसासा।
एस मुहुत्तो दिट्ठो, सव्वेहिं अणंतणाणीहिं ॥३॥

एएणं मुहुत्तपमाणेणं तीसमुहुत्तो अहोरत्तो, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासे, दो मासा उऊ, तिण्णि य उउए अयणे, दो अयणे संवच्छरे, पंचसंवच्छरिए जुगे, वीसं जुगाइं वाससयं, दस वाससयाइं वाससहस्सं, सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्सं, चउरासीइं वाससयसहस्साणि से एगे पुव्वंगे, चउरासीइं पुव्वंगा सयसहस्साइं से एगे पुव्वे; एवं तुडिअंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे; अववंगे, अववे; हूहूअंगे, हूहूए; उप्पलंगे, उप्पले; पउमंगे, पउमे, णलिणंगे, णलिणे; अत्थणिउरंगे, अत्थणिउरे; अउअंगे, अउए, पउअंगे, पउए य; णउअंगे, णउएय; चूलिअंगे, चूलिआ य; सीसपहेलिअंगे, सीसपहेलिया– एताव ताव गणिए, एताव ताव गणियस्स विसए; तेण परं उवमिए।

कठिन शब्दार्थ–मुहुत्तस्स–मुहूर्त–४८ मिनिट का समय, उसासद्धा–उच्छ्वास समय, समुदयसमिति–समूहों का समागम, आवलिया–आवलिका–असंख्यात समय की एक आवलिका होती है, हट्ठस्स–हृष्ट–तुष्ट–स्वस्थ, अणवगल्लस्स–अनवकल्प्य–वृद्धावस्था की शिथिलता से रहित, निरुवकिट्ठस्स–व्याधि रहित, उडू–ऋतु, गणिए–गणित का विषय–गणनीय काल, उवमिए–औपमिक–उपमा से जानने योग्य काल।

भावार्थ–४ प्रश्न–हे भगवन् ! एक एक मुहूर्त के कितने उच्छ्वास कहे गये हैं ?

४ उत्तर–हे गौतम ! असंख्येय समय के समुदाय की समिति के समागम से जितना काल होता है, उसे एक 'आवलिका' कहते हैं। संख्येय आवलिका का एक 'उच्छ्वास' होता है और संख्येय आवलिका का एक 'निःश्वास' होता है। हृष्ट, पुष्ट तथा वृद्धावस्था और व्याधि से रहित प्राणी का एक उच्छ्वास और एक निःश्वास–ये दोनों मिलकर एक 'प्राण' कहलाता है। सात प्राण का

एक 'स्तोक' होता है। सात स्तोक का एक 'लव' होता है। ७७ लव का एक 'मुहूर्त' होता है। अथवा ३७७३ उच्छ्वास का एक 'मुहूर्त' होता है। इस मुहूर्त के अनुसार तीस मुहूर्त का एक 'अहोरात्र' होता है। पन्द्रह अहोरात्र का एक 'पक्ष' होता है। दो पक्ष का एक 'मास' होता है। दो मास की एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओं का एक 'अयन' होता है। दो अयन का एक 'संवत्सर' (वर्ष) होता है। पांच वर्ष का एक 'युग' होता है। बीस युग का एक 'वर्षशत' (सौ वर्ष) होता है। दस वर्षशत का एक 'वर्षसहस्र' (एक हजार वर्ष) होता है। सौ वर्ष सहस्रों का एक 'वर्षशतसहस्र' (एक लाख वर्ष) होता है। ८४ लाख वर्षों का एक 'पूर्वांग' होता है। ८४ लाख पूर्वांग का एक 'पूर्व' होता है। ८४ लाख पूर्व का एक 'त्रुटितांग' होता है और ८४ लाख त्रुटितांग का एक 'त्रुटित' होता है। इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियां बनती हैं। वे इस प्रकार हैं–अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका। इस संख्या तक गणित है। यह गणित का विषय है। इसके बाद औपमिक काल है, अर्थात् वह उपमा का विषय है, गणित का नहीं।

विवेचन–पहले के प्रकरण में धान्यों की योनि की काल-स्थिति कही गई है। अब इस प्रकरण में काल स्थिति रूप मुहूर्तादि का स्वरूप कहा जाता है। ऊपर भावार्थ में गणनीय–गणित योग्य काल परिमाण के ४६ भेद कहे गये हैं। काल के सूक्ष्मतम भाग को 'समय' कहते हैं। असंख्यात समय की एक आवलिका होती है। २५६ आवलिका का एक क्षुल्लक भव ग्रहण होता है, जिसमें १७ से कुछ अधिक क्षुल्लक भव ग्रहण, एक उच्छ्वास निःश्वासकाल में होते हैं। सात उच्छ्वास का एक 'स्तोक' होता है और सात स्तोक का एक 'लव' होता है। लव को सात गुणा करने से एक लव के ४९ उच्छ्वास होते हैं। इन ४९ उच्छ्वासों को ७७ लव के साथ गुणा करने से (क्योंकि ७७ लव का एक मूहूर्त होता है) ३७७३ संख्या होती है। यह एक मुहूर्त के उच्छ्वासों की संख्या है। शीर्षप्रहेलिका

तक का काल गणनीय काल हैं । शीर्षप्रहेलिका १९४ अंकों की संख्या है । यथा—७५८२६-३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ इन ५४ अंकों पर १४० बिन्दियां लगाने से शीर्षप्रहेलिका संख्या का प्रमाण आता है । यहाँ तक का काल गणित का विषय माना गया है । इसके आगे भी काल का परिमाण बतलाया गया है, परन्तु वह उपमा का विषय है, गणित का नहीं ।

उपमेय काल

५ प्रश्न—से किं तं उवमिए ?

५ उत्तर—उवमिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पलिओवमे य, सागरोवमे य ।

६ प्रश्न—से किं तं पलिओवमे, से किं तं सागरोवमे ?

६ उत्तर—

'सत्थेण सुतिक्खेण वि छेत्तुं, भेत्तुं च जं किर न सक्का ।
तं परमाणुं सिद्धा वयंति आइं पमाणाणं' ॥१॥

अणंताणं परमाणुपोग्गलाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा ओसण्हसण्हिया इ वा, सण्हसण्हिया इ वा, उड्ढरेणू इ वा, तसरेणू इ वा, रहरेणू इ वा, वालग्गा इ वा, लिक्खा इ वा, जूया इ वा, जवमज्झे इ वा, अंगुले इ वा; अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया, अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू, अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू, अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू, अट्ठ रहरेणूओ

से एगे देवकुरु-उत्तरकुरुगाणं मणुस्साणं वालग्गे; एवं हरिवास-रम्मग-हेमवय-एरण्णवयाणं, पुव्वविदेहाणं मणूसाणं अट्ठ वालग्गा सा एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया, अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झाओ से एगे अंगुले; एएणं अंगुल-पमाणेणं छ अंगुलाणि पाओ, बारस अंगुलाइं विहत्थी, चउवीसं अंगुलाइं रयणी, अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी, छण्णउइ अंगुलाणि से एगे दंडे इ वा, धणू इ वा, जूए इ वा, णालिया इ वा, अक्खे इ वा, मुसले इ वा; एएणं धणुप्पमाणेणं, दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं; एएणं जोयणप्पमाणेणं जे पल्ले जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिओणं सविसेसं परिरयेणं—से णं एगाहिय-बेयाहिय-तेयाहिया, उक्कोसं सत्तरत्तप्परूढाणं संमट्ठे, सण्णिचिए, भरिए वालग्गकोडीणं; ते णं वालग्गे णो अग्गी दहेज्जा, णो वाउ हरेज्जा; णो कुत्थेज्जा, णो परि-विद्धंसेज्जा, णो पूइत्ताए हव्वं आगच्छेज्जा; तओ णं वाससए, वाससए एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे, णिरए, णिम्मले, णिट्ठीए, णिल्लेवे, अवहडे, विसुद्धे भवइ से त्तं पलिओवमे।

गाहा—'एएसिं पल्लाणं कोडाकोडीणं हवेज्ज दसगुणिया,
तं सागरोवमस्स उ एक्कस्स भवे परिमाणं।

कठिन शब्दार्थ—सत्थेण सुतिक्खेण—सुतीक्ष्ण शस्त्र से, पमाणाणंआइं—प्रमाणों का

आदिभूत, विहत्थी–वितस्ति–एक बेंत अर्थात् बारह अंगुल प्रमाण।

भावार्थ–५ प्रश्न–हे भगवन् ! औपमिक काल किसे कहते हैं ?

५ उत्तर–हे गौतम ! औपमिक काल दो प्रकार का कहा गया है। यथा– पल्योपम और सागरोपम।

६ प्रश्न–हे भगवन् ! पल्योपम किसे कहते हैं और सागरोपम किसे कहते हैं ?

६ उत्तर–हे गौतम ! जो सुतीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा भी छेदा भेदा न जा सके ऐसे परम-अणु (परमाणु) को केवली भगवान् सब प्रमाणों का आदिभूत प्रमाण कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणुओं के समुदाय की समिति के समागम से एक उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, बालाग्र, लिक्षा, यूका, यवमध्य और अंगुल होता है। आठ उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिका के मिलने से एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है। आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका से एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणु से एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणु से एक रथरेणु और आठ रथरेणु से देव-कुरु उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हरिवर्ष रम्यकवर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। हरिवर्ष रम्यकवर्ष के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हैमवत ऐरावत के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। हैमवत ऐरावत के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से पूर्वविदेह के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। पूर्व विदेह के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से एक लिक्षा (लीख), आठ लिक्षा से एक यूका (जूं), आठ यूका से एक यवमध्य और आठ यवमध्य से एक अंगुल होता है। इस प्रकार के छह अंगुल का एक पाद (पैर), बारह अंगुल की एक वितस्ति (बेंत) चौबीस अंगुल का एक हाथ, अड़तालीस अंगुल की एक कुक्षी, छियानवें अंगुल का एक दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है। दो हजार धनुष का एक गाऊ होता है। चार गाऊ का एक योजन होता है। इस योजन के परिमाण से एक योजन लम्बा एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा तिगुणी से अधिक परिधिवाला एक पल्य हो, उस पल्य में देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्यों के एक दिन के उगे

हुए, दो दिन के उगे हुए, तीन दिन के उगे हुए और अधिक से अधिक सात दिन के उगे हुए करोड़ों बालाग्र ठूंसठूंस कर इस प्रकार भरा जाय कि उन बालाग्रों को न अग्नि जला सके और न हवा उड़ा सके। एवं वे बालाग्र न दुर्गन्धित हों, न नष्ट हों और न सड़ सकें। इस तरह से भर दिया जाय। इसके बाद इस प्रकार बालाग्रों से ठसाठस भरे हुए उस पल्य में से सौ सौ वर्ष में एक एक बालाग्र को निकाला जाय। इस क्रम से जितने काल में वह पल्य क्षीण हो, नीरज हो, निर्मल हो, निष्ठित हो, निर्लेप हो, अपहरित हो और विशुद्ध हो, उतने काल को एक 'पल्योपम काल' कहते हैं।

सागरोपम के प्रमाण को बतलाने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है— पल्योपम का जो प्रमाण ऊपर बतलाया गया है, वैसे दस कोटाकोटि पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

एएणं सागरोवमपमाणेणं चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा, दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदुसमा, एगसागरोवम-कोडाकोडी, बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दुसमसुसमा; एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुसमा, एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुसमदुसमा, पुणरवि उस्सप्पिणीए एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुसमदुसमा, एक्कवीसं वाससहस्साइं, जाव—चत्तारि सागरो-पमकोडाकोडी कालो सुसमसुसमा; दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी, दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी; वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ अवसप्पिणी, उस्सप्पिणी य।

भावार्थ—चार कोटाकोटि सागरोपम का एक 'सुषमसुषमा' आरा होता है। तीन कोडाकोडि सागरोपम का एक 'सुषमा' आरा होता है। दो कोटाकोटि सागरोपम का एक 'सुषमदुःषमा' आरा होता है। बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का एक 'दुःषम-सुषमा' आरा होता है। इक्कीस हजार वर्ष का एक 'दुःषम' आरा होता है और इक्कीस हजार वर्ष का एक 'दुःषम दुःषमा' आरा होता है। इसी प्रकार उत्सर्पिणी काल में इक्कीस हजार वर्ष का पहला दुःषम-दुःषमा आरा होता है और इक्कीस हजार वर्ष का दूसरा दुःषम आरा होता है। बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का तीसरा दुःषम-सुषमा आरा होता है। दो कोटाकोटि सागरोपम का चौथा सुषमदुःषमा आरा होता है। तीन कोटाकोटि सागरोपम का पाँचवां सुषमा आरा होता है। चार कोटाकोटि सागरोपम का छठा सुषमसुषमा आरा होता है। इस प्रकार दस कोटाकोटि सागरोपम का एक 'अवसर्पिणी काल' होता है और दस कोटाकोटि सागरोपम का एक 'उत्सर्पिणी काल' होता है। बीस कोटाकोटि सागरोपम का एक 'अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल चक्र' होता है।

विवेचन—पहले प्रकरण में गणनीय काल का विवेचन किया गया है। अब इस प्रकरण में उपमेय काल का वर्णन करने के लिये परमाणु आदि का स्वरूप बतलाया जाता है। परमाणु से लेकर योजन तक का प्रमाण बतला कर फिर पल्योपम का स्वरूप बतलाया गया है। यहाँ जो पल्योपम का स्वरूप बतलाया गया है, वह व्यावहारिक अद्धा पल्योपम का स्वरूप समझना चाहिये। क्योंकि पल्योपम के तीन भेद कहे गये हैं। यथा १—उद्धार पल्योपम, २ अद्धा पल्योपम और ३ क्षेत्र पल्योपम।

१ उत्सेधांगुल परिमाण से एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा गोलाकार कूप हो। उसमें देवकुरू उत्तर कुरू के युगलिया के मुण्डित मस्तक पर एक दिन के उगे हुए, दो दिन के उगे हुए, यावत् सात दिन के उगे हुए, करोड़ों बालाग्रों से उस कूप को ठूंस ठूंस कर इस प्रकार भरा जाय कि वे बालाग्र न आग से जल सकें और न हवा से उड़ सकें। उनमें से प्रत्येक को एक एक समय में निकालते हुए जितने काल में वह कुआँ सर्वथा खाली हो जाय, उस काल परिमाण को व्यावहारिक 'उद्धार पल्योपम' कहते हैं। यह पल्योपम संख्यात समय परिमाण होता है।

२ उक्त बालाग्र के असंख्यात अदृश्य खण्ड किये जायँ,—जो कि विशुद्ध नेत्र वाले छद्मस्थ पुरुष के दृष्टिगोचर होने वाले सूक्ष्म पुद्गल द्रव्य के असंख्यातवें भाग एवं सूक्ष्म पनक (नीलण, फूलण) शरीर से असंख्यात गुणा हो। उन सूक्ष्म बालाग्र खण्डों से वह कुआँ ठूंस-ठूंस कर भरा जाय और उनमें से प्रति समय एक एक बालाग्र खण्ड निकाला जाय। इस प्रकार निकालते निकालते जितने काल में वह कुआँ खाली हो जाय, उसे 'सूक्ष्म उद्धार पल्योपम' कहते हैं। इसमें संख्यात वर्ष कोटि परिमाण काल होता है।

३ उपर्युक्त रीति से भरे हुए उपरोक्त परिमाण के कूप में से एक एक बालाग्र सौ सौ वर्ष में निकाला जाय, इस प्रकार निकालते निकालते जितने काल में वह कुआँ सर्वथा खाली हो जाय, उस काल परिमाण को 'व्यवहार अद्धा पल्योपम' कहते हैं। यह अनेक संख्यात वर्ष कोटि प्रमाण होता है।

यदि यही कूप उपर्युक्त सूक्ष्म बालाग्र खण्डों से भरा हुआ हो और उनमें से प्रत्येक बालाग्र खण्ड, सौ सौ वर्ष में निकाला जाय। इस प्रकार निकालते निकालते वह कुआँ जितने काल में खाली हो जाय। वह 'सूक्ष्म अद्धा पल्योपम' है। इसमें असंख्यात वर्ष कोटि परिमाण काल होता है।

उपर्युक्त परिमाण का कूप उपर्युक्त रीति से बालाग्रों से भरा हो, उन बालाग्रों से जो आकाश प्रदेश छुए हुए हैं, उन छुए हुए आकाश प्रदेशों में से प्रत्येक को प्रति समय निकाला जाय। इस प्रकार छुए हुए सभी आकाश प्रदेशों को निकालने में जितना समय लगे, वह 'व्यवहार क्षेत्र पल्योपम' है। इसमें असंख्यात अवसर्पिणीउत्सर्पिणी परिमाण काल होता है। यदि यही कुआँ बालाग्र के सूक्ष्म खण्डों से ठूंस ठूंस कर भरा हो। उन बालाग्र खण्डों से जो आकाश प्रदेश छुए हुए हैं और जो नहीं छुए हुए हैं। उन छुए हुए और नहीं छुए हुए सभी आकाश प्रदेशों में से प्रत्येक को एक एक समय में निकालते हुए सभी को निकालने में जितना काल लगे—वह 'सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम' है। इसमें भी असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी परिमाण काल होता है। परन्तु इसका काल व्यवहार क्षेत्र पल्योपम से असंख्यात गुणा जानना चाहिये।

पल्योपम की तरह सागरोपम के भी तीन भेद हैं। यथा १—उद्धार सागरोपम, २ अद्धा सागरोपम और ३ क्षेत्र सागरोपम।

उद्धार सागरोपम के दो भेद हैं—व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोड़ाकोडी व्यवहार उद्धार पल्योपम का एक व्यवहार उद्धार सागरोपम होता है। दस कोड़ाकोड़ी सूक्ष्म उद्धार

पल्योपम का एक 'सूक्ष्म उद्धार सागरोपम' होता है।

ढ़ाई सूक्ष्म उद्धार सागरोपम या पच्चीस कोड़ाकोड़ी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम में जितने समय होते हैं, उतने ही लोक में द्वीप और समुद्र हैं।

अद्धा सागरोपम के भी दो भेद हैं-व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोड़ाकोड़ी व्यवहार अद्धा पल्योपम का एक 'व्यवहार अद्धा सागरोपम' होता है। दस कोड़ाकोड़ी सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का एक 'सूक्ष्म अद्धा सागरोपम' होता है। जीवों की कर्म स्थिति, कायस्थिति और भवस्थिति और आरा का परिमाण सूक्ष्म अद्धा पल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम से मापा जाता है।

क्षेत्र सागरोपम के भी दो भेद हैं-व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोड़ाकोड़ी व्यवहार क्षेत्र पल्योपम का एक 'व्यवहार क्षेत्र सागरोपम' होता है। दस कोड़ाकोड़ी सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का एक 'सूक्ष्म क्षेत्र सागरोपम' होता है। सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम से और सूक्ष्म क्षेत्र सागरोपम से दृष्टिवाद में द्रव्य मापे जाते हैं।

सुषमसुषमा काल

७ प्रश्न-जंबूद्दीवे णं भंते ! दीवे इमीसे उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए उत्तमट्ठपत्ताए, भरहस्स वासस्स केरिसिए आयार भावपडोयारे होत्था ?

७ उत्तर-गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहा णामए आलिंगपुक्खरे इ वा; एवं उत्तरकुरुवत्तव्वया णेयव्वा जाव-आसयंति, सयंति; तीसे णं समाए भारहे वासे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे उराला कुद्दाला, जाव-कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला, जाव-छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था। तं जहा-पम्हगंधा, मिय-

गंधा, अममा, तेयत्ती, सहा, सणिंचारा ।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । ॥

॥ छट्ठसए सत्तमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-उत्तमट्ठपत्ताए-उत्तम अर्थ को प्राप्त, आगारभावपडोयारे-आकार-भाव प्रत्यवतार-आविर्भाव, आलिगपुक्खरे-आलिंग पुष्कर-तवले के मुख के पट के समान, आसयंति-बैठते हैं, सयंति-सोते हैं, उराला-उदार-प्रधान, अणुसज्जित्था-पूर्वकाल से चला आया हुआ ।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्तमार्थ प्राप्त इस अवसर्पिणी काल में सुषमसुषमा नामक आरे में भरतक्षेत्र के किस प्रकार के आकार भाव प्रत्यवतार अर्थात् आकारों का और पदार्थों का आविर्भाव था ?

७ उत्तर-हे गौतम ! भूमिभाग बहुत सम होने से अत्यन्त रमणीय था । जैसे कि-मुरज अर्थात् तबले का मुखपट हो वैसा बहुसम भरतक्षेत्र का भूमि भाग था । इस प्रकार उस समय के भरतक्षेत्र के लिए उत्तरकुरु की वक्तव्यता के समान वक्तव्यता कहनी चाहिए, यावत् बैठते हैं, सोते हैं । उस काल में भरतक्षेत्र के उन उन देशों के उन उन स्थलों में उदार-प्रधान उद्दालक यावत् कुश और विकुश से विशुद्ध वृक्षमूल थे, यावत् छह प्रकार के मनुष्य थे । यथा-१ पद्म गन्ध-पद्म के समान गन्ध वाले, २ मृग गन्ध-कस्तूरी के समान गन्ध वाले, ३ अमम-ममत्व रहित, ४ तेजतली अर्थात् तेजस्वी और रूपवान्, ५ सहा-सहनशील, ६ शनैश्चर अर्थात् उत्सुकता रहित होने से मन्द मन्द (धीरे धीरे) गति करने वाले-गज गति वाले । इस तरह छह प्रकार के मनुष्य थे ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कहकर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं ।

विवेचन-काल का अधिकार चलता है इसलिए अब फिर काल के विषय में ही कहा जाता है-इस अवसर्पिणी काल में सुषमसुषमा नामक पहले आरे के समय इस भरतक्षेत्र के कैसे भाव थे ? इसके उत्तर में जीवाभिगम सूत्र में कही गई उत्तरकुरू की वक्तव्यता की भलामण दी गई है। उसके अनुसार यहाँ भी कथन करना चाहिए। उस समय यहाँ का भूमिभाग बड़ा समतल था। उद्दालक आदि वृक्ष थे, यावत् पद्म और कस्तूरी के समान गन्ध वाले मनुष्य थे। वे ममत्व रहित थे, बड़े तेजस्वी और रूपवान् थे। वे बड़े सहनशील थे। उतावल और किसी प्रकार की उत्सुकता न होने से वे हाथी के समान धीरे धीरे गम्भीर गति वाले थे। इत्यादि सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र की दूसरी प्रतिपत्ति में वर्णित उत्तरकुरू वर्णन के समान जान लेना चाहिए।

॥ इति छठे शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ८

पृथ्वियों के नीचे ग्रामादि नहीं है

१ प्रश्न-कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

१ उत्तर-गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-रयणप्पभा, जाव-ईसिपब्भारा।

२ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?

२ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

३ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे गामा इ वा, जाव-सण्णिवेसा इ वा ?

३ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।

४ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उराला बलाहया संसेयंति, संमुच्छंति, वासं वासंति ?

४ उत्तर-हंता, अत्थि । तिण्णि वि पकरेइ, देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, णागो वि पकरेइ ।

५ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाइ पुढवीए बायरे थणियसद्दे ?

५ उत्तर-हंता अत्थि, तिण्णि वि पकरेंति ।

६ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे बायरे अगणिकाए ?

६ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ विग्गहगइसमावण्णएणं ।

७ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे चंदिम, जाव-तारारूवा ?

७ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।

८ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चंदाभा

इ वा, सूराभा इ वा ?

८ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे, एवं दोच्चाए पुढवीए भाणियव्वं, एवं तच्चाए वि भाणियव्वं, नवरं-देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, णो णागो पकरेइ। चउत्थीए वि एवं, णवरं-देवो एक्को पकरेइ, णो असुरो, णो णागो पकरेइ, एवं हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो एक्को पकरेइ।

कठिन शब्दार्थ-इसीपब्भारा-ईषत्प्राग्भारा, अहे-अधः-नीचे, अत्थि-अस्तित्व।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! कितनी पृथ्वियाँ कही गई हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! आठ पृथ्वियाँ कही गई हैं। यथा-१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पङ्कप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा, ७ महातमःप्रभा और ईषत्प्राग्भारा।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे गृह (घर) या गृहापण (दूकानें) हैं ?

२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं। अर्थात् इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे गृह या गृहापण नहीं हैं।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश नहीं हैं।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे महामेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूच्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

४ उत्तर-हाँ गौतम ! महामेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूच्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं। यह सब कार्य देव भी करते हैं, असुरकुमार भी

करते हैं और नागकुमार भी करते हैं ।

५ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे बादर स्तनित शब्द है ?

५ उत्तर–हां, गौतम ! है । इसको देव आदि तीनों करते हैं ।

६ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे बादर अग्निकाय है ?

६ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । यह निषेध विग्रह गति समापन्न जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए समझना चाहिए ।

७ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ?

७ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

८ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे चन्द्राभा (चन्द्र का प्रकाश) या सूर्याभा (सूर्य का प्रकाश) है ?

८ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । इसी प्रकार दूसरी पृथ्वी के लिए भी कहना चाहिए । इसी तरह तीसरी पृथ्वी के लिये भी कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वहाँ देव भी करते हैं, असुर भी करते हैं, किन्तु नागकुमार नहीं करते हैं । इसी तरह चौथी पृथ्वी के लिये भी कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि वहाँ केवल देव ही करते हैं, किन्तु असुरकुमार और नागकुमार दोनों नहीं करते हैं । इस प्रकार शेष सब नीचे की पृथ्वियों में केवल देव ही करते हैं, किन्तु असुरकुमार और नागकुमार दोनों नहीं करते हैं ।

देवलोकों के नीचे

९ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! सोहम्मी-साणाणं कप्पाणं अहे गेहा इ वा गेहावणा इ वा ?

९ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।
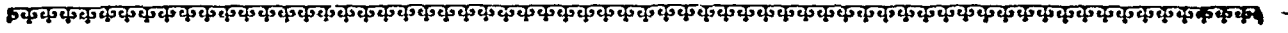
१० प्रश्न-अत्थि णं भंते ! उराला बलाहया ?

१० उत्तर-हंता, अत्थि । देवो पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, णो णागो पकरेइ, एवं थणियसद्दे वि ।

११ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! बायरे पुढवीकाए, बायरे अगणिकाए ?

११ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ विग्गहगइसमावण्णएणं ।

१२ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! चंदिम-० ?

१२ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।

१३ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! गामा इ वा ?

१३ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे ।

१४ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! चंदाभा इ वा ?

१४ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, एवं सणंकुमारमाहिंदेसु, णवरं-देवो एगो पकरेइ; एवं बंभलोए वि, एवं बंभलोगस्स उवरिं सव्वेहिं देवो पकरेइ; पुच्छियव्वो य बायरे आउकाए, बायरे अगणिकाए, बायरे वणस्सइकाए; अण्णं तं चेव ।

गाहा-तमुक्काए कप्पपणए अगणि-पुढवी य अगणि पुढवीसु,
आऊ तेऊ वणस्सई कप्पुवरिमकण्हराईसु ।

कठिन शब्दार्थ-एगो-अकेला, उवरिं-ऊपर ।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक के नीचे गृह या गृहापण हैं ?

९ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् वहाँ गृह और गृहापण नहीं हैं।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक के नीचे महामेघ हैं ?

१० उत्तर-हाँ, गौतम ! महामेघ हैं। उनको देव भी करते हैं, असुरकुमार भी करते हैं और नागकुमार भी करते हैं। इसी तरह स्तनित शब्द, के लिए भी कहना चाहिए।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वहाँ (सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक के नीचे) बादर पृथ्वी काय और बादर अग्निकाय है ?

११ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह निषेध विग्रहगति समापन्न जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए जानना चाहिए।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वहाँ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वहाँ ग्रामादि हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वहाँ चन्द्राभा और सूर्याभा है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक तक कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वहाँ केवल देव ही करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मदेवलोक और ब्रह्मदेवलोक से ऊपर सब जगह देव करते हैं। सब जगह बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय के विषय में प्रश्न करना चाहिए। शेष सब पहले की तरह कहना चाहिए।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है-तमस्काय में और पांच देवलोकों तक में अग्निकाय और पृथ्वीकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए। रत्नप्रभा आदि

पृथ्वियों में अग्निकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए। पांचवें देवलोक से ऊपर सब स्थानों में तथा कृष्णराजियों में अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिये।

विवेचन-सातवें उद्देशक के अन्त में भरत क्षेत्र का वर्णन किया गया है। अब इस आठवें उद्देशक के प्रारम्भ में रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों का वर्णन किया जाता है। रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियाँ नीचे हैं और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी ऊपर है। रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों के नीचे बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय नहीं है। किन्तु वहाँ घनोदधि आदि होने से अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय है। दूसरी नारकी तक महामेघ, स्तनित शब्द आदि को देव, असुर और नाग तीनों करते हैं, किन्तु तीसरी पृथ्वी के नीचे देव और असुरकुमार ही करते हैं, नागकुमार नहीं करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि दूसरी पृथ्वी की सीमा से आगे नागकुमार नहीं जाते हैं। चौथी पृथ्वी के नीचे केवल देव ही करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि तीसरी पृथ्वी की सीमा से आगे असुरकुमार नहीं जा सकते। ऊपर सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक के नीचे तो चमरेन्द्र की तरह असुरकुमार जाते हैं, किन्तु नागकुमार नहीं जा सकते। सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक और आगे सब जगह केवल देव करते हैं। क्योंकि सौधर्म और ईशान देवलोक से आगे असुरकुमार की भी जाने की शक्ति नहीं है। यहां बादर पृथ्वीकाय नहीं है। क्योंकि वहां उसका स्वस्थान नहीं होने से उत्पत्ति भी नहीं है। बादर अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का सद्भाव है, क्योंकि सौधर्म और ईशान देवलोक उदधि प्रतिष्ठित है,इसलिये वहां अप्काय और वनस्पतिकाय का होना सम्भव है और वायुकाय तो सभी जगह है। इस तरह सनत्कुमार और माहेन्द्र में भी तमस्काय होने से बादर अप्काय और बादर वनस्पतिकाय का सद्भाव सुसंगत है। बारहवें अच्युत देवलोक तक मेघादि को देव करते हैं। इससे आगे देव की जाने की शक्ति नहीं है और मेघ आदि का भी सद्भाव नहीं है।

संग्रह गाथा द्वारा संक्षिप्त में यह बतला दिया गया है कि तमस्काय में और पांचवें देवलोक तक बादर अग्निकाय और बादर पृथ्वीकाय का निषेध है। शेष तीन का सद्भाव है। बारहवें देवलोक तक इसी तरह जान लेना चाहिये। सातों पृथ्वियों के नीचे बादर अग्निकायादि का निषेध है। पाँचवें देवलोक से ऊपर के स्थानों में तथा कृष्णराजियों में भी बादर अप्काय, तेउकाय और वनस्पति काय का निषेध है, क्योंकि उनके नीचे वायुकाय का ही सद्भाव है।

आयुष्य का बन्ध

१५ प्रश्न-कइविहे णं भंते ! आउयबंधए पण्णत्ते ?

१५ उत्तर-गोयमा ! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा-जाइणामणिहत्ताउए, गइणामणिहत्ताउए, ठिइणामणिहत्ताउए, ओगाहणाणामणिहत्ताउए, पएसणामणिहत्ताउए, अणुभागणामणिहत्ताउए; दंडओ जाव-वेमाणियाणं ।

१६ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं जाइणामणिहत्ता, जाव-अणुभागणामणिहत्ता ?

१६ उत्तर-गोयमा ! जाइणामणिहत्ता वि, जाव-अणुभागणामणिहत्ता वि; दंडओ जाव-वेमाणियाणं ।

१७ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं जाइणामणिहत्ताउया, जाव-अणुभागणामणिहत्ताउया ?

१७ उत्तर-गोयमा ! जाइणामणिहत्ताउया वि, जाव-अणुभागणामणिहत्ताउया वि; दंडओ जाव-वेमाणियाणं; एवं एए दुवालस दंडगा भाणियव्वा ।

१८ प्रश्न-जीवाणं भंते ! किं १ जाइणामणिहत्ता, २ जाइणामणिहत्ताउया; जीवा णं भंते ! किं ३ जाइणामणिउत्ता, ४ जाइणामणिउत्ताया; ५ जाइगोयणिहत्ता, ६ जाइगोयणिहत्ताउया;

७ जाइगोयणिउत्ता, ८ जाइगोयणिउत्ताउया; ९ जाइणामगोयणिहत्ता, १० जाइणामगोयणिहत्ताउया; ११ जाइणामगोयणिउत्ता, जीवा णं भंते ! किं १२ जाइणामगोयणिउत्ताउया; जाव-अणुभागणामगोयणिउत्ताउया ?

१८ उत्तर-गोयमा ! जाइणामगोयणिउत्ताउया वि, जाव-अणुभागणामगोयणिउत्ताउया वि; दंडओ जाव-वेमाणियाणं ।

कठिन शब्दार्थ-आउयबंधए-आयुष्य बन्ध, जाइणामणिहत्ताउए-एकेंद्रियादि जाति के साथ आयु का निधत्त-निषेकित करना-बांधना, अणुभागणामणिहत्ताउय-अनुपाक-विपाक -फल भोग रूप कर्म को आयु के साथ बँधना ।

भावार्थ-१५ प्रश्न-हे भगवन् ! आयुष्य बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! आयुष्य बन्ध छह प्रकार का कहा गया है । यथा-१ जाति-नाम-निधत्तायु, २ गतिनामनिधत्तायु, ३ स्थितिनामनिधत्तायु, ४ अवगाहनानामनिधत्तायु, ५ प्रदेशनामनिधत्तायु और ६ अनुभागनामनिधत्तायु । यावत् वैमानिकों तक दण्डक कहना चाहिए ।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, जाति-नाम-निधत्त हैं ? यावत् अनुभाग-नाम-निधत्त हैं ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! जीव जातिनामनिधत्त भी हैं, यावत् अनुभागनाम-निधत्त भी हैं । यह दण्डक यावत् वैमानिक देवों तक कहना चाहिए ।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, जातिनामनिधत्तायु हैं, यावत् अनुभाग-नामनिधत्तायु हैं ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! जीव, जातिनामनिधत्तायु भी हैं, यावत् अनुभाग-नामनिधत्तायु भी हैं । यह दण्डक, यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये । इस प्रकार ये बारह दण्डक हुए ।

१८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, जातिनामनिधत्त हैं ? जातिनामनिधत्तायु हैं ? जातिनामनियुक्त हैं ? जातिनामनियुक्तायु हैं ? जातिगोत्रनिधत्त हैं ? जातिगोत्रनिधत्तायु हैं ? जातिगोत्रनियुक्त हैं ? जातिगोत्रनियुक्तायु हैं ? जातिनामगोत्रनिधत्त हैं ? जातिनामगोत्रनिधत्तायु हैं ? जातिनामगोत्रनियुक्त हैं ? जातिनामगोत्रनियुक्तायु हैं ? यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु हैं ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! जीव, जातिनामनिधत्त भी हैं। यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु भी हैं। यह दण्डक यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये।

विवेचन-पहले प्रकरण में बादर अप्काय आदि का वर्णन किया गया है। वे आयुष्य का वन्ध होने पर ही हो सकते हैं। इसलिये अब आयुष्य के वन्ध के विषय में कहा जाता है-जाति का अर्थ है एकेंद्रिय आदि पाँच प्रकार की जाति। तद्रूप जो नाम उसे 'जातिनाम' कहते हैं। अर्थात् जातिनाम-यह एक नाम कर्म की उत्तर प्रकृति है। अथवा जीव का एक प्रकार का परिणाम है। उसके साथ निधत्त (निषिक्त-निषेक को प्राप्त) जो आयु, उसे जातिनामनिधत्तायु कहते हैं। प्रतिसमय अनुभव में आने के लिये कर्म पुद्गलों की जो रचना होती है, उसे 'निषेक' कहते हैं। नैरयिक आदि चार प्रकार की 'गति' कहलाती है। अमुक भव में विवक्षित समय तक जीव का रहना 'स्थिति' कहलाती है। इस रूप आयु को क्रमशः 'गतिनामनिधत्तायु' और 'स्थितिनामनिधत्तायु' कहते हैं। अथवा इस सूत्र में जातिनाम, गतिनाम और अवगाहना नाम का ग्रहण करने से केवल जाति, गति और अवगाहना रूप प्रकृति का कथन किया गया है। स्थिति, प्रदेश और अनुभाग का ग्रहण होने से पूर्वोक्त प्रकृतियों की स्थिति आदि कही गई है। वह स्थिति जात्यादि नाम सम्बन्धित होने से नाम कर्म रूप ही कहलाती है। इसलिये यहाँ सब जगह 'नाम' का अर्थ 'कर्म' घटित होता है। अर्थात् स्थिति रूप नाम कर्म जो हो, वह स्थितिनाम। उसके साथ जो निधत्तायु, उसे 'स्थिति-नाम-निधत्तायु' कहते हैं। जीव, जिसमें अवगाहित होता है-रहता है, उसे अवगाहना कहते हैं अर्थात् औदारिक आदि शरीर। उसका नाम अर्थात् अवगाहना नाम। अथवा अवगाहना रूप जो नाम (परिणाम) वह अवगाहना नाम। उसके साथ निधत्तायु 'अवगाहना-नाम-निधत्तायु' कहलाती है। प्रदेशों का अथवा आयुष्य कर्म के द्रव्यों का उस प्रकार का नाम (परिणमन) वह प्रदेशनाम अथवा प्रदेश रूप जो कि एक प्रकार का नाम कर्म, वह प्रदेश-नाम, उसके साथ निधत्तायु 'प्रदेशनाम-निधत्तायु' कहलाती है। अनुभाग अर्थात् आयुष्य कर्म के द्रव्यों का विपाक तद्रूप जो नाम (परिणाम) वह 'अनुभाग-नाम' अथवा अनुभाग

रूप जो नाम कर्म है, वह अनुभागनाम, उसके साथ निधत्त जो आयु वह 'अनुभागनामनिधत्तायु' कहलाती है।

शंका-यहाँ आयुष्य को जात्यादि नाम कर्म द्वारा क्यों विशेषित किया है?

समाधान-आयुष्य की प्रधानता बतलाने के लिये आयुष्य को विशेष्य रखा गया है और जाति आदि नाम को विशेषण रूप से प्रयुक्त किया है। यहाँ आयुष्य की प्रधानता बतलाने का कारण यह है कि जब नरकादि आयुष्य का उदय होता है, तभी जात्यादि नाम कर्म का उदय होता है। अकेला आयु-कर्म ही नैरयिकादि का भवोपग्राहक है। इसी बात को इसी शास्त्र में पहले इस प्रकार बतलाया गया है-"हे भगवन्! क्या नैरयिक जीव, नैरयिकों में उत्पन्न होता है अथवा अनैरयिक जीव, नैरयिकों में उत्पन्न होता है? उत्तर-हे गौतम! नैरयिक जीव ही नैरयिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु अनैरयिक जीव, नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता।" इसका तात्पर्य यह है कि नैरयिक सम्बन्धी आयुष्य के समवेदन के प्रथम समय में ही समवेदन करने वाला वह जीव, जो कि अभी नरक में पहुँचा नहीं है, किन्तु नरक में जाने के लिये विग्रह गति में चल रहा है, वह नैरयिक कहलाता है। इस समवेदन के समय ही नैरयिक आयुष्य के सहचर पञ्चेन्द्रिय जात्यादि नाम कर्मों का भी उदय हो जाता है। यहाँ मूल में प्रश्नकार ने यद्यपि आयुष्य बन्ध के छह प्रकारों के विषय में पूछा है, तथापि उत्तरकार ने आयुष्य के छह प्रकार बतलाये हैं। इसका कारण यह है कि आयुष्य और बन्ध इन दोनों में अव्यतिरेक-अभेद है, इसलिये इन दोनों में यहाँ भेद की कल्पना नहीं की है। क्योंकि जो बन्धा हुआ हो, वही 'आयुष्य,' इस व्यवहार से व्यवहृत होता है। अतएव आयुष्य शब्द के साथ बन्ध शब्द का भाव सम्मिलित है। 'हे भगवन्! नैरयिकों में कितने प्रकार का आयुबन्ध कहा गया है'? इस प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डकों का कथन करना चाहिये।

यहाँ एक प्रकार के कर्म का प्रकरण चल रहा है। इसलिये कर्म से विशेषित जीवादि पदों के बारह दण्डक कहे गये हैं।

१ जिन जीवों ने जातिनाम निषिक्त किया है अथवा विशिष्ट बन्धवाला किया है, वे जीव 'जाति-नाम-निधत्त' कहलाते हैं। इसी प्रकार गति-नाम-निधत्त, स्थिति-नाम-निधत्त, अवगाहना-नाम-निधत्त, प्रदेश-नाम-निधत्त और अनुभाग-नाम-निधत्त, इन सबकी व्याख्या भी जान लेनी चाहिये। विशेषता यह है कि जात्यादि नामों की जो स्थिति, जो प्रदेश तथा जो अनुभाग हैं, वे स्थित्यादि नाम अवगाहना नाम और शरीर नाम, यह एक दण्डक वैमानिकों तक जान लेना चाहिये।

२ जिन जीवों ने जातिनाम के साथ आयुष्य को निधत्त किया है, वे 'जातिनाम-निधत्तायु' कहलाते हैं। इसी तरह दूसरे पदों का अर्थ भी जान लेना चाहिये। यह दूसरा दण्डक है। इसी प्रकार ये बारह दण्डक होते हैं।

३ जातिनामनियुक्त–यह तीसरा दण्डक है। इसका अर्थ यह है कि जिन जीवों ने जातिनाम को नियुक्त (सम्बद्ध–निकाचित) किया है अथवा वेदन प्रारंभ किया है, वे 'जाति-नाम-नियुक्त' कहलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे पदों का भी अर्थ जान लेना चाहिये।

४ जाति-नाम नियुक्त-आयु–यह चौथा दण्डक है। इसका अर्थ है कि जिन जीवों ने जातिनाम के साथ आयुष्य नियुक्त (सम्बद्ध–निकाचित) किया है अथवा उसका वेदन प्रारम्भ किया है, वे 'जातिनामनियुक्तायु' कहलाते हैं। इस प्रकार दूसरे पदों का अर्थ भी जान लेना चाहिये।

५ 'जाति-गोत्र-निधत्त'–यह पांचवा दण्डक है। इसका अर्थ यह है कि जिन जीवों ने एकेन्द्रिय आदि रूप जाति और गोत्र अर्थात् एकेन्द्रिय आदि जाति के योग्य नीचगोत्र आदि को निधत्त किया है, वे 'जातिगोत्रनिधत्त' कहलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे पदों का भी अर्थ जान लेना चाहिये।

६ 'जातिगोत्रनिधत्तायु'–यह छठा दण्डक है। इसका अर्थ है जिन जीवों ने जाति और गोत्र के साथ आयुष्य को निधत्त किया है, वे 'जातिगोत्र-निधत्तायु' कहलाते हैं। इसी तरह अन्य पदों का भी अर्थ जान लेना चाहिये

७ "जाति गोत्र नियुक्त'–यह सातवाँ दण्डक है। जिन जीवों ने जाति और गोत्र को नियुक्त किया है, वे 'जातिगोत्र-नियुक्त' कहलाते हैं। इसी तरह दूसरे पदों का भी अर्थ जान लेना चाहिये।

८ "जातिगोत्र-नियुक्तायु"–यह आठवां दण्डक है। जिन जीवों ने जाति और गोत्र के साथ आयुष्य को नियुक्त कर लिया है, वे 'जातिगोत्रनियुक्तायु' कहलाते हैं। इसी तरह दूसरे पदों का भी अर्थ जान लेना चाहिये।

९ "जातिनाम-गोत्र-निधत्त"–यह नौवां दण्डक है। जिन जीवों ने जाति, नाम और गोत्र को निधत्त किया है, वे 'जातिनामगोत्रनिधत्त' कहलाते हैं। इसी तरह दूसरे पदों का अर्थ भी जान लेना चाहिये।

१० "जातिनामगोत्र-निधत्तायु"–यह दसवां दण्डक है। जिन जीवों ने जाति, नाम और गोत्र के साथ आयुष्य को निधत्त किया है, वे 'जातिनामगोत्र-निधत्तायु' कहलाते हैं।

इसी तरह दूसरे पदों का भी अर्थ जान लेना चाहिये।

११ "जातिनामगोत्रनियुक्त"–यह ग्यारहवां दण्डक है। जिन जीवों ने जाति नाम और गोत्र को नियुक्त किया है, वे 'जाति-नाम-गोत्र-नियुक्त' कहलाते हैं। इसी तरह दूसरे पदों का अर्थ भी जान लेना चाहिये।

१२ "जातिनामगोत्र-नियुक्तायु"–यह बारहवां दण्डक है। जिन जीवों ने जाति, नाम और गोत्र के साथ आयुष्य को नियुक्त किया है, वे "जाति-नाम-गोत्र-नियुक्तायु" कहलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे पदों का अर्थ भी जान लेना चाहिये।

यहाँ पर जात्यादि नाम और गोत्र का तथा आयुष्य का भवोपग्रह में प्रधानता बतलाने के लिये यथायोग्य जीवों को विशेषित किया गया है। किन्ही किन्ही प्रतियों में तो आठ दण्डक ही पाये जाते हैं।

असंख्य द्वीप समुद्र

१९ प्रश्न–लवणे णं भंते ! समुद्दे किं उसिओदए, पत्थडोदए, खुब्भियजले, अखुब्भियजले ?

१९ उत्तर–गोयमा ! लवणे णं समुद्दे उसिओदए, णो पत्थडोदए, खुब्भियजले, णो अखुब्भियजले; एत्तो आढत्तं जहा जीवाभिगमे; जाव–से तेण गोयमा ! बाहिरिया णं दीव-समुद्दा पुण्णा, पुण्णप्पमाणा, वोलट्टमाणा, वोसट्टमाणा, समभरघडत्ताए चिट्ठंति; संठाणओ एगविहंविहाणा, वित्थारओ अणेगविहिविहाणा; दुगुणा, दुगुणप्पमाणाओ, जाव–अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा दीव-समुद्दा सयंभूरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो।

२० प्रश्न–दीव-समुद्दा णं भंते ! केवइया णामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

२० उत्तर–गोयमा ! जावइया लोए सुभा णामा, सुभा रूवा, सुभा गंधा, सुभा रसा, सुभा फासा एवइया णं दीवसमुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता; एवं णेयव्वा सुभा णामा, उद्धारो, परिणामो सव्वजीवाणं ।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥

॥ छट्ठसए अट्ठमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ–उसिओदए–उच्छ्रितोदक–उछलते हुए पानी वाला, पत्थडोदए–प्रस्तृतोदक–सम जल वाला, खुभियजले–क्षुब्ध जल वाला, अखुभियजले–अक्षुब्ध जल वाला, आढत्तं–प्रारम्भ करके, पुण्णा–पूर्ण, वोलट्टमाणा–वोलट्टमान, वोसट्टमाण–छलकते हुए, पज्जवसाणा–पर्यवसान–अंत ।

भावार्थ–१९ प्रश्न–हे भगवान् ! क्या लवण समुद्र उच्छ्रितोदक (उछलते हुए जल वाला) है, या प्रस्तृतोदक (सम जल वाला) है, या क्षुब्ध जल वाला है, अथवा अक्षुब्ध जल वाला है ?

१९ उत्तर–हे गौतम ! लवणसमुद्र उच्छ्रितोदक अर्थात् उछलते हुए जल वाला है, किन्तु प्रस्तृतोदक–सम जल वाला नहीं है । क्षुब्ध जल वाला है, किन्तु अक्षुब्ध जल वाला नहीं है । यहाँ से प्रारम्भ करके जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र में कहा है, उसी प्रकार से जान लेना चाहिए, यावत् इस कारण हे गौतम ! बाहर के समुद्र पूर्ण, पूर्ण प्रमाण वाले, छलाछल भरे हुए, छलकते हुए और समभर घट रूप से अर्थात् परिपूर्ण भरे हुए घड़े के समान तथा संस्थान से एक ही तरह के स्वरूप वाले हैं, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले हैं । द्विगुण द्विगुण प्रमाण वाले हैं, अर्थात् अपने पूर्ववर्ती द्वीप से दुगुने प्रमाण वाले हैं । यावत् इस तिर्च्छा लोक में असंख्य द्वीप समुद्र हैं । सब के अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है । हे श्रमणायुष्मन् ! इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे

गये हैं।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! द्वीपों और समुद्रों के कितने नाम कहे गये हैं ?

२० उत्तर-हे गौतम ! इस लोक में जितने शुभ नाम हैं, शुभ रूप, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श हैं, उतने ही द्वीप और समुद्रों के नाम कहे गये हैं। इस प्रकार सब द्वीप समुद्र शुभ नाम वाले हैं। उद्धार परिणाम और सब जीवों का उत्पाद कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर यावत् विचरते हैं।

विवेचन-पहले प्रकरण में जीवों के स्वधर्म का कथन किया गया है। अब स्वधर्म से लवणसमुद्र का कथन किया जाता है। लवण समुद्र उच्छ्रितोदक है, क्योंकि सोलह हजार योजन से कुछ अधिक उसकी जलवृद्धि ऊपर को होती है। इसीलिए वह प्रस्तृतोदक अर्थात् सम जल वाला नहीं है। महापाताल कलशों में रही हुई वायु के क्षोभ से लवणसमुद्र में वेला आती है। इसीलिए लवणसमुद्र का पानी क्षुब्ध होता है।

इससे आगे का वर्णन जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र में कहा है, उस तरह से कहना चाहिए। अढ़ाई द्वीप दो समुद्रों से बाहर के समुद्र उच्छ्रितोदक अर्थात् उछलते हुए पानी वाले नहीं हैं, किन्तु सम जल वाले हैं। वे क्षुब्ध जल वाले नहीं, किन्तु अक्षुब्ध जल वाले हैं। वे पूर्ण, पूर्ण प्रमाण वाले, यावत् पूर्ण भरे हुए घड़े के समान सम हैं। लवणसमुद्र में महामेघ संस्वेदित होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा वरसाते हैं, किन्तु बाहर के समुद्रों में महा-मेघ संस्वेदित नहीं होते हैं, सम्मूर्च्छित नहीं होते हैं, वर्षा नहीं वरसाते हैं। बाहर के समुद्रों में बहुत से उदक योनि जीव और पुद्गल, उदकपने अपक्रमते हैं, व्युत्क्रमते हैं, चवते हैं और उत्पन्न होते हैं। इन सब समुद्रों का संस्थान एक सरीखा है, किन्तु विस्तार की अपेक्षा दुगने दुगने होते गये हैं। ये समुद्र उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुन्दर और सुगन्धित पुण्डरीक महा-पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, केशर एवं विकसित पद्मों आदि द्वारा युक्त हैं। स्वस्तिक श्रीवत्स आदि सुन्दर शब्द शुक्ल, पीत आदि सुन्दर रूपों के सूचक शब्द अथवा देवादि के सुन्दर रूपों के सूचक शब्द, सुरभिगन्ध वाचक शब्द अथवा कपूर आदि पदार्थों के वाचक शब्द, मधुर रस वाचक शब्द, मृदु स्पर्श वाले नवनीत (मक्खन) आदि पदार्थों के वाचक शब्द जितने इस संसार में हैं, उतने ही शुभ नामों वाले द्वीप और समुद्र हैं। इन द्वीप और

समुद्रों की उपमेय संख्या को बतलाने के लिये कहा गया है कि-अढ़ाई सूक्ष्म उद्धार सागरोपम या पच्चीस कोड़ाकोड़ी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम में जितने समय होते हैं, उतने ही लोक में द्वीप और समुद्र हैं। ये द्वीप समुद्र, पृथ्वी, पानी, जीव और पुद्गलों के परिणाम वाले हैं। इन द्वीप और समुद्रों में भी प्राण, भूत, जीव, और सत्व, पृथ्वीकायिकपने यावत् त्रसकायिकपने अनेक वार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हो चुके हैं।

॥ इति छठे शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ९

कर्मबन्ध के प्रकार

१ प्रश्न-जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मप्पगडीओ बंधइ ।

१ उत्तर-गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा; बंधुद्देसो पण्णवणाए णेयव्वो ।

कठिन शब्दार्थ-बंधमाणे-बांधता हुआ ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ जीव, कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है ।

१ उत्तर-हे गौतम ! सात प्रकार से बांधता है, आठ प्रकार से बांधता है और छह प्रकार से बांधता है । यहां प्रज्ञापना सूत्र का बंध उद्देशक कहना

चाहिये ।

विवेचन-आठवें उद्देशक के अन्त में यह कहा गया था कि सभी प्राण, भूत, जीव, और सत्त्व, द्वीप-समुद्रों में अनेक बार अथवा अनन्तबार पहले उत्पन्न हो चुके हैं। जीवों का भिन्न-भिन्न गतियों में उत्पन्न होने का कारण उनका कर्म बन्ध है । इसलिये इस नववें उद्देशक में कर्मबन्ध के विषय में कथन किया जाता है । जिस समय जीव का आयुष्यबन्ध काल नहीं होता है, तब वह सात कर्म प्रकृतियों को बांधता है । आयुष्य के बन्ध-काल में आठ कर्म-प्रकृतियों को बांधता है । सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान की अवस्था में मोहनीय कर्म और आयुष्य कर्म को नहीं बांधता है, इसलिये ज्ञानावरणीय कर्म बांधता हुआ जीव, छह कर्म प्रकृतियों को बांधता है । इस विषय में प्रज्ञापनासूत्र के चौबीसवें पद में आये हुए बंधोद्देशक में जिस प्रकार कथन किया है, उस प्रकार यहां भी सारा कथन करना चाहिये ।

महर्द्धिक देव और विकुर्वणा

२ प्रश्न-देवे णं भंते ! महिड्ढीए, जाव-महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं, एगरूवं विउव्वित्तए ?

२ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

३ प्रश्न-देवे णं भंते ! बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू ?

३ उत्तर-हंता. पभू ।

४ प्रश्न-से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ, तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ, अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ ?

४ उत्तर-गोयमा ! णो इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ, तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ, णो अण्णत्थगए पोग्गले

परियाइत्ता विउव्वइ; एवं एएणं गमेणं जाव–एगवण्णं एगरूवं, एगवण्णं अणेगरूवं, अणेगवण्णं एगरूवं, अणेगवण्णं अणेगरूवं चउभंगो।

५ प्रश्न–देवे णं भंते ! महिड्ढीए, जाव–महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू कालगपोग्गलं णीलयपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए, णीलगपोग्गलं वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

५ उत्तर–गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। परियाइत्ता पभू।

६ प्रश्न–से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले ० ?

६ उत्तर–तं चेव, णवरं–परिणामेइ त्ति भाणियव्वं; एवं कालगपोग्गलं लोहियपोग्गलत्ताए, एवं कालगएणं जाव–सुक्किल्लं, एवं णीलएणं जाव–सुक्किल्लं, एवं लोहियपोग्गलं सुक्किल्लत्ताए, एवं हालिद्दएणं जाव–सुक्किल्लं, तं एवं एयाए परिवाडीए गंध-रस-फास० कक्खडफासपोग्गलं मउय-फासपोग्गलत्ताए, एवं दो दो गरुय-लहुय-सीयउसिण-णिद्धलुक्खवण्णाई-सव्वत्थ परिणामेइ। आलावगा दो दो पोग्गले अपरियाइत्ता, परियाइत्ता।

कठिन शब्दार्थ–परियाइत्ता–ग्रहण करके, लोहिय–लाल, सुक्किल्ल–श्वेत–शुक्ल, हालिद्द–पीला–हलदी जैसा, कक्खडफास–कर्कश–कठोर स्पर्श, मउय–मृदु–कोमल, सिद्धलुक्ख–स्निग्ध रूक्ष।

भावार्थ–२ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले और एक आकार

वाले स्वशरीर आदि की विकुर्वणा कर सकता है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह देव, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके उपर्युक्त रूप से विकुर्वणा कर सकता है ।

३ उत्तर-हाँ, गौतम कर सकता है ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह देव, इहगत अर्थात् यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ? या तत्रगत अर्थात् वहाँ-देवलोक में रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ? या अन्यत्रगत अर्थात् किसी दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण कर के विकुर्वणा करता है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! यहाँ रहे हुए और दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता, किन्तु वहाँ देवलोक में रहे हुए तथा जहाँ विकुर्वणा करता है, वहाँ के पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है । इस प्रकार इस गम (आलापक) द्वारा विकुर्वणा के चार भंग कहना चाहिये । यथा-१ एक वर्णवाला एक आकार वाला, २ एक वर्णवाला अनेक आकार वाला, ३ अनेक वर्ण वाला एक आकार वाला और ४ अनेक वर्ण वाला अनेक आकार वाला ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना काले पुद्गल को नील पुद्गलपने और नील पुद्गल को काले पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । किन्तु बाहरी पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा करने में समर्थ है ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह देव, इहगत पुद्गलों को या तत्रगत पुद्गलों को या अन्यत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा करने में समर्थ है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! वह इहगत और अन्यत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा नहीं कर सकता, किन्तु तत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा करने में समर्थ है । इसी प्रकार काले पुद्गल को लाल, पीला, और शुक्ल परिणमाने में समर्थ है । इसी प्रकार नीले पुद्गल के साथ यावत् शुक्ल, लाल पुद्गल के

साथ यावत् शुक्ल, हारिद्र (पीला) के साथ यावत् शुक्ल तक कहना चाहिये। इसी क्रम से गन्ध, रस और स्पर्श के विषय में भी कहना चाहिये। यावत् कर्कश स्पर्श वाले पुद्गल को कोमल स्पर्शवाले पुद्लपने परिणमाने में समर्थ है। इस प्रकार दो दो विरुद्ध गुणों को अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष वर्णादि को सर्वत्र परिणमाता है। 'परिणमाने' इस क्रिया के साथ यहाँ दो दो आलापक कहने चाहिये। यथा—१—पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमाता है। २—पुद्गलों को ग्रहण नहीं करके नहीं परिणमाता है।

विवेचन—यहाँ जीव का प्रकरण चल रहा है, इसलिये यहाँ देव रूप जीव के विषय में कथन किया जाता है। देव प्रायः उत्तर वैक्रिय रूप करके ही दूसरे स्थान पर जाता है। इसलिये यह कहा गया है कि देव, देवलोक में रहे पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है। किन्तु इहगत अर्थात् प्रश्नकार के समीपस्थ क्षेत्र में रहे हुए पुद्गलों को तथा अन्यत्रगत अर्थात् प्रज्ञापक का क्षेत्र और देव का स्थान, इन दोनों से भिन्न स्थान में रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके देव विकुर्वणा नहीं करता।

काला, नीला, लाल, पीला और सफेद—इन पांच वर्णों के द्विक संयोगी दस सूत्र कहने चाहिये। सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध—इन दोनों का एक सूत्र कहना चाहिये। तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा—इन पांच रसों के द्विक संयोगी दस सूत्र कहने चाहिये। गुरु और लघु, शीतल और उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष, कर्कश और कोमल—इस प्रकार आठ स्पर्शों के चार सूत्र कहने चाहिये। क्योंकि परस्पर विरुद्ध दो स्पर्शों का एक सूत्र बनता है। इसलिये आठ स्पर्शों के चार सूत्र होते हैं।

देव का जानना और देखना

७ प्रश्न—अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असम्मोहएणं अप्पाणएणं अविसुद्धलेसं देवं, देविं, अण्णयरं जाणइ पासइ ?

७ उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे; एवं २ असुद्धलेसे असम्मोहएणं

अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं, ३ अविसुद्धलेसे सम्मोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं, ४ अविसुद्धलेसे देवे सम्मोहएणं अप्पाणेणं विसुद्ध-लेसं देवं, ५ अविसुद्धलेसे समोहया-ऽसम्मोहय-अप्पाणेणं अविसुद्ध-लेसे देवं, ६ अविसुद्धलेसा समोहया-ऽसम्मोहएणं विसुद्धलेसं देवं, ७ विसुद्धलेसे असम्मोहएणं अविसुद्धलेसे देवं, ८ विसुद्धलेसे असम्मोहेणं विसुद्धलेसं देवं ।

८ प्रश्न-९ विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अविसुद्धलेसं देवं जाणइ ?

८ उत्तर-हंता, जाणइ ।

९ प्रश्न-एवं १० विसुद्धलेसे समोहएणं विसुद्धलेसं देवं जाणइ ?

९ उत्तर-हंता, जाणइ ।

१० प्रश्न-११ विसुद्धलेसे समोहयाऽसमोहएणं अविसुद्धलेसं देवं ? १२ विसुद्धलेसे समोहयाऽसमोहएणं विसुद्धलेसं देवं ?

१० उत्तर-एवं हेट्ठिल्लएहिं अट्ठहिं ण जाणइ, ण पासइ; उवरिल्लएहिं चउहिं जाणइ, पासइ ।

॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । ॥

॥ छट्ठसए नवमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-अविसुद्धलेसे-जिसकी लेश्या शुद्ध नहीं हो, असम्मोहएणं-उपयोग रहित, अप्पाणएणं-आत्मा से, जाणइ-जानता है, पासइ-देखता है, हेट्ठिल्लएहिं-नीचे के ।

भावार्थ–७ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव, अनुपयोग युक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव को या देवी को या अन्यतर को अर्थात् देव और देवी में से किसी एक को जानता और देखता है ?

७ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । २–इसी तरह अविशुद्ध लेश्यावाला देव, अनुपयुक्त आत्मा से, विशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को या अन्यतर को जानता है और देखता है ? ३–अविशुद्ध लेश्या वाला देव, उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि ? ४–अविशुद्ध लेश्या वाले देव, उपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि ? ५–अविशुद्ध लेश्या वाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि । ६–अविशुद्ध लेश्या वाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि । ७–विशुद्ध लेश्या वाला देव, अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि । ८–विशुद्ध लेश्या वाला देव, अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता और देखता है ? इन आठों प्रश्नों का उत्तर यह है कि–यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् नहीं जानता और नहीं देखता है ।

८ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या विशुद्ध लेश्यावाला देव, उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अन्यतर को जानता और देखता है ?

८ उत्तर–हाँ गौतम ! जानता और देखता है ।

९ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या विशुद्ध लेश्यावाला देव, उपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता और देखता है ?

९ उत्तर–हाँ गौतम ! जानता और देखता है ।

१० प्रश्न–हे भगवन् ! क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्धलेश्या वाले देवादि को जानता देखता है ? तथा विशुद्ध लेश्या वाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देवादि को जानता और देखता है ?

१० उत्तर-हाँ गौतम ! जानता और देखता है। पहले जो आठ भंग कहे गये हैं, उनमें नहीं जानता और नहीं देखता है। पीछे जो चार भंग कहे गये हैं, उनमें जानता और देखता है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन-देव का अधिकार होने के कारण यहां भी देव के सम्बन्ध में ही कहा जाता है। यहां अविशुद्ध लेश्या का अर्थ विभंग ज्ञान समझना चाहिये। १ 'अविशुद्ध लेश्या वाला (विभंगज्ञानी) देव २ अनुपयुक्त आत्मा द्वारा। ३ अविशुद्ध लेश्या वाले देवादि को। इन तीन पदों के बारह विकल्प होते हैं। जो ऊपर मूल पाठ में बतला दिये गये हैं। पहले जो आठ विकल्प बतलाये गये हैं, उनमें कथित देव नहीं जानता और नहीं देखता है। क्योंकि आठ विकल्पों में से पहले के छह विकल्पों में कथित देव का मिथ्यादृष्टिपन कारण है और शेष दो विकल्पों में कथित देव का अनुपयुक्तपन है।

पीछे कहे हुए चार (नौवां, दसवां, ग्यारहवां और बारहवां) विकल्पों में जानता और देखता है, क्योंकि इन विकल्पों में कथित देव का सम्यग्दृष्टिपन कारण है। ग्यारहवें और बारहवें वकल्प में उपयुक्तानुपयुक्तपन में उपयुक्तपन-सम्यग्ज्ञान का कारण है। इसलिये वह जानता और देखता है।

॥ इति छठे शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक १०

दुःख सुख प्रदर्शन अशक्य

१ प्रश्न-अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, जाव-परूवेंति जावइया रायगिहे णयरे जीवा, एवइयाणं जीवाणं णो चक्किया

केइ सुहं वा, दुहं वा, जाव-कोलट्ठिगमायमवि, णिप्पावमायमवि, कल (म) मायमवि, माससमायमवि, मुग्गमायमवि, जूयामायमवि, लिक्खामायमवि अभिणिवट्टेत्ता उवदंसित्तए-से कहमेयं भंते ! एवं ?

१ उत्तर-गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया एवं आइक्खंति, जाव-मिच्छं ते एवं आहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, जाव-परूवेमि सव्वलोए वि य णं सव्वजीवाणं णो चक्किया, केइ सुहं वा, तं चेव, जाव-उवदंसित्तए ।

२ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२ उत्तर-गोयमा ! अयं णं जंबूद्दीवे दीवे, जाव-विसेसाहिया परिक्खेवेणं पण्णत्ता; देवे णं महिड्ढीए, जाव-महाणुभागे एगं महं, सविलेवणं, गंधसमुग्गगं गहाय तं अवद्दालेइ, तं अवद्दालेत्ता जाव-इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबूद्दीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वं आगच्छेज्जा, से णूणं गोयमा ! से केवलकप्पे जंबूद्दीवे दीवे तिहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ? हंता, फुडे । चक्किया णं गोयमा ! केइ तेसिं घाणपोग्गलाणं कोलट्ठिमायमवि जाव-उवदंसित्तए ? णो इणट्ठे समट्ठे । से तेणट्ठेणं जाव-उवदंसेत्तए ।

कठिन शब्दार्थ-चक्किया-सकता है, कोलट्ठिगमायमवि-बेर की गुठली जितना भी, णिप्पावमायमवि-बाल जितना भी, अभिणिवट्टेत्ता-निकालकर, सविलेवणं-विलेपन करने का, गंधसमुग्गगं-गन्ध द्रव्य का डिब्बा, अवद्दालेइ-उघाड़ता है, घाणपोग्गलेहिं-गंध के पुद्गलों का।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत्

प्ररूपणा करते हैं कि राजगृह नगर में जितने जीव हैं, उन सब के दुःख या सुख को बोर गुठली प्रमाण, बाल (एक प्रकार का धान्य) प्रमाण, कलाय (मटर) प्रमाण, चावल प्रमाण, उड़द प्रमाण, मूंग प्रमाण, यूका (जूं) प्रमाण, लिक्षा (लीख) प्रमाण भी बाहर निकालकर नहीं दिखा सकता है। हे भगवन्! यह बात किस प्रकार हो सकती है ?

१ उत्तर-हे गौतम! जो अन्यतीर्थिक उपरोक्त रूप से कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। हे गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि सम्पूर्ण लोक में रहे हुए सब जीवों के सुख या दुःख को कोई भी पुरुष उपर्युक्त रूप से किसी भी प्रमाण में बाहर निकालकर नहीं दिखा सकता।

२ प्रश्न-हे भगवन्! इसका क्या कारण है ?

२ उत्तर-हे गौतम! यह जम्बूद्वीप नाम का द्वीप एक लाख योजन का लम्बा और एक लाख योजन का चौड़ा है। इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोश, १२८ धनुष, १३½ अंगुल से कुछ अधिक है। कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव, एक बड़े विलेपन वाले गन्ध द्रव्य के के डिब्बे को लेकर उघाड़े और उघाड़ कर तीन चुटकी बजावे उतने समय में उपर्युक्त जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र आवे, तो हे गौतम! उस देव की इस प्रकार की शीघ्र गति से गन्ध-पुद्गलों के स्पर्श से यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हुआ या नहीं ?

'हाँ भगवन्! वह स्पृष्ट हो गया।'

'हे गौतम! कोई पुरुष उन गन्ध पुद्गलों को बोर की गुठली प्रमाण यावत् लिक्षा प्रमाण भी दिखलाने में समर्थ है ?'

'हे भगवन्! यह अर्थ समर्थ नहीं है।'

हे गौतम! इसी प्रकार जीवों के सुख दुःख को बाहर निकाल कर बतलाने में कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है।

विवेचन-नौवें उद्देशक में अविशुद्ध लेश्यावाले को ज्ञान का अभाव बतलाया गया है। इस दसवें उद्देशक में भी ज्ञान के अभाव को बतलाने के लिए अन्यतीर्थिकों की प्ररूपणा का वर्णन किया जाता है। ऊपर जो दृष्टान्त दिया गया है, उसका सार यह है कि गन्ध पुद्गल अति सूक्ष्म होने के कारण मूर्त्त होते हुए भी अमूर्त्त तुल्य हैं। इसलिए उन पुद्गलों को दिखाने में कोई समर्थ नहीं है। इसी प्रकार सभी जीवों के सुख दुःख को भी कोई बाहर निकाल कर दिखलाने में समर्थ नहीं है।

जीव और प्राण

३ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जीवे, जीवे जीवे ?

३ उत्तर-गोयमा ! जीवे, ताव णियमा जीवे, जीवे वि, णियमा जीवे।

४ प्रश्न-जीवे णं भंते ! णेरइए, णेरइए जीवे ?

४ उत्तर-गोयमा ! णेरइए ताव णियमा जीवे, जीवे पुण सिय णेरइए, सिय अणेरइए।

५ प्रश्न-जीवे णं भंते ! असुरकुमारे, असुरकुमारे जीवे ?

५ उत्तर-गोयमा ! असुरकुमारे ताव णियमा जीवे, जीवे पुण सिय असुरकुमारे, सिय णो असुरकुमारे; एवं दंडओ भाणियव्वो, जाव-वेमाणियाणं।

६ प्रश्न-जीवइ भंते ! जीवे, जीवे जीवइ ?

६ उत्तर-गोयमा ! जीवइ ताव णियमा जीवे, जीवे पुण सिय

जीवइ, सिय णो जीवइ ।

७ प्रश्न-जीवइ भंते ! णेरइए, णेरइए जीवइ ।

७ उत्तर-गोयमा ! णेरइए ताव णियमा जीवइ, जीवइ पुण सिय णेरइए, सिय अणेरइए, एवं दंडओ णेयव्वो, जाव-वेमाणियाणं ।

८ प्रश्न-भवसिद्धिए णं भंते ! णेरइए, णेरइए भवसिद्धिए ?

८ उत्तर-गोयमा ! भवसिद्धिए सिय णेरइए, सिय अणेरइए; णेरइए वि य सिय भवसिद्धिए, सिय अभवसिद्धिए; एवं दंडओ, जाव-वेमाणियाणं ।

कठिन शब्दार्थ-जीवइ-जीता है, सिय-कदाचित् ।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव चैतन्य है, या चैतन्य जीव है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! जीव, नियमा जीव (चैतन्य) है और जीव (चैतन्य) भी नियमा जीव है ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव नैरयिक है, या नैरयिक जीव है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक तो नियमा जीव है और जीव तो नैरयिक भी होता है, तथा अनैरयिक भी होता है ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, असुरकुमार है, या असुरकुमार जीव है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार तो नियमा जीव है और जीव तो असुरकुमार भी होता है तथा असुरकुमार नहीं भी होता है । इस प्रकार वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहिये ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जो जीता है-प्राण धारण करता है, वह जीव कहलाता है, या जो जीव है, वह जीता है-प्राण धारण करता है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! जो जीता है-प्राण धारण करता है वह नियमा

जीव कहलाता है और जो जीव होता है, वह प्राण धारण करता भी है और नहीं भी करता है।

७ प्रश्न–हे भगवन् ! जो जीता है, वह नैरयिक कहलाता है, या जो नैरयिक होता है, वह जीता है–प्राण धारण करता है ?

७ उत्तर–हे गौतम ? नैरयिक तो नियमा जीता है, किन्तु जो जीता है वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहिये।

८ प्रश्न–हे भगवन् ! जो भवसिद्धिक है, वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक होता है ?

८ उत्तर–हे गौतम ! जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है। तथा जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक भी होता है और अभवसिद्धिक भी होता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डक कहने चाहिये।

विवेचन–जीव का अधिकार होने से जीवों के विषय में ही कथन किया जाता है। यहाँ तीसरे प्रश्न में दो बार जीव शब्द का प्रयोग हुआ है। उनमें से एक जीव शब्द का अर्थ 'जीव' है और दूसरे जीव शब्द का अर्थ 'चैतन्य' है। इसका उत्तर स्पष्ट है कि जो जीव है, वह चैतन्य रूप है और जो चैतन्य रूप है, वह जीव है। क्योंकि जीव और चैतन्य में परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है।

जो नैरयिक है, वह तो नियम से जीव है ही, किन्तु जो जीव है, वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है। जो प्राणों को धारण करता है, वह नियम से जीव है, क्योंकि अजीव के आयुष्य कर्म न होने से वह प्राणों को धारण नहीं करता। जो जीव है, वह कदाचित् प्राणों को धारण करता है और कदाचित् प्राणों को धारण नहीं करता है, क्योंकि सिद्ध भगवान् जीव तो हैं, किन्तु प्राणों को (द्रव्य प्राणों को) धारण नहीं करते हैं। नैरयिकादि सभी जीव, नियमा प्राणों को धारण करते हैं। क्योंकि सभी संसारी जीवों का स्वभाव प्राण धारण करने का है, किन्तु जो प्राण धारण करता है, वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है। क्योंकि नैरयिक और अनैरयिक सभी संसारी जीव, प्राणों को धारण करते हैं।

अन्ययूथिक और जीवों का सुख दुःख

९ प्रश्न-अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, जाव-परूवेंति एवं खलु सव्वे पाणा, भूया, जीवा, सत्ता एगंतदुक्खं वेयणं वेयंति, से कहमेयं भंते ! एवं ?

९ उत्तर-गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया, जाव-मिच्छं ते एवं आहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, जाव-परूवेमि-अत्थेगइया पाणा, भूया, जीवा, सत्ता एगंतदुक्खं वेयणं वेयंति, आहच्च सायं; अत्थेगइया पाणा, भूया, जीवा सत्ता एगंतसायं वेयणं वेयंति, आहच्च अस्सायं वेयणं वेयंति; अत्थेगइया पाणा, भूया, जीवा, सत्ता वेमायाए वेयणं वेयंति, आहच्च सायमसायं ।

१० प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

१० उत्तर-गोयमा ! णेरइया एगंतदुक्खं वेयणं वेयंति आहच्च सायं, भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया एगंतसायं वेयणं वेयंति, आहच्च असायं; पुढविक्काइया, जाव-मणुस्सा वेमायाए वेयणं वेयंति, आहच्च सायमसायं-से तेणट्ठेणं ।

कठिन शब्दार्थ-आहच्च-कदाचित्, वेमायाए-विमात्रासे-कभी कुछ कभी कुछ ।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदना को

वेदते हैं। हे भगवन् ! यह किस प्रकार हो सकता है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वह मिथ्या है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते है और कदाचित् सुख को वेदते हैं। तथा कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख को वेदते हैं। कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं। अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव, एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सुख वेदते हैं। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख वेदते हैं। पृथ्वीकाय से लेकर यावत् मनुष्य तक के जीव विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं। अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं। इस कारण हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है।

विवेचन-जीव का प्रकरण होने से जीव के सम्बन्ध में अन्यतीर्थियों की वक्तव्यता कही जाती है। अन्यतीर्थियों की वक्तव्यता को मिथ्या बतला कर वास्तविकता की प्ररूपणा की है।

नैरयिक जीव, एकान्त असाता वेदना वेदते हैं, किन्तु तीर्थंकर भगवान् के जन्मादि के प्रसंग पर तथा देव प्रयोग द्वारा कदाचित् साता वेदना भी वेदते हैं। देव एकान्त साता वेदना वेदते हैं, किन्तु पारस्परिक आहनन में और प्रिय वस्तु के वियोगादि में असाता वेदना भी वेदते हैं।

पृथ्वीकाय से लेकर मनुष्य तक के जीव, कदाचित् (किसी समय) साता वेदना भी वेदते हैं और कदाचित् असाता वेदना भी वेदते हैं।
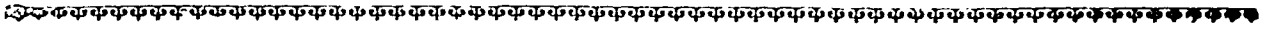
नैरयिकादि का आहार

११ प्रश्न--णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ते किं आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?

११ उत्तर–गोयमा ! आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति णो अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, णो परंपरखेत्तोगाढे; जहा णेरइया तहा जाव–वेमाणियाणं दंडओ।

कठिन शब्दार्थ–अत्तमायाए–आत्मा द्वारा।

भावार्थ–११ प्रश्न–हे भगवन् ! नैरयिक जीव, आत्मा द्वारा ग्रहण करके जिन पुद्गलों का आहार करते हैं, क्या वे आत्मशरीरक्षेत्रावगाढ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं ? या अनन्तरक्षेत्रावगाढ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं ? या परम्परक्षेत्रावगाढ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं ?

११ उत्तर–हे गौतम ! आत्म-शरीर-क्षेत्रावगाढ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं, परन्तु अनन्तरक्षेत्रावगाढ और परम्परक्षेत्रावगाढ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार नहीं करते। जिस प्रकार नैरयिकों के लिये कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में कहना चाहिये।

विवेचन–जीव के सम्बन्ध में ही कहा जाता है। जीव स्व-शरीर क्षेत्र में रहे हुए पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करता है, किन्तु आत्म शरीर से अनन्तर और परम्पर क्षेत्र अर्थात् आत्म क्षेत्र से अनन्तर क्षेत्र से परक्षेत्र में रहे हुए पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार नहीं करता है।

केवली अनिन्द्रिय होते हैं

१२ प्रश्न–केवली णं भंते! आयाणेहिं जाणइ, पासइ ?

१२ उत्तर–गोयमा णो इणट्ठे समट्ठे ।

१३ प्रश्न–से केणट्ठेणं ?

१३ उत्तर–गोयमा! केवली णं पुरत्थिमेणं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ, जाव–णिव्वुडे दंसणे केवलिस्स, से तेणट्ठेणं ।

गाहाः–'जीवाण य सुहं दुक्खं जीवे जीवइ तहेव भविया य,
एगंतदुक्खं वेयण-अत्तमायाय केवली' ।

॥ सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति ॥

छट्ठसए दसमो उद्देसो सम्मत्तो ।

कठिन शब्दार्थ–आयाणेहिं–इन्द्रियों द्वारा, मियं–मित्त–सीमित, अमियं–असीम, निव्वुडेदंसणे–निर्वृत्त दर्शन ।

भावार्थ–१२ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या केवली भगवान् ! इन्द्रियों द्वारा जानते हैं और देखते हैं ?

१२ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

१३ प्रश्न–हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

१३ उत्तर–हे गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशा में मित (परिमित) को भी जानते हैं और अमित को भी जानते हैं, यावत् केवली का दर्शन निर्वृत्त है । हे गौतम ! इसलिये ऐसा कहा जाता है ।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है:-जीवों का सुख दुःख, जीव, जीव का प्राण-धारण, भव्य, एकान्त दुःख वेदना, आत्मा द्वारा पुद्गलों का ग्रहण और केवली, इतने विषयों का विचार इस दसवें उद्देशक में किया गया है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन-केवली भगवान् का ज्ञान और दर्शन निर्वृत्त, परिपूर्ण और आवरण रहित होता है । इसलिये वे इन्द्रियों द्वारा नहीं जानते और नहीं देखते हैं । इस विषय का विशेष विवेचन पाँचवें शतक के चौथे उद्देशक में दे दिया गया है ।

॥ इति छठे शतक का दसवां उद्देशक सम्पूर्ण ॥

॥ छठा शतक समाप्त ॥

सम्पूर्ण